लेखक की प्रकाशित रचनाएँ

- जयशंकर प्रसाद और उनका काव्य (१६५७)
- हिन्दी काव्य में शृंगार-परंपरा और महाकवि विहारी (१६५६)

  पंजाव विश्वविद्यालय द्वारा पी० एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत तथा उत्तर प्रदेश सरकार व पंजाव सरकार द्वारा पुरस्कृत ।
- साहित्यिक निवन्ध (१६५६)
- हिन्दी साहित्य : समस्याएँ और समाधान (१६६०)
- साहित्य-विज्ञान (१६६३)

  पंजाव विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट् उपाधि के लिए स्वीकृत ; उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा एक-सहस्र मुद्राओं से पुरस्कृत तथा हरजीमल डालमिया पुरस्कार-समिति द्वारा 'डालमिया-पुरस्कार' से सम्मानित ।
- हिन्दी-साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (१६६५)

  उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा २५०० रुपयों के विशेष पुरस्कार से तथा हरयाना सरकार के द्वारा प्रथम श्रेणी के पुरस्कार से सम्मानित । आगरा विश्वविद्यालय द्वारा एम० ए० के लिए निर्धारित ।
- विहारी-सतसई : वैज्ञानिक समीक्षा (१६६६)
- आधुनिक साहित्य और साहित्यकार (१६६७)
- महादेवी : नया मूल्यांकन (१६६६)

* * *

महादेवी : नया मूल्यांकन

डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त एम. ए., डी. लिट
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर केन्द्र, शिमला—३

● प्रकाशक : 'भारतीय अनुसधान परिषद्' की ओर से—
भारतेन्दु भवन, लोअर बाजार शिमला–१
● मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामंडी आगरा–२
● प्रथम संस्करण : १९६९ ई०
● मूल्य : १५ रुपये

Mahadevi : Naya Mulyankan

[A New Valuation of Mahadevi]

By

Dr. Ganpati Chandra Gupta, M. A., PH. D., D. LITT.

Price : Rs. 15·00 Only.

समर्पित

साहित्य-साधना एवं काव्य-मीमांसा में लीन उन सब आस्थावान साहित्यकारों को जिनका विश्वास है कि—

* साहित्य का सौन्दर्य केवल वासना के उद्दीपन में ही नहीं, भावना के उद्वेलन एवं चेतना के परिष्कार में भी योग देता है।
* परंपरा का अंधानुसरण भी उतना ही घातक है जितना कि आधुनिकता का विवेक-शून्य आग्रह।
* नव निर्माण एवं नूतन विकास के लिए स्वदेशी व विदेशी, परंपरागत एवं नवयुगीन तत्त्वों में अपेक्षित संशोधन-परिष्कार के अनन्तर समन्वय आवश्यक है।
* अनास्था, अराजकता एवं अवमूल्यन की स्थिति कुछ संदर्भों में—कुछ व्यक्तियों के लिए—लाभदायक सिद्ध हो सकती है पर सामूहिक हित उसके द्वारा संभव नहीं।
* सामाजिकता से विमुख साहित्य और साहित्यिकता से शून्य समाज—दोनों ही अन्ततः निःस्पन्द, निर्जीव एवं चेतना-शून्य होकर जड़ हो जाते हैं। वस्तुतः वैयक्तिक अनुभूतियों के समाजीकरण या साधारणीकरण का ही दूसरा नाम साहित्य-सर्जन है।

—गणपतिचन्द्र गुप्त

स्वगत कथन

आज की स्थिति मे जबकि न केवल साहित्य मे अपितु जीवन मे भी मूल्यो का विघटन हो रहा है—मूल्याकन और नव मूल्याकन की चर्चा व्यर्थ सी प्रतीत होगी। मूल्यो के अभाव में मूल्यांकन कैसा ! फिर मूल्याकन का लक्ष्य क्या है—मूल्यांकन क्यो करें, किसके लिए करें—आदि प्रश्नो के उत्तर भी अस्पष्ट है। इतना ही नही, अति आधुनिकतावादी दृष्टि से मूल्यांकन की सार्थकता एव उपयोगिता पर भी प्रश्नवाचक चिह्न लग गया हैं। उस दृष्टि के अनुसार साहित्य का चिन्तन या मूल्यांकन अध्यापकीय धन्धे का एक ऐसा अग हैं जिसका लक्ष्य साहित्य-साधना के मार्ग मे वाधा उपस्थित करना है, साहित्य की गति को अवरुद्ध एव कुण्ठित करते हुए साहित्य-सर्जन को दमित करना है ; इसीलिए साहित्य के अनेक नये संरक्षको ने मूल्याकन या समीक्षा के विरुद्ध भी एक आन्दोलन छेड़ दिया है।

अत: सवसे पहला प्रश्न तो यही है कि क्या सचमुच मूल्यांकन की प्रक्रिया साहित्य के सर्जन एवं विकास के मार्ग मे वाधक सिद्ध होती है ? क्या सचमुच उसकी अव कोई उपयोगिता नही रह गयी है ?

यदि हम व्यावहारिक जीवन पर दृष्टि डाले तो इस प्रश्न का उत्तर सहज ही प्राप्त हो जायगा। जव वाजार मे वर्ग-विशेष के लोग शुद्ध वस्तुओ एव पदार्थो के स्थान पर अशुद्ध या नकली पदार्थो को प्रचलित करके स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं तो उन्हे यह अनुभव होता है कि उनके लक्ष्य की पूर्त्ति मे दो तत्त्व वाधक हैं—एक वह दृष्टि जो शुद्ध और अशुद्ध के अन्तर को पहचानने मे समर्थ है ; दूसरी वह व्यवस्था जिसके कारण वे अपनी वस्तु को निर्धारित मूल्य से अधिक मे नही वेच पाते। ऐसी स्थिति में वे या तो उन कसौटियो एवं मानदडो का विरोध करेंगे कि जिनसे शुद्ध और अशुद्ध का अन्तर स्पष्ट हो जाता है, अथवा मूल्य-निर्धारण करने वाली व्यवस्था को ही भग करवा देने का प्रयास करेंगे। वस्तुत. हर युग एव हर क्षेत्र में, जहाँ भी व्यवस्था और नियम हैं वहाँ मूल्य और मूल्याकन के साथ-साथ उसके विरोधी भी सदा से रहे हैं। यह दूसरी वात है कि उनका विरोध किस रूप मे और किस शब्दावली मे प्रकट होता है।

साहित्य का क्षेत्र भी इसका अपवाद नही है। उसमे सुकवि और कुकवि (अकवि ?) सदा से रहे हैं। ये कुकवि अपनी युक्तियो, तर्कों, कुतर्को एवं वाह्य चमत्कारों से काव्य के सच्चे स्वरूप के स्थान पर कृत्रिम रूपो की प्रतिष्ठा का प्रयास सदा से करते रहे है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इन्ही प्रयासो को 'पाखंड-विवाद' की संज्ञा देते हुए अत्यन्त खेद भरे स्वर मे लिखा था :

हरित भूमि तृण-संकुलित समुझि परे नहीं पंथ ।
जिमि पाखंड विवाद तें लुप्त भये सद्ग्रन्थ !

घोर आस्थावादी तुलसीदास का भी विश्वास था कि 'पाखंड-विवाद' सद्ग्रन्थो का भी लोप कर सकता है या उनके स्थान पर असत् ग्रन्थो की प्रतिष्ठा कर सकता है।

अतः यह आश्चर्य की बात नही कि जिनके हाथ मे शक्ति हो वे अपने बल से मुहम्मक तुगलक की भाँति खोटे सिक्को की ही टकसाल स्थापित करने मे सफल हो जायँ—परिणाम चाहे उसका कुछ भी क्यो न हो !

अस्तु, मूल्यो और मूल्यांकन की प्रक्रिया का विरोध वही वर्ग कर सकता है जो अराजकता की स्थिति उत्पन्न करके अपने खोटे सिक्को को चलाना चाहता हैं ।

● आचार्य अज्ञेय ने कुछ वर्षों पूर्व लिखा था, प्रतिभाशाली साहित्यकार की पहचान है, हड़कम्पी पैदा कर देना क्योकि वह तभी अपने व्यक्तित्व को समाज पर आरोपित कर सकेगा । उनकी वाणी इन शब्दों में प्रस्फुटित हुई है—'जो प्रतिभावान हैं, जीनियस है वह इस परिस्थिति मे पड कर एक हडकम्प पैदा कर देगा ।' स्वयं अज्ञेय ने भी उपन्यास, कविता, आलोचना, निबन्ध, इतिहास-लेखन आदि के क्षेत्रो मे 'हड़कम्पी पैदा' करके अपनी विचित्र प्रतिभा का परिचय दिया है ; पर उनके अनुगामी उनसे भी आगे बढ रहे है—वे ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ कर रहे हैं जिनसे हडकम्पी तो क्या साहित्य का पूरा ढाँचा ही बिखरता हुआ दिखाई दे रहा है ! साहित्य के स्थान पर असाहित्य की प्रतिष्ठा का प्रयास पूरी साँठ-गाँठ के साथ हो रहा है ! कविता मे से रस को, कहानी मे से कथात्मकता को, एवं समीक्षा मे से मूल्यो को निष्कासित करने का संगठित प्रयास 'पाखड विवाद' के आधार पर ही हो रहा है । कदाचित् साहित्य मे अनास्था, अराजकता, अवमूल्यन, अनैतिकता, असामाजिकता, अकविता, अकहानी आदि 'अ' वादी प्रवृत्तियाँ—जो कि स्पष्ट ही जीवन के लिए निषेधात्मक एवं घातक हैं—इसी प्रयास से प्रेरित हैं ।

● इन सब प्रवृत्तियो के मूल मे क्या है ? पाश्चात्य समाजशास्त्रीय विद्वानो एवं सास्कृतिक इतिहासकारो ने विश्व सस्कृति के अभ्युत्थान एवं पतन के इतिहास का अध्यनन करते हुए साहित्य की इन प्रवृत्तियो के मूलाधारो को स्पष्ट करने का यत्न किया है जिनमे स्पैंगलर, टॉयनबी, सोरोकिन प्रभृति का नाम उल्लेखनीय है। इन इतिहासकारो के अनुसार जब कोई भी सस्कृति या सभ्यता अपने विकास की चरम सीमा तक पहुँच जाती है तो उसका विघटन या पतन आरंभ हो जाता है । इस स्थिति में समाज ऊपर से शक्ति-सम्पन्न, वैभवशाली एव सक्रिय दिखाई पड़ता है पर भीतर-ही-भीतर वह रिक्त, खोखला एवं चेतना-शून्य होने लगता है ; उसका शरीर स्वस्थ, पुष्ट एवं सुन्दर दिखाई देता है किन्तु उसकी चेतना भीतर से खंडित एव निष्प्राण होती चलती है । इस भीतर की स्थिति का ज्ञान उसके बाह्य जीवन से नही अपितु उसके साहित्य से ही हो पाता है जो कि उसके आन्तरिक जीवन को व्यक्त करता है। संक्षेप

में, पतनोन्मुख जाति के साहित्य के प्रमुख लक्षण ये हैं—(१) उसकी चेतना का क्षेत्र अत्यन्त सीमित, क्षुद्र एवं हेय हो जाता है—वह उच्च आदर्शों, व्यापक सिद्धान्तो, महान् लक्ष्यों से हटकर क्षुद्र वासनाओं एवं पाशविक वृत्तियो की तुष्टि से सम्बन्धित क्रिया-कलापो तक ही सीमित हो जाती है। (२) इसी के अनुरूप उसकी विषय-वस्तु का भी संकोचन हो जाता है—वह ऐन्द्रियकता, रिक्तता, निष्क्रियता की अनुभूति तक ही सीमित हो जाती है। (३) साहित्यिक सौन्दर्य के स्थान पर उसमे वासनात्मक उत्तेजना या बौद्धिक चमत्कार की प्रतिष्ठा होने लगती है। (४) साहित्य के विभिन्न तत्त्व विघटित एवं लुप्त होने लगते है। (५) साहित्य के विभिन्न रूप-भेद अस्पष्ट, मिश्रित एव विकृत होने लगते है। (६) वह अतीत की परम्पराओं एवं भविष्य की आशाओ से सम्वन्ध-विच्छेद करके सकीर्ण वर्तमान में आवद्ध हो जाता है। (७) अपनी अस्पष्टता, दुर्बोधता एवं अस्वाभाविकता के कारण समाज से उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है।

कहना न होगा कि ये सभी प्रवृत्तियाँ पाश्चात्य साहित्य मे द्रुतगति से विकसित हो रही है जिसे अनेक चिन्तक पाश्चात्य सस्कृति के विघटन एव पतन की प्रक्रिया की अग्रिम सूचना के रूप मे मान रहे है। भारतीय इतिहास में भी हम देखते हैं कि महा-भारत से लेकर आज तक जब-जव इन प्रवृत्तियो का उन्मीलन हुआ हमारी सभ्यता का पतन हुआ हैं। वौद्ध साम्राज्य, हिन्दू साम्राज्य एव मुगल-साम्राज्य के पतन-काल से कुछ पूर्व का तत्सम्बन्धी साहित्य देखा जाय तो यह स्पष्ट होगा कि उस समय भी साहित्यिक प्रवृत्तियो ने परवर्ती पतन की अग्रिम सूचना दे दी थी—यह दूसरी बात है कि वह सूचना निरर्थक रही।

अस्तु, पाश्चात्य साहित्य की ये प्रवृत्तियाँ पाश्चात्य सस्कृति की पतनोन्मुखता की सूचक है, पर भारतीय साहित्य मे भी ये सब क्यो पनप रही हैं? क्या भारतीय सस्कृति भी पतनोन्मुखी अवस्था में है? हमारे विचार मे भारतीय सस्कृति पतन की स्थिति से निकलकर अभी-अभी वाहर आयी है; वह नव चेतना एवं नव जागरण की स्थिति मे है, अत: विकास-क्रम की दृष्टि से उसके चरम विकास की स्थिति भी अभी दूर है—अतः पतन की स्थिति का तो अभी प्रश्न ही नही उठता। फिर हमारे साहित्य मे ये प्रवृत्तियाँ क्यो पनप रही हैं?

इसका उत्तर है—अनुकरण या अंधानुकरण के कारण। एक बार जव साहव को जुकाम हो गया तो उन्होने कमरें की खिडकियाँ वन्द की, एस्प्रो लिया, और विस्तरों में लेट गये। उनके चपरासी ने भी रात्रि में घर पहुँचकर यह सव-कुछ किया, यद्यपि उसे जुकाम नही था। केवल साहव का अनुकरण करने के लिए! हमारे यहाँ भी अनेक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्हे जुकाम हो या न हो पर वे अपने पश्चिमी साहवों का अनुकरण अवश्य करेंगे—वे छीकते हैं तो ये भी छीकेंगे, उनके हाथ में सूंघनी है तो ये भी उसे हाथ मे रखेंगे। वहाँ दादावाद चला, प्रतीकवाद चला, प्रयोगवाद चला, नयी कविता (New Verse) चली, वीटल-सम्प्रदाय चला, भूखी पीढी का नारा चला, लघु

मानव का बोध हुआ, आधुनिकता अति आधुनिकता और समसामयिकता की चर्चाएँ हुईं—यह सब कुछ हमारे यहाँ भी हुआ ! हम उनसे पीछे कैसे रह सकते थे ! उनका वैभव, उनकी समृद्धि उनकी यात्रिकता हमारे जीवन मे नही है—उनकी समस्याएँ और हमारी समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं : उनकी समस्या है—भोजन को कैसे हजम करें ? हमारी समस्या है—रोटी का टुकडा कहाँ से मिले ? वे सोचते है उधार किस-किस को दें, हमारी चिन्ता है—उधार कहाँ से लें ! उनके पास यत्र इतने अधिक है कि उनसे विराग होने लगा है जबकि हम उन्हे अभी लुब्ध दृष्टि से ही देख रहे है। वे शताब्दियो से मुक्ति का आनन्द लूट रहे है, हम अभी-अभी कैद से छूटकर निकले है—फिर भी हमारे साहित्यकार की अनुभूतियाँ वही है जो उनकी है—जिस पर यह बात लागू नही होती वह 'आधुनिक' नही है, और जो 'आधुनिक' नही है—वह साहित्यकार कैसे कहा जा सकता है !

हम नहीं कहते कि पाश्चात्य प्रवृत्तियो एवं आधुनिक विचारों को न अपनावें, पर अपनाना और अधानुकरण करना अलग-अलग बात है। पश्चिम जिसे अपनाकर फेक दे, वही हमारे यहाँ आभूपण बन जाय—यह ठीक नही। हमारा भी अपना व्यक्तित्व है, अपना चिन्तन है, हम पश्चिम से कुछ सीख सकते हैं तो उसे कुछ सिखा भी सकते हैं। आँख मूँदकर किसी भी तत्त्व को स्वीकार करना—चाहे वह भारतीय हो या पाश्चात्य, परंपरागत हो या आधुनिक अपनी विवेक-शून्यता को ही प्रमाणित करता है।

इन सब बातो का महादेवी से क्या सम्बन्ध है ? इनकी चर्चा यहाँ क्यो कर रहे हैं ? उत्तर में निवेदन है कि निश्चित ही इन सारी बातों का सम्बन्ध महादेवी से है। आज के टूटते हुए मानदडों, विघटित होते हुए मूल्यो एव खडित होती हुयी आस्था का प्रत्यक्ष उत्तर है—महादेवी। अराजकता की आँधी एवं अनास्था के तूफान मे भी वे अपनी साधना के दीप को जलाये हुए है। परंपरा का उन्हे ज्ञान है पर उसकी रूढियो से वे बँधी हुई नही हैं ; आधुनिक युग का उन्हे बोध है पर उसकी सीमाओ से वे अपरिचित नही है , अध्यात्म मे उनकी आस्था है पर साप्रदायिकता से वे मुक्त हैं , कला का सौन्दर्य कम नही पर सत्य का उद्घोष भी उनकी वाणी में है , आलोचको के आक्षेप उन पर कम नही हुए पर अपने लक्ष्य से वे विचलित नही हुयी , साथी उन्हे छोड़ गये पर दिशा और पथ को उन्होने नही छोडा। उनका समूचा साहित्य आस्था के उद्घोष एव औदात्य के वैभव से अनुप्राणित है। इसीलिए आज की पूर्व चर्चित स्थिति का समाधान उन जैसे साहित्य-साधको द्वारा ही सभव है। उनका अध्ययन एवं मूल्याकन हमे एक ऐसी दृष्टि एव शक्ति प्रदान करता है जिससे हम आधुनिकता के कुहासे को चीरकर अतीत की परपराओ और भविष्य के लक्ष्य को देखते हुए आगे वढ सकते हैं।

केवल गति मे हमारा विश्वास नही है। गति को नियन्त्रित करने वाला प्रत्येक तत्त्व हमारे लिए घातक है—ऐसा भी हम नही मानते। जब हम रसातल की ओर जा रहे हो, या लक्ष्य से विपरीत दिशा मे दौड रहे हो तो वहाँ हमारी गति पर अंकुश आवश्यक है—अन्यथा गति दुर्गति बन जायगी।

प्रत्येक गति प्रगति नही है ; दुर्गति की भी संभावना उसमे है। मूल्यो की स्थापना और मूल्याकन की प्रक्रिया यदि विवेकपूर्ण दृष्टि, वैज्ञानिक पद्धति एव प्रामाणिक विधि के द्वारा सपन्न हो तो वह साहित्य सर्जन की उसी गति मे बाधक होगी जो दुर्गति की ओर अग्रसर है। ऐसी वाधा भी निर्बाध पतन से सौगुनी अच्छी है। पर जिनका लक्ष्य केवल गति है, हलचल है, उछल-कूद है, शोर-गुल है, हडकम्पी है, उनके कोमल हृदय को यदि इससे चोट लगे तो स्वाभाविक है !

● प्रस्तुत मूल्याकन केवल महादेवी के काव्य को नयी दृष्टि से देखने का ही प्रयास नही है अपितु साथ-साथ मे नये मूल्यो के विकास का भी प्रयत्न है। इसीलिए प्रत्येक पक्ष की विवेचना करने से पूर्व तत्सम्वन्धी सिद्धान्तो की व्याख्या प्राय की गयी है। इस प्रयास की नयी उपलब्धियाँ क्या है—यह तो पूरे ग्रन्थ के अध्ययन से ही स्पष्ट हो सकेगा, पर फिर भी कतिपय निष्कर्षो की ओर विद्वानों का ध्यान विशेष-रूप से आर्कषित करना चाहता हूँ—

* महादेवी की काव्य-दृष्टि साहित्य का लक्ष्य सौन्दर्य को नही, सत्य को मानती है। यह तथ्य उनके पूरे साहित्य पर लागू होता है—अर्थात् उसमे सत्य का औदात्य भावात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक है।
* महादेवी के काव्य मे अद्वैत दर्शन एवं बौद्ध दर्शन के सामान्यीकृत रूपों का समन्वय हुआ है ; उनका दार्शनिक पक्ष अद्वैत से अधिक प्रभावित है तो जीवन-दर्शन बौद्ध मत से।
* महादेवी का युग-बोध अतीत और वर्तमान मे समन्वय स्थापित करता है।
* छायावाद विघटित होकर आदर्शोन्मुखी एव यथार्थोन्मुखी धाराओ मे विभक्त हो गया जो मंदगति से आज भी प्रवाहित हैं , महादेवी प्रथम वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।
* छायावाद और रहस्यवाद मूलत. अलग-अलग है , पर महादेवी की विषय-वस्तु रहस्योन्मुख है जवकि उनकी अभिव्यंजना-शैली छायावादी हैं। दूसरे शब्दो मे छायावाद उनके शैली पक्ष मे ही है, वस्तु पक्ष मे बहुत कम।
* महादेवी के काव्य मे वेदना (पीडा), करुणा और दु.ख—पर्यायवाची नही है, वे क्रमशः अलौकिक प्रणय, करुणा और निर्वेद की अलग-अलग प्रवृत्तियों के सूचक हैं तथा उनका सम्बन्ध भी अलग-अलग आलम्बनो से है।
* महादेवी ने प्रकृति के स्थिर रूप एवं वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उसके गत्यात्मक रूप एवं आन्तरिक औदात्य का चित्रण अधिक किया है।
* महादेवी की शैली मे पाश्चात्य शब्दावली में 'प्रतीक-योजना' तथा भारतीय शब्दावली मे 'ध्वनि' की ही प्रमुखता है ; वस्तुत ये दोनो ही अप्रस्तुत-योजना या विस्थापनात्मक रूप-विधान के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते है।
* उनके काव्य मे प्रतीक रूप मे दीपक का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है जो उनकी साधना का प्रतीक है—यह प्रतीक उनकी पहली प्रकाशित रचना से

लेकर अन्तिम काव्य-संग्रह तक बरावर व्यवहृत हुआ है। इसके अनन्तर पुष्प—और उसमे भी कमल—सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है जो उनकी करुणा का आलम्बन है।

* सौन्दर्य-शास्त्रीय दृष्टि से उनके काव्य में औदात्य की, काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से शान्त रस की तथा वैज्ञानिक दृष्टि से वौद्धिक आकर्षण की प्रमुखता है।

इस प्रकार इस कृति मे महादेवी के काव्य को सौन्दर्य-शास्त्रीय, काव्य-शास्त्रीय एव साहित्य-विज्ञान की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। इसकी उपलब्धियों एवं अभावो का मूल्याकन तो विद्वान् लोग ही करेंगे, मै तो केवल यही कह सकता हूँ कि मैंने शक्ति-भर अपनी आस्था एव अपनी दृष्टि को अविचलित एव स्पष्ट रखने का प्रयास किया है, फिर भी मेरी अपनी अनेक सीमाएँ हो सकती हैं।

कृति की रचना मे मुझे जिनसे अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है उनका भी आभार स्वीकार करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। श्रेद्धयवर डा० इन्द्रनाथ मदान ने विगत वर्ष अपनी व्याख्यान-माला के अन्तर्गत महादेवी के सम्बन्ध में अनेक नयी और विचारोत्तेजक धारणाएँ व्यक्त करके मुझे अप्रत्यक्ष मे इस ओर प्रेरित किया। मेरे संस्थान के निदेशक डा० जगदीश चन्द्र से शोध-कार्य मे सलग्न रहने की प्रेरणा एवं उसके लिए अपेक्षित सुविधा बरावर मिलती रही है। मेरे अनेक साहित्यिक वन्धुओ एव मित्रों ने भी समय-समय पर प्रेरणा देकर मेरी चेतना को कुण्ठित होने से बचाया है जिनमे डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', डा० सत्यप्रकाश संगर, डा० कृष्णदेव झारी, डा० धर्मपाल मैनी, प्रो० सत्यपाल विज, श्री चन्द्रदेव वर्मा, श्री रामकृष्ण 'कौशल', श्री राजेन्द्रपाल सूद प्रभृति का नाम उल्लेखनीय है। श्री गुलावसिंह यादव, मालिक, आगरा फाइन आर्ट प्रेस, ने रुचिपूर्वक विशेप प्रयास करके इस ग्रन्थ को शीघ्र एवं सुन्दर रूप में प्रकाशित करने में योग दिया है।

श्रद्धेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की व्यापक चेतना, उदार दृष्टि एव उदात्त धारणाओ से औदात्य का तथा श्रद्धेय डा० नगेन्द्र के द्वारा उद्घाटित साहित्य-चिन्तन की भारतीय एवं पाश्चात्य परंपराओ के अनुशीलन से काव्य-सौन्दर्य का जो किंचित् वोध मैंने प्राप्त किया है, उसका भी उपयोग सर्वत्र किया है। श्रद्धेय डा० माताप्रसाद गुप्त से शोध-कार्य मे अग्रसर होने की प्रेरणा निरन्तर मिलती रही है। अतः इन सवका हृदय से आभारी हूँ।

और अन्त मे मैं अपनी पत्नी—श्रीमती विद्यादेवी के लिए क्या कहूँ जो कि घर की सभी चिन्ताओ से मुक्त रख कर मुझे निरन्तर कागज काले करने में संलग्न रखती हैं। उनकी शिकायत है कि उनका नाम आज तक मैंने कभी भी अपनी पुस्तकों में नहीं दिया!

शिवरात्रि
१५ फरवरी, १९६६

—गणपतिचन्द्र गुप्त

विषय-क्रम

प्रथम खण्ड : व्यक्तित्व एवं दर्शन

द्वितीय खण्ड : महादेवी की काव्य-वस्तु

तृतीय खण्ड : महादेवी-काव्य : शैली एवं रूप

चतुर्थ खण्ड : महादेवी-काव्य का मूल्यांकन

* * *

महादेवी : नया मूल्यांकन

प्रथम खण्ड

व्यक्तित्व एवं दर्शन

व्यक्तित्व एवं दर्शन

* महादेवी : जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व

** महादेवी का काव्य-दर्शन

*** महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

**** महादेवी की दार्शनिक मान्यताएँ

***** महादेवी का जीवन-दर्शन

****** महादेवी का युग-बोध

१

महादेवी : जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व

"साहित्यकार के आत्म-तत्त्व की महानता का प्रतिबिम्ब ही साहित्य का औदात्य है। सच्चा वाग्वैदग्ध्य उन्हीं में पाया जा सकता है जिनकी चेतना व्यापक और उदार हो। जो लोग जीवन-भर क्षुद्र उद्देश्यों और संकीर्ण स्वार्थों के पीछे पड़े रहते हैं वे मानवता के लिए स्थायी महत्त्व की रचना नहीं दे पाते। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जिनके मस्तिष्क महान् विचारों से परिपूर्ण होते हैं उन्हीं की वाणी से उदात्त शब्द झंकृत होते हैं।"
—लौंजाइनस

साहित्य और विज्ञान मे सबसे बडा अन्तर यह होता है कि जहाँ एक मे उसके रचयिता के व्यक्तित्व का प्रभाव निहित होता है वहाँ दूसरा उससे मुक्त होता है। साहित्यकार सदा निजी दृष्टि से वैयक्तिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति साहित्य मे प्रस्तुत करता है जबकि वैज्ञानिक वस्तुपरक दृष्टि से वस्तुओ के प्राकृतिक गुण-धर्मो की मीमांसा करता हुआ उनके सम्बन्ध मे सामान्य विचारो, सिद्धान्तो एव नियमो की स्थापना करता है। जहाँ साहित्य मे साहित्यकार की निजी अनुभूति नही होती वहाँ भी उसकी कल्पना, चिन्तन एव अभिव्यजना का प्रभाव किसी न किसी मात्रा मे अवश्य होता है। अत साहित्य को यदि साहित्यकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी कह दे तो कोई अत्युक्ति न होगी। ऐसी स्थिति मे स्पप्ट है कि किसी भी साहित्य या काव्य का सम्यक् अनुशीलन करने के लिए तथा उसकी मूलभूत प्रेरणाओ एव प्रवृत्तियो को हृदयगम करने के लिए उसके रचयिता के व्यक्तित्व का ज्ञान परमावश्यक है। किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत कुछ उसकी आनुवशिक परम्पराओं, पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण, शिक्षा-दीक्षा सम्बन्धी सस्कारो तथा वैयक्तिक परिस्थितियो एवं उसके बाह्य एव आन्तरिक द्वन्द्व के प्रभाव से निर्मित एव विकसित होता है—अतः व्यक्तित्व को समझने के लिए उस व्यक्ति के जीवन-वृत्त का ज्ञान अपेक्षित है। अस्तु,

इन्ही लक्ष्यो से यहाँ महादेवी के जीवन-वृत्त एव व्यक्तित्व का अध्ययन क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है ।

● **जीवन-वृत्त**—महादेवी का जन्म फर्रुखावाद (उत्तर प्रदेश) के एक सुप्रतिष्ठित परिवार मे २४ मार्च सन् १९०७ (सवत् १९६४) को प्रात.काल आठ वजे हुआ था ।[1] उस दिन होली का शुभ त्यौहार था ।[2] इनके पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा जो कि एम० ए०, एल० एल० वी० तक शिक्षा-प्राप्त थे, इन्दौर के 'डेली कालेज' मे प्राध्यापक के रूप मे कार्य करते थे । इनकी माता हेमरानी देवी एक विदुषी, कला-प्रिय एव धर्म-परायण नारी थी तथा इनके नाना व्रजभाषा के कवि एव भक्त प्रवृत्ति के व्यक्ति थे । १९१२ मे इन्दौर के मिशन स्कूल मे महादेवी की शिक्षा आरंभ हुई । साथ-साथ घर मे भी एक पंडित, एक मौलवी, एक चित्र-शिक्षक एव एक सगीत-शिक्षक के द्वारा विभिन्न भाषाओ एव कलाओ की शिक्षा दी जाने लगी । सन् १९१६ मे, केवल नौ वर्ष की आयु[3] मे इनका विवाह स्वरूपनारायण वर्मा के साथ कर दिया गया, जिससे कुछ समय के लिए इनकी शिक्षा मे व्याघात उपस्थित हो गया, पर सन् १९१९ मे इन्हे पुन. क्रास्थवेट-कालेज, प्रयाग मे प्रविष्ट करवा दिया गया जहाँ से उन्होंने १९२१ मे मिडिल की परीक्षा, १९२५ मे इन्ट्रेन्स की तथा १९२९ मे वी० ए० की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की ।[4] इतना ही नही मिडिल की परीक्षा मे तो वे प्रान्तभर मे सर्वप्रथम रही । इसी वीच अस्वस्थ हो जाने के कारण एक वर्ष तक इनका अध्ययन-क्रम स्थगित रहा तथा इस समय का उपयोग उन्होंने रायगढ, ताकुला, नैनीताल आदि के भ्रमण मे किया । आगे चलकर १९३२ मे उन्होने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत मे एम० ए० उत्तीर्ण किया ।[5]

यद्यपि महादेवी का विवाह वाल्यकाल में ही हो गया था किन्तु उसे उन्होने कभी भी स्वीकार नही किया ।[6] विवाह के अनन्तर वे एक वार ससुराल गयी किन्तु वहाँ रो-रोकर अस्वस्थ हो गई जिससे उन्हें दूसरे ही दिन वापस पितृ-गृह भेज दिया गया । उसके वाद ये तथा इनके पति दोनो ही अलग-अलग स्थानो पर शिक्षा प्राप्त करते रहे तथा पारस्परिक सपर्क के वचे रहे । वी० ए० उत्तीर्ण करते ही जव इनके गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो इन्होंने पूरी दृढता से वैवाहिक जीवन एव गार्हस्थ्य मे

---

१. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व ; पृ० ८८ ।
२ वही ; पृ० ३१ ।
३. वही ; पृ० ८९ ।
४. 'महादेवी-संस्मरण ग्रन्थ' सं० पंत ; पृ० २२१ ।
५. वही ।
६. वही ; पृ० १६ ।

प्रवेश करना अस्वीकार कर दिया। वैसे यह निर्णय वे बहुत पहले ले चुकी थी, पर इसकी स्पष्ट घोषणा इसी समय की गयी। इसी समय इन्होने बौद्ध भिक्षुणी बनने का भी विचार किया किन्तु बौद्ध गुरु की नारियो के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टि को देखकर उन्होंने अपना विचार त्याग दिया[७] और एम० ए० करने के अनन्तर महात्मा गाधी की प्रेरणा से अध्यापन-कार्य आरंभ कर दिया। १९३२ ई० मे उनकी नियुक्ति प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या के रूप मे हो गयी तथा साथ ही वे 'चाँद' पत्रिका का अवैतनिक सम्पादन भी करने लगी।

काव्य-रचना एव कला-साधना का क्रम इनके जीवन मे बहुत पहले से ही चल पडा था। सात-आठ वर्ष की आयु मे ही इन्होंने व्रजभाषा मे अनेक पदो एव मुक्तको की रचना की। ये रचनाएँ प्राय समस्या पूर्ति के ढग की होती थी, यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है[८]—

आगम है दिन नायक को, अरुनाई भरी नभ की गलियान में,
सीरी सुमंद बतास बही, मुस्कान नई बगरी कलियान में;
संख धुनी बिरुदावलियाँ अब गुंजित है खग औ अलियान में,
वारन के हित कंज-कली मुकुताहल जोरि रही अँखियान में।

इसी बीच 'सरस्वती', पत्रिका के माध्यम से इनका परिचय खडी वोली कविता से हुआ जिससे प्रेरित होकर इन्होंने भी खडी वोली मे लिखना आरभ किया। खड़ी वोली मे इनकी प्रथम पूर्ण रचना 'दिया' है जो ग्यारह वर्ष की आयु मे लिखी गयी थी। वह इस प्रकार है[९].

धूलि के जिन लघु कणों में है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान!
आग कर देती जिसे पल में जलाकर क्षार,
है बनी उस तूल से वर्ती नई सुकुमार।
तेल में भी है न आभा का कहीं आभास,
मिल गये सब तब दिया तू ने असीम प्रकाश।
धूलि से निर्मित हुआ है, यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम।

---

७. महादेवी · विचार और व्यक्तित्व (नागर); पृ० २१ एवं ६१।
८. 'महादेवी-संस्मरण-ग्रन्थ'; पृ० १३।
९. वही; पृ० १४।

प्रेम का ही तेल भर जो हम बने निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक !

आगे चलकर इनकी अनेक कविताएँ 'आर्य महिला' 'महिला-जगत' और 'चाँद' में प्रकाशित हुईं। सन् १९२० मे इन्होने एक करुण रस का खंड-काव्य भी लिखा था जो अप्रकाशित एव अप्राप्य है। १९२३ में एक नाटक की भी रचना की जिसमें फूल, भ्रमर, तितली, वायु आदि को पात्र रूप मे प्रस्तुत किया गया था। यह भी अप्रकाशित ही रहा। आगे चलकर क्रमश. 'नीहार' (१९३०), 'रश्मि' (१९३२) 'नीरजा' (१९३४), 'साध्य गीत' (१९३६) एव 'दीप शिखा' (१९४२) शीर्षक से इनके काव्य-सग्रह प्रकाशित हुए।[१०]

लगभग 'दीप शिखा' के रचना-काल से ही वे गद्य की ओर उन्मुख हो गयी तथा उन्होने अनेक सस्मरणात्मक एवं आलोचनात्मक लेख लिखे जो विभिन्न संग्रहो के रूप में इस क्रम से प्रकाशित हुए—'अतीत के चलचित्र' (१९४१), 'शृखला की कड़ियाँ' (१९४२), 'स्मृति की रेखाएँ' (१९४३), 'पथ के साथी (१९५६), 'क्षणदा' (१९४६), 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' (१९६२)।[११]

इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त महादेवी ने कुछ ग्रन्थो का अनुवाद एवं सपादन भी किया है। सन् १९५९ मे 'सप्तपर्णा' में इन्होंने वैदिक एव सस्कृत काव्य के कतिपय मार्मिक अशो का अनुवाद प्रस्तुत किया है तो 'बग-दर्शन' (१९४४), एवं 'हिमालय' (१९६३) मे क्रमश' बगाल के अकाल एवं चीनी आक्रमण से उत्पन्न परि-स्थितियो के सदर्भ मे लिखित विभिन्न कवियो की कविताओ का संग्रह एव सपादन हुआ है।[१२]

उपर्युक्त साहित्यिक सर्जन के अतिरिक्त विभिन्न सामाजिक एव राजनीतिक क्रिया-कलापो से भी महादेवी का सम्बन्ध रहा है। साहित्यकारों के हितों की रक्षा के लिए उन्होने १९४४ मे प्रयाग मे 'साहित्यकार-ससद' की स्थापना की, १९५२ मे वे उत्तर प्रदेश की विधान-परिषद् की सदस्या मनोनीत की गयी, १९५४ मे वे 'साहित्य एकादेमी' की संस्थापक सदस्या चुनी गयी तथा १९६० से वे प्रयाग महिला विद्यापीठ के उपकुलपति पद पर कार्य कर रही है।[१३] इस प्रकार वे साहित्य-सेवा के साथ-साथ समाज, शिक्षा एव सस्कृति के क्षेत्र मे भी बराबर कार्य-रत है।

● **महादेवी का व्यक्तित्व**—'व्यक्तित्व' शब्द का प्रयोग सामान्यत. बहुत ही सीमित अर्थ मे किया जाता है जिसका तात्पर्य प्रायः व्यक्ति की शारीरिक विशेषताओ एव वेशभूषा सम्बन्धी प्रवृत्तियो से लिया जाता है जबकि मूलत. इसका अर्थ व्यक्ति की उन

१०-१२. महादेवी-संस्मरण-ग्रन्थ ; पृ० २२४-५।
१३. वही ; पृ० २२६।

सभी शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं व्यावहारिक प्रवृत्तियो से लिया जाना चाहिए जो एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न करती है। वस्तुत. 'व्यक्ति' की भाववाचक संज्ञा ही 'व्यक्तित्व' है—अत. व्यक्ति की सभी विशिष्टताओ का समाहार व्यक्तित्व मे किया जा सकता है।

जैसा कि हम अन्यत्र विस्तार से स्पष्ट कर चुके है[१४], व्यक्तित्व के चार प्रमुख पक्ष है—(१) शारीरिक, (२) मानसिक, (३) चारित्रिक एवं (४) व्यावहारिक। क्षेत्र-भेद के अनुसार कही किसी पक्ष का महत्त्व होता है और कही किसी का ; यथा पहल-वान या सैनिक के लिए शारीरिक पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है तो व्यापारी के लिए व्यावहारिक पक्ष। इसी प्रकार साहित्य मे सर्वाधिक महत्त्व मानसिक पक्ष का होता है क्योकि इसमे व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियो—रागात्मक, वौद्धिक एवं काल्पनिक प्रवृ-त्तियो की ही व्यजना होती है।

विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व का विकास इन चार आधारो पर होता है[१५]—(१) आनुवशिक परपरा, (२) वातावरण, (३) द्वन्द्व एव (४) संतुलन। यहाँ महादेवी के व्यक्तित्व का विश्लेपण भी क्रमश. इन चारो तत्त्वों के आधार पर किया जाता है।

(क) आनुवंशिक परंपरा—व्यक्ति की प्रायः सभी जन्मजात प्रवृत्तियाँ वीज रूप मे उसके पूर्वजो के रक्त मे निहित रहती है, जो कि माता-पिता के माध्यम से उसे प्राप्त होती है। इस दृष्टि से पूर्वजो की परम्परा के भी दो पक्ष है—(१) पिता सम्वन्धी, (२) माता सम्वन्धी।

महादेवी के माता-पिता के व्यक्तित्व का परिचय हमे अनेक स्रोतो से उपलब्ध है। श्रीमती श्यामादेवी सक्सेना ने, (जो कि महादेवी की छोटी वहन है) उनका परि-चय इस प्रकार प्रस्तुत किया है[१६]।

माता—"माँ की स्मरण शक्ति वहुत अच्छी थी। रामायण, महाभारत, गीता आदि के कई अंश उन्हे याद थे। विनय-पत्रिका तो उन्हे कठस्थ थी। तुलसीदासजी की वे भक्त थी। रामचन्द्रजी उनके इष्ट देव थे। चैत्र मे राम-जन्म के अवसर पर नौ दिनो तक रामायण का पाठ इस भाँति करती कि रामनवमी के दिन पाठ पूर्ण हो जाता—फिर धूमधाम के साथ रामायण और रामचन्द्रजी की आरती होती और प्रसाद वँटता।····माँ सवेरे चार वजे उठ जाती। स्नान आदि से निवृत्त हो पूजागृह मे चली जाती····।" (=धार्मिक प्रवृत्ति, साधिका)

---

१४. 'साहित्य-विज्ञान' (साहित्य की शैली) ; पृ० २२८।

१५. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास ; पृ० ३०।

१६. 'महादेवी-संस्मरण-ग्रंथ' ; पृ० ४-५।

"माँ और पिताजी दोनो को ही गाने का बडा शौक था। ····माँ परदे के अंदर से गाना सुनती एवं सीखती। मास्टर साहब के चले जाने पर वे हारमोनियम पर उनका सिखाया हुआ भजन सुना देती। साल भर के अन्दर ही वे सब स्वर निकालने लगी, सभी राग-रागिनियाँ हारमोनियम पर उतारने लगी। वे ढेरो गाने सीख गईं। (=कला मे गति, रुचि एवं प्रवृत्ति)

● पिता—"बाबूजी बहुत सुन्दर, सौम्य, विद्वान् और हँसमुख थे। ···· ···किन्तु बाबूजी गोश्त के प्रेमी थे। 'पिता नास्तिक कर्मठ जीवन मे विश्वास। ····बाबूजी पूजा-पाठ मे विश्वास नही करते थे, किन्तु उनका सिद्धान्त था कि दूसरे के विश्वास को चोट नही पहुँचानी चाहिए।"

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि महादेवी के माता एवं पिता—दोनो परस्पर विरोधी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, पर फिर भी दोनों मे ही समन्वय एवं सहिष्णुता की प्रवृत्ति भी पूरी मात्रा मे विद्यमान थी जिससे वे एक दूसरे की भावनाओ का आदर कर सके। महादेवी के व्यक्तित्व मे उनकी माता का अश ही अधिक प्रतीत होता है; आस्तिक बुद्धि, धार्मिक प्रवृत्ति, साधना मे रुचि, कला और सगीत मे अभिरुचि एवं प्रतिभा—आदि प्रवृत्तियाँ उन्हें माता से प्राप्त हुई हैं जब कि पिता की बौद्धिकता, ओजस्विता एवं समन्वयशीलता का भी उनमे अभाव नही है। अन्याय के प्रति विद्रोह तथा न्याय एव स्वाभिमान के लिए दृढता एव सहिष्णुता की भावना कदाचित् उन्हे अपने पिता के व्यक्तित्व से प्राप्त हुई हैं।

(ख) वातावरण—व्यक्तित्व-निर्माण मे योग देने वाला दूसरा तत्त्व वातावरण है जिसके अन्तर्गत पारिवारिक एव सामाजिक वातावरण के अतिरिक्त शिक्षा-दीक्षा जन्य सस्कारो को सम्मिलित किया जा सकता है। महादेवी का जन्म एक समृद्ध एवं सुशिक्षित परिवार मे हुआ, अतः उन्हे जीवन के आरभ से ही कोमल, मधुर एव सुखमय वातावरण प्राप्त हुआ। अपने माता-पिता की पहली सतान होने के कारण उन्हें एक ओर तो बहुत-अधिक लाड-प्यार मिला तो दूसरी ओर उन्हे शैशव कालीन एकान्त भी प्राप्त हुआ। ये परिस्थितियाँ उन्हे अन्तर्मुखी एव सवेदनशील बनाने मे सहायक हुईं। माता के सदा पूजा-पाठ मे लगे रहने के कारण इन्हे धार्मिक वातावरण भी प्राप्त हुआ। जब इन्हे पढना आ गया तो वे रामायण के पाठ मे भी लगने लग गयी।

शिक्षा के क्षेत्र मे इन्हें विभिन्न परस्पर-विरोधी प्रभाव एवं सस्कार साथ-साथ प्राप्त हुए। एक ओर घर मे संस्कृत पढाने के लिए पंडितजी, अंग्रेजी पढाने के लिए मास्टर साहब, गाना सिखाने के लिए तथा सगीत और चित्रकला के लिए एक कलाकार आने लगे जिससे इन्हे विभिन्न क्षेत्रो के विभिन्न गुरुओं का सस्कार प्राप्त हुआ तो दूसरी

ओर उन्हें मिशन-स्कूल मे भरती करवा दिया गया जहाँ कि उन्हे इसाइयत के सस्कार न्यूनाधिक मात्रा मे प्राप्त हुए।[१७]

इस प्रकार महादेवी को बाल्यकाल मे ही विभिन्न प्रकार के सस्कार एव प्रभाव प्राप्त हुए जिन्होंने उनकी रुचियों के परिष्कार, प्रतिभा के प्रस्फुटन एव चिन्तन को प्रवुद्ध करने में योग दिया।

(ग) द्वन्द्व एवं संतुलन—महादेवी के प्रारभिक जीवन मे कदाचित् किसी प्रकार का वाह्य द्वन्द्व नही था क्योकि उनकी इच्छा के अनुसार उन्हे सब कुछ सहज सुलभ था, अत. उनके व्यक्तित्व मे आन्तरिक या मानसिक द्वन्द्व की ही प्रमुखता रही है। जैसा कि विभिन्न उदाहरणो से ज्ञात होता है, शैशवकाल से ही महादेवी मे करुणा की प्रवृत्ति प्रमुख रही है तथा करुणा की व्यापकता ने ही उन्हे सासारिक विरक्ति की ओर अग्रसर किया। जिस व्यक्ति को खिलते हुए फूल को तोडने मे[१८] या कुत्ते के वच्चो को सर्दी मे 'कू कू' की ध्वनि करते देखकर ही असह्य पीडा का अनुभव होता है[१९], वह वैयक्तिक सुखो के उपयोग मे किस प्रकार तल्लीन हो सकता है। महादेवी की इस व्यापक करुणा ने ही उन्हे एक ओर तो बौद्ध धर्म, अध्यात्म एव दु खवाद की ओर अग्रसर किया तो दूसरी ओर वे वैवाहिक सम्वन्धो एवं गृहस्थ जीवन की वेडियो को काट फेंकने के लिए विवश हुईं। करुणा उनके व्यक्तित्व का मूल आधार है जो उन्हे सवेदनशील, भावुक चिन्तक एव विद्रोही वनने के लिए प्रेरित करता रहता है। महादेवी के व्यक्तित्व के अन्य सभी पक्ष उनकी इस मूल धारा से प्रभावित है।

द्वन्द्व या अन्तर्द्वन्द्व असीमित या अनियत्रित होने पर व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व को छिन्न-भिन्न एव ध्वस्त कर सकता है, किन्तु सौभाग्य से महादेवी के साथ ऐसा नही हुआ। उनका व्यक्तित्व इतना अधिक सवल एव शक्तिशाली है कि वह भीतर के द्वन्द्व को सुसमन्वित एव सुनियत्रित करने मे सफल हो गया है। उन्होने द्वन्द्व का दमन या शमन नही किया अपितु उसे जीवन मे सहज रूप मे व्यक्त करके उससे मुक्ति पाली। यदि वे वैवाहिक जीवन को स्वीकार कर लेती तो कदाचित् ऐसी परिस्थितियाँ वन जाती जिनमे उनका द्वन्द्व और अधिक सवल हो उठता तथा जिसे सहज अभिव्यक्ति देना उनके वश मे न रहता। पर महादेवी ने कभी परिस्थितियो से समझौता नही किया अपितु परिस्थितियो को अपने अनुरूप ढलने के लिए विवश किया है। इसीलिए उनका व्यक्तित्व परिस्थितियों की प्रतिकूलता एव द्वन्द्व के शक्ति-शोषक विषैले प्रभाव से मुक्त रहा है। दूसरे शव्दो में, महादेवी ने सदा वही रास्ता चुना है जो उनकी मूल भावना एव मनोवृत्तियो के अनुकूल था, उन्हे किसी अन्य रास्ते पर ढकेलने के प्रयास

---

१७ 'महादेवी-सस्मरण-ग्रंथ', पृ० ६-७-६।

१८-१९. महादेवी-संस्मरण-ग्रन्थ' पृ० १२-१३।

समय-समय पर हुए किन्तु उनके निश्चय की दृढ़ता के कारण वे सफल नही हुए। मनोनुकूल पथ-चयन कर सकने की क्षमता के कारण ही महादेवी पूरी शक्ति एवं गति से अपने लक्ष्य की ओर सदा अग्रसर रही है जब कि उनके अन्य साथी अपने व्यक्तित्व की दुर्बलता के कारण परिस्थितियो के सम्मुख समर्पित होने, हवा के प्रत्येक झोके के साथ बह जाने या मानसिक सतुलन खो देने के लिए विवश हुए। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए स्वयं महादेवी ने भी कहा है—"जीवन के तुतले उपक्रम से लेकर अब तक मेरा मन अपने प्रति विश्वासी ही रहा है। मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रान्त होने और चली राह मे पग-पग गिनकर पश्चाताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नही मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है, केवल इतना ही नही, वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये है।"[२०] इन शब्दो मे व्यक्तित्व की जिस सबलता, दुर्जेयता, सफलता एवं आत्मविश्वास की झलक मिलती है, उसी की अनुगूज उनकी निम्नाकित पंक्तियो मे भी सुनी जा सकती है—

> **पंथ रहने दो अपरिचित,**
> **प्राण रहने दो अकेला,**
> **और होंगे चरण हारे**
> **अन्य है जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे![२१]**

वस्तुतः कभी भी न हारने वाले चरणो का दावा करने वाली और रास्ते के समस्त कटको को चुनौती देकर आगे बढ़ जाने वाली इस कवयित्री का व्यक्तित्व इतना सबल है कि यदि उस पर 'प्रलय भी विस्मित' हो तो कोई आश्चर्य नही।

* * *

२०. 'यामा भूमिका ; पृ० ५।
२१. दीपशिखा।

२

महादेवी का काव्य-दर्शन

"· · ·कलाकार निर्माण देकर ध्वंस का प्रश्न सुलझाता है ध्वस देकर निर्माण का नहीं, इसी से जब किसी परम्परा का ध्वंस उसकी दृष्टि का केन्द्र बन जाता है तब उसमें कला-सृष्टि के उपयुक्त संयम का अभाव हो जाता है।" —**महादेवी**

वैसे तो हमारे जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप के मूल में तत्सम्बन्धी कोई न कोई धारणा, अवधारणा या प्रेरणा की सक्रियता सिद्ध होगी किन्तु काव्य-रचना पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। कवि अपनी समस्त रागात्मक एवं बौद्धिक वृत्तियो के गूढतम रूप की अभिव्यक्ति एक निश्चित आकार-प्रकार मे देता है; कहने के लिए भले ही यह कहा जाय कि यह अभिव्यक्ति सर्वथा सहज, अकृत्रिम एवं निश्चेष्ट रूप मे होती है, उसके पीछे कोई विशिष्ट प्रयोजन या धारणा नही होती, पर यथार्थ मे यह बात नही है। स्वान्त. सुखाय काव्य-रचना करने वाले महाकवि तुलसी ने अपने काव्य के मूल मे किसी इतर लक्ष्य की सत्ता स्वीकार नही की, अपने साँवरिया के विरह मे पागल होकर उन्मुक्त स्वर मे गान करने वाली मीराँ ने भी काव्य सम्बन्धी किसी भी अवधारणा को मान्यता नही दी तथा पत जैसे आधुनिक कवि ने भी विरही हृदय के सहज स्वाभाविक उच्छ्वास के रूप मे ही कविता का स्फुरण स्वीकार किया है; पर फिर भी यह नही कहा जा सकता कि कोई भी काव्य-रचना कवि की वैयक्तिक दृष्टि, रुचि एवं प्रवृत्ति से सर्वथा अप्रभावित रहती है। कवि जिस विषय-वस्तु, रूप एव शैली का चयन करता है वह चाहे चेतन स्तर पर अनजाने मे ही हो जाता है किन्तु उस चयन के पीछे उसके उपचेतन या अचेतन की प्रेरणाओ का प्रयास अवश्य रहता है। एक ही विषय को लेकर दो भिन्न-भिन्न कवि काव्य-रचना करते है, पर फिर भी दोनों की रचनाओ मे उनकी दृष्टि, विचार-धारा, अनुभूति एव शैली के भेद के कारण गहरा

अन्तर उपस्थित हो जाता है। वस्तुत काव्य-सर्जन से पूर्व कवि के मन मे काव्य का एक पूरा बिम्ब या सपना होता है जिसे वह कागज व लेखनी की सहायता से शब्दो मे ढालता है। यह आवश्यक नही कि सभी कवि अपने सपने को ठीक-ठीक शब्दो मे उतार सके, यह उसकी प्रतिभा एव अभिव्यजना-शक्ति पर निर्भर है कि वे अपने लक्ष्य की पूर्ति मे कहाँ तक सफल होते हैं; पर फिर भी वे जितना अश उतार पाते है, उससे उनके काव्यत्व के लक्ष्य, दिशा, पथ एव गति का बोध अवश्य हो जाता है। तुलसी ने अपने युग के सम्राट् अकबर को छोडकर अलौकिक राम को क्यो चुना, केशवदास ने एक ओर 'रामचद्रिका' जैसे भक्ति-काव्य तथा दूसरी ओर 'रतनबावनी', 'वीरसिंह देवजू चरित' एव 'जहाँगीर जस-चद्रिका' जैसे प्रशसापूर्ण ग्रन्थो की रचना क्यो की अथवा बिहारी ने शृगार, भक्ति, नीति, दर्शन, वैद्यक जैसे परस्पर विरोधी विषयो का समावेश अपनी रचना मे क्यो किया—इन सबमे कवि की वैयक्तिक प्रवृत्तियो एव उनके आधार पर पोषित काव्य सम्बन्धी प्रेरणाओ, प्रयोजनो एव धारणाओ का आधार है। कवि काव्य-शास्त्र लिखे या न लिखे किन्तु स्पष्ट या अस्पष्ट रूप मे उसके मन मे काव्य के सम्बन्ध मे कुछ धारणाएँ अवश्य होती है, जिनसे प्रेरित एव परिचालित होता हुआ वह काव्य-रचना करता है। कवि की इन्ही धारणाओ को समग्र रूप मे उसका 'काव्य-दर्शन' कहा जा सकता है।

किसी भी काव्य को सम्यक् रूप मे ग्रहण करने के लिए उसके रचयिता के व्यक्तित्व के साथ-साथ उसके काव्य-दर्शन का ज्ञान भी अपेक्षित है। काव्य-दर्शन ही कवि की प्रेरणाओ, प्रयोजनो, दिशाओ एव विभिन्न काव्य प्रवृत्तियो के मूल-स्रोत का स्पष्टीकरण करता है। अत यहाँ महादेवी के भी काव्य-दर्शन का अध्ययन उनकी रचनाओ की विभिन्न भूमिकाओ एव गद्य-लेखो मे व्यक्त विचारो के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है।

○ कविता क्या है ?—काव्य सम्बन्धी प्रत्येक विचार-धारा का आरंभ सामान्यत. इस प्रश्न के साथ होता है कि उसके अनुसार काव्य या कविता क्या है ? वस्तुत इस प्रश्न का उत्तर ही वह बीज है जिस पर काव्य-चिन्तन का विशाल वट-वृक्ष आधारित रहता है। वैसे आधुनिक युग के अनेक आलोचक जिन्हे परिभाषाओ से बँधने, उत्तर-दायित्वो को स्वीकारने एव स्पष्टरूप मे कुछ भी कहने मे अनावश्यक सकोच की अनुभूति होती है वे काव्य सम्बन्धी बडे-बडे निष्कर्षो को प्रस्तुत करते हुए भी इस प्रश्न को प्राय. टाल देते हैं। पर इस प्रकार के प्रयास अन्त मे उस भवन-निर्माता के प्रयास के तुल्य सिद्ध होते हैं जो आधार-भूमि को पाटने एव दीवारो को उठाने के भारी-भरकम कार्य को छोडकर सीधे छत की चुनाई शुरू कर देता है। काव्य-चिन्तन के नाम पर पाखड-विवाद तुलसी के युग मे भी होता था ('जिमि पाखड-विवाद तैं लुप्त भये सद्-ग्रन्थ !) और आज भी हो रहा है, पर इससे किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति नही होती।

महादेवी ने अपने 'काव्य-कला' शीर्षक निबन्ध मे सबसे पूर्व इसी प्रश्न पर विचार किया है। वे काव्य को कला की कोटि मे स्थान देती हुई उसे उत्कृष्ट कला के रूप मे मान्यता प्रदान करती है। यद्यपि वे स्पष्ट रूप मे तो इस तथ्य की घोषणा नही करती कि काव्य-कला सर्वोत्कृष्ट कला है, पर अप्रत्यक्ष मे वे इसकी व्यजना करती हुई लिखती हैं—"काव्य मे कला का उत्कर्ष एक ऐसे विन्दु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका क्योकि सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है।"[1] यहाँ यह तो नही कहा जा सकता कि काव्य मे कला का चरमोत्कर्ष वताया गया है फिर भी उसकी उत्कृष्टता की सिद्धि इस तर्क के आधार पर की गयी है कि उसमे सत्य और सौन्दर्य का सामजस्य हो जाता है। वास्तु, मूर्ति एव चित्र मे सौन्दर्य की साकार परिणति तो रहती है पर भाषा के अभाव मे वहाँ ज्ञान का प्रकाश या सत्य की गरिमा अधिक स्पष्ट नही हो पाती। जहाँ इन कलाओ मे सौन्दर्य के मौन रूप का चित्रण होता है वहाँ काव्य मे वह मुखर होता है, इसी से उसमे सत्य की प्रमुखता हो जाती है, सौन्दर्य केवल साधन रह जाता है।

उपर्युक्त उक्ति से कवयित्री की काव्य सम्बन्धी एक विशिष्ट धारणा पर भी प्रकाश पडता है कि काव्य मे सत्य साध्य होता है और सौन्दर्य साधन। सामान्यत. सभी कलाओ मे सौन्दर्य की ही प्रमुखता मानी जाती है, सत्य को गौण स्थान दिया जाता है क्योकि तात्त्विक दृष्टि से सत्य का सम्वन्ध ज्ञान-विज्ञान एव दर्शन से है न कि कला और साहित्य से। कला और साहित्य का सीधा सम्वन्ध भावनाओ के सौन्दर्य एवं अनुभूति के माधुर्य से है ज्ञान और सत्य को भी उनमे स्थान मिल सकता है पर वह गौण रूप मे ही रहेगा जवकि महादेवी की धारणा इसके विपरीत है। सौन्दर्य-शास्त्र, कला-चिन्तन एव काव्यशास्त्रीय दृष्टि से साहित्य और विज्ञान मे मौलिक अन्तर यही है कि जहाँ एक का लक्ष्य सौन्दर्य होता है वहाँ दूसरे का सत्य होता है। सत्य की चिन्तना एव विवेचना कला और काव्य की अपेक्षा दर्शन और विज्ञान मे अधिक स्पष्ट एवं गभीर रूप मे प्राप्त होगी, ऐसी स्थिति मे सत्य का पिपासु दर्शन और विज्ञान को छोडकर कला और साहित्य मे क्यो प्रवृत्त होगा ?

वस्तुत महादेवी ने काव्य-कला मे सत्य की प्रमुखता की वात कहकर परम्परा-गत समस्त काव्य-चिन्तन को झकझोर दिया है, उसके निष्कर्षो को अमान्य घोषित कर दिया है, अत उनकी इस मान्यता पर वहुत गभीरता से विचार किये जाने की आवश्यकता है। उनकी मान्यता के स्पष्टीकरण के लिए तीन अन्य प्रश्नो पर भी दृष्टिपात कर लेना आवश्यक होगा। एक, वे स्वय कला को क्या मानती है ? दूसरा, सत्य से उनका क्या अभिप्राय है ? और तीसरा, साहित्य और विज्ञान मे अथवा

---

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० १।

काव्य और दर्शन मे वे क्या अन्तर करती है ? आगे इन तीनो प्रश्नों पर क्रमशः विचार करते हुए उनकी काव्य सम्बन्धी मूल धारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया जायगा।

● **कला का स्वरूप-निर्धारण**—कला के स्वरूप की कोई क्रमबद्ध या स्पष्ट विवेचना महादेवी के साहित्य मे उपलब्ध नही होती किन्तु यत्र-तत्र उन्होने अपने कला सम्बन्धी दृष्टिकोण पर थोडा प्रकाश अवश्य डाला है। अपने 'काव्य-कला' निबन्ध के आरभ मे ही वे लिखती है—"सत्य पर जीवन का सुन्दर ताना-बाना बुनने के लिए कला-सृष्टि ने स्थूल-सूक्ष्म सभी विषयो को अपना उपकरण बनाया।" इस कथन से तीन बाते ध्वनित होती है :

- कला का आधार भूत तत्त्व सत्य है।
- कला मे सौन्दर्य उसका ताना-बाना है या यो कहिए कि सत्य की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है।
- स्थूल और सूक्ष्म सभी विषय कला मे ग्राह्य है, पर उनकी स्थिति उपकरण या साधनो की सी है। इस प्रकार इससे भी यही स्पष्ट होता है कि कला में सत्य उसका आधार है, सौन्दर्य उसका माध्यम और अन्य विषय उसके उपकरण मात्र हैं।

आगे चलकर इसी निबन्ध मे उन्होने कलाओं के आविष्कार की भी चर्चा करते हुए सत्य की अभिव्यक्ति को ही कला-सर्जन का मूल प्रयोजन घोषित किया है। वे लिखती हैं—"बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् तक फैले और ज्ञान तथा भाव क्षेत्र मे समान रूप से व्याप्त **सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए** माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा।"[२]

यह कथन भी पूर्वोक्त निष्कर्ष का ही समर्थन करता है कि कला का मूल आधार, लक्ष्य या प्रयोजन सत्य है।

● **'सत्य' से अभिप्राय**—इस प्रसग मे विचारणीय दूसरा प्रश्न यह है कि सत्य से उनका क्या अभिप्राय है ? परम्परागत दर्शन-शास्त्रो के अनुसार सत्य वह सामान्य विचार या निष्कर्ष है जो कि सार्वकालिक या सार्वदेशिक होता है। जिसकी सत्ता सतत् या नित्य रहती है वही सत्य है। इसी सत्य की शोध बुद्धि की प्रक्रिया से ज्ञानी एव दार्शनिक करते हैं। पर महादेवी यहाँ जिस सत्य की चर्चा करती है वह सार्वकालिक या सार्वदेशिक या सार्वजनीन सत्य नही है। जब सत्य के किसी भी रूप या अश को व्यक्ति स्वीकार कर लेता है तो वह सार्वजनीन न रहकर व्यक्तिनिष्ठ हो जाता है। उनके शब्दो मे—'सत्य की व्यापकता मे से हम चाहे जिस अश को ग्रहण करे वह हमारी सीमा मे बँधकर व्यष्टिगत हो ही जाता है और इस स्थिति मे हमारी सीमा के साथ सापेक्ष पर अपनी व्यापकता मे निरपेक्ष बना रहता है।' इस प्रकार

२. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ५।

महादेवी के विचार से व्यक्तिनिष्ठ सत्य व्यष्टिगत हो जाता है पर फिर भी वह सर्वथा सीमित नही हो जाता। उदाहरण के लिए—मोहन अपनी माँ को वहुत प्यारा है। इसमें 'मोहन प्यारा है' यह सत्य एक सीमित सत्य है जो व्यक्ति की सीमाओ मे आबद्ध है पर दूसरी ओर इसमे यह सत्य भी निहित है कि प्रत्येक माँ को अपना पुत्र प्यारा लगता है। यह दूसरा सत्य व्यापकता का बोधक है। इस प्रकार सत्य का कोई भी रूप न तो सर्वथा सापेक्ष है और न ही सर्वथा निरपेक्ष। सर्वथा निरपेक्ष सत्य की सत्ता का वोध किसी भी व्यक्ति के द्वारा संभव नही क्योकि प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक बोध भी उसकी वैयक्तिता पर आधारित रहता है। जब कोई व्यक्ति किसी अन्य के द्वारा प्रतिपादित सत्य का बोध प्राप्त करने लगता है तो 'उसकी तुला पर रुचि-वैचित्र्य, संस्कार, स्वार्थ आदि के न जाने कितने पासगो की उपस्थिति भी सभव है; अतः सत्य के सापेक्ष ही नही निरपेक्ष मूल्य के सम्बन्ध मे भी अनेक मतभेद उत्पन्न हो जाते है।'

सत्य की चर्चा करती हुई महादेवी एक वात और कहती है। दर्शन के क्षेत्र में प्राय. सत्य का सम्वन्ध विवेक बुद्धि, तर्क-चिन्तना एव ज्ञान-क्षेत्र से ही स्वीकार किया जाता है, भावानुभूति के निष्कर्षों को वहाँ प्राय' भ्रामक एव भ्रान्तिपूर्ण घोषित कर दिया जाता है। महादेवी दार्शनिको के इस निष्कर्ष को स्वीकार नही करती। वे विचार और तर्क पर आधारित ज्ञान मूलक सत्य को ही सत्य नही मानती अपितु भावानुभूति से उपलब्ध निष्कर्ष को भी सत्य का एक रूप मानती है। उनके विचार से ज्ञान और भावना—दोनो जीवन के दो अर्धवृत्त है जिनमे से किसी को भी असत्य एवं त्याज्य सिद्ध नही किया जा सकता। अतः बुद्धिजन्य एव भावनाजन्य सत्य—दोनो ही जीवन और साहित्य मे स्वीकार्य है। इतना ही नही, कला और काव्य के क्षेत्र मे जिस सत्य की प्रतिष्ठा की जाती है वह बुद्धि या ज्ञान पर आश्रित सत्य नही है अपितु भावानुभूति पर आश्रित सत्य है। उनके शब्दों मे—'कला सत्य को ज्ञान के सिकता-विस्तार मे नही खोजती, अनुभूति की सरिता के तट से एक विशेप-विन्दु पर ग्रहण करती है।'[3]

ज्ञान के सत्य एव अनुभूति के सत्य मे से भी किसका अधिक महत्त्व है या कौन अधिक विश्वसनीय है—इसका भी स्पष्ट उत्तर देते हुए महादेवी ने लिखा है—"अनुभूति अपनी सीमा में जितनी सवल है उतनी बुद्धि नही। हमारे स्वय जलने की हल्की अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थायी रहती है।"[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी का सत्य से अभिप्राय केवल दार्शनिक के निरपेक्ष एवं सामान्य विचार से ही नहीं है अपितु व्यक्ति-विशेष की सापेक्ष एवं

---

३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ५।
४. वही; पृ० ७।

विशिष्ट अनुभूति से भी है। काव्य-कला के प्रसग में उन्होंने जिस सत्य की चर्चा की है वह वस्तुत व्यक्ति की अनुभूतियो पर आधारित सत्य ही है जिसे यदि हम केवल अनुभूति का सत्य या सच्ची अनुभूति भी कह दे तो कदाचित् अनुचित न होगा।

काव्य और दर्शन का अन्तर—जहाँ तक सत्य का मूल रूप है, महादेवी काव्य और दर्शन को एक ही मानती है, क्योकि उनके विचार से कवि और दार्शनिक दोनो ही सत्य के व्याख्याता या प्रतिष्ठाता है। पर फिर भी दोनो की पद्धति मे अन्तर है। कवि जहाँ सत्य की अभिव्यक्ति हृदय के स्तर पर सौन्दर्य के माध्यम से करता है वहाँ दार्शनिक मस्तिष्क के स्तर पर ज्ञान या तर्क के माध्यम से सत्य की व्याख्या करता है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने लिखा है— "......दार्शनिक बुद्धि के निम्न स्तर से अपनी खोज आरभ करके उसे सूक्ष्म विन्दु तक पहुँचा कर सतुष्ट हो जाता है—उसकी सफलता यही है कि सूक्ष्म सत्य के उस रूप तक पहुँचने के लिए वही बौद्धिक दिशा रहे। अन्तर्जगत् का सारा वैभव परख कर सत्य का मूल्य आँकने का उसे अवकाश नही, भाव की गहराई मे डूब कर जीवन की थाह लेने का उसे अधिकार नही। वह तो चिन्तन-जगत् का अधिकारी है। बुद्धि, अन्तर का वोध करा कर एकता का निर्देश करती है और हृदय एकता की अनुभूति देकर अन्तर की ओर सकेत करता है। परिणामत चिन्तन की विभिन्न रेखाओ का समानान्तर रहना अनिवार्य हो जाता है।"[५]

इस प्रकार दार्शनिक का सत्य केवल बुद्धि का निर्देश मात्र वन कर रह जाता है, वह अनुभूति का विपय नही वन पाता जव कि कवि का सत्य अनुभूति का अग वनकर आस्था मे परिणत हो जाता है। "काव्य मे बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है इसी से उसका दर्शन न वौद्धिक तर्क-प्रणाली है और न सूक्ष्म विन्दु तक पहुँचाने वाली विशेष विचार-पद्धति। वह तो जीवन को चेतना और अनुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अत. कवि का दर्शन जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"[६]

काव्य और दर्शन की उपर्युक्त तुलना से स्पष्ट है कि काव्य का सत्य दर्शन के सत्य से अधिक सुगम, ग्राह्य एव प्रभावोत्पादक होता है। उसमे अनुभूतियो की आर्द्रता, कल्पना का रग और कला का सौन्दर्य मिश्रित रहता है जिससे वह अधिक आकर्षक एवं व्यवहारोपयोगी प्रतीत होता है। महादेवी के शब्दो मे 'उसके सत्य मे जीवन का स्पन्दन रहेगा, बुद्धि की तर्क-शृंखला नही।'

अस्तु, कवयित्री की तीनो धारणाओ पर अलग-अलग विचार कर लेने के अन्तर

५. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० २०।
६. वही; पृ० २१।

इनमे समन्वय स्थापित करते हुए कहा जा सकता है कि वे कला का लक्ष्य सत्य की अभिव्यक्ति मानती है, सत्य से उनका तात्पर्य सत्य के दोनो पक्षो से—विचार और अनुभूति से—है, तथा काव्य और दर्शन मे वे वस्तु का नही अपितु पद्धति या शैली का ही अन्तर मानती है। इन तीनो निष्कर्षो को ध्यान मे रखते हुए उनकी कविता सम्बन्धी पूर्वोक्त धारणा का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

- प्रत्येक कला का लक्ष्य सत्य की अभिव्यक्ति करना है। कविता इस लक्ष्य की पूर्ति मे सर्वाधिक सफल सिद्ध होती है, अत उसे सर्वोत्कृष्ट कला कहा जा सकता है।
- कविता मे सत्य की अभिव्यक्ति अनुभूति के रूप मे होती है। दर्शन की भाँति उसमे सत्य का शुष्क एव बौद्धिक निरूपण नही होता।
- कविता का सत्य कल्पना के रग और भावना के सौन्दर्य से मिश्रित रहता है, अत. वह अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर, आकर्षक एव जीवन्त दिखाई पडता है।

उपर्युक्त धारणाओ के आधार पर यदि कविता की एक नयी परिभाषा प्रस्तुत की जाय तो कहा जा सकता है—"कविता वह उत्कृष्ट कला है जिसका लक्ष्य व्यक्ति के अनुभूत सत्य को भावना और कल्पना के सौन्दर्य से युक्त शैली में व्यक्त करना है।" यद्यपि यह परिभाषा महादेवी के अपने शब्दो मे नही है पर फिर भी हमारे विचार में यह उनकी धारणाओं के बहुत निकट है, अत इसका उपयोग उनके काव्य के अध्ययन-विश्लेषण मे किया जा सकता है।

● **कविता और सौन्दर्य**—सौन्दर्य-शास्त्र (Aesthetic) के उन्नायको ने कविता को एक कला मानते हुए उसके सामान्य तत्त्व या गुण के रूप मे सौन्दर्य को मान्यता दी है, पर यह सौन्दर्य क्या है—इस प्रश्न का एक सर्वमान्य उत्तर अभी तक कोई नही दे पाया। वस्तुत. प्रत्येक कला में सौन्दर्य की सत्ता अनिवार्य है—इस निष्कर्ष को तो प्रायः सभी कलाकार एव कला—मीमासक स्वीकार करते है किन्तु वह सौन्दर्य मूलत. क्या है, इस बात को लेकर अलग-अलग विचार, वाद, वर्ग एवं सप्रदाय स्थापित हो गये है। कुछ कला-मीमासक जहाँ सौन्दर्य का अस्तित्व वस्तु मे मानते है, वहाँ अन्य विद्वान् शैली या अभिव्यक्ति मे सौन्दर्य की सत्ता खोजते हैं। इस दृष्टि से पाश्चात्य सौन्दर्य चिन्तको के दो वर्ग बन गये है—एक वस्तुवादी और दूसरा रूपवादी। वस्तु-वादियों मे भी कोई भाव को महत्त्व देता है, कोई विचार को और कोई कल्पना को तथा इसी प्रकार रूपवादियो में कोई बिम्ब को, कोई प्रतीक को, कोई अलकरण को और कोई ध्वनि को महत्त्व देता है। वास्तव मे कला मे ये सभी तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा मे रहते है पर व्यक्तिगत रुचि एव एकागी दृष्टि के कारण अलग-अलग विचारक अलग-अलग तत्त्वो को महत्त्व देते हुए अंध-गज-न्याय का उदाहरण उपस्थित करते हैं।

यहाँ हमे महादेवी की भी काव्य-दृष्टि एव काव्य-रुचि को समझने के लिए यह देखना है कि सौन्दर्य का आधार वे किसे मानती है या उनकी तत्सम्बन्धी धारणाये क्या है ?

कला-सौन्दर्य के सम्बन्ध मे महादेवी एक बात बिल्कुल स्पष्ट रूप मे कहती है कि व्यावहारिक जीवन में, वस्तुओ के बाह्य रूप-रग के आधार पर हम जिसे सुन्दर कहते है वह कला का सौन्दर्य नही है। कला का सौन्दर्य वस्तुओ और व्यक्तियो की स्थूल एव बाह्य विशेषताओ पर आधारित नही होता अपितु वह उनकी सूक्ष्म प्रवृत्तियो मे निहित होता है। उन प्रवृत्तियो या गुणो का महत्त्व कलात्मक दृष्टि से इस बात मे है कि वे सत्य की अभिव्यक्ति मे कहाँ तक सहायक सिद्ध होती है—दूसरे शब्दो मे कलागत सौन्दर्य का आधार वाह्य रूप-रग नही अपितु वस्तु का आन्तरिक सत्य है। जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, कलागत सत्य से उनका तात्पर्य अनुभूति की सत्यता से है, अत कहा जा सकता है कि कलाओ का सौन्दर्य अनुभूति की अभिव्यक्ति पर आश्रित होता है। यह अनुभूति जितनी अधिक वास्तविक होगी उतनी ही जीवन के अधिक निकट होगी तथा जीवन की निकटता ही सत्य की निकटता है। अतः महादेवी के शब्दो मे "... काव्य और कलाएँ जिस सौन्दर्य का सहारा लेती है वह जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति पर आश्रित है केवल वाह्य रूप-रेखा पर नही।"[७] अस्तु, कला मे व्यक्त अनुभूति जितनी अधिक जीवन के या सत्य के निकट होगी वह उतनी ही अधिक सुन्दर होगी, तथा कलागत सौन्दर्य की परिपूर्णता अनुभूति की सत्यता एव अभिव्यक्ति की पूर्णता पर निर्भर है।

सौन्दर्य के प्रति इसी व्यापक एव सूक्ष्म दृष्टिकोण को अपनाने के कारण महादेवी किसी भी वस्तु एव किसी भी पक्ष को काव्य-क्षेत्र से वाह्य नही मानती। जिसे हम व्यावहारिक जीवन मे कुरूप एवं त्याज्य मानते है वह भी काव्य-क्षेत्र मे सुन्दर और ग्राह्य कहा जा सकता है यदि वह जीवन के किसी गभीर सत्य का उद्घाटन करता है। "जीवन का जो स्पर्श विकास के लिए अपेक्षित है उसे पाने के उपरान्त छोटा, वडा, लघु, गुरु, सुन्दर, विरूप, आकर्षक, भयानक कुछ भी कला जगत् से वहिष्कृत नही किया जाता।"[८] कला के क्षेत्र मे 'उजले कमलो की चादर जैसी चाँदनी मे मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है, पर अँधेरे के स्तर पर स्तर ओढकर विराट हुई काली रजनी भी कम सुन्दर नही। फूलो के वोझ से झुक-झुक पड़ने वाली लता कोमल है पर शून्य नीलिमा की ओर विस्मित वालक-सा ताकने वाला ठूठ भी कम सुकुमार नही। अविरत जलदान से पृथ्वी को कँपा देने वाला वादल ऊँचा है पर एक बूंद आँसू के भार से नत और कम्पित तृण भी कम उन्नत नही। गुलाव के रग और नवनीत की

---

७. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ८।

८. वही ; पृ० ६।

कोमलता मे ककाल छिपाये हुए रूपसी कमनीय है, पर झुरियो मे जीवन का विज्ञान लिखे हुए वृद्ध भी कम आकर्पक नही। बाह्य जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय-पराजय सव मूल्यवान् है पर अन्तर्जगत् की कल्पना, स्वप्न, भावना आदि भी कम अनमोल नही।'[९] इस प्रकार महादेवी कला के क्षेत्र मे जीवन की प्रत्येक वास्तविकता और सत्य की प्रत्येक अनुभूति को ग्राह्य सिद्ध करती हुई सौन्दर्य की व्यापक कल्पना प्रस्तुत करती है। वस्तुत वे सौन्दर्य की सत्ता पदार्थ, वस्तु और व्यक्ति मे न मानकर व्यापक एवं गभीर अनुभूति की पूर्णतम अभिव्यक्ति मे मानती है—इस निष्कर्ष को उनके सौन्दर्य सम्वन्धी प्रतिमान के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

● **कविता का विषय ?**—यद्यपि सभी विपयो पर कविता लिखी जा सकती है फिर भी कवि अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृत्ति एव धारणा के अनुसार ही विषय-वस्तु का चयन करता है। जहाँ सत्रंहवी शती मे तुलसीदास जैसे कवि किसी 'प्राकृत जन' (सासारिक व्यक्ति) का गुण-गान करना सरस्वती का अपमान समझते थे, वहाँ उसी शताब्दी के केशवदास जैसे कवि आश्रय दाताओ की प्रशसा मे 'वीरसिंह देवजु चरित' अथवा 'रतन वावनी' जैसे काव्य लिखकर अपने कवि-कर्म की सार्थकता मान रहे थे। अस्तु, कवि का विपय-वस्तु सम्वन्धी दृष्टिकोण न केवल उसकी काव्य-वस्तु की सीमाएँ निर्धारित करता है अपितु उसके समस्त काव्य-व्यक्तित्व एव कवि-कर्म की अनेक विशेपताओ एव प्रवृत्तियो का भी प्रेरक सिद्ध होता है। जहाँ तक महादेवी का प्रश्न है, वे सिद्धान्त रूप मे किसी भी विषय को काव्य के लिए अनुपयुक्त घोषित नही करती, अपितु वे हर विषय मे काव्यत्व के स्फुरण की क्षमता स्वीकार करती है। उन्होंने एक स्थल पर स्पष्ट किया है—"काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं; उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिए जो सवको अपने स्पर्श-मात्र से सोना कर दे।"[१०] काव्य और अन्य कलाओ मे महत्त्व विषय का नही अपितु कलाकार की उस सवेदना-शक्ति का है जिसके वल पर वह निर्जीव को सजीव मे, सूक्ष्म को स्थूल मे एव तथ्य को भाव मे परिणत कर देता है। "एक पागल से चित्रकार को जव फटा कागज, टूटी तूलिका और धव्वे डाल देने वाला रग मिल जाता है तव क्षण भर मे वह निर्जीव कागज जीवित हो उठता है, कल्पना रगो मे साकार हो उठती है, रेखाओ मे जीवन प्रतिबिम्वित हो उठता है, उस पार्थिव वस्तु के अपार्थिव रूप के साथ हम हँसते हैं, रोते है और उसे मानवीय सम्वन्धो मे वाँध रखना चाहते है। .. .. निरन्तर पैरो से ठुकराये जाने वाले कुरूप पापाण से शिल्पी के कुशल हाथ का स्पर्श होते ही वही पाषाण मोम के समान अपना आकार वदल डालता है, उसमे

---

९. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ९।

१०. वही ; पृ० ४०।

हमारे सौन्दर्य के, शक्ति के आदर्श जाग उठते है और तब उसी को हम देवता के समान प्रतिष्ठित कर चदन फूल से पूज कर अपने को धन्य मानते है।"[११]

अस्तु, महादेवी के विचार से कविता के लिए किसी विशेप विपय पर बल देना अनावश्यक है। साथ ही वे यह भी स्पष्ट करती है कि मानव हृदय की मूल प्रेरणा सर्वत्र एक ही है, अत. जो भी विषय मानव-हृदय से उच्छवसित होगा वह सभी मनुष्यो के हृदय को छू सकेगा। "कितनी ही भिन्न परिस्थितियो के होने पर भी हम हृदय से एक ही है, यही कारण है कि दो मनुष्यो के देश, काल, समाज आदि मे समुद्र के तटो जैसा अन्तर होने पर भी वे एक-दूसरे के हृदयगत भावो को समझने मे समर्थ हो सकते हैं। जीवन की एकता का यह छिपा हुआ सूत्र ही कविता का प्राण है।"[१२]

इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट है कि महादेवी का काव्य-वस्तु के सम्बन्ध मे भी अत्यन्त व्यापक, उदार एव विकसित दृष्टिकोण है वे किसी भी कलाकार पर विपय-वस्तु के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का निर्देश या प्रतिबन्ध लागू नही करती। वस्तुत दूसरो के द्वारा निर्देशित या आरोपित विषयो के आधार पर सच्ची कविता का सर्जन सभव नही होता, आत्म प्रेरणा एव हृदय की सच्ची अनुभूति ही कवि का मार्ग-प्रदर्शन करती है; अत. इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार का निर्देश या नियत्रण अनावश्यक है।

● **कविता और उपयोगिता**—कला और जीवन मे क्या सम्बन्ध है—इस प्रश्न पर विचार करते हुए अनेक चिन्तको ने उपयोगिता की दृष्टि से भी कला एव साहित्य के मूल्याकन का प्रयास किया है। विशेपत. उस कला को जिसमे केवल कल्पना और अनुभूति, सौन्दर्य और प्रेम का ही रग होता है, उपयोगितावादी आलोचक हेय एवं त्याज्य घोषित करते रहे हैं क्योकि इस प्रकार की कला न तो पाठक के ज्ञान मे विशेप अभिवृद्धि कर पाती है और न ही उसके जीवन की किसी विशेप समस्या का समाधान दे पाती है। महादेवी स्वयं उन छायावादी गीतो की रचना करती रही है जिन्हे उपयोगितावादी दृष्टि से प्राय महत्त्वशून्य सिद्ध करने का प्रयत्न होता रहा है। पर वे यह नही मानती कि कोई भी काव्य उपयोगिता की दृष्टि से महत्त्वशून्य सिद्ध हो सकता है—अत. अपने मत की पुष्टि करते हुए उन्होने अनेक सबल तर्क प्रस्तुत किये है।

उपयोगिता का प्रश्न उपस्थित करने वाले आलोचक प्राय बहुत ही स्थूल दृष्टि से देखते है, वे प्राय केवल भौतिक पदार्थों की वाह्य उपलब्धि को ही उपयोगिता का आधार मान कर चलते है। ऐसे आलोचक भूल जाते हैं कि जिस प्रकार शरीर के

---

११. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ४०-४१।

१२. वही; पृ० ४२।

लिए स्थूल भौतिक पदार्थों की उपयोगिता है उसी प्रकार मन और आत्मा के लिए ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों की जो हमारी कल्पना और भावना को गुदगुदा सके उपयोगिता है । क्या हम केवल उन्हीं पदार्थों को उपयोगी कहेगे जो कि शरीर की भूख शान्त करने मे सहायक सिद्ध हों, जो मन को अपार तृप्ति एव चेतना को आनन्दमयी शान्ति प्रदान करते है, उन्हे उपयोगी नही कहा जा सकता ! वस्तुतः ऐसी बात नही है । मानव-जीवन केवल तन की रक्षा पर ही अवलम्बित नही है, वह मन की शक्ति पर भी बहुत-कुछ निर्भर है ; इतना ही नही मानव-जीवन का बहुत बडा भाग उसके तन की क्षुधा-शान्ति पर नही अपितु मन की इच्छाओ, प्रेरणाओ, भावनाओ एव अनुभूतियो पर आधारित है ; अत. प्रकृति, कला और साहित्य के उस सौन्दर्य की अवहेलना नही की जा सकती जो कि मन के अभावो की पूर्ति मे योग देता है । जिस प्रकार किसी रोगी की व्याधि-विशेष के लिए औषधि-विशेष उपयोगी हो सकती है उसी प्रकार उसके सिरहाने किसी प्रणयी द्वारा रखा हुआ स्नेह-सूचक गुलाब का फूल भी उसके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है । इसी प्रकार मानव-जीवन के लिए तन के स्तर पर न सही, मन और आत्मा के स्तर पर सौन्दर्ययुक्त सच्ची कलाएँ निश्चित ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं ।

वस्तुत. उपयोगिता की दृष्टि से कला पर आक्षेप करने वाले आलोचक अपनी सीमित एव स्थूल दृष्टि के कारण स्वय 'उपयोगिता' शब्द का प्रयोग अत्यन्त स्थूल, सीमित एव भ्रान्त अर्थ मे करते है, अन्यथा कला की उपयोगिता पर प्रश्न लगाने की आवश्यकता ही नही पडती । जीवन की सार्थकता केवल भौतिक साधनो की उपलब्धि एवं बाह्य वैभव की प्राप्ति तक ही सीमित नही है, अपितु हृदय और मस्तिष्क की शक्तियो और प्रवृत्तियो के उन्मीलन एव विकास मे भी है । जीवन मे अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ आती है जब कि सारे बाह्य साधनो के होते हुए भी मन की प्रतिकूलता के कारण इच्छा-पूर्ति नही हो पाती । जीवन की छोटी से छोटी घटना से लेकर बडे-बडे युद्धो तक मे भौतिक साधनो की तुलना मे उसके हृदय की शक्ति और मन का बल कम उपयोगी सिद्ध नही हुआ । वस्तुत. "मस्तिष्क और हृदय को विश्राम देने वाले सुख के साधन, प्रियजनो के स्नेह भरे सदेश, रक्षणीय वस्तुओ के सम्बन्ध मे ऊँचे-ऊँचे आदर्श, जय के सुनहले-रूपहले स्वप्न, अडिग साहस और विश्वास की भावना, अन्तश्चेतना का अनुशासन आदि मिलकर ही तो वीर को वीरता से मरने और सम्मान से जीने की शक्ति दे सकते हैं । पौष्टिक भोजन, झिलमिलाते कवच और चकाचौंध उत्पन्न करने वाले अस्त्र-शस्त्र मात्र वीर-हृदय का निर्माण नही करते, उसके निर्मायक उपकरण तो अन्तर्जगत् मे छिपे रहते है ।"[१३] फिर भी जिन्हे भावनाओ की शक्ति

---

१३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० १५-१६ ।

पर विश्वास नही, वे इस तर्क पर विचार कर सकते है—"यदि हम अन्तर्जगत् के वैभव को अनुपयोगी सिद्ध करना चाहें तो कवच मे यत्र चालित काठ के पुतले भी खडे किये जा सकते है, क्योकि जीवित मनुष्य की तुलना मे उनकी आवश्यकताएँ नही के वरावर और उपयोग सहस्रगुण अधिक रहेगे।"[१४]

आज के यात्रिक युग ने उपयोगिता का अत्यन्त स्थूल एवं सतही विचार देकर मनुष्य को किस प्रकार निर्जीव वना दिया है, इसे स्पष्ट करती हुई वे लिखती हैं—'उपयोग की ऐसी ही भ्रान्ति पर तो हमारा यंत्र युग खड़ा है। परन्तु ससार में हँसने, रोने, थकने—मरने वाले मनुष्य को खोकर जो वीतराग, अथक और अमर देवता (यात्रिक मानव) पाया है उसने जीवन को आत्महत्या का वरदान देने के अतिरिक्त और क्या किया।'[१५]

अस्तु, संक्षेप मे कहा जा सकता है कि यदि उपयोगिता का सम्वन्ध केवल स्थूल भौतिक पदार्थों से ही नहीं, उन सूक्ष्म भावात्मक, बौद्धिक एवं चारित्रिक तत्त्वों से भी है जो कि हृदय और मस्तिप्क मे वल, शक्ति, एव उल्लास का सचार करके जीवन को सजीवता और गति प्रदान करते है तो निश्चित ही कला और काव्य की उपयोगिता मे रच मात्र भी संदेह नही किया जा सकता। वस्तुत. ये मानव-जीवन के लिए उपयोगी ही नही अपितु आवश्यक एव अनिवार्य भी है क्योकि इनके अभाव में वह कुंठित, जड एवं नि स्पन्द होकर मानसिक मृत्यु मे परिणत हो सकता है। महादेवी का यह निष्कर्प निश्चित ही कला के महत्त्व-वोध के मार्ग को प्रशस्त करता हुआ कला को एक अत्यन्त उच्च एव उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित कर देता है तथा इस दृष्टि से यह उनकी चिन्तना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

● **कविता और उपदेशात्मकता**—कविता से उपदेश देने का कार्य भी समय-समय पर लिया जाता रहा पर दूसरी ओर उपदेशात्मकता की आलोचना एव निन्दा भी वरावर होती रही है। महादेवी के विचार से किसी भी कवि को उपदेश देने के लिए प्रेरित करना या उससे ऐसी अपेक्षा करना, उचित नही। कलाकार का यह कर्त्तव्य नही कि वह विधि-निपेधो की मीमासा करे अथवा वह समाज के मच पर उतर कर कला-साधना के स्थान पर नीति-प्रचार का कार्य करे। कई वार कलाकार दूसरो के कहने मे नही, अपनी ही प्रेरणा से ऐसा करने लगता है किन्तु महादेवी के विचार से यह वात उनके अधिकार-क्षेत्र के वाहर पडती है। "विधि-निपेध की दृष्टि से महान् से महान् कलाकार के पास उतना भी अधिकार नही जितना चौराहे पर खडे सिपाही

---

१४. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य।
१५. वही पृ० १६।

को प्राप्त है। वह न किसी को आदेश दे सकता है और न उपदेश और यदि देने की नासमझी करता भी है तो दूसरे उसे न मानकर समझदारी का परिचय देते हैं।"[१६] अत कलाकार को उपदेश देने का प्रयास नही करना चाहिए। पर इस निष्कर्ष का यह भी तात्पर्य नही है कि कला से व्यक्ति को मार्ग-दर्शन या उपदेश प्राप्त नही होता। कलाकार जो-कुछ व्यक्त करता है उसमें सत्य की अनुभूति रहती है और यही अनुभूति जब पाठक के हृदय तक सप्रेषित हो जाती है तो वह कदाचित् उस निष्कर्ष तक स्वयं ही पहुँच जाता है जहाँ तक एक उपदेशक उपदेश देकर उसे पहुँचाना चाहता है। उपदेशक का उपदेश बुद्धि के मार्ग से उसके चरित्र-व्यवहार को प्रभावित करता है जब कि कवि का अनुभव भावना के मार्ग से ही उसके हृदय मे एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता है जो कि उसके चरित्र एवं व्यवहार के लिए प्रेरणा या अकुश सिद्ध हो। इसीलिए कलाकार की अनुभूति का सत्य उपदेशक के शाब्दिक ज्ञान से अधिक प्रभाव-शाली सिद्ध होता है। इतना ही नही "...उपदेशो के विपरीत अर्थ लगाये जा सकते है, नीति के अनुवाद भ्रान्त हो सकते है परन्तु सच्चे कलाकार की सौन्दर्य-दृष्टि का अपरिचित रह जाना सभव है, बदल जाना सभव नही। मनु की जीवन-स्मृतियो मे अनर्थ की सभावना है पर वाल्मीकि का जीवन-दर्शन श्लेषहीन रहेगा। इसी से कलाकारो के मठ नही निर्मित हुए, महन्त नही प्रतिष्ठित हुए, साम्राज्य नही स्थापित हुए और सम्राट् नही अभिषिक्त हुए। कवि या कलाकार अपनी सामान्यता मे ही सबका ऐसा अपना बन गया कि समय-समय पर धर्म, नीति आदि को जीवन के निकट पहुँचने के लिए उससे परिचय-पत्र माँगना पड़ा।"[१७]

इस प्रकार कवि के प्रयास किये बिना ही काव्य मे एक ऐसी क्षमता आ जाती है जिससे वह सामाजिक के हृदय मे उदात्त प्रेरणा एव व्यापक सत्य की अनुभूति का संचार करता हुआ अनायास ही उस लक्ष्य की पूर्ति कर देता है जो कि उपदेशक का काम्य है।

● **कविता और आधुनिक युग**—आधुनिक युग की परिस्थितियो का कविता पर क्या प्रभाव पडा है—इस सम्बन्ध मे गभीरतापूर्वक विचार करते हुए महादेवीजी ने अनेक निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। उनके विचारानुसार इस समय हमारे समाज मे प्रति-क्रियात्मक ध्वस-युग चल रहा है जिससे सभी परपरागत आदर्श भग्न या खडित होते जा रहे है। यह ध्वस का कार्य किसी नव-निर्माण के लक्ष्य से नही अपितु व्यक्तिगत स्वार्थो की प्रेरणा से परिचालित है। निर्माण की दिशा मे कोई ठोस प्रयास नही हो रहा। आज की सामाजिक एवं धार्मिक स्थितियाँ अपने-आप मे इतनी विकृत हो चुकी

---

१६. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० १८।

१७. वही , पृ० १९।

है कि वे साहित्य को कोई गति या प्रेरणा नहीं दे सकती । 'एक ओर समाज पक्षाघात से पीडित है और दूसरी ओर धर्म विक्षिप्त । एक चल ही नही सकता, दूसरा वृत्त के भीतर वृत्त बनाता हुआ एक पैर से दौड लगा रहा है । ....आज तो वाह्य और आन्तरिक विकृति ने धर्म को ऐसी परिस्थिति मे पहुँचा दिया है जहाँ रूढिग्रस्त रहने का नाम निष्ठा और रीतिकालीन प्रवृत्तियो की चचल क्रीडा ही गतिशीलता है ।' ..... हमारी सस्कृति ने धर्म और कला का ऐसा ग्रन्थि-वन्धन किया था जो जीवन से अधिक मृत्यु मे दृढ होता गया । क्या काव्य, क्या मूर्ति, क्या चित्र सवकी यथार्थ रेखाओ और स्थूल रूपो मे अध्यात्म ने सूक्ष्म आदर्श की प्रतिष्ठा की । परन्तु जव ध्वस के असख्य स्तरो के नीचे दब कर वह अध्यात्म स्पन्दन रुक गया तव धर्म के निर्जीव ककाल मे हमे मृत्यु का ठडा स्पर्श मिलने लगा ।'[१८] इस प्रकार जो धर्म और अध्यात्म हमारे साहित्य का प्रेरणा-स्रोत था वही विकृत एव विक्षिप्त हो गया तो उस स्थिति मे कला और काव्य का पतनोन्मुखी हो जाना स्वाभाविक था । 'समन्वयात्मक अध्यात्म कब खो गया यह तो हम न जान सके परन्तु व्यावहारिक धर्म की विविध विकृतियाँ हमारे जीवन के साथ रही । ऐसी स्थिति मे काव्य तथा कलाओ की स्वस्थ गतिशीलता असंभव हो उठी । निर्माण युग मे जो कला-सृष्टि अमृत की सजीवनी देकर ही सफल हो सकती थी वही पतन-युग में मदिरा की उत्तेजना मात्र वन कर विकासशील मानी गई । ... .परिणामत. कलाएँ और काव्य जैसे-जैसे हममे विक्षिप्त की चेष्टाएँ भरने लगे वैसे-वैसे हम विकास पथ पर लक्ष्य भ्रष्ट होते गये ।'[१९]

आधुनिक युग के अनेक कलाकारो ने उपर्युक्त धार्मिक विकृतियो का प्रत्यक्षीकरण करते हुए कला और साहित्य मे धर्म और अध्यात्म के स्वच्छ एव व्यापक रूप की प्रतिष्ठा का पुनर्प्रयास किया, कुछ को उसमे आशिक सफलता भी मिली पर अनेक ने दूसरा मार्ग अपनाया । उन्होने धार्मिक एव आध्यात्मिक विकृतियो को देखकर सदा के लिए उनसे मुँह मोड लिया और वे नास्तिक वन बैठे । यह नास्तिकता जो कि अविश्वास और अनास्था की द्योतक है कला के लिए घातक सिद्ध हुई । इससे जीवन और साहित्य मे निराशा की भावना स्फुरित हुई जो कि सर्जन की प्रेरणाओ को कुठित कर देती है ।

धार्मिकता और आध्यात्मिकता के स्थान पर आधुनिक युग मे राष्ट्रीयता और राजनीति भी कलाकारो की प्रेरणा-स्रोत वनी, पर वह भी साहित्य को कोई ठोस तत्त्व नही दे सकी । इसका मूल कारण यह है कि स्वयं राजनीति के क्षेत्र मे भी इतनी विचार-धाराएँ एवं आदर्श विद्यमान है कि वे सदा एक-दूसरे के विरोध मे ही अपनी

---

१८. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० २८-२९ ।

१९. वही ; पृ० २९ ।

शक्ति नष्ट कर रहे हैं। साम्राज्यवाद, नात्सीज्म, फासिज्म, साम्यवाद, समाजवाद, गाँधीवाद आदि विभिन्न राजनीतिक वादो की स्थिति का दिग्दर्शन करवाते हुए महादेवी ने लिखा है कि वे सव रेल के तीसरे दर्जे के छोटे डब्बे मे ठसाठस भरे उन यात्रियो जैसे हो रहे हैं, जो एक दूसरे के सिर पर सवार होकर ही खडे रहने का अवकाश और लडने-झगडने मे ही मनोरजन के साधन पा सकते है।...'[२०] एक की सीमाएँ स्पष्ट हुए विना ही दूसरी अपने लिए स्थान वनाने लगती है और इस प्रकार विश्व का राजनीतिक जीवन परस्पर-विरोधिनी शक्तियो का मेला मात्र रह गया है।

ऐसी स्थिति मे राजनीति भी हमारे कलाकारो को कोई नयी प्रेरणा या नयी शक्ति देने की क्षमता नही रखती। यद्यपि अनेक कवि एव कलाकार समय-समय पर विभिन्न राजनीतिक आदर्शो के प्रति आकर्पित होकर उनकी शरण मे गये पर उन्हे वहाँ वन्धन और विवशता का ही अनुभव हुआ। ... .. 'इस युग मे कोई महान् कलाकार राजनीति की कठिन रेखा के भीतर स्वच्छन्दता की साँस न ले सका। जहाँ तक हमारी कविता और कलाओ का प्रश्न है, वे अनाथालय के जीवो के समान सब द्वारों पर अपना अनाथपन गाने को स्वतंत्र रही, परन्तु हर द्वार पर उनके गीत के लिए स्वर ताल निर्दिष्ट और विषय निश्चित थे।'[२१]

इस प्रकार आधुनिक राजनीति ने भी कला और साहित्य की स्थिति को सुधारने मे कोई योग नही दिया। महादेवी के विचारानुसार यदि हमारे कलाकार राजनीति का पिछलगू वनने के स्थान पर अपनी दृष्टि एव शक्ति के वल पर जीवन और समाज के लिए नयी प्रेरणाएँ दे पाते तो अधिक उचित था। पर हमारे समाज की छिन्न-भिन्नता ने ऐसा नही होने दिया।

आधुनिक वौद्धिकता और वैज्ञानिकता भी जीवन के एक पक्ष को ही लेकर चलती है अतः उनका भी व्यक्ति, समाज और साहित्य पर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा। एक तो शुद्ध वौद्धिकता एव वैज्ञानिकता के द्वारा हृदय और आत्मा के सूक्ष्म सत्यो का स्पर्श ही सभव नही, फिर भारत का वुद्धिजीवी वर्ग तो मानसिक दृष्टि से भी इतना अशक्त एव पंगु है कि वह स्वतंत्र गति से नही चल पाता। 'हमारे वुद्धिजीवी वर्ग में अधिकाश तो मानसिक हीनता की भावना मे ही पलते और वढते है। उनका वाह्य जीवन ही समुद्र पार के कतरे-व्योते आच्छादनो से अपनी नग्नता नही छिपाये हैं, अन्तर्जगत् को भी वही से लौहार की धौंकनी जैसा स्पन्दन मिल रहा है। उनका पंगु से पंगु स्वप्न भी विदेशीय पख लगा लेने पर स्वर्ग का सदेशवाहक मान लिया जाता है। उनका विरूप से विरूप आदर्श भी पश्चिमीय साँचे मे ढलकर सुन्दरतम के

---

२०. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ३१।

२१. वही ; पृ० ३२।

अतिरिक्त और कोई सज्ञा नही पाता ।'[२२] वस्तुत विदेशो की मानसिक गुलामी से ग्रस्त ये भारतीय चिन्तक एव कलाकार अपने क्षेत्र मे कोई स्वतत्र देन दे सकते है— इसकी कल्पना भी नही की जा सकती । यही कारण है कि आज भारतीय ज्ञान-विज्ञान एव साहित्य के क्षेत्र मे नक्कालो की एक भीड खडी हो गई है , जिनसे यदि कोई भी प्रश्न पूछो तो वे सिवा पश्चिमी गुरुओ की ओर अगुली उठा देने या उनकी बात को दोहरा देने के अतिरिक्त कुछ और कहने मे अपने-आपको असमर्थ पाते है । अत' महादेवी ने ठीक ही लिखा है कि 'ऐसे बुद्धिजीवियो मे सस्कृति की रेखाएँ टूटी हुई और जीवन का चित्र अधूरा ही मिलेगा ।'[२३]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियो की असगतियो एवं विकृतियो से भली-भाँति परिचित है । उनका आधुनिकता का बोध इतना व्यापक एव गभीर है कि वे आज की संस्कृति, बौद्धिकता, राजनीति आदि विभिन्न प्रवृत्तियो के केवल वाह्य आकर्षक रूप को ही नही अपितु उसकी आन्तरिक कलुषितता को भी हृदयगम कर पायी है । आधुनिक बोध का दावा करने वाले हिन्दी के अधिकाश चिन्तक (?) प्राय् पाश्चात्य विद्वानो की उक्तियाँ उद्धृत करके ही अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते है जब कि महादेवी ने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के बल पर आधुनिकता के शुभ एव अशुभ, दोनो पक्षो पर संतुलित रूप मे विचार करते हुए भविष्य का यथार्थ स्पष्ट किया है । हमारी अति बौद्धिकता, नास्तिकता, विश्रृखलता एव मानसिक गुलामी हमे किस अधकारमय दिशा की ओर अग्रसर कर रही है तथा हम पतन के किस गर्त की ओर ढुलक रहे हैं—इसका सकेत उन्होने भाग्य-विधाता के से आत्म-विश्वासी स्वर मे देते हुए आज के कला और साहित्य की स्थिति का दिग्दर्शन करवाया है । जब हमारा जीवन और समाज ही पतनोन्मुखी हो रहा है तो ऐसी स्थिति मे कला और साहित्य का भी दूषित एव विकृत हो जाना स्वाभाविक है । हाँ, यदि कोई कलाकार युग के प्रवाह से ऊपर उठकर अपनी ओजस्वी वाणी एव स्वतत्र स्वर के द्वारा युग का पथ-प्रदर्शन करे तो सभव है हम भावी विनाश से बच सके, पर जब कलाकार ही युग की परिस्थितियो का अनुकर्त्ता मात्र बना हुआ है तो उससे ऐसी आशा कैसे की जा सकती है ।

पर फिर भी महादेवी निराश नही है । कोई उनका साथ दे या न दे, कोई उनका अनुमोदन या अनुसरण करे या न करे, वे स्वय आशा, आस्था, एव आदर्शो की पताका लिए साधना की ज्योति विकीर्ण करती हुई भविष्य के अधकार से जूझने मे लगी हुई है । उनके इसी सघर्ष की अनुगूज निम्नाकित पक्तियो मे सुनाई देती है :

---

२२. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य , पृ० ३५ ।
२३. वही ; पृ० ३५ ।

और होंगे चरण हारे
  अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे,
    दुखव्रती निर्माण उन्मद
      यह अमरता नापते पद
        बाँध देंगे अंक-संसृति से तिमिर में स्वर्णवेला !

* * *

३

महादेवी के काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि

"संभवत' पारस को छूकर सोना न होना लोहे के हाथ में नहीं रहता—भारतीय तत्त्वदर्शन ऐसा ही पारस रहा है।"

"मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास मे उस बुद्ध प्रसूत चिन्तन का भी विशेष महत्त्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है।"

—महादेवी

महादेवी ने काव्य की विवेचना करते हुए लिखा है—'सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है—यह बात कदाचित् सभी कवियो की रचनाओ पर लागू न हो किन्तु जहाँ तक महादेवी के काव्य की बात है, यह कथन उस पर पूर्णत. लागू होता है। उन्होंने जिस सत्य को अपनी अभिव्यक्ति का लक्ष्य बनाया है वह मूलत. दर्शन के क्षेत्र का है। दार्शनिक विचारो को अपनी अनुभूति मे ढालकर उन्हे काव्यात्मक माध्यम मे प्रस्तुत करना ही कदाचित् उनकी काव्य-साधना का लक्ष्य रहा है। पर इसका यह तात्पर्य भी नही है कि उन्होंने दर्शन-शास्त्र की शुष्क उक्तियो एव सूक्ष्म निष्कर्षो को ही काव्य का माध्यम प्रदान कर दिया है, अपितु दर्शन मे से भी उन्होने केवल वही ग्रहण किया है जो उनकी भावना और कल्पना को छू सका, उनकी कवि-प्रतिभा को आन्दोलित कर सका। दर्शन का सत्य उनकी प्रतिभा के पारस को छूकर कला के सौन्दर्य मे इस प्रकार परिवर्तित हो गया है कि अनेक बार उसके मूल रूप को खोज पाना कठिन हो जाता है। इतना ही नही, महादेवी के पास जहाँ कवि का हृदय और चित्रकार की कल्पना है वहाँ चिन्तक का मस्तिष्क भी है; अत उन्होने परपरागत निष्कर्षो को वँधे-वँधाये रूप मे व्यक्त नही किया है अपितु अपनी प्रज्ञा एव चिन्तना के बल पर उन्हे पर्याप्त सशोधित एव विकसित रूप देकर प्रस्तुत किया है। अतः महादेवी का महत्त्व कवि के रूप मे तो है ही, दार्शनिक एव चिन्तक के

रूप मे भी कम नही है क्योकि परम्परागत दर्शन की ग्रन्थियो को सुलझाकर उसे आधुनिक युग की दृष्टि से सुविकसित एव सुसमन्वित रूप देने का महान् कार्य भी उनके द्वारा हुआ है।

भारतीय दर्शन की दो प्रमुख धाराएँ वैदिक एव अवैदिक या आस्तिक एव नास्तिक के वर्गो मे विभक्त की जाती है। एक का चरम विकास यदि अद्वैत दर्शन के रूप मे हुआ तो दूसरी की सर्वोत्तम उपलब्धि बौद्ध दर्शन है। वस्तुत. अद्वैत दर्शन एवं बौद्ध दर्शन भारतीय चिन्तना की दो परस्पर-विरोधी धाराओ की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ है जिनके पारस्परिक द्वन्द्व के इतिहास मे ही भारतीय चिन्तना के स्वर्ण-युग की कहानी छिपी हुई है। जब वैदिक विचार-धारा अपने चरम विकास तक पहुँच गयी तो उसकी प्रतिक्रिया मे बौद्ध मत का आविर्भाव हुआ तथा बौद्ध मत की अति लोकप्रियता के विरुद्ध ही शंकर ने अद्वैतवाद की पुनर्स्थापना की। इस प्रकार बौद्ध एव शाकर मत परपरा के अनुसार एक दूसरे के सर्वथा विरोधी माने जाते हैं, पर यह विचित्र बात है कि महादेवी ने इन दो परस्पर विरोधी मतो को आत्मसात् करके एक ऐसा रूप दे दिया है कि जिससे इनमे कही भी कोई विरोध दृष्टिगोचर नही होता। यदि महादेवी की अनुभूति को साक्ष्य बनाया जाय तो स्वीकार करना पडेगा कि ये दोनो दर्शन एक-दूसरे के विरोधी नही अपितु एक-दूसरे के पूरक, साधक एव अग है। कवयित्री की विराट चेतना, व्यापक दृष्टि एव गभीर अनुभूति ने इन दोनो को दुग्ध-जल की भाँति समन्वित करते हुए एक ऐसे रूप मे व्यक्त किया है जहाँ दोनो का अन्तर अदृश्य हो जाता है और मेल सघन हो जाता है।

महादेवीजी का पहले बौद्ध दर्शन से तथा फिर अद्वैत दर्शन से परिचय हुआ, अत आगे इसी क्रम से इन दोनो के आधारभूत विचारो का परिचय क्रमश प्रस्तुत किया जाता है।

(क) बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन के प्रति महादेवी का आकर्षण किशोरावस्था से ही रहा है तथा इसका अध्ययन भी कदाचित् उन्होंने अन्य दर्शनो का ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व ही कर लिया था—इस सम्बन्ध मे वे स्वयं लिखती है—"बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दु खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।"[1] इतना ही नही, बी० ए० करने के अनन्तर वे एक बार बौद्ध भिक्षुणी बन जाने के विचार से इसकी दीक्षा लेने के लिए नैनीताल एक बौद्ध गुरु के पास भी गयी थी, पर उनके नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण को

---

१. 'यामा' की भूमिका।

देखकर उन्होने अपना विचार त्याग दिया। वे नारियो का मुँह देखना ठीक नही समझते थे, इसलिए उन्होने महादेवी से भी काष्ठ पट्टिका की ओट से बात की, जो इन्हें अरुचिकर लगा। अस्तु, वे बौद्ध धर्म की दीक्षा नही ले पायी, पर उसकी विचार-धारा का कितना गहरा सस्कार इनके हृदय और मस्तिष्क पर होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। वस्तुत महादेवी के व्यक्तित्व एव कृतित्व को सम्यक् रूप मे समझने-समझाने के लिए बौद्ध दर्शन के सम्यक् ज्ञान एव उसके प्रभाव का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

● **बुद्ध का व्यक्तित्व एवं चरित**—बौद्ध मत के प्रवर्त्तक महात्मा गौतम बुद्ध का जन्म कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन की पत्नी मायादेवी के गर्भ से लगभग छ शताब्दी ईसा-पूर्व हुआ था। उनके जन्म के वास्तविक समय के सम्बन्ध मे विद्वानो मे परस्पर मत-भेद दृष्टिगोचर होता है, डा० राधाकृष्णन् ने उनका जन्म-काल ५६७ ईसा-पूर्व माना है तो कुछ अन्य विद्वान् ६२३ ईसा-पूर्व मानते है। बुद्ध का निर्वाण अस्सी वर्ष की आयु मे हुआ था तथा सन् १९५६ मे संसार भर के बौद्धो ने बुद्ध के महा परिनिर्वाण की २५००वी वर्षी मनायी थी—इस दृष्टि से बौद्ध मतावलम्बी उनका जीवन काल ६२३-५४३ ई० पू० ही मानते है। गौतमबुद्ध की माता का देहान्त उनके जन्म के सात दिन बाद ही हो गया था जिससे उनका पालन-पोषण उनकी विमाता के द्वारा हुआ। गौतम की बचपन से ही सासारिक भोग-विलासो मे अरुचि थी तथा वे प्राय जीवन और जगत् की व्यापक समस्याओ के चिन्तन-मनन मे प्रवृत्त रहते थे। पुत्र कही सन्यासी न हो जाय, इस भय से उनके पिता ने उनका विवाह १६ वर्ष की आयु मे ही राजकुमारी यशोधरा से कर दिया, पर यह बन्धन भी उनकी चित्तवृत्तियो की मूल दिशा एव प्रवृत्ति का निरोध कर पाने मे सफल सिद्ध नही हुआ। जब उनकी प्रथम सतान राहुल का जन्म हुआ तो वे सदा के लिए घर छोडकर निकल पडे और विभिन्न प्रकार की साधनाओ एव तपस्याओ का अनुभव प्राप्त करते हुए सृष्टि के रहस्य की खोज मे लग गये। प्रारम्भ मे उन्होने परम्परागत प्रचलित साधना-पद्धतियो का प्रयोग किया किन्तु इनसे उनकी सतुष्टि नही हुई। अंत मे उन्हे उरुवेल मे पीपल-वृक्ष के नीचे गभीर साधना के अनन्तर ज्ञान या बोध प्राप्त हुआ, जिससे यह वृक्ष अब भी 'बोधिवृक्ष' तथा गौतम 'बौद्ध' के नाम से पुकारे जाते है। उन्होंने सर्वप्रथम सारनाथ मे अपने पाँच अनुगामियो को उपदेश देकर अपने मत मे दीक्षित करते हुए 'धर्म-चक्र' का प्रवर्त्तन किया। इसके अनन्तर अपने जीवन के अतिम क्षण तक वे विभिन्न स्थानो का पर्यटन करते हुए धर्म-प्रचार का कार्य करते रहे। वस्तुत. गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व, चरित एव कार्य इतना अद्भुत है कि उसकी महानता के आगे कोई भी विचारशील व्यक्ति नतमस्तक हुए बिना नही रहता। डा० राधाकृष्णन् के शब्दो में 'यह कल्पना करते समय कोई भी मनुष्य अवश्य आश्चर्य चकित होगा जब उसे यह ज्ञात होगा कि

ईसा से छ सौ वर्ष पूर्व भारत में एक अद्वितीय राजकुमार ने जन्म लिया था जो धार्मिक त्याग, उच्च आदर्शवाद, जीवन की उच्चता एव मनुष्यमात्र के प्रति प्रेम मे अपने से पहले और वाद के लोगो मे अद्वितीय था।'[२]

● **बौद्धमत के आधारभूत ग्रन्थ**—गौतम बुद्ध ने कदाचित् लिखित रूप मे किसी ग्रन्थ की रचना नही की अपितु उन्होने तत्कालीन प्रचलित लोक भाषा मागधी मे मौखिक रूप मे ही अपने उपदेश दिये, किन्तु उनके शिष्य उनके उपदेशो को समय-समय पर लिखते रहते थे। वुद्ध की मृत्यु के कुछ समय वाद ही उनके अनुयायियो का प्रथम महा सम्मेलन राजग्रह मे हुआ जिसमे वौद्ध मत के पाँच सौ निर्वाचित भिक्षुओ ने महाकाश्यप के सभापतित्व मे वुद्ध के वचनो को तीन ग्रन्थो के रूप मे सकलित किया, जिन्हे 'विनय पिटक', 'सुत पिटक' एव 'अभिधम्म पिटक' कहा जाता है। ये तीनो पिटक 'त्रिपिटक' कहलाते है जो कि वुद्ध की विचार-धारा को जानने के लिए प्राचीनतम एव सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत है। इस महा सम्मेलन मे गौतम बुद्ध के निकटतम एव अतरग शिष्यो ने भाग लिया था, जिन्होंने अपना जीवन वुद्ध के निरन्तर सपर्क एव साहचर्य मे विताया था, अत- इनके द्वारा सकलित उपदेशो को पर्याप्त प्रामाणिक माना जा सकता है। आगे चलकर वौद्ध धर्म के दो महा सम्मेलन (सगीतियाँ) क्रमश. वुद्ध की मृत्यु के १०० तथा २१४ वर्ष बाद हुए जिनमे वौद्ध मत के विभिन्न व्याख्याताओं ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये, किन्तु पारस्परिक मत-भेद के कारण वौद्ध मत दो शाखाओ—महायान और हीन यान—मे विभक्त हो गया। आगे चलकर इन यानो की भी अनेक शाखा-प्रशाखाओ का विकास हुआ जो अन्तत इस धर्म के विघटन एव ह्रास का कारण सिद्ध हुईं। इन शाखा-प्रशाखाओ के विभिन्न अनुयायियो ने बौद्ध मत के विभिन्न पक्षो को लेकर शताधिक ग्रन्थ लिखे किन्तु गौतम बुद्ध के विचारो की जानकारी का सर्वाधिक प्रामाणिक साधन तो 'त्रिपिटक' ही माना जाता है।

● **बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त**—बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त मुख्यत ये है—(१) दु खवाद, (२) प्रतीत्यसमुत्पाद, (३) मध्यममार्ग, (४) निर्वाण, (५) आत्मा, परमात्मा, जगत एव पुनर्जन्म सम्वन्धी विचार। यहाँ इन पर क्रमश विचार किया जाता है—

१ **दुःखवाद**—बुद्ध की दार्शनिक जिज्ञासा एवं धार्मिक प्रवृत्ति की मूल प्रेरणा ससार के लोगो की कष्टपूर्ण स्थिति थी, कदाचित् इसी से उनके दर्शन मे दु.ख सम्वन्धी विचारो पर सर्वाधिक वल दिया गया है। उनकी चिन्तना की सर्व प्रमुख उपलब्धि यह दु खवाद है जिसे उन्होने चार सूत्रो मे प्रस्तुत करते हुए 'चार आर्य सत्यो' की सज्ञा दी है। ये चार आर्य सत्य वस्तुतः दु.ख के ही चार पक्ष है जो क्रमश इस प्रकार है—(१) 'दु खम्' अर्थात् ससार दु खो से परिपूर्ण है। (२) 'दु.ख समुदय' अर्थात्

---

२. भारतीय दर्शन, भाग-१ ; पृ० ३१८।

इन दुःखो के पीछे कारण है । (३) 'दु.ख निरोध.' अर्थात् सांसारिक दुःख का निरोध हो सकता है । (४) 'दु ख निरोध-गामिनी प्रतिपत्' अर्थात् दु'खो के निरोध का उचित उपाय या मार्ग है । सक्षेप मे गौतम बुद्ध के विचार से दुःख संसार का सामान्य लक्षण है किन्तु उसके पीछे कोई न कोई कारण भी है तथा उस कारण का निराकरण करते हुए दुःख से छुटकारा प्राप्त करने का भी मार्ग है ।

उपर्युक्त चारो सत्यो की व्याख्या विस्तार से की गयी है । सर्व प्रथम आर्य सत्य दु.ख की विद्यमानता से सम्वन्धित है । दु.ख की सत्ता का अनुभव हम जीवन की विभिन्न परिस्थितियो एवं नाना अनुभूतियों मे कर सकते है , बुद्ध के शब्दो मे—'जीवन दुःखदायी है, प्रिय का वियोग दुःखदायी है और कोई उत्कृष्ट आकाक्षा जिसकी पूर्ति न हो सके वह भी दु'खदायी है ।' वस्तुत. दुःख की अनुभूति का जैसा विस्तृत एव गभीर विवेचन वौद्ध मत मे मिलता है वैसा कदाचित् अन्यत्र उपलब्ध नही होता । अपने शिष्यो एवं अनुयायियों के हृदय में इस शोकानुभूति का सचार करते हुए बुद्ध पूछते है—'हे भिक्षुओ ! वताओ कि चार महासागरो मे जो जल है वह अधिक है या तुम्हारे उन आँसुओं का जल अधिक है जिन्हे तुमने अपनी इस दीर्घ यात्रा मे इधर-उधर भटकते हुए वहाया है और इसीलिए बहाया है कि जो तुम्हारे हिस्से में मिला है उससे तुम्हे घृणा है और जो तुम्हे प्रिय है वह तुम्हारे हिस्से मे नही आया........ ।'

बुद्ध के विचार से इस जीवन में सव-कुछ दु'ख है—जन्म लेना दु ख है, जीवन का पालन, पोपण एव सरक्षण दुःख है । और अन्त मे मृत्यु दुःख है ।

बुद्ध की इस अति दु'खवादिता की आलोचना करते हुए डा० राधाकृष्णन् ने ठीक ही लिखा है—"विचारधारा के सपूर्ण इतिहास मे किसी दूसरे ने मनुष्य-जीवन के दु'ख का इतने अधिक कृष्ण रूप मे और न ही इतनी गहन भावना के साथ वर्णन किया जितना कि बुद्ध ने किया हे । .... हमे वाध्य होकर कहना पडता है कि बुद्ध वस्तुओ के अधकारमय पक्ष के ऊपर आवश्यकता से अधिक वल देते हैं । वौद्ध धर्म के अनुसार जीवन मे साहस एवं विश्वास का अभाव प्रतीत होता है । दु ख के ऊपर जो इस मत मे इतना अधिक वल दिया गया है वह यदि मिथ्या नही तो सत्य भी नही है ।.... यदि युवावस्था का सौन्दर्य क्षण-भगुर है तो जन्म के समय की प्रसव-पीडा और मृत्यु का परम दु ख भी तो क्षण-भंगुर है ।"[३]

डा० राधाकृष्णन् का उपर्युक्त मत एक सीमा तक ठीक है किन्तु हमे यह न भूलना चाहिए कि बुद्ध का दु'खवाद सर्वथा निराशामूलक एव निष्क्रियता का प्रेरक नही है, क्योकि बुद्ध के अनुसार दुःख अकारण नही है, उसकी सत्ता कारण पर निर्भर है, तथा कारण का निराकरण करके उससे मुक्ति पायी जा सकती है । इस दृष्टि से

---

३. भारतीय दर्शन ; पृ० ३३३-४ ।

दुःख जीवन का स्वाभाविक एवं सामान्य तत्त्व तो सिद्ध होता है किन्तु वह स्थायी एव अपरिहार्य नही है—उसके निराकरण का मार्ग भी है। ऐसी स्थिति मे बुद्ध का सदेश दुःखी व्यक्ति के प्रति पूर्ण सहानुभूति जताता हुआ भी उसके मन मे आशा की किरण का सचार करता है। वह उसे दुःख के कारणो को जानने तथा उनके निराकरण मे प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है।

दुःख का मूल कारण क्या है ? यदि परिस्थितियो की दृष्टि से विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि ससार की प्रत्येक वस्तु अस्थायी या अनित्य है। "हे भिक्षुओ ! और वह जो अस्थायी है, दुःखदायी है अथवा सुखदायी ?" "दुःखदायी है प्रभो !" 'सब कुछ अस्थायी है, शरीर, मनोवेग, प्रत्यक्ष ज्ञान, संस्कार एव चेतना, ये सभी दुःख है।' इस प्रकार ससार की क्षण-भगुरता, अनित्यता या परिवर्तनशीलता ही दुःख का स्थायी कारण है। पर फिर भी उस दुःख से दुःखी होना व्यक्ति पर निर्भर है। व्यक्ति अस्थायी पदार्थो को स्थायी मानने की अज्ञता एव उन्हे स्थायी रूप मे प्राप्त करने की मिथ्या कामना करता है जिससे उसे दुःख की अनुभूति प्राप्त होती है। यदि वह संसार की परिवर्तनशीलता के ज्ञान को सदा ध्यान मे रखे तो वह मिथ्या कामनाओ से ग्रस्त ही न होगा—अतः दुःख का वाह्य कारण जहाँ संसार की परिवर्तनशीलता है वहाँ व्यक्ति का तत्सम्वन्धी अज्ञान या अविद्या है। अस्तु, यह अविद्या ही व्यक्ति की दुःखानुभूतियो का मूल कारण है। इस अविद्या से ही चेतना विभिन्न पदार्थो का ससर्ग एव बोध प्राप्त करती हुई तृष्णा या लालसा से उत्प्रेरित होती है और दुःख का अनुभव प्राप्त करती है।

२. प्रतीत्य समुत्पाद—बुद्ध ने प्रत्येक तत्त्व की व्याख्या तर्क एव विज्ञान के आधार पर करने का प्रयास किया है। इस दुःखमय जीवन की उत्पत्ति एव उसकी विभिन्न स्थितियो की व्याख्या के लिए भी उन्होने जिस सिद्धान्त की स्थापना की है वह 'प्रतीत्य समुत्पाद' कहलाता है। शाब्दिक दृष्टि से 'प्रतीत्य' का अर्थ है—'किसी वस्तु की प्राप्ति' तथा 'समुत्पाद' का अर्थ है—'अन्य वस्तु की प्राप्ति।' इस दृष्टि से इसका अर्थ हुआ—एक वस्तु की प्राप्ति दूसरी वस्तु पर निर्भर है या यो कहिए कि एक स्थिति या अवस्था किसी अन्य पूर्व स्थिति या अवस्था पर निर्भर है। इसे आचार्य वलदेव उपाध्याय के शव्दो मे 'बुद्ध सम्मत कारणवाद' या डा० राधाकृष्णन् के शब्दो मे 'आश्रित उत्पत्ति' का सिद्धान्त कहा जा सकता है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से यह क्रमिक विकासवाद एवं सापेक्षवाद के तत्त्वो पर आधारित है।

व्यक्ति के दुःखो की कारण-शृंखला की व्याख्या इसी प्रतीत्य समुत्पाद के आधार पर करते हुए बुद्ध ने बारह अंगो की चर्चा की है : (१) अविद्या, (२) सस्कार, (३) विज्ञान या चेतना, (४) नाम-रूप, (५) षड़ायतन (इन्द्रियाँ और मन), (६) वेदना या ऐन्द्रियानुभूति, (७) स्पर्श, (८) तृष्णा, (९) उपादान या आसक्ति, (१०) भव अर्थात्

सासारिक कर्म, (११) जाति (पुनर्जन्म), (१२) जरा-मरण। इस प्रकार इनमे से प्रत्येक अग क्रमश अगले अग का कारण है या यो कहिए कि अगला अग पिछले अग पर आश्रित है। यदि हम जरामरण के कष्टो से मुक्ति चाहते है तो हमे इसके मूल कारण अविद्या का नाश करते हुए क्रमशः अन्य अगो का नाश करना चाहिए। इन बारह अगो को ही ससार के समस्त दु खो का कारण एव 'भव-चक्र' कहा गया है।

३ **मध्यम मार्ग (मध्यम प्रतिपदा)**—सासारिक दु.खो से मुक्ति (निर्वाण-प्राप्ति) के लिए बुद्ध ने जिस साधना-पद्धति को प्रतिपादित किया, वह 'मध्यम प्रतिपदा' या 'मध्यम मार्ग' कहलाती है। उनका मार्ग उच्छृङ्खल भोग-विलास एव कठोर आत्म-नियत्रण—जीवन के इन दो विरोधी आयामो के मध्य मे पडता है, वह न अति विला-सिता को प्रश्रय देता है और न ही अति सयम को—इसी से उसे 'मध्यम मार्ग' कहा गया है। बुद्ध छ· वर्ष तक कठोर तपस्या के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचे कि 'ऐसा व्यक्ति जिसने तपस्या से कृश होकर अपना बल खो दिया हो वह सत्य के मार्ग का अनुसरण नही कर सकता।' 'दो प्रकार की पराकाष्ठाएँ है और दोनो का ही अनुसरण जीवन-यात्रा मे प्रवृत्त व्यक्ति को त्याग देना चाहिए एक ओर बराबर वासनाओ एवं इन्द्रियो के सुख-भोगो से लिप्त रहना तथा दूसरी ओर अपने शरीर को यातना एव कष्ट देने मे रत रहना जो कि दुख·दायक है, अधम है, एव निष्प्रयोजन है।' तथागत ने इन दोनो के बीच का मध्य मार्ग खोज निकाला। यह ऐसा मार्ग है जो आँखे खोल देता है, विवेक शक्ति को जगा देता है और उच्चतम ज्ञान व शान्ति प्रदान करता हुआ अन्त मे निर्वाण की ओर ले जाता है।

इस मध्यम मार्ग को अष्टागी मार्ग भी कहते हैं क्योकि इसके अन्तर्गत आठ क्रियाओ का निर्देश है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् सकल्प, (३) सम्यक् वाक्, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि। सम्यक् दृष्टि वस्तुत. सम्यक् दृष्टिकोण, चिन्तन एव ज्ञान की द्योतक है। यदि हमारा दृष्टिकोण ही भ्रान्त होगा तो सच्चे ज्ञान की उपलब्धि नही हो सकती। हमारे समस्त क्रिया-कलापो का मूल हमारा यही दृष्टिकोण तथा तज्जन्य बोध है। अत इसे सर्वप्रथम स्थान देना बुद्ध की मनोवैज्ञानिक दृष्टि का प्रमाण है। सम्यक् बोध ही सम्यक् सकल्पो को तथा सम्यक् सकल्प ही क्रमश. सम्यक् वचन, सम्यक् कार्य एव सम्यक् आजीविका का प्रेरक कारण है। सम्यक् व्यायाम से तात्पर्य वासनाओ एवं कुप्रवृत्तियो को सयमित करने के लिए किये गये यत्न या श्रम से है। इसी प्रकार सम्यक् स्मृति मे मन और बुद्धि की पवित्रता का समावेश किया गया है तथा सम्यक् समाधि का अर्थ राग-द्वेपादि से उत्पन्न द्वन्द्व से ऊपर उठकर मन को नैसर्गिक एकाग्रता प्रदान करना है। इसके अन्तर्गत ध्यान एवं प्रगाढ चिन्तन का भी समावेश हो जाता है। अस्तु, इन आठ मार्गो के द्वारा दृष्टि, मन, बुद्धि एवं आचार की शुद्धता के द्वारा सिद्धि

प्राप्त करने का निर्देश किया गया है। वस्तुतः बुद्ध की यह साधना-पद्धति जहाँ मनोविज्ञान सम्मत्, नैतिकता से युक्त एवं तर्क-संगत है वहाँ वह सरल एव व्यावहारिक भी है। इस पद्धति का न तो मूल अलौकिक है और न ही लक्ष्य , वह सर्वत्र लौकिकता एव नैतिकता पर आधारित है। साथ ही इसकी यह भी विशेपता है कि यह व्यक्ति को जीवन के उच्चतम धरातल पर एव महानतम लक्ष्य के निकट ले जाने के लिए इन्द्रियो के अनावश्यक दमन पर नही अपितु उनके सस्कार, परिप्कार एव प्रशिक्षण पर वल देती है। वस्तुत. यह आश्चर्य की वात है कि आज से लगभग अढाई हजार वर्ष पूर्व बुद्ध ने एक ऐसी धार्मिक साधना-पद्धति खोज निकाली जो कि धार्मिक एव साप्रदायिक सीमाओ से मुक्त, अलौकिकता एव अव्यावहारिकता से शून्य तथा कृत्रिम आचार-विचार एव वाह्य प्रदर्शनो से सर्वथा दूर होती हुई भी वौद्धिकता, मनोवैज्ञानिकता एवं नैतिकता से परिपूर्ण है। बुद्ध का यह मार्ग आज के अति विकसित वैज्ञानिक युग के मानव की चेतना, वुद्धि एव सवेदना के लिए भी उतना ही अनुकूल है जितना वह २५०० वर्ष पुराने मानव के अनुकूल था। यह तथ्य इस वात को प्रमाणित करता है कि वुद्ध की दृष्टि एव चिन्तना कितनी सूक्ष्म एव गभीर थी जिसके द्वारा वे मानवता के चरम उत्थान का मार्ग दिखा सके।

४ **निर्वाण**—वौद्ध धर्म के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति करना है। यह 'निर्वाण' क्या है, इसकी व्याख्या वुद्ध से लेकर अव तक विभिन्न व्याख्याताओ एव चिन्तको ने की है, पर इसका स्वरूप अव भी विवादास्पद है। स्वय वौद्ध धर्म की ही विभिन्न शाखाओ मे निर्वाण की विभिन्न व्याख्याएँ की गयी है जो कही-कही परस्पर-विरोधी भी सिद्ध होती है। फिर भी हम यहाँ प्रमुख एव वहु प्रचलित धारणाओ के आधार पर ही 'निर्वाण' का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

'निर्वाण' का शाब्दिक अर्थ है—बुझ जाना अथवा ठडा हो जाना। वस्तुत यह अर्थ दीपक की लौ या आग की लपट के प्रसग मे प्रयुक्त होता है—दीपक की लौ के बुझ जाने को 'निर्वाण' कहा जाता है जो कि इस शव्द का प्राथमिक वाच्यार्थ है, किन्तु लक्षणा के द्वारा इसके अन्य अर्थो का भी विकास होता है, जैसे—अदृश्य हो जाना, शान्त हो जाना, समाप्त हो जाना या मृत हो जाना। ऐसी स्थिति मे विचारणीय यह है कि वौद्ध मत के प्रसग मे इसका कौन-सा अर्थ ग्रहित किया जाय ? डा० राधाकृष्णन् ने स्पष्ट किया है—" 'निर्वाण' शव्द का अर्थ है वुझ जाना अथवा ठडा हो जाना। वुझ जाने से विलोप हो जाने का सकेत है। ठडा हो जाने का तात्पर्य सर्वथा शून्य भाव नही वल्कि केवल उष्णतामय वासना का नष्ट हो जाना है।' मन का मुक्त हो जाना ऐसा ही है जैसा कि एक ज्वाला का वुझ जाना।"[४] निर्वाण का एक अन्य अर्थ मृत्यु

४. भारतीय दर्शन ; पृ० ४११-२।

भी है पर डा० राधाकृष्णन् ने इस अर्थ का वहिष्कार करते हुए लिखा है—"अनेक वाक्यो से यही ध्वनित होता है कि बुद्ध का आशय केवल मिथ्या इच्छा का विनाश करना था, जीवन-मात्र का विनाश करने से नही। काम-वासना, घृणा एव अज्ञान के नाश का नाम ही निर्वाण है।"[५]

निर्वाण के स्पष्टीकरण के लिए बुद्ध के मूल वचनो पर भी विचार किया जा सकता है। 'उदान' मे संकलित उनके वचनों के अनुसार उन्होने कहा—"भिक्षुओ ! न तो उसे मैं अगति कहता हूँ और न ही गति , न स्थिति कहता हूँ और न च्युति !.... यही दु खो का अन्त है।.... यह शरीर जात, भूत, उत्पन्न, कृत, सस्कृत, अध्रुव, वुढापा और मृत्यु से पीडित, रोगो का घर, क्षण-भगुर तथा आहार और तृष्णा से युक्त है। उससे प्रेम करना ठीक नही। उसका निस्तार (निर्वाण) शान्त है। वह (निर्वाण) तर्क से नही जाना जा सकता, वह ध्रुव, अजात, शोक-रोग रहित है। सभी दुःखो का वहाँ निरोध हो जाता है, वह संस्कारो की शान्ति एवं परम सुख है।"[६]

वौद्ध धर्म के हीन-यानी व्याख्याताओ के अनुसार भी प्रत्येक व्यक्ति अनेक प्रकार के दु.खो से पीडित है। जव वह आर्य सत्यो के ज्ञान एवं तदनुसार अष्टाग-मार्ग के पालन से सभी प्रकार के क्लेशो से निवृत्ति पालेता है तो यही निर्वाण है।[७]

निर्वाण क्या केवल दु'खो की अभावात्मक स्थिति है या उसमे सुख और आनन्द की भी अनुभूति रहती है—इस प्रश्न को लेकर भी पर्याप्त मत-भेद है। हीनयानियो के अनुसार दु.ख का अभाव ही निर्वाण है जव कि महायानी उसे आनन्दपूर्ण अनुभूति मानते है। पर हमारे विचार में यह विवाद निरर्थक है—जिस प्रकार अन्धकार का अभाव ही प्रकाश है या प्रकाश का अभाव ही अन्धकार है, उसी प्रकार दु खो से मुक्ति आनन्द है या आनन्द का लोप ही दु'ख है, अतः यह प्रश्न उठाना कि अन्धकार के अभाव को प्रातःकाल कहते है या प्रकाश के प्रसार को—व्यर्थ है।

क्या निर्वाण इसी जीवन में प्राप्त हो सकता है या वह मृत्यु के वाद ही प्राप्त होता है—इस सम्वन्ध मे कतिपय विचारको ने यह भ्रान्ति फैलाई है कि वह मृत्यु के वाद यहाँ तक कि मानसिक व्यक्तित्व के सर्वथा लोप हो जाने पर ही प्राप्त होता है, पर यह ठीक नही। बुद्ध ने वोधि-वृक्ष के नीचे इसी जीवन मे निर्वाण प्राप्त किया था। यदि निर्वाण व्यक्तित्व के सर्वथा लोप होने पर ही प्राप्त हुआ तो फिर उसकी अनुभूति कैसे प्राप्त होगी ? जव व्यक्ति का मानसिक व्यक्तित्व ही शून्य हो गया तो फिर उसे दु'ख और सुख, शान्ति और आनन्द की अनुभूति ही कैसे प्राप्त होगी जव

---

५. भारतीय दर्शन ; पृ० ४१२।

६. मध्यकालीन साहित्य पर वौद्ध मत का प्रभाव ; पृ० ४७।

७. भारतीय दर्शन शास्त्र ; पृ० १५८।

कि निर्वाण को सुख, शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति से परिपूर्ण माना गया है। बौद्ध मत मे मृत्यु के अनन्तर भी मानव-चेतना अथवा मानसिक व्यक्तित्व का अस्तित्व स्वीकार किया गया है, अत. इस दृष्टि से निर्वाण की दो स्थितियाँ अवश्य स्वीकार की गयी है—एक, उपाधिशेप, जो इसी जीवन में तृष्णाओ के क्षय से प्राप्त होता है। दूसरा, अनुपाधिशेष जो दैहिक जीवन के अन्त हो जाने पर प्राप्त होता है। बुद्ध ने वोधि वृक्ष के नीचे तत्त्व-वोध के द्वारा जो निर्वाण प्राप्त किया था वह प्रथम प्रकार का था जवकि मृत्यु के अनन्तर जो महा परिनिर्माण प्राप्त किया वह दूसरे प्रकार का था।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'निर्वाण' वस्तुत. जीवन से मुक्ति या व्यक्तित्व का लोप नही है अपितु वह एक निवृत्ति मात्र है। जीवन रूपी दीपक में अविद्या के स्नेह (तैल) के कारण तृष्णाओं की लौ जल रही है; जव सम्यक् दृष्टि एव सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् आचारादि के कारण अविद्या का नाश हो जाता है तो तृष्णा रूपी लौ निवृत्त या शान्त हो जाती है। दीपशिखा या दीपक की लौ वौद्ध चिन्तन में विशेप अर्थ रखती है तथा यह उसका वहु प्रचलित प्रतीक या उपमान है जो वासनाओ की प्रेरणा, तृष्णाओ के प्रकाश, मन की चचलता एवं अस्थिरता तथा क्लेशो के अनुताप को सूचित करता है। महा कवि अश्वघोष ने भी दीपक के उदाहरण से ही निर्वाण के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—"जिस प्रकार बुझा हुआ दीपक न तो पृथ्वी पर जाता है न अन्तरिक्ष मे, न किसी दिशा मे और न किसी विदिशा मे; प्रत्युत् स्नेह के क्षय होने से वह केवल शान्ति को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुप (निर्वाण प्राप्ति कर लेने पर) न कही जाता है—न पृथ्वी पर न अतरिक्ष में और न किसी दिशा में—केवल क्लेश के क्षय हो जाने से शान्ति प्राप्त कर लेता है।" अस्तु, निर्वाण व्यक्ति के किसी शारीरिक या भौतिक परिवर्तन का सूचक नही अपितु उसकी चेतना की विशेष अनुभूति का द्योतक है; यह अनुभूति सशरीर मन में भी प्राप्त हो सकती है और देह-त्याग के वाद भी। जो 'निर्वाण' का अर्थ मृत्यु लेते है वे वौद्ध दर्शन के साथ न्याय नही करते क्योकि वौद्ध दर्शन के अनुसार व्यक्ति की इच्छाएँ, वासनाएँ एवं उसके संस्कार तो मृत्यु के वाद भी उसकी चेतना के साथ रहते है अतः मन की शान्ति—चेतना की आनन्दानुभूति—मृत्यु से भी सभव नही; अपनी इच्छाओ, वासनाओ एवं सस्कारों के कारण ही अशान्त चेतना मृत्यु के वाद भी वार-वार जन्म धारण करती हुई भव-चक्र के कष्टो को भोगती रहती है जव कि निर्वाण या परिनिर्वाण प्राप्त कर लेने के अनन्तर ही वह सव तृष्णाओं से मुक्त होकर परम शान्ति या आनन्द का मुक्त भोग प्राप्त करती है।

अस्तु, जिस प्रकार दीपक के वुझ जाने का अर्थ दीपक का लुप्त हो जाना नही है अपितु उसकी 'लौ' मात्र का शान्त हो जाना है, उसी प्रकार बुद्ध मत के अनुसार

'निर्वाण' का एक मात्र अर्थ व्यक्ति की समस्त तृष्णाओ की शान्ति से उत्पन्न दु.ख को अभावात्मक अथवा आनन्द की भावात्मक अनुभूति की उपलब्धि है। बौद्ध दर्शन एव धर्म की सभी चिन्तनाओ एवं साधनाओ का चरम लक्ष्य इस जन्म मे या मृत्यु के अनन्तर अथवा अगले जन्म मे इसी निर्वाण को प्राप्त कर लेने का है—यह हमारे व्यक्तित्व की शुद्धता एव साधना की गभीरता पर निर्भर करता है कि हमे निर्वाण की स्थिति इस जन्म मे मिलती है या अगले जन्म मे, क्योकि जब तक हम वासनाओ, तृष्णाओ एव मलिन सस्कारो से पूर्णत मुक्ति नही पा लेते तब तक उसकी प्राप्ति सभव नही तथा हर व्यक्ति की स्थिति एव गति इस दृष्टि से एक जैसी नही है। पर यह निर्वाण (=दु खो से छुटकारा) साधना के द्वारा हर व्यक्ति के लिए शीघ्र या अशीघ्र निश्चित रूप से सुलभ है, प्राप्य है—यही बुद्ध का महान् सदेश है जो हर व्यक्ति के मन मे,—चाहे वह अशिक्षित, दीन-हीन, शूद्र हो या सुशिक्षित सुसस्कृत ब्राह्मण, चाहे वह महान दोषी, अपराधी एव पापी हो या निर्दोष महात्मा—आशा की नयी किरण छिटका कर उसे सत्य के मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

५. **आत्मा, परमात्मा, जगत् आदि से सम्बन्धित विचार**—आत्मा, परमात्मा, जगत् आदि के सम्बन्ध मे बुद्ध ने नूतन दृष्टिकोण से विचार करते हुए परम्परागत धारणाओं का खडन किया है। उन्होंने उपनिषदो के आत्मा सम्बन्धी मत को अस्वीकार किया है। उपनिषदो के अनुसार आत्मा शरीर और मन से पृथक् एक स्थायी एव अमर पदार्थ है जो कि मृत्यु के बाद भी अवस्थित रहती है। बौद्ध मत मे इस विचार का खडन करते हुए सृष्टि के किसी भी तत्त्व की स्थिरता एव अमरता मे अविश्वास प्रकट किया गया है। वैसे स्वय बुद्ध ने आत्मा के पक्ष में दिये जाने वाले सभी तर्को को अस्वीकार तो किया है किन्तु स्पष्ट रूप मे उसका निषेध भी नहीं किया, इससे स्थिति दुविधात्मक हो जाती है। परन्तु परवर्ती बौद्ध चिन्तको ने इस विचार को स्पष्ट रूप मे प्रतिपादित किया है कि आत्मा की कोई पृथक् एव स्थायी सत्ता नही है। 'मिलिन्द-प्रश्न' मे नागसेन द्वारा प्रतिपादित विचार के अनुसार जिस प्रकार रथ के विभिन्न अवयवो से पृथक् रथ की आत्मा का कोई अस्तित्व नही है उसी प्रकार शरीर और मन के विभिन्न अवयवो के अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु नही है। परन्तु यहाँ नागसेन ने उदाहरण ही एक जड पदार्थ का दिया जिसे आत्मवादी भी आत्मा रहित मानते है। अत. आत्मा का खडन केवल खडन के लिए ही किया गया प्रतीत होता है, उसके पीछे कोई ठोस तत्त्व दिखाई नही पडता।

आत्मा की सत्ता अस्वीकार कर देने पर स्वय बौद्ध दर्शन अनेक असगतियो से ग्रस्त हो जाता है। एक ओर तो वह मरणोत्तर जीवन, पुनर्जन्म एव मृत्यु के अनन्तर प्राप्त होने वाले निर्वाण के आनन्द की कल्पना करता है तथा दूसरी ओर वह इस शरीर और मस्तिष्क के परे किसी अन्य तत्त्व की सत्ता स्वीकार नही करता ? यदि

शरीर और मन ही सव कुछ है, तो फिर मृत्यु के वाद जो तत्त्व पुनर्जन्म प्राप्त करता है, वह क्या है ? क्या वह मन है ? यदि शरीर से पृथक् होकर पुन जन्म धारण करने वाली सत्ता मन है तो फिर उसके स्वरूप मे आत्मा से क्या अन्तर हुआ ? वस्तुत· वौद्ध दर्शन मे व्यक्ति के समस्त व्यक्तित्व के दो अगो—नाम (अदृश्य सत्ता अर्थात् मन) और रूप (दृश्य सत्ता यथा शरीर)—को स्वीकार करते हुए नाम या मानसिक सत्ता के तीन अवयवो की चर्चा की गयी है—(१) विज्ञान (चेतना), (२) चित और (३) हृदय। यहाँ जिस विज्ञान या चेतना का उल्लेख किया गया है वही मृत्यु के अनन्तर अन्य पदार्थों के सपर्क में आकर पुन. जन्म ग्रहण करती है। अत आत्मवादियो के यहाँ जो स्थान आत्मा का है वही वौद्धो के यहाँ विज्ञान या चेतना का है। फिर भी दोनो के स्वरूप में सूक्ष्म भेद है। आत्मा को जहाँ मन से भी परे या ऊपर वताया गया है वहाँ चेतना या विज्ञान मन का ही एक अवयव या अग है दूसरे, आत्मा अजर, अमर एव अपरिवर्तनशील है जव कि चेतना को अस्थिर, निरन्तर गतिशील एव प्रवाहमयी माना गया है। वस्तुत वौद्ध मत के अनुसार चेतना किसी भी क्षण पूर्ववत् नही रहती, वह सदा गतिशील एवं प्रवहमाण रहती है, इसीलिए इसका स्वरूप प्रत्येक क्षण परिवर्तित होता रहता है। एक जन्म से दूसरा जन्म धारण करने वाली सत्ता भी यही चेतना है, पर इसका यह तात्पर्य भी नही है कि वह पूर्णत. पूर्ववत् रहती है। एक जन्म की चेतना और दूसरे जन्म की चेतना मे वही सम्बन्ध है जो दूध और दही मे है; दही दूध से सर्वथा पृथक् भी नही होता पर पूर्णत अभिन्न भी नही होता। एक दूसरा उदाहरण शिशु, -युवक एवं वृद्ध का भी दिया जा सकता है; क्या आज का युवक अपने पिछले शिशु रूप या भावी-वृद्ध रूप के ही अनुरूप है ? क्या वह शिशु एव वृद्ध से भिन्न है ? इन प्रश्नो का उत्तर यही होगा कि एक रूप दूसरे रूप के सर्वथा अनुरूप न होते हुए भी सर्वथा पृथक् भी नही है। दूसरे शव्दो मे जिस प्रकार दही दूध का परिवर्तित या विकसित रूप है, युवक शिशु का विकसित रूप है उसी प्रकार इस जन्म की चेतना पूर्वजन्म की चेतना का विकसित रूप है। बुद्ध का यह सिद्धान्त इस दृष्टि से आधुनिक विकासवाद के वहुत निकट है। उन्होंने एक प्रकार से आत्मा सम्बन्धी धारणा का उन्मूलन या उच्छेद नही किया अपितु उसे नया सशोधित रूप या विकासवादी रूप प्रदान कर दिया है। आत्मा स्थिर, अमर एव अपरिवर्तनशील थी जो कि चेतना के रूप मे सतत् गतिशील, परिवर्तनशील एव विकासोन्मुखी सिद्ध हो गयी। धार्मिक, नतिक एव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी विकासोन्मुख चेतना का सिद्धान्त अपरिवर्तनीय आत्मा की धारणा से अधिक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। हम कुछ भी करें या न करे, यदि हमारी आत्मा सदा एक जैसी रहेगी तो उस स्थिति मे हमे धर्म-पालन एव नैतिक आचरण करने की प्रेरणा कैसे मिल सकती है ? कदाचित् बुद्ध ने इसी व्यावहारिक एव नैतिक आवश्यकता को अनुभव करते हुए आत्म

वाद को अस्वीकार करना उचित समझा। यदि किसी अपव्ययी को कह दिया जाय कि तुम जितना चाहो खर्च करो या न करो तुम्हारा मूलधन (आत्मा) सदा उतना ही रहेगा तो फिर वह खर्च करने मे बुद्धि एवं संयम का उपयोग क्यों करेगा ? इसके विपरीत यदि उसे यह कहा जाय कि तुम जैसा करोगे उसी के अनुरूप तुम्हारा मूलधन (=चेतना) घटता-बढता रहेगा तो वह अवश्य ही सोच-समझकर व्यय करेगा। अपरिवर्तनीय आत्मा के स्थान पर परिवर्तनशील विकासोन्मुख चेतना की प्रतिष्ठा करके बुद्ध ने सामान्य व्यक्तियो, साधकों एव चिन्तको के सम्मुख दूसरी स्थिति उत्पन्न कर दी जो कि व्यावहारिक दृष्टि से आवश्यक थी।

आत्मा की ही भाँति परमात्मा या ईश्वर के सम्बन्ध मे भी बुद्ध ने परम्परागत वैदिक मत को अस्वीकार किया। उन्होने इस सृष्टि से परे उसके स्रष्टा के रूप में ईश्वर नाम की सर्वथा स्वतत्र, स्वाधीन एवं शाश्वत सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार नही किया। वैसे स्वय बुद्ध ने स्पष्ट शब्दो मे ईश्वर की सत्ता का पूर्ण निषेध नहीं किया, उनका दृष्टिकोण यही रहा कि ईश्वर का बोध हम प्राप्त नही कर सकते, अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि वह है या नही ! फिर ईश्वर भी व्यक्ति को उसके कर्मानुसार ही फल देता है—ऐसा ईश्वरवादी भी मानते हैं, ऐसी स्थिति मे उसे जानने के प्रपच मे पड़ने की क्या आवश्यकता है ? यदि यह कहा जाय कि वह स्वेच्छा से बिना व्यक्ति के कर्मों पर विचार किए ही, अपनी कृपा से व्यक्ति को उसकी पात्रता से अधिक दे देता है तो ऐसी स्थिति मे उसे न्यायी कैसे माना जा सकता है तथा ऐसे अन्यायी ईश्वर को मानना कहाँ तक उचित है ? अतः बुद्ध ने ईश्वर सम्बन्धी कल्पनाओ को अनावश्यक एवं अव्यावहारिक मानते हुए इस विषय मे अपना कोई स्पष्ट निर्णय नही दिया। पर बुद्ध के परवर्ती अनुयायियो ने अपने वेद-विरोधी दृष्टिकोण के कारण सुदृढ तर्कों के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व का विरोध किया है। कदाचित् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बौद्ध मतावलम्बियों की यही सबसे बड़ी भूल थी जिसके कारण बौद्ध धर्म भारत मे स्थायी रूप से लोकप्रिय नही रह सका। इस सम्बन्ध मे यदि बुद्ध की ही नीति का अनुसरण करते हुए मौन रहा जाता तो सभवतः भारत की आस्तिक जनता को बौद्ध धर्म अधिक प्रिय हो पाता।

ईश्वर को न मानते हुए बौद्ध मतानुयायी ब्रह्मा, इन्द्र, शकर आदि देवी-देवताओ की कल्पना को स्वीकार करते हुए उनकी चर्चा अपनी कथाओ मे प्रायः करते है। यह विचित्र-सी बात है किन्तु गहराई से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि जिस प्रकार बौद्ध मत मृत्यु के अनन्तर मानव-चेतना का अस्तित्व स्वीकार करता है वैसे ही इन देवी-देवताओ के अस्तित्व को मान्यता देता है। वे भी चेतना के अपेक्षाकृत विकसित रूप हैं, किन्तु सृष्टि के नियमों एवं कर्म-फल के विधान से वे भी मुक्त नही हैं। बुद्ध के मतानुसार सृष्टि का आविर्भाव, विकास एवं ह्रास किसी विशिष्ट सत्ता के द्वारा नही

अपितु कर्म-फल के सामान्य नियम या विधान के द्वारा होता है जिसे दूसरे शब्दों में नियति भी कहा जा सकता है। इस समस्त ससार मे कोई भी ऐसी सत्ता नही है जो कारण-कार्य अथवा कर्म-फल के नियम से मुक्त हो। यह नियम या विधान ही एक मात्र अटल नियम या शाश्वत सत्ता है। यदि हम चाहें तो इस नियम, विधान या शाश्वत सत्य की शक्ति को ही ईश्वर की सज्ञा देकर बौद्ध मत को अनीश्वरवादी होने के आक्षेप से मुक्त कर सकते हैं किन्तु फिर भी वह उन आस्तिको की आशाओं की पूर्ति न कर सकेगा जो उसकी कृपा से अपने जीवन-भर के पापो का नाश क्षण भर मे, विना उनका फल भोगे ही अथवा बिना कुछ किये ही सारे सुख-साधनो की प्राप्ति की आशा लगाये वैठे हैं। साथ ही वह इतना अलौकिक एव शक्तिशाली भी सिद्ध न होगा जो प्रकृति एव सृष्टि के सारे विधि-विधानों को अपनी इच्छा मात्र से पलट कर कुछ का कुछ कर दिखा दे—अपने चमत्कारों से सृष्टि के नियमो को ही परिवर्तित कर दे। ऐसी स्थिति मे कौन आस्तिक होगा जो कि इस हृदयहीन, अकृपालु एव चमत्कार-शून्य ईश्वर की व्यर्थ मे ही पूजा या आराधना करे। वस्तुत बुद्ध चाहते भी यही थे, वे मनुष्य को किसी वाह्य सत्ता के वशीभूत बनाकर उसे अकर्मण्यता एव निठल्लेपन की शिक्षा नही देना चाहते थे ; ईश्वर है या नही—इससे व्यक्ति के लिए कोई अन्तर नही पड़ता क्योकि उनके मतानुसार यह ध्रुव सत्य है कि व्यक्ति वही बनेगा जो उसकी नियति मे है तथा उसका नियति वही है जो उसके पूर्वकर्मों एव विचारो के परिणाम से नियत है। अपने कर्मो के भोग से, नियति के अनुशासन से वह वच नही सकता, कोई भी ईश्वर उसे इससे बचा नही सकता. ऐसी स्थिति में अपने वर्तमान एव भविष्य को सुन्दर, सुखद एव उज्ज्वल वनाने के लिए व्यक्ति के पास अपने मन, वचन एव कर्म को शुद्ध करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही हैं तथा ईश्वर की सत्ता, वह चाहे हो या न हो, उसके लिए अनावश्यक, अनुपयोगी एवं अनपेक्षित है। इस प्रकार बुद्ध ने धरती के मनुष्यो को ईश्वर की अधीनता, निर्भरता एव शरणगामिता से मुक्ति दिलवा कर उसे आत्म-निर्भर, स्वतंत्र, कर्मशील एव पवित्र बनने की प्रेरणा दी। दूसरे शब्दों मे उन्होने मानव को ईश्वर की गुलामी से मुक्त करके मानवता के ही सर्वोपरि विकास की ओर अग्रसर किया ; उसे यह अनुभव करवा दिया कि वह किसी अलौकिक जगत् से सहायता या उद्धार की आशा त्याग कर अपनी सहायता और अपना उद्धार स्वयं करे। सभवतः मानव-जाति के इतिहास मे मानव-चेतना की स्वतत्रा का इससे अधिक सुन्दर एवं पवित्र उद्घोष इससे पहले कभी नही हुआ।

सृष्टि, जगत् या संसार को भी बुद्ध ने निरन्तर गतिशील या परिवर्तनशील माना है, अत. इस दृष्टि से इसे न तो अद्वैतवादियों की भाँति सर्वथा मिथ्या या अस्तित्व-शून्य कहा जा सकता है और न ही उसे सर्वथा सत्य या स्थिर माना जा सकता है। ऐसी स्थिति मे सृष्टि के सम्बन्ध मे कोई एक निश्चित वात नही कही जा

सकती किन्तु बुद्ध-परवर्ती चिन्तको ने बुद्ध की धारणाओं को विकसित करते हुए जगत् के तीन प्रमुख लक्षण निर्धारित किये हैं—अनित्य, दु ख एव अनात्म—जिन्हे 'त्रिलक्षण' भी कहा जाता है। यह जगत् अनित्य है, दु खपूर्ण एव आत्मा शून्य है। वस्तुत इस प्रकार के स्पष्ट एव एकागी निर्णय को मानने की अपेक्षा उसे केवल सतत् गतिशील, सतत् परिवर्तनशील, एव सतत् विकासोन्मुख मानना बुद्ध-मत की मूल धारणाओ के अनुकूल होगा। सृष्टि या जगत के विभिन्न पदार्थो का विकास एव ह्रास, तथा उसकी विभिन्न घटनाओ एव अवस्थाओ का घटन एव विघटन किसी वाह्य या पृथक् सत्ता की प्रेरणा या शक्ति से नही अपितु इसी के अन्तर्व्यापी नियमो तथा कर्म-फल के सिद्धान्तो से होता है। इस दृष्टि से सृष्टि की प्रेरणा, गतिशीलता एव परिवर्तनशीलता का स्रोत वह सूक्ष्म विधान है जो कि सर्वत्र व्याप्त है। अध्यात्मवादियो की भाँति बौद्ध उसे न तो किसी परमात्मा की लीला या अभिव्यक्ति मानते है और न ही भौतिकवादियो की भाँति प्राकृतिक क्रिया-व्यापारो का आकस्मिक सयोग मानते है, अपितु वे इन दोनो के वीच की स्थिति को स्वीकार करते हुए उसे एक ऐसा अविच्छिन्न एव निरन्तर गतिशील प्रवाह मानते है जो कि कार्य-कारण शृखला, परस्पर अन्योन्याश्रित पूर्वोत्तर स्थितियो अथवा वीज और उसके फल की भाँति कर्मों के नियत परिणाम पर आधारित है। इस प्रकार वौद्ध दर्शन के अनुसार समस्त सृष्टि का सार कर्मजन्य क्रिया-प्रतिक्रिया मे निहित है। कर्म ही इस सृष्टि का सर्वोच्च विधायक एव नियामक है जिसे दूसरे शब्दो मे नियति भी कह सकते है।

६. **बौद्ध दर्शन का मूल्यांकन**—वौद्ध-दर्शन के पर्यालोचन के अनन्तर कहा जा सकता है कि वौद्ध मत वस्तुत एक सर्वथा वौद्धिक मत है, जो कि वैज्ञानिक की सी तटस्थता एव प्रामाणिकता से युक्त हैं। इसकी स्थापना निश्चित ही पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर एव रूढियो से ऊपर उठकर की गयी है। सत्यानुसधान के प्रति गौतम का दृष्टि-कोण इतना अधिक निर्वैयक्तिक, विपय-परक, तटस्थ एव तर्क-पूर्ण है कि उन्हे यदि दार्शनिक से अधिक वैज्ञानिक कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। भले ही वे वैज्ञानिक युग मे उत्पन्न न हुए हो, किन्तु इसमे कोई सदेह नही कि उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा, तटस्थ बुद्धि एवं सूक्ष्म चिन्तना के वल पर परम्परागत दर्शन, धर्म, नीतिशास्त्र एव मनोविज्ञान की धारणाओ को सशोधित एव परिवर्तित करके उन्हे एक शुद्ध वैज्ञानिक रूप प्रदान करने का सफल प्रयास किया। यही कारण है कि उनकी आधारभूत धार-णाएँ अपने शुद्ध एव व्यापक रूप मे आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी खरी सिद्ध होती है। इतना ही नही, जैसा कि डा० राधाकृष्णन् ने प्रतिपादित किया है, वह वर्तमान काल की क्रियात्मक माँगो की पूर्ति के लिए सर्वथा अनुकूल है तथा आज धार्मिक विश्वास और भौतिक विज्ञान के मध्य जो विरोध प्रतीत होता है उसे दूर

करके, उनमे परस्पर समन्वय स्थापित करता है।[८] ऐसी स्थिति मे यदि वह आज के जागरूक साहित्यकारो को—जिनमे महादेवी अग्रणी है—प्रभावित करे तो इसमे आश्चर्य ही क्या !

(ख) अद्वैत दर्शन

भारतीय चिन्तन की जो परपरा वेदो से प्रवर्तित होकर उपनिपदो, ब्रह्म सूत्रों एव गीता में होती हुई आधुनिक युग तक पहुँची, उसकी सर्वोत्तम उपलब्धि अद्वैतवाद है। अद्वैतवादी विचार-धारा का प्रतिपादन उपनिपदों (कठ, केन, मुडक, वृहदारण्यक आदि) मे मिलता है तथा सामूहिक रूप मे इन उपनिपदो को 'वेदान्त' भी कहा जाता है क्योकि इनकी रचना वेदो के अन्तिम भाग मे हुई या इनमे वैदिक तत्त्वो का विकास अपने चरम या अन्तिम रूप मे उपलब्ध होता है। यद्यपि उपनिपदों मे दार्शनिक तत्त्वों की विवेचना इतने सूक्ष्म एव विकसित रूप मे की गयी है कि उनके निष्कर्ष वैदिक ऋचाओ के स्थूल मतवाद से वहुत दूर चले जाते हैं फिर भी वे वेदो के ही पोषक एवं समर्थक माने जाते है तथा उनकी गणना वैदिक साहित्य मे की जाती है। वस्तुतः वैदिक विचार-धारा का चरम विकास उपनिपदो या वेदान्त मे उपलब्ध होता है तथा वेदान्त का भी सर्वोत्कृष्ट रूप अद्वैत दर्शन है।

अद्वैत दर्शन का मूलाधार ग्रन्थ 'ब्रह्म-सूत्र' है। जैसा कि प० बलदेव उपाध्याय ने स्पष्ट किया है, उपनिपदों की विचार-धारा को सुव्यवस्थित, सुसमन्वित एव सारगर्भित रूप देने के लिए वादरायण व्यास द्वारा 'ब्रह्म-सूत्र' की रचना की गयी।[९] इसका रचना-काल अनिश्चित है पर फिर भी इसे जैन-वौद्ध मतो के प्रचलन के वाद का ही स्वीकार किया जा सकता है क्योकि इसमे इनका खडन किया गया है। कुछ विद्वान् इसे ईसा से छह शताब्दी पूर्व रचित मानते हैं, पर कदाचित् यह सूत्र-काल (ईसा पूर्व दो शताब्दी से दूसरी शती तक) की रचना है। पूरा ग्रन्थ लगभग साढ़े पाँच सौ सूत्रों का है तथा चार अध्यायो में विभक्त है। लेखक ने साख्य, वैशेषिक, जैन, विज्ञानवाद, पाशुपत, पाञ्चरात्र आदि मतो का खडन करते हुए ब्रह्म, जीव, जगत् आदि के स्वरूप की विवेचना वेदान्त की दृष्टि से की हैं। इसकी प्रतिपादन शैली इतनी सक्षिप्त एवं साकेतिक है कि उसे भाष्य या टीका के अभाव मे समझना कठिन हैं। इसीलिए विभिन्न व्याख्याताओं ने इसकी अपने-अपने ढग से व्याख्या करते हुए अपने-अपने मतो की स्थापना की है। यह विचित्र वात है कि अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि विभिन्न परस्पर-विरोधी धारणाएँ इसी ग्रन्थ पर आधारित हैं—इन सभी

८. भारतीय दर्शन ; पृ० ३१३।

९. भारतीय दर्शन-शास्त्र ; बलदेव उपाध्याय ; पृ० ३३६।

वादों के व्याख्याताओं ने 'ब्रह्म-सूत्र' की निजी दृष्टि से व्याख्या करते हुए अपने-अपने मत की पुष्टि की हैं।

'ब्रह्म-सूत्र' के अद्वैतवादी व्याख्याताओं में सर्वोच्च स्थान आचार्य शंकर (७८८-८२० ई०) का है जिन्होने अपनी टीका के द्वारा वेदान्त एव अद्वैत मत को नया जन्म दिया। यद्यपि अद्वैत दर्शन शकर की मौलिक उपलब्धि नही है, उसका सम्यक् प्रतिपादन उपनिपदो मे हो चुका था पर मध्यावधि मे जैन-बौद्ध मतो के प्रभाव के कारण वह विलुप्त प्राय. हो चुका था। स्वय हिन्दू मतावलम्बियो ने वेदो व उपनिपदों की सूक्ष्म विचार-धारा को छोडकर पुराणो के स्थूल अवतारवाद को अपना लिया था—ऐसी स्थिति मे आचार्य शकर ने सभी प्रचलित मतो का दृढता से खडन करते हुए उपनिपदों की विचार-धारा को पुन. प्रतिष्ठित किया। साथ ही उन्होने सुषुप्त भारतीय चिन्तन को एक नयी प्रेरणा, नयी स्फुर्ति एवं नयी गति प्रदान की जिससे उनके बाद मौलिक चिन्तको एव दार्शनिको की एक परपरा स्थापित हो गयी। भास्कर (१०००), रामानुज (११४०), मध्व (१२३८), निम्बार्क (१२५०), श्रीकण्ठ (१२७०), श्रीपति (१४००), बल्लभ (१४७९), विज्ञान-भिक्षु (१६००), बलदेव (१७२५) आदि आचार्यों ने 'ब्रह्म-सूत्र' को ही आधार बनाकर नये-नये दार्शनिक मतो की स्थापना की—कहने के लिए ये सब केवल व्याख्याता या टीकाकार है किन्तु वस्तुतः इनकी देन किसी मौलिक चिन्तक की देन से कम महत्त्वपूर्ण नही है। उस युग की मान्यता के अनुसार 'ब्रह्म-सूत्र' को आधार बनाना अपने मत की प्रामाणिकता के लिए आवश्यक था, कदाचित् इसीलिए इन्हे अपनी मौलिक धारणाओं को भी 'ब्रह्म-सूत्र' की टीका के माध्यम से प्रकाशित करने को विवश होना पडा। इन आचार्यों द्वारा अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि विभिन्न सिद्धान्तो की स्थापना ही इनकी मौलिकता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

अद्वैतवाद की आधारभूत धारणाएँ—'अद्वैत' (अ+द्वैत) शब्द का अर्थ है जो 'दो नही' मानता अर्थात् जो आत्मा और परमात्मा को एक ही मानता है। जहाँ अन्य विचारक परमात्मा को आत्मा से भिन्न सत्ता के रूप मे स्वीकार करते है, वहाँ अद्वैतवादी के अनुसार दोनो अभिन्न है। उनके विचार से समस्त सृष्टि में केवल एक ही सत्ता व्याप्त है जिसे 'ब्रह्म' (परमात्मा) कहा गया है। यह ब्रह्म ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का कारण है। ब्रह्म के सामान्यतः तीन लक्षण माने गये है—सत्, चित्, आनन्द अर्थात् वह सदा विद्यमान रहता है, वह चैतन्य या चेतना-शील है, तथा वह सदा आनन्दमय रहता है। ब्रह्म की दो अवस्थाएँ या उसके दो रूप भी माने गये है—निर्गुण एव सगुण। सामान्यतः ब्रह्म निर्गुण ही है किन्तु जब वह सृष्टि की रचना के लिए माया से आवृत्त हो जाता है तो वह सगुण मे परिवर्तित होता है। फिर भी निर्गुण और सगुण एक ही है। स्वर्ण का निराकार ढेर यदि निर्गुण है तो कगन के रूप

मे परिवर्तित स्वर्ण सगुण कहा जा सकता है—एक को हम 'कनक' कहते है, दूसरे को 'कंगन'। पर क्या कंगन मे कनक की सत्ता नही रहती ! वस्तुत. इसी प्रकार सगुण व्रह्म मे भी निर्गुण की सत्ता व्याप्त रहती है। सगुण एव निर्गुण का भेद केवल ऊपरी है, तात्विक दृष्टि से दोनो अभिन्न हैं।

व्रह्म जिस शक्ति से अपने सगुण रूप मे तथा जगत् के नाना जीवो के रूप मे परिवर्तित होता है, वह **माया** है। इसे परमेश्वर की वीज शक्ति भी कहा गया है। माया के अभाव मे परमेश्वर जगत् की सृष्टि में प्रवृत्त नही हो सकता। पर यह ब्रह्म से अलग भी नही है—यह उसी मे अव्यक्त या सुषुप्त रूप मे सदा विद्यमान रहती है। जिस प्रकार जादूगर के पास जादू सदैव रहता है पर वह उसका प्रयोग केवल खेल दिखाते समय ही करता है या यों कहिए कि अभिनेता के पास अभिनय-शक्ति सदा विद्यमान रहती है पर उसका उपयोग या प्रदर्शन वह अभिनय करते समय ही करता है, उसी प्रकार व्रह्म की शक्ति (माया) ब्रह्म में सदा विद्यमान रहती है।

माया के भी मुख्यतः दो कार्य माने गये है—आवरण तथा विक्षेप। आवरण के अन्तर्गत वह कार्य आता है जिससे वह व्रह्म के सत्य रूप को आच्छादित कर लेती है तथा विक्षेप के द्वारा वह सतुलन-भग करके नयी गति एव नयी इच्छा का सचार करती है। इन्ही दोनो कार्यों को हम आधुनिक विज्ञान की शव्दावली मे आकर्पण-विकर्षण की प्रक्रियाओ का नाम दे सकते हैं।

माया के स्वरूप के सम्वन्ध मे अद्वैतवादियो एव विशिष्टाद्वैतवादियो मे गहरा अन्तर है। जहाँ विशिष्टाद्वैतवादी माया को व्रह्म की शक्ति के रूप मे मान्यता देते हुए उसे सम्मानीय दृष्टि से देखते है, वहाँ अद्वैतवादी उसे मिथ्या या भ्रामक मानते है। शकराचार्य माया को ईश्वर की शक्ति मानते हुए भी उसका ईश्वर से नित्य या स्थायी सम्वन्ध नही स्वीकारते। हमारे विचार से. शकर का यह दृष्टिकोण असगत प्रतीत होता है। अग्नि को सत्य मानना और उसकी दाहक शक्ति उष्णता को असत्य घोषित करना—अपने-आप मे विरोधी मत है। यदि व्रह्म सत्य है तो उनकी शक्ति—माया—भी सत्य है, ऐसा हमे स्वीकार करना चाहिए, अन्यथा व्रह्म को अशक्त या माया से भिन्न रूप में स्वीकार करना होगा।

जगत् और जीव की सृष्टि भी व्रह्म के द्वारा माया के सहयोग से होती है। अद्वैत मतानुसार जगत् नितात असत्य पदार्थ है क्योकि यह परिवर्तनशील एवं नाशवान है। समस्त जगत् के मूल मे तो व्रह्म की ही सत्ता व्याप्त है, पर फिर भी उसके नाना रूपो या पदार्थो के रूप-भेद के कारण हम उन्हे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हुए एक भ्रामक स्थिति का बोध प्राप्त करते है। यह भ्रम वैसा ही है जैसा कि हम मिट्टी से वने हुए हाथी, घोडे, रथ आदि को इन संज्ञाओं से पुकारते हुए यह भूल जाते है कि ये सव एक ही मिट्टी के विभिन्न रूप है। जव खिलौनो का यह रूप अस्थायी है, नाश-

वान है क्योंकि कभी न कभी अन्त मे ये पुन मिट्टी मे परिणत हो जायेंगे— अत आचार्य शकर के विचार से इन रूपों की पृथकता एव सत्यता को स्वीकार करना अज्ञान का सूचक है। इस प्रकार शकर रूपो की अस्थिरता एव परिवर्तनशीलता को ही लेकर जगत् का मिथ्यात्व घोषित करते है।

जगत् की ही भाँति इसमे निवास करने वाले विभिन्न जीव भी मिथ्या है। किसी भी प्राणी के बाह्य अवयव या उसका भौतिक शरीर स्थायी नही है, केवल उसकी आत्मा ही अमर है। पर वह आत्मा भी ब्रह्म से पृथक् नही है— विभिन्न आत्माएँ केवल ब्रह्म के ही व्यक्त रूप की सूचक है। वस्तुत. समुद्र एव बूँद मे जो सम्बन्ध है वही ब्रह्म और आत्मा मे है, अत. दोनो की पृथकता को स्वीकार करना उचित नही। हमारी आत्मा एक ओर तो शरीर की चार दीवारी मे घिरी हुई होने के कारण तथा दूसरी ओर माया जन्य रूप-भेदो एव तज्जन्य अज्ञान के कारण, वह ब्रह्म से पृथकता का बोध करती है जो कि भ्रान्तिपूर्ण है। सत्य के बोध से जब व्यक्ति आत्मा और परमात्मा की एकता का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने लगता है तो वह ससार के समस्त क्लेशो से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। हमारे सभी सुख-दुःख अज्ञान मूलक है, सच्चे ज्ञान का उदय होते ही उनसे मुक्त होकर जीव आनन्दानुभूति प्राप्त करने लगता है। इसी अवस्था को प्राप्त व्यक्ति अद्वैतवादियो की शब्दावली मे 'जीवन्मुक्त' कहलाता है।

अस्तु, जीव और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा की उस ऐक्य अनुभूति को चाहे वह इस जीवन मे प्राप्त हो या मृत्यु के अनन्तर, और चाहे वह ज्ञान द्वारा प्राप्त हो या किसी अन्य साधन के द्वारा 'मुक्ति' या 'मोक्ष' कहलाती है। अद्वैतवादियो के अनुसार व्यक्ति की साधना का चरम लक्ष्य इसी आनन्दमयी मुक्ति या मोक्ष की स्थायी उपलब्धि करना है।

इस प्रकार अद्वैतवाद की विचार-धारा का निचोड 'अह ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूँ) या 'तत्त्वमसि' (तुम वही ब्रह्म हो) मे निहित है। जब कोई साधक इसकी वास्तविक अनुभूति प्राप्त कर लेता है तो उसे सफल कहा जा सकता है।

मूल्यांकन—यद्यपि अद्वैत दर्शन की आधारभूत धारणाएँ इतनी सूक्ष्म एव आदर्शपूर्ण है कि उन्हे व्यावहारिकता के स्तर पर रखकर समझना-समझाना कठिन है तथा आज के भौतिक युग मे वे मिथ्या कल्पना सदृश प्रतीत होती है किन्तु वस्तुत ऐसा नही है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो वह आधुनिक विज्ञान के सर्व मान्य निष्कर्षों के अनुकूल सिद्ध होगा। आज का भौतिक विज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि समस्त ससार द्रव्य (मैटर) एव शक्ति (एनर्जी) का पुज-मात्र है। द्रव्य और शक्ति भी मूलत एक है क्योंकि दोनो का एक दूसरे मे परिवर्तन होता रहता है। ससार मे व्याप्त शक्ति अजर, अमर एव अक्षय है—शक्ति की कुल मात्रा को कोई भी घटा-बढा नही सकता। जिसे हम शक्ति का उत्पादन कहते है, वह वस्तुत या तो द्रव्य का शक्ति मे रूपान्तरण

मात्र है या फिर शक्ति की ही एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे परिणति है। शक्ति सक्रिय एव निष्क्रिय—दो अवस्थाओ मे विद्यमान रहती है। जव वाह्य एव आन्तरिक कारणो से शक्ति जाग्रत होकर कार्य करती है तो उसकी सदा दो प्रक्रियाएँ होती है—आकर्पण एव विकर्पण। इस प्रकार समस्त ससार शक्ति के ही क्रिया-व्यापारो से चालित है तथा उसी के विभिन्न स्थूल-सूक्ष्म रूपो के रूप मे अवस्थित है। विज्ञान के ये निष्कर्ष अद्वैतवाद के समानान्तर इस प्रकार रखे जा सकते है—

- अद्वैत = समस्त विश्व मे एक ही तत्त्व या सत्ता का अस्तित्व, विज्ञान के अनुसार भी समस्त विश्व मे व्याप्त द्रव्य एव शक्ति की मूलभूत एकता।
- ब्रह्म = विश्व मे व्याप्त आधारभूत कुल शक्ति का योग जो शाश्वत या अमर है।
- जीव = विश्व मे व्याप्त शक्ति का एक अश।
- जगत् = शक्ति का वह रूप जो द्रव्य मे परिवर्तित हो जाता है।
- माया = शक्ति का जाग्रत एव सक्रिय रूप। इसे आकर्पण एव विकर्पण की प्रक्रियाओ का भी नाम दिया जा सकता है।

माया या आकर्षण-विकर्षण की शक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियो एव क्रिया-पद्धतियो को हमने विस्तार से 'साहित्य-विज्ञान' मे आकर्षण-शक्ति सिद्धान्त के अन्तर्गत स्पष्ट किया है, अत यहाँ उसका पुनर्विवेचन अनपेक्षित है।

अस्तु, सिद्धान्त के स्तर पर अद्वैत दर्शन वैज्ञानिक मत है, यह दूसरी बात है कि व्यावहारिक दृष्टि से उसे ग्रहण कर पाना सव के लिए सभव नही। यह जानते हुए भी कि वेसन की रोटी, लड्डू, पकौडे इन सव के मूल मे चने के आटे की ही करामात है—चना ही इनका आधारभूत पदार्थ है, हम इन पदार्थो के स्थान पर केवल चने नही चवा सकते। ब्रह्म रूपी कलाकार ने अपनी कला (माया) के द्वारा जिस रग-विरगी सृष्टि की अभिव्यजना की है, उसके आकर्षण से मुक्त होने का प्रयास करना स्वय कलाकार की कला को चुनौती देना है। फिर मूलभूत तत्त्वो एव उनके कलात्मक रूपो—दोनो को एक जैसा ही मान लेना भी उचित प्रतीत नही होता। अस्तु, अद्वैत-वाद की धारणाएँ इतनी असाधारण एव असामान्य है कि उन्हे ज्यो की-त्यो अपना लेना किसी भी साधारण एव सामान्य व्यक्ति के लिए संभव नही। फिर भी कवीर से लेकर महादेवी तक—अनेक साधको ने इसकी अनुभूति प्राप्त की है, वह सचमुच मे इनकी असाधारणता या महानता का प्रमाण है।

महादेवी पर प्रभाव—महादेवी के व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन एव काव्य पर वौद्ध दर्शन एवं अद्वैत दर्शन—दोनो का गहरा प्रभाव है, इस तथ्य की पुष्टि स्वय कवयित्री की स्वीकृतियो एव उनकी काव्य-रचनाओ से भली-भाँति होती है। वौद्ध मत का प्रभाव

उनकी दुःख सम्बन्धी धारणाओं एवं अनुभूतियों पर तथा अद्वैत मत का प्रभाव उनकी रहस्यानुभूति पर विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है ; अतः इस दार्शनिक पृष्ठभूमि का सम्यक् उपयोग आगे उनके दर्शन, जीवन-दर्शन, रहस्यवाद, दुःखवाद आदि की विवेचना करते समय किया जायगा। अन्यत्र भी, जहाँ-जहाँ इन मतों का प्रभाव दृष्टिगोचर होगा उसका संकेत किया जायगा, अतः यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ और कहना अनावश्यक प्रतीत होता है।

४

महादेवी की दार्शनिक मान्यताएँ

'कवि में दार्शनिक को खोजना बहुत साधारण हो गया है, जहाँ तक सत्य के मूल रूप का सम्बन्ध है वे दोनों एक दूसरे के अधिक निकट हैं अवश्य, पर साधन और प्रयोग की दृष्टि से उनका एक होना सहज नहीं।... कवि का वेदान्त ज्ञान, जब अनुभूतियों से रूप, कल्पना से रंग और भाव-जगत् से सौन्दर्य पाकर साकार होता है तब उसके सत्य में जीवन का स्पन्दन रहेगा, बुद्धि की तर्क शृंखला नहीं। ऐसी स्थिति में उसका पूर्ण परिचय न अद्वैत दे सकेगा और न विशिष्टाद्वैत!' —महादेवी

विभिन्न दार्शनिक विचार-धाराओ को मूलत. दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) अध्यात्मवादी और (२) भौतिकतावादी। अध्यात्मवादी विचार-धारा सृष्टि के मूल मे किसी सूक्ष्म, अगोचर सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करती हुई उसी को अंतिम सत्य के रूप मे मान्यता देती है जब कि भौतिकतावादी विचार-धारा के अनुसार यह भौतिक जगत् या जड़ प्रकृति ही सब कुछ है। वही इस सृष्टि की मूलाधार है, उससे परे कोई और सत्ता नही। वह किसी सूक्ष्म सत्ता (जिसे ब्रह्म, परमेश्वर, परमात्मा आदि नामो से पुकारा जाता है) का अस्तित्व् स्वीकार नही करती। जैसा कि पीछे दार्शनिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए बताया गया था, महादेवी की विचार-धारा अध्यात्मपरक है—वे आध्यात्मिकता या आत्मा-परमात्मा की सूक्ष्म सत्ता मे पूर्ण विश्वास करती है। वैसे आज के भौतिकतावादी वैज्ञानिक युग में अध्यात्म मे आस्था रखना कुछ लोगो को अस्वाभाविक प्रतीत हो सकता है तथा इसीलिए वे महादेवी की आध्यात्मिकता पर भी भौतिकता का आरोपण करने का यत्न करते है किन्तु ऐसा करके वे कवयित्री के साथ कहाँ तक न्याय करते है—यह सोचने की बात है। यदि हमारा लक्ष्य निजी पूर्वाग्रहो को बलात् आरोपित कर देने के स्थान पर तथ्यो और प्रमाणो के

आधार पर महादेवी के काव्य की प्रामाणिक व्याख्या करने का हो तो हमें अपने पूर्वाग्रहों को भूलकर स्वयं कवयित्री की तत्सम्बन्धी विचार-धारा का अवगाहन करना होगा। स्वयं महादेवी ने भी आधुनिक काव्य की भूमिका में स्पष्ट किया है कि वे आज के वैज्ञानिक युग में भी अध्यात्म को आवश्यक मानती हैं। वस्तुतः अध्यात्म एवं विज्ञान—दोनों जीवन के दो पक्ष हैं जो एक-दूसरे के पूरक हैं अतः जीवन के स्वस्थ एवं संतुलित विकास के लिए दोनों का समन्वय आवश्यक है। "अध्यात्म का जैसा विकास पिछले युगों में हो चुका है, विज्ञान का वैसा ही विकास आधुनिक युग में हो रहा है—एक जिस प्रकार मनुष्यता को नष्ट कर रहा है दूसरा उसी प्रकार मनुष्य को। परन्तु हम हृदय से जानते हैं कि अध्यात्म के सूक्ष्म और विज्ञान के स्थूल का समन्वय जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने में भी प्रयुक्त हो सकता है।"

कुछ लोगों को यह भी भ्रान्ति है कि कविता और अध्यात्म—दो परस्पर विरोधी विषय हैं, अतः एक में दूसरे को स्थान देना उचित नहीं। पर महादेवी ऐसा नहीं मानती। वे लिखती हैं—"कविता के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि उचित है या नहीं इसका निर्णय व्यक्तिगत चेतना ही कर सकेगी। जो कुछ स्थूल, व्यक्त, प्रत्यक्ष और यथार्थ नहीं है, यदि केवल वही अध्यात्म से अभिप्रेत है तो हमें यह सौन्दर्य, शील, शक्ति, प्रेम आदि की सभी सूक्ष्म भावनाओं में फैला हुआ, अनेक अव्यक्त सत्य सम्बन्धी धारणाओं में अंकुरित, इन्द्रियानुभूत प्रत्यक्ष की अपूर्णता से उत्पन्न उसी की परोक्ष-रूप भावना में छिपा हुआ और अपनी ऊर्ध्वगामी प्रवृत्तियों में निर्गत विश्व-बन्धुता, मानव-धर्म आदि के ऊँचे आदर्शों में अनुप्राणित मिलेगा।"[1] इस प्रकार कवयित्री ने अध्यात्म को लौकिकता से दूर की वस्तु नहीं माना है अपितु वे इसे जीवन की व्यापक एवं उदात्त भावनाओं के मूल स्रोत के रूप में स्वीकार करती हैं; ऐसी स्थिति में अध्यात्म का न जीवन से विरोध हो सकता है और न ही काव्य से। जो लोग एकांगी एवं एकपक्षीय दृष्टि से ही देखने-सोचने के अभ्यस्त हैं वे भले ही इस तथ्य को हृदयंगम न कर पायें किन्तु महादेवी की समन्वय मूलक व्यापक दृष्टि के लिए तो यह सर्वथा सहज एवं स्वाभाविक है।

अध्यात्मवादी विचार-धारा भी विभिन्न मत-सम्प्रदायों की सीमाओं में बँधकर अनेक वादों में बँट जाती है। सूक्ष्म सत्ता (परमात्मा) के अस्तित्व में तो सभी अध्यात्मवादी विश्वास करते है किन्तु कुछ उन्हें निर्गुण रूप में मानते हैं तो कुछ सगुण। इसी प्रकार सूक्ष्म सत्ता भौतिक जगत् एवं उसके प्राणियों से भिन्न है या अभिन्न? उसका सम्बन्ध जगत् से किस प्रकार का है? आदि प्रश्नों के भी अलग-अलग संप्रदाय अलग-अलग उत्तर देते हैं। महादेवी विभिन्न संप्रदायों की इन साप्रदायिक सीमाओं को बहुत

---

१. 'आधुनिक काव्य' (महादेवी) की भूमिका; पृ० १७-१८।

महत्त्व नही देतीं, इतना ही नही वे इन्हे जीवन और काव्य के लिए अनावश्यक और अनुपयोगी भी मानती है। उनके शब्दो मे कहा जा सकता है—"यदि परपरागत धार्मिक रूढियों को हम अध्यात्म की सज्ञा देते है तो उस रूप मे काव्य मे उसका महत्त्व नही रहता।" वस्तुतः महादेवी की दार्शनिक विचार-धारा धार्मिक रूढियो एव साप्रदायिक सकीर्णताओं से मुक्त है—इसीलिए उस पर किसी एक सप्रदाय का लेविल लगाना संभव नही, यह दूसरी बात है कि उनकी विचार-धारा का विकास बहुत-कुछ बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त के आधार पर होने के कारण उनके समन्वित रूप की उसमे प्रमुखता है।

● ब्रह्म—सभी अध्यात्मवादी विचारक सृष्टि के मूल रचयिता एवं उसके अन्तिम सत्य के रूप में एक ऐसी सूक्ष्म, अदृश्य, अगोचर सर्वत्र व्याप्त एव शाश्वत सत्ता की कल्पना करते है जिसे परम शक्ति, परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वर आदि नामो से पुकारा गया है। भारतीय उपनिपदो मे इसे प्रायः 'ब्रह्म' या परमेश्वर की सज्ञा दी गयी हैं। महादेवी की भी ब्रह्म सम्वन्धी धारणा वहुत-कुछ उपनिषदो से प्रभावित है। उपनिषदो के अनुसार ब्रह्म को ज्ञानेन्द्रियो द्वारा जाना नही जा सकता, कर्मेन्द्रियो द्वारा छुआ नही जा सकता। वे अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक एव अविनाशी है। ससार के समस्त प्राणियो का उद्भव उनसे ही हुआ तथा अन्त मे वे इनमे ही लीन हो जाते है। वस्तुत. ब्रह्म की दो स्थितियाँ या अवस्थाएँ मानी जा सकती है—एक अव्यक्त रूप मे और दूसरी व्यक्त रूप मे। जिस प्रकार जल वाष्प मे और वाष्प जल मे परिवर्तित होता रहता है उसी प्रकार अव्यक्त ब्रह्म सृष्टि के विभिन्न पदार्थो के रूप मे तथा सृष्टि के विभिन्न पदार्थ ब्रह्म के रूप मे परिणत होते रहते हैं। यह सृष्टि ब्रह्म का व्यक्त रूप है। नाना पदार्थो, प्राणियो एव व्यक्तियो के रूप मे ब्रह्म विभिन्न रूपाकार भले ही धारण करता रहे किन्तु अन्तत उसकी सत्ता सदा विद्यमान रहती है, उसकी शक्ति कभी भी क्षीण नही होती—इसीलिए वही समस्त ससार मे अन्तिम सत्य है।

महादेवी ने ब्रह्म के उपर्युक्त स्वरूप के प्रति पूर्ण आस्था प्रकट की हैं। उन्होने ब्रह्म या परमेश्वर के अस्तित्व के प्रति अपना पूर्ण विश्वास व्यक्त करते हुए कहा है:

> छिपा है जननी का अस्तित्व,
> रुदन में शिशु के अर्थ-विहीन।
> मिलेगा चित्रकार का ज्ञान,
> चित्र की जड़ता में लीन।

प्राय. भारतीय दर्शन मे परमात्मा के अस्तित्व के सम्वन्ध में सवसे वडा तर्क यही दिया जाता है कि जव सृष्टि है तो उसका कोई न कोई स्रष्टा भी होना चाहिए। इसी तर्क को यहाँ कवयित्री ने अपनी काव्यमय शैली मे प्रस्तुत किया है।

ब्रह्म ही सृष्टि के आदि कारण है तथा अन्त मे सृष्टि उन्ही मे विलीन हो जाती है; इस मत को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा है :

'तुम्ही में सृष्टि तुम्ही में नाश ।'

ब्रह्म और सृष्टि के सम्बन्धो की व्याख्या करते हुए मुडकोपनिषद्' मे तीन दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये है । एक दृष्टान्त मकडी का है; जिस प्रकार मकडी जाले को अपने आप मे से उत्पन्न करती है तथा उसे अन्त मे पुनः निगल लेती है उसी प्रकार ब्रह्म से सृष्टि का सृजन एव लय होता है । दूसरा दृष्टान्त वनस्पतियो का है; जिस प्रकार बीजो से स्वभावत पेड-पौधे उत्पन्न होते हैं, उसी एकार सृष्टि ब्रह्म से उत्पन्न होती है । तीसरा दृष्टान्त केशो और रोमो का है । जिस प्रकार शरीर पर अनायास ही केश और रोएँ उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही बिना किसी आयास के ब्रह्म से सृष्टि उत्पन्न हो जाती है । महादेवी ने भी अनेक स्थलो पर इन दृष्टान्तो का आश्रय लिया है । वे भी ब्रह्म और सृष्टि के सम्बन्धो की व्याख्या करती हुई मकड़ी और उसके जाले का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं .

स्वर्ण-लूता सी कब सुकुमार,
हुई जिसमें इच्छा साकार !
उगल जिसने तिनरंगे तार,
बुन लिया अपना ही संसार !

उपनिषदो मे ब्रह्म और सृष्टि के नाना जीवो का सम्बन्ध समुद्र और उसमे उत्पन्न होने वाले बुलबुलो के समान भी बताया गया है, महादेवी ने लिखा है :

'बुलबुले मृदु उर के से भाव
रश्मियों से कर-कर अपनाव,
यथा हो जाते जलमय प्राण—
उसी में आदि वही अवसान !

इस प्रकार सृष्टि का आदि और अवसान ब्रह्म मे ही निहित है—इस विचार को कवयित्री ने भली-भाँति आत्मसात् करते हुए इसे रग-बिरगी कल्पनाओ की सहायता से व्यक्त किया है ।

उपनिषदो में ब्रह्म के स्वरूप की मीमांसा करते हुए उसके दो रूपो—सगुण एव निर्गुण की भी चर्चा की गयी है । इस सगुण एव निर्गुण के भेद को लेकर ही आगे चलकर भारतीय दर्शन अनेक धाराओ मे विभक्त हो गया । विभिन्न वैष्णव संप्रदायो मे ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकार करते हुए जगत् की उससे पृथकता एवं अवतार

सम्वन्धी विचारो को मान्यता दी गयी है। महादेवी की विचार-धारा मूलत· अद्वैतवाद पर आश्रित है, इससे उन्हे निर्गुण की ही आराधिका मानना चाहिए, पर उनमे किसी प्रकार की कट्टरवादिता नही है। उन्होने यहाँ भी अपनी व्यापक एव समन्वयशील दृष्टि का परिचय देते हुए निर्गुण एव सगुण के भेद को गौण सिद्ध कर दिया है। प्रियतम के रूप में उनका निर्गुण ब्रह्म उन सभी गुणो से विभूपित हो जाता है जो कि सगुण और साकार से सम्वद्ध माने जाते है; यथा—

उनमें अनन्त करुणा है,
इसमें असीम सूना पन !

× × ×

करुणामय को भाता है,
तम के परदों में आना !

× × ×

गई वह अधरों की मुसकान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर !

यहाँ क्रमश. प्रियतम् ब्रह्म पर 'करुणामय' जैसे सूक्ष्म गुणो का तथा 'परदो मे आना' 'अधरो से मुस्कुराना' जैसे स्थूल क्रिया-व्यापारो का भी आरोपण किया गया है। वस्तुतः सगुण ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म का ही व्यक्त रूप है—अतः दोनो में भेद करना आवश्यक भी नही है। द्वैतवादियो की यह मान्यता कि परमेश्वर जगत् से भिन्न है, कवयित्री को अवश्य अस्वीकार्य है, वे तो प्रकृति के कण-कण मे तथा हृदय के प्रत्येक स्पन्दन मे उसकी सत्ता का प्रत्यक्षीकरण करती है। इसीलिए वे प्रकृति के माध्यम से ही उसकी क्रीड़ाओ का अवलोकन करती है :

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते।
मैं पथ में बिछ जाती हूँ,
वे सौरभ में उड जाते !

उपर्युक्त दृष्टि से दर्शन-शास्त्र की शब्दावली मे कवयित्री को सर्वात्मवादी भी कहा जा सकता है—यह दूसरी वात है कि उनकी व्यापक चेतना एव उदार दृष्टि को वादो का यह बन्धन रुचिकर प्रतीत न होगा।

● **सृष्टि**—वेदान्त के अनुसार सृष्टि ब्रह्म से भिन्न नही है, उसी की अभिव्यक्ति है, अतः उसकी थोड़ी चर्चा पीछे ब्रह्म के प्रसग मे हो चुकी है। सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए 'ऐतरेयोपनिषद्' (खड-१) में वताया गया है कि

उस समय सर्वत्र केवल परमात्मा (ब्रह्म) ही व्याप्त थे। 'उस समय भिन्न-भिन्न नाम रूपों की अभिव्यक्ति नही थी। उस सयय परब्रह्म परमात्मा के सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करने वाला नही था। सृष्टि के आदि में उन परम पुरुष परमात्मा ने विचार किया कि मैं लोकों का सृजन करूँ।' इसके अनन्तर बताया गया है किस प्रकार क्रमशः विभिन्न लोकों, सूर्य, चाँद आदि नक्षत्रों एवं ग्रहों, तथा स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थों की उत्पत्ति हुई। अन्त में जब ब्रह्म ने सोचा कि मनुष्य रूपी पुरुष मेरे बिना कैसे रहेगा तो वे स्वय भी इसके शरीर को चीरकर उसमें प्रविष्ट हो गये! महादेवी ने भी इसी विचार-धारा को अधिक विकसित एवं पल्लवित रूप मे प्रस्तुत करते हुए सृष्टि के उद्‌भव की व्याख्या अनेक कविताओं मे की हैं :

न थे जब परिवर्तन दिन-रात,
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात!
व्याप्त क्या सूने में सब ओर,
एक कम्पन थी एक हिलोर!

या

हुआ त्यों सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण!

जड सृष्टि का निर्माण करके चेतना के रूप मे संयुक्त होकर स्वय ब्रह्म भी इस भौतिक संसार में प्रविष्ट एवं व्याप्त होकर 'बंदी हो गये!' देखिये—

मृत्यु का प्रस्तर सा उर चीर,
प्रवाहित होता जीवन-नीर,
चेतना से जड़ का बन्धन,
यही सृष्टि का हृत्कम्पन!

विविध रङ्गों के मुकुर सँवार,
जड़ा जिसने यह कारागार,
बना क्या बन्दी वही अपार,
अखिल प्रतिबिम्बों का आधार!

सामान्यतः अद्वैतवादी चिन्तको ने जगत् को माया का बन्धन बताते हुए उसे जीव का कारागार सिद्ध किया है, पर महादेवी ने यहाँ एक नयी बात कही है : वह

जगत् के प्राणियों के लिए ही नही स्वयं परमात्मा के लिए भी तो कारागार है ! दूसरे शब्दो—स्वयं परमात्मा भी जगत् के रंग-विरंगे चेतन पदार्थो मे विद्यमान है, अतः वे उससे भिन्न नही हैं।

● **जीवात्मा**—आत्मा परमात्मा का ही एक अश या उसी का व्यक्त रूप है, अतः वह मूलत उससे भिन्न या पृथक् नही है पर सांसारिक क्षेत्र मे जव वह शारीरिक वन्धनो में वँधे हुए एक जीव या प्राणधारी के रूप मे विचरण करती है तो वह परमात्मा से अपनी सामयिक पृथकता या दूरी का अनुभव अवश्य करती है। जिस प्रकार सर्प की पूँछ, सर्प से अभिन्न होती हुई भी उससे कटकर तिलमिलाती रहती है, उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा से वियुक्त होकर विरह-वेदना का अनुभव अवश्य करती हैं। पर फिर भी मूलतः आत्मा और परमात्मा एक हैं—इस विचार को महादेवी ने अनेक प्रकार से स्पष्ट किया है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है

चित्रित तू मै हूँ रेखा-क्रम
मधुर राग तू मै स्वर-संगम !
तू असीम मै सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ! —आ० क० ५७

यहाँ आत्मा और परमात्मा की एकता स्पष्ट है, उन दोनो के सम्बन्ध की घनिष्ठता भलीभाँति प्रमाणित है, पर फिर भी यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो दोनो मे शक्ति की मात्रा एव स्थिति के बोध का अन्तर अवश्य दृष्टिगोचर होगा ! पूरे चित्र मे एक विन्दु की क्या सत्ता है ? मधुर रागिनी मे किसी एक स्वर का कितना महत्त्व है ? काया और छाया मे से कौन मूल है और कौन उसकी अनुकृति मात्र ? यदि इन प्रश्नो पर विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि आत्मा और परमात्मा मे मौलिक एकता के होते हुए भी उनकी शक्ति की मात्रा, विस्तार की सीमा एव स्थिति की सापेक्षता मे अन्तर अवश्य है। अपनी सीमाओ के भ्रम से ग्रस्त आत्मा असीम परमात्मा से पूर्णतः समान कैसे कही जा सकती है ! ऐसी स्थिति मे आत्मा को अपनी ससीमता, लघुता एव क्षुद्रता का वोध हो तो स्वाभाविक है :

सिन्धु को क्या परिचय दे देव,
विगड़ते वनते वीचि-विलास !
क्षुद्र हैं मेरे बुद-बुद प्राण !
तुम्हीं में सृष्टि, तुम्हीं में नाश !

इसीलिए महादेवी ने अद्वैतवादियो की भाँति सदा आत्मा और परमात्मा की

पूर्ण समानता, अखंड एकता एवं शाश्वत अभिन्नता की बात नहीं कही, वे दूसरे पक्ष को भी—भले ही वह पक्ष शाश्वत न होकर सामयिक ही हो—स्वीकार करती हैं :

मैं तुमसे हूँ एक, एक है
जैसे रश्मि प्रकाश !
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित विलास !

कहा जा सकता है कि यहाँ कवयित्री अभिधा मे जिसे भिन्नता बता रही है, व्यंजना से वह मौलिक एकता की ही सूचक है। यह ठीक है, पर फिर भी जिस प्रकार बादलो से फूटने वाली बिजली बादलों से गहरा सम्बन्ध रखती हुई भी बादल नही कही जा सकती, उसी प्रकार परमात्मा से ही क्षरित आत्मा वर्तमान स्थिति मे पूर्णतः परमात्मा नही है, अन्यथा उसे उस लघुता एवं असहाय अवस्था का बोध नही होता जिसका चित्रण कवयित्री ने किया है :

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूंजती टकराती असहाय,
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार !

यहाँ परमात्मा और आत्मा की स्थिति वारिदघोष एवं उसकी प्रतिध्वनि के समकक्ष बतायी गयी है। प्रतिध्वनि की सुकुमारता एव असहाय अवस्था उसकी सामयिक दैन्यता की व्यजक है।

आत्मा और परमात्मा का यह पार्थक्य केवल एक ही जन्म तक ही रहे—ऐसी बात नहीं है। संभव है सृष्टि के आदिकाल से लेकर अब तक आत्मा विभिन्न जन्मों में भाँति-भाँति के रूप धारण करती हुई भटकती चली आ रही हो तथा परमात्मा से मिलने के लिए—उससे तादात्म्य स्थापित करने के लिए तडफती रही हो ; आत्मा और परमात्मा के इसी जन्म-जन्मान्तरों के सम्बन्ध का चित्रण कवयित्री ने इस प्रकार किया है :

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
× × ×
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ !
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ !

इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की सनातन एकता के साथ-साथ उसकी सामयिक द्वैतता को कवयित्री ने स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया है, इस द्वैत स्थिति को वे कोरे अज्ञान पर आधारित या भ्रान्ति मात्र नही मानती अपितु उसे अनुभूति रूप मे प्रस्तुत करती हुई, अप्रत्यक्ष में उसे प्रामाणिक सिद्ध करती है। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि कवयित्री की दार्शनिक चेतना सचमुच ही अद्वैतवाद एवं द्वैतवाद की संकीर्ण सीमाओ में आवद्ध नही है ; अपितु वह अपनी भाव-धारा के आवेग एव अनुभूति के प्रवाह मे इन सीमाओं को इस प्रकार वहा ले जाती है कि जिससे इनका पार्थक्य समाप्त सा हो जाता है।

● माया—अद्वैत दर्शन के अनुसार परमेश्वर की मूल शक्ति 'माया' है जिसके द्वारा वह जगत् की सृष्टि करता है। जगत् के नाना रूप-भेद माया की ही देन है, तथा इसी के कारण जीवात्मा परमात्मा से अपनी पृथकता का बोध करता है। इस दृष्टि से माया को अविद्या या अज्ञान भी कहा गया है। महादेवी ने भी माया सम्बन्धी इन धारणाओ को स्वीकार करते हुए लिखा है :

> सखे ! यह है माया का देश
> क्षणिक है मेरा तेरा संग,
> यहाँ मिलता काँटों में वन्धु
> सजीला-सा फूलों का रंग !

माया के वन्धन के कारण ही जीव इस अस्थिर एवं नाशवान ससार के स्वप्न जाल मे फँसकर अपने मूल स्वरूप को भूल जाता है :

> अपने जर्जर अंचल में
> भरकर सपनों की माया,
> इन थके हुए प्राणों पर
> छाइ विस्मृति की छाया।

अद्वैतवादियो ने माया की दो शक्तियाँ मानी हैं—आवरण और विक्षेप। आवरण के कारण ही ब्रह्म अपने वास्तविक स्वरूप को जगत् मे विलीन करके जीवात्मा की आँखों से ओझल हो जाता है तो दूसरी ओर विक्षेप शक्ति के कारण जीवात्मा अपने को ब्रह्म से पृथक् अनुभव करता हुआ सांसारिक पदार्थों के आकर्षण मे बँध जाता है—जीव और ब्रह्म के वीच विक्षेप उपस्थित हो जाता है। इस पृथकता के वोध के कारण ही क्रमश. अह, इच्छा, राग-द्वेष, आशा-निराशा, सुख-दु.ख की उत्पत्ति होती है। दूसरे शब्दो मे व्यक्ति की दृष्टि से माया को ममता भी कहा जा सकता है। जीवात्मा जव तक इस ममता-माया के वन्धन में है तव तक ही वह राग-द्वेष एव सुख-दुःख से

ग्रस्त रहता हुआ आत्मा और परमात्मा की पृथकता का अनुभव करता है। पर माया के बन्धन से मुक्त हो जाने पर स्थिति बदल जाती है :

टूट गया वह दर्पण निर्मम
उसमें हँस दी मेरी छाया
मुझ में रो दी ममता माया
अश्रुहास ने विश्व सजाया
रहे खेलते आँख-मिचौनी।
प्रिय ! जिसके परदे में "मै" 'तुम'।

जिस प्रकार दर्पण के कारण एक ही व्यक्ति के दो रूप या उसकी दो सत्ताएँ दृष्टिगोचर होती है, उसी प्रकार माया के कारण एक ही ब्रह्म अनेक पृथक्-पृथक् जीवो के रूप मे दिखाई पडता है। इस माया रूपी दर्पण के कारण ही आत्मा और परमात्मा के बीच पृथकता का भेद उत्पन्न होता है पर उसके टूट जाने पर पुन· एकता का बोध होने लगता है।

माया को जगत् की सृष्टि का मूल कारण तथा ब्रह्म के छिपने का आवरण तथा जीवात्मा का बन्धन बताते हुए कवयित्री ने लिखा है :

टूट गया वह दर्पण निर्मम।
× × ×
अपने दो आकार बनाने,
दोनों का अभिसार दिखाने
भूलों का संसार बसाने
जो झिलमिल झिलमिल सा तुमने
हँस-हँस दे डाला था निरुम !

और × × ×

आज कहाँ मेरा अपनापन
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझ में अपना सुख देखो
मै तुम में अपना दुख प्रियतम !

जीवात्मा के दु ख का मूल कारण यह ममता रूपी माया का बन्धन ही है। माया ही वह सासारिक आकर्षण है जिससे आकर्षित एव लुब्ध होकर हम भाँति-भाँति की इच्छाओं, भावनाओ एव आशाओ के भ्रम-जाल मे फँसे हुए चक्कर काटते रहते

हैं। माया के ही कारण विप रूपी अयथार्थ ससार को यथार्थ एव अमृत मानने की भूल करते हैं—

> तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
> हँसा जाती है तुमको आश,
> नचाता मायावी संसार
> लुभा जाता सपनों का हास
> मानते विष को संजीवन
> मुग्ध मेरे भूले जीवन !

इस प्रकार कवयित्री माया के प्राय उन सभी पक्षो एव रूपो को स्वीकार करती हैं जिनकी चर्चा अद्वैत-दर्शन मे की गयी हैं। फिर भी वे उसे अलौकिकता से मुक्त करके लौकिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कर देने का प्रयास अवश्य करती हैं। वे उसे ममता, मोह या अह के रूप मे चित्रित करती हुई एक ऐसा रूप दे देती हैं जो कि आधुनिक पाठक की भी समझ मे आ सके। कदाचित् उनकी दृष्टि मे माया एक मानसिक स्थिति मात्र है, जिसमे हम अपने अह या ममत्व से अभिभूत रहते है; जव सत्य के वोध से हम इस अह से मुक्त हो जाते है तो वही माया के वन्धन से मुक्ति की स्थिति हैं। इसी से उन्होने अद्वैतवादियो की भाँति माया की तीव्र निन्दा या भर्त्सना नही की है—केवल उसके प्रभाव का ही अकन किया हैं। अत. कहा जा सकता है कि उन्होंने 'माया' सम्वन्धी विचार का मनोविज्ञानीकरण या आधुनिकीकरण किया हैं जिससे वह अधिक तर्क-सगत एव वोध-गम्य हो गया है।

● **मुक्ति**—अध्यात्मवादी विचारक मृत्यु के अनन्तर भी आत्मा या व्यक्ति के सूक्ष्म व्यक्तित्व की सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार करते है—पर इसकी स्वीकृति के कई रूप है। अध्यात्मवादियो का एक वर्ग जो कि स्वर्ग-नरक की धारणा मे विश्वास करता है, यह मानता है कि जीवात्मा अपने सुकर्मो या पुण्यो के फल से इस लोक से परे किसी अन्य लोक—दिव्यलोक या स्वर्ग लोक—मे पहुँचकर अपार सुख का उपयोग करती है जवकि पापी लोगो की आत्मा नरक मे जाकर भाँति-भाँति के कष्टो का भोग करती है। दूसरा वर्ग, पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार यह मानता है कि भिन्न-भिन्न आत्माएँ अपने-अपने कर्मो के अनुसार इसी लोक मे विभिन्न योनियो या जीवो के रूप मे पुन. जन्म धारण कर के सुख या दु.ख भोगती है। तीसरे वर्ग के अनुसार आत्मा परमात्मा के चरणो के समीप पहुँच कर उनके सामीप्य का आनन्द प्राप्त करती है। ये सव धारणाएँ मुख्यतः द्वैतवादियो की है—अद्वैतवादी मृत्यु के अनन्तर मुख्यत दो स्थितियाँ ही स्वीकार करते है; एक—पुन जन्म धारण करना, दूसरी—परमात्मा मे मिलकर एक हो जाना। यह दूसरी स्थिति ही अद्वैतवादियो के

द्वारा काम्य है जिसे 'मोक्ष' या 'मुक्ति' भी कहा गया है। ससार मे बार-बार जन्म धारण करने के चक्कर तथा अह और ममता के बन्धनो से मुक्ति पा जाना ही मोक्ष है। वस्तुत' यह मोक्ष भी आत्मा की एक अनुभूति मात्र है, जिसे मृत्यु से पहले इस जीवन में भी प्राप्त किया जा सकता है। सात्विक ज्ञान के उदय से जब जीवात्मा माया के बन्धन—अपने-पराये की भावना तथा आत्मा की पृथकता या भिन्नता के विचार—से मुक्त होकर परमात्मा के साथ अभिन्नता या एकता की अनुभूति प्राप्त करती हुई सासारिक दु'खों से मुक्त हो जाती है तो यह भी मुक्ति का ही एक रूप है। ऐसी मुक्ति को प्राप्त करने वाला व्यक्ति 'जीवन्मुक्त' कहलाता है। ज्ञान, योग आदि के द्वारा साधक इस जीवन मे भी मुक्ति के अमृत का आस्वाद प्राप्त कर सकता है—यही अद्वैत-वेदान्त का मानवता के लिए सबसे बडा सदेश है।

महादेवी ने भी इस मुक्ति को स्वीकार किया है—पर वे इसे 'मुक्ति नाम से नहीं पुकारती। प्राय. उन्होने इसे 'निर्वाण' की सज्ञा दी है। ध्यान रहे, यह 'निर्वाण' शब्द बौद्ध दर्शन से लिया हुआ है क्योकि वहाँ मुक्ति के स्थान पर 'निर्वाण' की ही चर्चा की गयी है। पर फिर भी महादेवी की तत्सम्बन्धी धारणाएँ न तो सर्वथा बौद्ध दर्शन के अनुसार है और न ही पूर्णतः अद्वैत के अनुसार, उन्होने दोनों मे समन्वय स्थापित किया है। इसका स्पष्टीकरण यहाँ कतिपय उदाहरणों से किया जाता है।

बौद्ध दर्शन मे परमात्मा एव आत्मा की सत्ताएँ स्पष्ट रूप मे स्वीकृत नहीं है, अतः वहाँ 'निर्वाण' का अर्थ व्यक्ति की चेतना का शान्त या निर्द्वन्द्व हो जाना मात्र है—जब तक व्यक्ति की चेतना अपने अविद्याजन्य विचारो एव कलुषित सस्कारो से ग्रस्त रहता है तब तक वह अशान्त, चचल एव गतिशील रहती हुई बार-बार जन्म धारण करती हुई सासारिक कष्टो को भोगती रहती है जबकि सम्यक् दृष्टि, सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् कर्म के द्वारा वह दूषित सस्कारो से मुक्त होकर एक आनन्दमयी शान्ति की स्थिति एव अनुभूति को प्राप्त कर लेती है। यही निर्वाण है। इच्छाओं से मुक्ति पाना ही सच्ची शान्ति और सच्चा निर्वाण है, भले ही वह, इस जीवन मे प्राप्त हो या जीवनोत्तर मे! इसके स्थान पर अद्वैत दर्शन मे मुक्ति का चरम लक्ष्य आत्मा और परमात्मा का स्थायी मिलन है—दोनो की एकता की अनुभूति ही मुक्ति की चरम स्थिति है। महादेवी ने भी यही कामना व्यक्त की है :

वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आकर
लौटेंगे सौ-सो निर्वाण!

जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल
देखोगे तुम देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !

यहाँ मृत्यु के अनन्तर ससीम आत्मा के असीम ब्रह्म से मेल की स्थिति की वात कही गयी है जो कि वौद्ध दर्शन के अनुकूल नही है वहाँ परमात्मा या ब्रह्म जैसी किसी सत्ता की स्वीकृति ही नही है—अतः दो सत्ताओ के मेल की वात ही नही उठती। फिर भी इस स्थिति को कवयित्री ने 'सौ-सौ निर्वाण' के सदृश बताया है जो बौद्ध प्रभाव का सूचक है।

इस प्रकार महादेवी की दार्शनिक मान्यताएँ—विशेषत· ब्रह्म, सृष्टि, जीवात्मा, माया आदि से सम्वन्धित मान्यताएँ—वहुत कुछ उपनिषदो एव अद्वैत वेदान्त-दर्शन पर आधारित है। इतना अवश्य है कि उन्होने परंपरागत दार्शनिक शब्दावली के स्थान पर सामान्य शव्दावली का प्रयोग करते हुए पुरातनता एव साप्रदायिकता से वचने का प्रयास किया है। 'आत्मा', 'मुक्ति' जैसे शब्दो के स्थान पर 'चेतना', 'निर्वाण' आदि का प्रयोग वौद्ध प्रभाव का भी सूचक है पर यह वहुत गभीर नही है। जहाँ तक आध्यात्मिक पक्ष का सम्वन्ध है, महादेवी ने बौद्ध मत की स्थापनाओ को वहुत कम स्वीकार किया है, उनका जीवन-दर्शन अवश्य ही उससे प्रभावित है, जिसकी चर्चा आगे की जायगी। अत· सक्षेप मे कहा जा सकता है कि महादेवी ने उपनिषदो के तत्त्व-चिन्तन एव अद्वैत दर्शन को भली-भाँति आत्मसात् करके उसे अनुभूतिपूर्ण आधुनिक शव्दावली मे व्यक्त किया है जिससे उसके आकर्षण में अभिवृद्धि हो गयी है।

* * *

५

महादेवी का जीवन-दर्शन

"काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क-प्रणाली है और न सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाने वाली विशेष विचार-पद्धति। वह तो जीवन को, चेतना और अनुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"

—महादेवी

जैसाकि पीछे कहा जा चुका है—महादेवी का व्यक्तित्व, जीवन एव उनका काव्य बहुत-कुछ उनकी दार्शनिक मान्यताओ पर आधारित है। उन्होंने दार्शनिक विचारो को केवल अपने मस्तिष्क का आभूषण ही नही बनाया है अपितु उन्हे अपने हृदय मे प्रतिष्ठित करते हुए आत्मानुभूति का अग बनाया है जिससे वे उनके जीवन की विभिन्न दिशाओ एव गतिविधियो के प्रेरक एव नियामक बन गये है। कदाचित् बहुत कम ऐसे साहित्यकार होगे जिन्होने अपने जीवन और काव्य को अक्षरश: अपने विचारो के अनुरूप ढाला हो, किन्तु महादेवी के लिए यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उन्होने अपनी भावना और क्रिया मे सदा अपने विचारो को ही चरितार्थ किया है। इस सम्बन्ध मे स्वय उन्होंने भी लिखा है—"इतना निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था और आगे चल कर अध्ययन और ज्ञान की परिधि के विस्तार मे भी उसे खोया नही वरन् उसमे नवीनता ही पायी।········ जीवन के ज्ञान ने मेरे भावजगत् की वेदना को गहराई और जीवन को क्रिया दी है।"[1] वस्तुतः उनके व्यक्तित्व एव कवित्व को हम जितनी ही अधिक निकटता से देखते है

१. 'आधुनिक काव्य' भूमिका ; पृ० ३६।

उतने ही हम इस तथ्य को अधिक गहराई से हृदयगम करते है कि उनका जीवन एक सवेदनशील दार्शनिक का है तथा उनका काव्य दार्शनिक चिन्तन एव तत्सम्बन्धी अनुभूतियो का व्यक्त कलात्मक रूप है। हमारे विचार में हिन्दी मे केवल तीन ही कवि ऐसे है जिनकी समस्त काव्य-साधना उनकी दार्शनिक चिन्तना एव धार्मिक आस्था की तरल अभिव्यक्ति मात्र है ; वे है—कबीर, तुलसी और महादेवी। इनमे भी तुलसी ने सगुण रूप, स्थूल इतिवृत्त एवं लौकिक भावो को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मे स्वीकार कर लिया जिससे उनकी रचना मे दार्शनिकता की मात्रा अपेक्षाकृत न्यून एव गौण हो गयी है जबकि कबीर एव महादेवी का चिन्तन निर्गुण, निराकार एव सूक्ष्म मे ही केन्द्रित रहने के कारण दर्शन-प्रधान रहा। स्वय कवयित्री के शब्दो मे उनकी कविता 'यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत सूक्ष्म की भावक है।' अस्तु, हमारे विचार मे कबीर एवं महादेवी के काव्य को वास्तविक दार्शनिक काव्य—एक ऐसा काव्य जिसमे अनुभूत दार्शनिक तत्त्वो की अभिव्यक्ति साध्य है तथा काव्यत्व साधन या माध्यम मात्र है—कहा जा सकता है।

उपर्युक्त स्थिति मे महादेवी की काव्यानुभूति के साथ पूर्ण न्याय करने के लिए उनकी दार्शनिक चेतना एव जीवन-दृष्टि को भली-भाँति समझ लेना आवश्यक है। पर खेद का विषय है कि महादेवी के विभिन्न आलोचको ने महादेवी के इसी पक्ष को सर्वाधिक उपेक्षित किया है। अनेक आलोचको ने कवयित्री की दार्शनिकता को स्पष्ट करने के स्थान पर उसके सम्बन्ध मे अनेक भ्रामक एव असगत बाते प्रचारित करके उनके काव्य-रवि को अपनी भ्रान्तियो के घटाटोप से आच्छादित कर देने का कार्य किया है। डा० इन्द्रनाथ मदान ने एक स्थान पर लिखा है कवि को समझने के लिए कवि की राह से गुजरना अपेक्षित है—पर महादेवी के आलोचको ने इसके विपरीत अपनी राह से चलते हुए महादेवी को बलात् उस पर खीच लाने का प्रयास किया है। घोर यथार्थवादी, कट्टर भौतिकतावादी एव उच्छृङ्खल फ्रायडवादी आलोचको ने रग-बिरगे 'चश्मे' लगाकर महादेवी की शुभ्र-श्वेत आदर्शमूलक अध्यात्ममयी सुसयमित उदात्त अनुभूतियो को परखने का दुस्साहस करते हुए ऐसे-ऐसे विचित्र निष्कर्ष प्रस्तुत किये है जो छिछले पाठको का मनोरजन एव कवयित्री की महान साधना का उपहास करने के अतिरिक्त किसी इतर प्रयोजन की सिद्धि नही करते। कुछ आलोचक इस निष्कर्ष के अपवाद भी हैं, उन्होंने महादेवी की आध्यात्मिकता एव रहस्यवादिता के साथ पूरा न्याय करने का प्रयास किया है, पर उनकी समीक्षाएँ अपने-आप मे इतनी रहस्यमयी बन गयी है कि उन्हे समझने की अपेक्षा स्वय कवयित्री के काव्य को समझना अधिक सुगम है। फिर हिन्दी मे आलोचना का क्षेत्र इतना अस्पष्ट एव अनिश्चित है कि 'दर्शन' शीर्षक लगाकर उसके अन्तर्गत जो चाहे लिख दें, कुछ भी निषिद्ध नही है। अनेक विद्वानो को तो यह भी स्पष्ट नही है कि 'दार्शनिक पृष्ठभूमि' 'दर्शन' 'जीवन-दर्शन' और 'काव्य-दर्शन'

से वाहर स्थित जीवन से परिचित होना पडता है, अनेक परोक्ष और प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर एक जीवन-दर्शन वनाना और उसमे रागात्मक सम्वन्ध स्थापित करना पडता है।"[१] इससे स्पष्ट है कि आस्था व्यक्तिगत होती हुई भी समष्टि सापेक्ष्य है तथा उसका आधार वौद्धिक होते हुए भी वह अन्ततः रागात्मक होती है। महादेवी का व्यक्तित्व इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनके गीतों और सस्मरणात्मक लेखो का मूल स्वर वैयक्तिक है पर उनमे जिन आध्यात्मिक एव सासारिक तत्वो की व्यजना की गयी है वे उनकी समष्टि चेतना के प्रमाण है तथा उनकी दार्शनिकता काव्यात्मकता के माध्यम से व्यक्त होती हुई वौद्धिकता एव रागात्मकता के समन्वय की सूचक है। ऐसी स्थिति मे कहा जा सकता है कि आस्था की यह व्यापक व्याख्या चाहे सभी व्यक्तियो पर लागू न हो किन्तु महादेवी के व्यक्तित्व के लिए सर्वथा सगत सिद्ध होती है।

आज के अनेक साहित्यकार जो किसी भी विचार, योजना, आदर्श या मूल्य के साथ प्रतिवद्ध होना अपनी वुद्धि के साथ अन्याय मानते है, आस्था को प्रतिवद्धता की सज्ञा देते हुए उसका तिरस्कार करते है। इस वर्ग के साहित्यकारो का मत है कि आस्था पुरातनता, कट्टर पथीपन एव रूढ़िवद्धता की द्योतक है अतः वह व्यक्ति की प्रगति एव विकास के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करती है, पर वस्तुतः ऐसा नही है। आस्था व्यक्ति के क्षण-क्षण मे परिवर्तित होने वाले दृष्टिकोण की चचलता एव अस्थिरता का विरोध अवश्य करती है पर वह ऐसी वस्तु भी नही है जो कि व्यक्तित्व को सर्वथा जड़ निस्पंद एवं निष्क्रिय वना दे। विकास का वैज्ञानिक नियम है कि वह परपरा और परिवेश के संपर्क से उद्वेलित होकर आगे वढ़ता है कोरी परंपरा जो रूढि वनकर निर्जीव हो चुकी है या कोरा परिवेश जो युग की क्षणजीवी प्रवृत्तियो का सूचक है—दोनो मे से कोई भी—अपने-आप मे विकास का प्रेरक नही है। आस्था में परम्परा और युग-वोध दोनो का समन्वय होता है अतः वह जीवन-पथ के पथिक को एक ओर तो सुनिश्चित एव सुस्थिर पथ का निर्देश करती है तो दूसरी ओर उसके चरणो मे गति का संचार करती है। आस्थाशून्य व्यक्ति की स्थिति टिकट-घर की खिडकी के सामने खड़े उस यात्री की सी होती है जिसे यह पता नहीं कि उसे कहाँ का टिकट लेना है। विना किसी प्रतिवद्धता या पूर्व निश्चय के सामने पड़ जाने वाली हर गाडी में सवार हो जाने वाला यात्री वहुत भटकने के वाद भी अपने लक्ष्य तक शायद ही पहुंच पाता है। फिर भी जिनका लक्ष्य कही भी पहुंचना नही है—इधर-उधर भटकते हुए ही अपने जीवन को विता देना है उनके लिए सचमुच ही आस्था निरर्थक शब्द है। पर फिर भी जिसे वे प्रगतिशीलता कहते हैं वह प्रगतिशीलता न होकर गतिशीलता

---

१. महादेवी : आस्था और अन्य निवन्ध ; पृ० २६।

ही है क्योकि घडी के पेंडुलम की भाँति वे वहुत हिल-डुलकर भी अपने वृत्त की सीमा से आगे नही वढ़ पाते । अस्तु, जिन्हे गतिशीलता और प्रगतिशीलता, रूढ़ि और परंपरा कट्टरवादिता और आस्था के सूक्ष्म अन्तर का बोध नही है वे ही आस्था के विरोधी हो सकते है , अन्यथा महादेवी जैसी साहित्यिक प्रतिभाएँ उसे प्रत्येक सोचने-समझने वाले प्राणी के लिए आवश्यक मानती है । आस्था-विरोधियो की उपर्युक्त आशकाओ का निराकरण करते हुए महादेवी ने भी स्पष्ट रूप मे प्रतिपादित किया है कि आस्था जीवन-क्रम मे निर्मित होती है, अत. उसे कोई जडीभूत तत्त्व मान लेना उचित न होगा । उसका जीवन की प्रगतिशीलता से कोई विरोध सभव नही । "जैसे अनेक पथो पर चलने वालो का क्षितिज से कोई विरोध सभव नही ।"[२]

अतीत और वर्तमान का द्वन्द्व भी आस्थावान के लिए नगण्य है । महादेवी इन दोनो मे कोई विरोध नही मानती । वे लिखती है—"समसामयिक और शाश्वत् परस्पर विरोधी स्थितियाँ नही है । उनमे 'है' और 'होना चाहिए' का अन्तर मात्र है । अनेक समसामयिक अतीत वनकर ही शाश्वत का सृजन करते है । ·· कोई भी व्यापक लक्ष्य स्वय तक पहुँचाने वाले साधनो का विरोध नही करता और साधनो का अस्तित्व समसामयिक परिस्थितियो मे रहता है ।"

जिस प्रकार अतीत और वर्तमान, शाश्वत और सामयिक मे महादेवी कोई विरोध नही मानती उसी प्रकार वे आस्था और विज्ञान मे किसी विरोध को नही स्वीकारती । प्राय यह कहा जाता है कि आज के विज्ञान ने हमारी आस्थाओ को खडित कर दिया है, पर महादेवी के विचार से ऐसा नही है । आज का विज्ञान हमारी आस्थाओ को खडित नही करता अपितु वह उन्हे और अधिक व्यापक आधार प्रदान करता है । "आज के व्यक्ति को अपनी आस्था मे विराट मानव का कर्त्तव्य सँभालना पडता है । विज्ञान ने भू-खडो को एक-दूसरे के इतना निकट पहुँचा दिया है कि यह कर्त्तव्य हर व्यक्ति को प्राप्त हो गया है । ·… जिन युगो मे भू-खड दूसरे से परिचित नही था, उनमे भी मनुष्य ने वसुधा को कुटुम्व के रूप मे स्वीकार कर अनदेखे सहयात्रियो के प्रति आस्था व्यक्त की है । तव आज के मगल-ग्रह खोजी वैज्ञानिक युग को आस्था का अभाव क्यो हो ?"[३]

आस्था का सम्वन्ध व्यक्ति के चरम लक्ष्यो से होता है । साहित्यकार के रूप मे महादेवी के जीवन का चरम लक्ष्य उन्ही के शव्दो मे इस प्रकार वताया जा सकता है—"मनुष्यता का सर्वांगीण विकास, मनुष्य के जीवन की दु.ख दैन्य-रहित गरिमा, शिवता और सौन्दर्य हमारा लक्ष्य है ।"

---

२. महादेवी : आस्था और अन्य निवन्ध ; पृ० २७ ।

३. वही ; पृ० २८ ।

—इन सब मे परस्पर क्या अन्तर है ! इसका परिणाम यह है कि एक विद्वान् ने जो कुछ 'महादेवी की दार्शनिक पृष्ठभूमि' के अन्तर्गत कहा है, वही दूसरे के द्वारा उनके दर्शन, जीवन-दर्शन या काव्य-दर्शन के अन्तर्गत लिखा गया है।' ऐसी स्थिति मे साहित्य के एक सामान्य विद्यार्थी या नये शोध-कर्त्ता का मार्ग कितना दुरुह एवं अस्पष्ट हो जाता है, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। अस्तु, आलोचको के पूर्वाग्रहों एव दुराग्रहो, शैली की अस्पष्टता एव दुरूहता तथा दृष्टि की अवैज्ञानिकता ने न केवल महादेवी के काव्य को अपितु हिन्दी के अधिकाश साहित्य को इसी प्रकार आच्छन्न कर रखा है जिससे साहित्य के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त कम और प्रच्छन्न अधिक हो रहा है।

उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए सबसे पूर्व हमे यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि 'दार्शनिक पृष्ठभूमि', 'दर्शन', 'जीवन-दर्शन', 'काव्य-दर्शन' आदि मे परस्पर क्या अन्तर है ? 'दार्शनिक पृष्ठभूमि' मे उन दार्शनिक स्रोतो एव आधारो की व्याख्या अपेक्षित है जिन्होने किसी भी व्यक्ति को प्रभावित किया हो या जो उसकी चिन्तना के आधार वने हो। कवि के 'दर्शन' के अन्तर्गत व्यष्टि एव सृष्टि से सम्वन्धित उन सामान्य विचारो एव धारणाओ का समावेश किया जाता है जो कि कवि की विचार-धारा की अग वन गयी हो। 'जीवन-दर्शन' के अन्तर्गत व्यक्ति की विचार-धारा का वह पक्ष आता है जो कि उसके व्यक्तित्व, चरित्र एव व्यवहार से सम्वद्ध है ; जो उसकी जीवन-पद्धति, लोकनीति एव भावी आकाक्षाओ का प्रेरक एव नियामक है। सामान्यतः दर्शन के अन्तर्गत सृष्टि के व्यापक एव शाश्वत प्रश्न आते हैं जवकि जीवन-दर्शन मे व्यक्ति के निजी जीवन सम्वन्धी प्रेरणाओ, प्रवृत्तियो एव प्रयोजनो की विशेषताओ का समाहार किया जाता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति का निजी लक्ष्य, निजी युग-वोध एव निजी व्यवहार पद्धति को लिया जा सकता है। 'काव्य-दर्शन' व्यक्ति के 'जीवन-दर्शन का ही वह सीमित पक्ष है जो उसकी काव्य-रचना के मूल मे प्रेरणा, वस्तु, लक्ष्य, प्रवृत्ति एव प्रयोजन के रूप मे विद्यमान रहता है। प्रत्येक कवि की रचना उसकी काव्य-प्रेरणा, काव्य-वस्तु, काव्यादर्श, काव्य-प्रवृत्तियो एव काव्य-प्रयोजन की दृष्टि से न्यूनाधिक मात्रा मे अन्य कवि की रचना से भिन्न होती है तथा यह भिन्नता ही उनके काव्य-दर्शन की भिन्नता की द्योतक है। इस प्रकार ये विभिन्न शीर्पक कवि के व्यक्तित्व एव चिन्तन के विभिन्न पक्षो के सूचक है, पर साथ ही हमे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी आदि एक-दूसरे से पृथक् होते हुए भी एक-दूसरे पर आधारित हैं, उसी प्रकार ये तत्त्व भी एक-दूसरे पर आश्रित है। दार्शनिक पृष्ठ-भूमि के आधार पर दर्शन का विकास होता है, दर्शन की मान्यताएँ व्यक्ति के जीवन-दर्शन का निर्माण करती है तथा जीवन-दर्शन के अनुरूप ही काव्य-दर्शन विकसित होता है और काव्य-दर्शन उसकी रचना की विपय-वस्तु, शैली एव प्रवृत्तियो के चयन एवं

सचयन मे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप मे योग देता है अतः किसी भी काव्य-रचना के—विशेपत., दार्शनिक कविता की वैज्ञानिक समीक्षा के लिए हमे क्रमश इन सभी पक्षों का विवेचन-विश्लेपण करते हुए उसके विकास की पूरी कहानी स्पष्ट करनी पडती है। हाँ, यदि आलोचना के नाम पर रग-विरगी धारणाओ, चमत्कृत कर देने वाली कल्पनाओ एवं रहस्यमयी शव्दावलियो से निर्मित एक नयी भूल-भुलैया खडी करनी हो तो दूसरी वात है।

● **आस्थामूलक जीवन-दृष्टि**—जीवन-दर्शन का विकास वहुत-कुछ व्यक्ति के दृष्टिकोण या उसकी जीवन-दृष्टि के अनुसार होता है। अत महादेवी के जीवन-दर्शन पर विचार करने से पूर्व उनकी जीवन-दृष्टि पर प्रकाश डालना आवश्यक है। यदि उनकी जीवन-दृष्टि के वारे मे एक शव्द मे वताया जाय तो कहा जा सकता है कि वह 'आस्थामूलक' है। आस्था ही वह तत्त्व है जिसके आधार पर उनके दृष्टिकोण को स्पप्ट किया जा सकता है। स्वय महादेवी ने भी एक लेख मे आस्था के विभिन्न पक्षो का विवेचन अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक किया है, अत· उनके दृष्टिकोण को समझने मे उससे भी सहायता ली जा सकती है।

सवसे पहला प्रश्न उठता है—'आस्था' क्या है ? सस्कृत के शव्दकोषो मे इसके अनेक अर्थ दिये गये हैं—श्रद्धा, पूज्यवुद्धि, स्वीकारोक्ति, आशा, विश्वास, प्रयत्न आदि। हमारे विचार मे ये सभी अर्थ आस्था के विभिन्न पक्षो को सूचित करते हैं, अत इन सवका समन्वय करते हुए कहा जा सकता है कि आस्था जीवन के एक ऐसे स्वीकारात्मक एव रचनात्मक दृष्टिकोण को सूचित करती है जो कि शाश्वत तत्त्वो, उच्च आदर्शों एव उदात्त मूल्यो मे गभीर विश्वास करता है। यदि सक्षेप मे कहे तो जीवन के उदात्त मूल्यों के प्रति गभीर विश्वास ही आस्था है। महादेवी ने आस्था को और भी व्यापक अर्थ मे ग्रहण करते हुए प्रत्येक प्रकार के गभीर विश्वास को आस्था के अन्तर्गत लेते हुए लिखा है—'आस् और स्था, अस्तित्व और स्थिति दोनो का उसमे ऐसा समन्वय है कि धर्म के आस्तिक से लेकर वैज्ञानिक युग के नास्तिक तव सव उसे स्वीकृति देते हैं।'

आस्था एकाएक निर्मित या आरोपित तत्त्व नही है अपितु उसका विकास अतीत के संस्कारो एव वर्तमान के अनुभवो के मेल से होता है। उसमे परम्परा और युग-वोध तथा समष्टि और व्यष्टि का समन्वय होता है। इसे स्पप्ट करते हुए महादेवी ने लिखा है—"आस्था के सम्वन्घ मे भी यही सत्य है—उसका मूल सस्कारजन्य है, पर प्रसार और व्याप्ति व्यक्तिगत अनुभवो की उपलव्धि है। ··· आस्था व्यक्तिगत होने पर भी सीमित नही हो सकेगी। **वस्तुतः आस्था मानव के युगान्तर से प्राप्त दार्शनिक लक्ष्य पर केन्द्रित रागात्मक दृष्टि है।**" आस्था जिसका एक अर्थ स्वीकारोक्ति भी है, वस्तुत. व्यक्ति के द्वारा समष्टि की स्वीकृति है। इस स्वीकृति के लिए मनुष्य को अपने

से बाहर स्थित जीवन से परिचित होना पडता है, अनेक परोक्ष और प्रत्यक्ष अनुभवो के आधार पर एक जीवन-दर्शन बनाना और उसमे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना पडता है।"[1] इससे स्पष्ट है कि आस्था व्यक्तिगत होती हुई भी समष्टि सापेक्ष्य है तथा उसका आधार बौद्धिक होते हुए भी वह अन्तत रागात्मक होती है। महादेवी का व्यक्तित्व इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनके गीतो और सस्मरणात्मक लेखो का मूल स्वर वैयक्तिक है पर उनमे जिन आध्यात्मिक एव सासारिक तत्वो की व्यजना की गयी है वे उनकी समष्टि चेतना के प्रमाण है तथा उनकी दार्शनिकता काव्यात्मकता के माध्यम से व्यक्त होती हुई बौद्धिकता एव रागात्मकता के समन्वय की सूचक है। ऐसी स्थिति मे कहा जा सकता है कि आस्था की यह व्यापक व्याख्या चाहे सभी व्यक्तियो पर लागू न हो किन्तु महादेवी के व्यक्तित्व के लिए सर्वथा सगत सिद्ध होती है।

आज के अनेक साहित्यकार जो किसी भी विचार, योजना, आदर्श या मूल्य के साथ प्रतिबद्ध होना अपनी बुद्धि के साथ अन्याय मानते है, आस्था को प्रतिबद्धता की सज्ञा देते हुए उसका तिरस्कार करते है। इस वर्ग के साहित्यकारो का मत है कि आस्था पुरातनता, कट्टर पथीपन एव रूढिबद्धता की द्योतक है. अत. वह व्यक्ति की प्रगति एव विकास के मार्ग मे अवरोध उत्पन्न करती है, पर वस्तुत· ऐसा नही है। आस्था व्यक्ति के क्षण-क्षण मे परिवर्तित होने वाले दृष्टिकोण की चचलता एव अस्थिरता का विरोध अवश्य करती है पर वह ऐसी वस्तु भी नही है जो कि व्यक्तित्व को सर्वथा जड निस्पद एव निष्क्रिय बना दे। विकास का वैज्ञानिक नियम है कि वह परपरा और परिवेश के संपर्क से उद्वेलित होकर आगे बढ़ता है कोरी परपरा जो रूढ़ि बनकर निर्जीव हो चुकी है या कोरा परिवेश जो युग की क्षणजीवी प्रवृत्तियो का सूचक है—दोनो मे से कोई भी—अपने-आप मे विकास का प्रेरक नही है। आस्था मे परम्परा और युग-बोध दोनो का समन्वय होता है अत· वह जीवन-पथ के पथिक को एक ओर तो सुनिश्चित एव सुस्थिर पथ का निर्देश करती है तो दूसरी ओर उसके चरणो मे गति का संचार करती है। आस्थाशून्य व्यक्ति की स्थिति टिकट-घर की खिडकी के सामने खडे उस यात्री की सी होती है जिसे यह पता नही कि उसे कहाँ का टिकट लेना है। विना किसी प्रतिवद्धता या पूर्व निश्चय के सामने पड जाने वाली हर गाड़ी में सवार हो जाने वाला यात्री वहुत भटकने के वाद भी अपने लक्ष्य तक शायद ही पहुंच पाता है। फिर भी जिनका लक्ष्य कही भी पहुँचना नही है—इधर-उधर भटकते हुए ही अपने जीवन को विता देना है उनके लिए सचमुच ही आस्था निरर्थक शब्द है। पर फिर भी जिसे वे प्रगतिशीलता कहते है वह प्रगतिशीलता न होकर गतिशीलता

---

१. महादेवी : आस्था और अन्य निवन्ध ; पृ० २६।

ही है क्योकि घडी के पेंडुलम की भाँति वे बहुत हिल-डुलकर भी अपने वृत्त की सीमा से आगे नही बढ पाते। अस्तु, जिन्हे गतिशीलता और प्रगतिशीलता, रूढ़ि और परपरा कट्टरवादिता और आस्था के सूक्ष्म अन्तर का बोध नही है वे ही आस्था के विरोधी हो सकते है, अन्यथा महादेवी जैसी साहित्यिक प्रतिभाएँ उसे प्रत्येक सोचने-समझने वाले प्राणी के लिए आवश्यक मानती है। आस्था-विरोधियो की उपर्युक्त आशकाओ का निराकरण करते हुए महादेवी ने भी स्पष्ट रूप मे प्रतिपादित किया है कि आस्था जीवन-क्रम मे निर्मित होती है, अत. उसे कोई जडीभूत तत्त्व मान लेना उचित न होगा। उसका जीवन की प्रगतिशीलता से कोई विरोध सभव नही। "जैसे अनेक पथो पर चलने वालो का क्षितिज से कोई विरोध संभव नही।"[२]

अतीत और वर्तमान का द्वन्द्व भी आस्थावान के लिए नगण्य है। महादेवी इन दोनो मे कोई विरोध नही मानती। वे लिखती है—"समसामयिक और शाश्वत् परस्पर विरोधी स्थितियाँ नही है। उनमे 'है' और 'होना चाहिए' का अन्तर मात्र है। अनेक समसामयिक अतीत बनकर ही शाश्वत का सृजन करते है। ... कोई भी व्यापक लक्ष्य स्वय तक पहुँचाने वाले साधनो का विरोध नही करता और साधनो का अस्तित्व समसामयिक परिस्थितियो मे रहता है।"

जिस प्रकार अतीत और वर्तमान, शाश्वत और सामयिक मे महादेवी कोई विरोध नही मानती उसी प्रकार वे आस्था और विज्ञान मे किसी विरोध को नही स्वीकारती। प्राय यह कहा जाता है कि आज के विज्ञान ने हमारी आस्थाओ को खडित कर दिया है, पर महादेवी के विचार से ऐसा नही है। आज का विज्ञान हमारी आस्थाओ को खडित नही करता अपितु वह उन्हे और अधिक व्यापक आधार प्रदान करता है। "आज के व्यक्ति को अपनी आस्था मे विराट मानव का कर्त्तव्य सँभालना पड़ता है। विज्ञान ने भू-खडो को एक-दूसरे के इतना निकट पहुँचा दिया है कि यह कर्त्तव्य हर व्यक्ति को प्राप्त हो गया है। ... जिन युगो मे भू-खड दूसरे से परिचित नही था, उनमे भी मनुष्य ने वसुधा को कुटुम्ब के रूप मे स्वीकार कर अनदेखे सहयात्रियों के प्रति आस्था व्यक्त की है। तब आज के मगल-ग्रह खोजी वैज्ञानिक युग को आस्था का अभाव क्यो हो ?"[३]

आस्था का सम्बन्ध व्यक्ति के चरम लक्ष्यो से होता है। साहित्यकार के रूप मे महादेवी के जीवन का चरम लक्ष्य उन्ही के शब्दो मे इस प्रकार बताया जा सकता है—"मनुष्यता का सर्वांगीण विकास, मनुष्य के जीवन की दु:ख दैन्य-रहित गरिमा, शिवता और सौन्दर्य हमारा लक्ष्य है।"

---

२. महादेवी : आस्था और अन्य निबन्ध ; पृ० २७।

३. वही ; पृ० २८।

इस प्रकार महादेवी का व्यक्तित्व, जीवन एव कृतित्व न केवल एक गंभीर एवं उदात्त आस्था से परिचालित है अपितु वे इसे प्रत्येक साहित्यकार के लिए आवश्यक भी मानती हैं—'माता जिस प्रकार आस्था के बिना अपने रक्त से सन्तान का सृजन नही कर सकती, धरती जिस प्रकार ऋत् के बिना अकुर को विकास नही दे सकती, साहित्यकार भी उसी प्रकार गभीर विश्वास के बिना अपने जीवन को अपने सृजन मे अवतार नही दे पाता।' कदाचित् यह बात अनेक साहित्यकारो पर लागू न हो पर उस स्थिति मे यह सोचना पडेगा कि ऐसे व्यक्ति क्या सचमुच साहित्यकार है या गली-मोहल्लो मे होने वाली चर्चाओ के केवल टेप-रिकार्डर है ?

अस्तु, निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि महादेवी की जीवन-दृष्टि आस्था-मूलक या आस्थावादी है, वे मानवता के सर्वागीण विकास, जीवन के उदात्त मूल्यो एव विचारो मे आस्था रखती हैं। उनकी आस्था पुरातनता एव आधुनिकता, साहित्य और विज्ञान, रागात्मक और बौद्धिकता के पारस्परिक विरोध से ऊपर है अर्थात् वे इन परस्पर-विरोधी तत्त्वो एव स्थितियो मे भी समन्वय स्थापित करती हुई अपनी आस्थाओ को अखडित रख पाती है। अध्यात्मपरक दर्शन एव आस्तिकता के सुदृढ़ सस्कारो से भी उनकी आस्था को पर्याप्त बल मिला है। उनके दृष्टिकोण में बौद्धिक प्रखरता, स्वतत्र चिन्तना एव विश्वासो की सुदृढता होने के कारण वे परस्पर विरोधी तत्त्वो मे भी सफलतापूर्वक समन्वय स्थापित कर लेती हैं—अत कहा जा सकता है कि उनकी जीवन-दृष्टि जहाँ आस्था की गभीरता एव सुदृढता से अनुप्राणित और प्रेरित है वहाँ उनका दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट, निर्भ्रान्त एव समन्वयशील है, इसी से उन्हे न तो कही भी अपने पथ से विचलित होना पडा है और न ही कभी अपना मार्ग बदलना पडा है अपितु वे निरन्तर सुनिश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होती हुई अनवरुद्ध रूप मे प्रगति कर रही है; यह दूसरी बात है कि जो प्रगति का मूल्याकन, अपनी दृष्टि की स्थूलता के कारण केवल मील के पत्थरो को देखकर ही कर पाते है वे उनकी सूक्ष्म उपलब्धियो को शायद न पहचान पावे।

● **जीवन का बोध ?**—महादेवी के जीवन-दर्शन पर विचार करते समय उनकी जीवन-दृष्टि से परिचित हो लेने के अनन्तर पहला प्रश्न यह उठता है कि उनका जीवन सम्वन्धी दृष्टिकोण क्या है या वे जीवन को क्या मानती है ? इसी को हम 'जीवन-बोध' कह सकते है। सामान्यत हमारा सारा जीवन इच्छाओ-कामनाओ एव उनकी पूर्ति के प्रयासो का योग है जिसमे हम कभी दु ख का और कभी सुख का अनुभव प्राप्त करते है। भाँति-भाँति के कष्टो को सहन करते हुए भी हमारा जीवन के प्रति अनुराग रहता है—इसीलिए तो हम हर स्थिति मे जीना चाहते है, मृत्यु की कामना तो कभी-कभी असाधारण स्थिति में ही किसी व्यक्ति के मन मे उठती है जिसे अपवाद ही कहा

जा सकता है। महादेवी भी कदाचित् जीवन के आरभ मे अनुरक्ति की भावना से ही ग्रस्त थी :

नई आशाओं का उपवन
मधुर वह था मेरा जीवन !

किन्तु जब आगे चलकर उन्हे वास्तविकता का बोध हुआ तो वे अनुभव करने लगी कि जीवन सम्वन्धी उनकी पिछली धारणा एक अज्ञान या भ्रम मात्र थी। जिस मोह मे वे लिप्त थी, वह एक भ्रामक उन्माद मात्र था। जिन वातो को वे पहले अच्छी समझती थी; वे सब वस्तुत विप थी . .

मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन !
तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता सपनों का हास
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन !

उपर्युक्त पक्तियो से स्पष्ट है कि कवयित्री उन सब मीठी वातो और मधुर सपनो को जो कि हमारे मन मे मोह और आसक्ति उत्पन्न करते है, विष-तुल्य मानते हैं। व्यक्ति सासारिक आकर्षणो के फेर मे पडकर आशा-निराशा के झूले मे झूलता हुआ भाँति-भाँति की वेदनाएँ सहन करता है—पर यह स्थिति महादेवी के अनुसार अज्ञान-जन्य है। जीवन और जगत् के वास्तविक स्वरूप को न पहचान पाने के कारण ही हम ससार के आकर्षण-जाल मे वँधते है। हम भूल जाते हैं कि ससार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, क्षण-भगुर है फिर भी उससे हम स्थायी सम्वन्ध की आशा करते हैं और अन्त मे निराश और दुःखी होते है। जीवन की प्रत्येक अनुभूति जगत् की विभिन्न वस्तुओ, स्थितियो और गति-विधियो से प्रभावित होती है, अत. हमारी अनुभूतियो का मूल स्रोत यह परिवर्तनशील जगत् ही है। ऐसी स्थिति मे जगत् के प्रति हमारी जैसी धारणा होगी उसी के अनुकूल हमारा जीवन-बोध होगा। महादेवी का जीवन-बोध भी जगत् की अस्थिरता, परिवर्तनशीलता एव क्षण-भगुरता की अवधारणा पर आश्रित है। जगत् की वास्तविकता का उद्घाटन करती हुई वे लिखती है :

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य

कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज !
असंभव है चिर-सम्मेलन
न भूलो क्षण-भंगुर जीवन !

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चँद
× × ×
यहाँ किसका अनन्त यौवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन

जगत् की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील एवं नाशवान है, अतः यहाँ प्रत्येक संयोग के पीछे वियोग और प्रत्येक सुख के पीछे दुःख लगा हुआ है :

तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन !

इस प्रकार कवयित्री की दृष्टि में जगत् की यह अस्थिरता एव परिवर्तनशीलता ही जीवन की अस्थिरता एव परिवर्तनशीलता की द्योतक हैं। ऐसी स्थिति मे जीवन मे स्थायी सुख की आशा करना एक भ्रम मात्र हैं। वस्तुतः दु ख ही जीवन का स्थायी लक्षण है। इसी को वौद्ध दर्शन मे जीवन का पहला सत्य कहा गया है। जैसा कि अन्यत्र विस्तार से स्पष्ट किया गया है, ससार के प्राणियो के लिए वुद्ध का सबसे पहला सदेश या पहला आर्य सत्य यही है कि ससार दुःखो का घर है। इस ससार मे जन्म लेना दु ख है, जीवन का पालन-पोषण एव सरक्षण दु ख है और अन्त मे मृत्यु दु ख हैं। वुद्ध के शव्दो मे—'जीवन दु'खदायी है, प्रिय का वियोग दु खदायी है और कोई उत्कट आकाक्षा जिसकी पूर्ति न हो सके वह भी दु खदायी है।' वस्तुत महादेवी की जीवन और जगत् सम्वन्धी यह धारणा पूर्णत' वौद्ध मत के अनुकूल है। कदाचित् वौद्ध मत के प्रभाव ने ही उनके मन मे इस दु.खवादी दृष्टिकोण को गहराई से प्रतिष्ठित कर दिया हैं।

वौद्ध मत के अनुसार जीवन मे व्याप्त यह दु.ख अकारण ही नही है अपितु उसके पीछे कारणो की शृखला है, जिसे 'भव-चक्र' कहा गया है। वुद्ध ने अपने प्रतीत्य समुत्पादी सिद्धान्त के अनुसार एक स्थिति को दूसरी स्थिति का या एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व का आधारभूत कारण मानते हुए सासारिक दु खो के भी क्रमशः वारह कारण वताये है, जो इस प्रकार है—अविद्या > संस्कार > चेतना > नाम-रूप > षडायतन > वेदना > स्पर्श > तृष्णा > आसक्ति > सासारिक कर्म > पुनर्जन्म > जरा-मरण। क्रमश.

इनमें से प्रत्येक तत्त्व दूसरे का कारण है, इस दृष्टि से सभी दु.खो का मूल कारण अविद्या या अज्ञान है। संसार के स्वरूप का यथार्थ वोध न होना ही सबसे बड़ा अज्ञान है। इस अस्थिर ससार से हम स्थिर सुख की कामना करते है—यही सबसे वडा अज्ञान है। इस अज्ञान से ही हमारा अचेतन-चेतन मन प्रभावित होता हुआ हमारे मन में ऐन्द्रियक सुखो की लालसा या तृष्णा उत्पन्न करता है और उस तृष्णा के द्वारा ही वस्तुओ और व्यक्तियो मे आसक्ति उत्पन्न होती है तथा उन्हे पाने या अधिकार मे रखने की प्रेरणा से कर्म, पुनर्जन्म एव जरा-मरण के चक्कर मे पडते है। इस प्रकार हम इन विभिन्न कारणो को तीन प्रमुख वर्गो मे विभक्त कर सकते है—(१) अज्ञान, (२) तृष्णा और (३) जन्म (जीवन)। महादेवी भी जीवन के दु खो की व्यजना करती हुई इन्ही विचारो का प्रतिपादन करती है। सबसे पूर्व तो हमारा यह जीवन ही, जो शायद अपने-आप मे हमारे पिछले कर्मो का फल या वरदान है, दु ख का कारण है :

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियों की कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन ;
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गई मुस्कान !

यह जीवन ही अपने-आप मे अवाछनीय है। क्योकि इसमे कभी स्मृतियो की हलचल और कभी अन्तर की गूढ व्यथाओ का जागरण होता रहता है जिनके चक्कर मे पडकर, स्वप्नलोक मे विचरण करने वाली चेतना अपनी मुस्कुराहट को भूल कर उदास या दु.खी हो जाती है। कभी-कभी सुख की एक लहर, सौन्दर्य का एक दृश्य या प्रणय का एक झोका इसे सुखानुभूति भी प्रदान करता है, पर कितने देर के लिए! जव स्वय जीवन ही क्षण-भंगुर है तो उसकी यह सुखानुभूति स्थायी कैसे रह सकती है। इसकी स्थिति मे घन-अचल मे अकित इन्द्र धनुष या किसलय-दल पर स्थित किसी ओस-विन्दु से अधिक स्थिर नही है, फिर भी यह अपने इस मरणशील जीवन पर कितना अभिमान करता है! और अन्त मे इसकी गति यह हो जाती है कि वह सिकता मे अकित किसी रेखा की भाँति या वात-विकम्पित दीपशिखा की भाँति क्षण भर अपना रूप दिखाकर काल-कपोलो पर से आँसू की वून्द की भाँति ढुलक जाता है :

सिकता में अंकित रेखा सा,
वात-विकम्पित दीपशिखा सा ;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान !

यहाँ वात-विकम्पित दीपशिखा का उदाहरण विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। बौद्ध दर्शन मे दीप-शिखा की चर्चा बार-बार एक विशेष अर्थ मे हुई है। उसमें दीप जीवन का तथा उसकी ज्योति तृष्णा की प्रतीक है। दीप-शिखा की चचला तृष्णा-जन्य चचलता की द्योतक है। महादेवी ने दीप और दीप-शिखा की चर्चा वार-वार अपने काव्य मे की है जो कदाचित् बौद्ध प्रभाव का सूचक है क्योकि उन्होने भी प्राय. इसे जीवन और तृष्णा के अर्थ मे ही लिया है।

अस्तु, सक्षेप मे कहा जा सकता है कि महादेवी की जीवन सम्वन्धी धारणा वहुत-कुछ बौद्ध मत से प्रभावित है, जिसके अनुसार यह जीवन अस्थिर, अनित्य एवं परिवर्तनशील है तथा दु.ख ही इसका यथार्थ लक्षण है और दु ख का मूल कारण अज्ञान जन्य कामनाएँ है।

जीवन का लक्ष्य—वौद्ध दर्शन के अनुसार मानव-जीवन का चरम लक्ष्य निर्वाण-प्राप्ति है। यह 'निर्वाण' क्या है ? विभिन्न विचारको ने इसके विभिन्न उत्तर दिये है जिन पर विचार करते हुए हम पीछे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि निर्वाण का अर्थ समस्त दु:खो से मुक्ति है। यदि व्यक्ति तृष्णाओ पर विजय प्राप्त कर ले तो वह इस जीवन मे ही निर्वाण की स्थिति प्राप्त कर सकता है अन्यथा जव तक उसकी चेतना अज्ञानजन्य तृष्णाओ से मुक्त नही हो पायेगी तब तक वह आवागमन (पुनर्जन्म) के भव-चक्र मे पडी हुई दु ख भोगती रहेगी। अस्तु, इस जीवन मे या इस जीवन के वाद अन्तत निर्वाण प्राप्त कर लेना ही वौद्ध साधक का चरम लक्ष्य है। महादेवी ने भी इस निर्वाण की चर्चा वार-वार अपने काव्य मे की है :

पथ मेरा निर्वाण बन गया
प्रति पग शत वरदान बन गया !

× × ×

पंथ को निर्वाण माना।
शूल को वरदान जाना।

× × ×

जिसके निष्फल जीवन ने
जल-जल कर देखी राहें
निर्वाण हुआ है देखो,
वह दीप लुटा कर चाहे !

यहाँ निर्वाण की व्याख्या भी वौद्ध मत के अनुसार की गयी है। बौद्ध मतानुसार भी तृष्णाओ का निरोध करने से ही निर्वाण की स्थिति प्राप्त होती है तो महादेवी के विचारानुसार भी दीप (जीवन या व्यक्ति) अपनी चाहो (=इच्छाओ) को

लुटाकर ही निर्वाण प्राप्त करता है। निर्वाण की यह स्थिति इसी जीवन मे प्राप्य है किन्तु जीवन के अनन्तर प्राप्त होने वाले निर्वाण की भी कवयित्री ने चर्चा की है .

वीणा होगी मूक बजाने
वाला होगा अन्तर्धान ;
विस्मृति के चरणों पर आकर,
लौटेंगे सौ-सौ निर्वाण !

यहाँ जीवन का अवसान हो जाने पर प्राप्त होने वाली एक ऐसी स्थिति की कल्पना की गयी है जो कि निर्वाण की ही नही—निर्वाण से भी वढकर होगी ! उस स्थिति को उन्होने 'विस्मृति' की सज्ञा देते हुए निर्वाण से भी कई गुना महत्त्व दिया है। इसीलिए तो कहा है—"लौटेंगे सौ-सौ निर्वाण।" ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि क्या यह विस्मृति निर्वाण की ही द्योतक है या उससे कोई भिन्न अर्थ रखती है ? फिर 'सौ-सौ निर्वाण' से निर्वाण की अपेक्षाकृत हीनता एव उपेक्षा का भाव भी व्यक्त होता है। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि महादेवी की यह काम्य स्थिति—विस्मृति—निर्वाण की ही द्योतक है या उससे कोई भिन्न स्थिति है ? इसके समाधान के लिए हमे उपर्युक्त पक्तियो से सम्बद्ध अगली पक्तियो पर विचार करना होगा ·

वीणा होगी मूक बजाने—
वाला होगा अन्तर्धान,
विस्मृति के चरणों पर आकर,
लौटेंगे सौ-सौ निर्वाण !
जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !

इस पूरे प्रसग से स्पष्ट है कि महादेवी निर्वाण को महत्त्व देती हैं, किन्तु उससे भी वढकर उनके लिए असीम से अपनी लघु सीमा का मेल है। दूसरे शब्दो मे, वे आत्मा और परमात्मा के मिलन को निर्वाण से अधिक महत्त्व देती हैं, इसीलिए उनका अन्तिम लक्ष्य निर्वाण नही—परमात्मा से मिलन है। अत· उन्हें वार-वार हम उसी महामिलन की प्रतीक्षा करते पाते है :

मेरे जीवन की जागृति !
देखो फिर भूल न जाना,

जो वे सपना बन आवें,
तुम चिर निद्रा बन जाना !

या—

करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियों,
तुम पल भर को बुझ जाना।

इतना ही नही अनेक प्रसगों से यह भी स्पष्ट है कि परमात्मा का मिलन ही नही, उनका विरह भी उन्हे निर्वाण से अधिक प्रिय है :

एक करुण अभाव में चिर—
तृप्ति का संसार संचित ;
एक लघु क्षण दे रहा
निर्वाण के वरदान शत शत !
पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

अस्तु, कवयित्री के मन मे निश्चित ही निर्वाण की अभावात्मक स्थिति की अपेक्षा प्रणय, विरह एव मिलन के क्षणो की अनुभूति के प्रति अधिक आकर्षण है। यही तथ्य इस बात का सूचक है कि महादेवी पर बौद्धमत का प्रभाव उनके मस्तिष्क तक ही सीमित है, उनका हृदय तो अद्वैतमूलक रहस्यवाद की अनुभूति से आप्लावित है। इसी लिए उनके काव्य मे अद्वैत की अनुभूति अधिक गभीर है। पर इसका यह तात्पर्य भी नही है कि वे बौद्धमत के निर्वाण की सदा उपेक्षा ही करती हैं। ऐसा नही है। वे निर्वाण की उपेक्षा नही करती अपितु उसे भी अपनी जीवन-पद्धति का अंग बना लेती है। बौद्धमत मे निर्वाण का सबसे बडा लक्षण तृष्णाओ की शान्ति है, इच्छाओ पर विजय-प्राप्ति एव भोग-विलास के साधनो से विरक्ति है ; इन सभी लक्षणो को महादेवी भी स्वीकार करती है :

सुख की चिर पूर्त्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन।

× × ×

चिर ध्येय यही जलने का,
ठंडी विभूति बन जाना ;

है पीड़ा की सीमा यह,
दुःख का चिर सुख हो जाना !
× × ×
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना !

बौद्धमत के व्याख्याताओ ने निर्वाण को बुझे हुए दीपक या अगारे के सदृश भी बताया है तथा उसमे वस्तुओ के विना भोग के ही उनसे विरक्ति का हो जाना आवश्यक माना है—यही ध्येय यहाँ कवयित्री ने भी स्वीकार किया है। इस प्रकार हम देखते है कि महादेवी ने अद्वैत की अनुभूति को प्रमुखता देते हुए भी बौद्ध मत की निर्वाण-सम्बन्धी कल्पना को अस्वीकार नही किया है, उसे भी गौण रूप मे स्वीकार करते हुए दोनो मे समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की है। वस्तुत. निर्वाण (=तृष्णाओ पर विजय) उनका साध्य न होकर साधन है जिसके बल पर वे आध्यात्मिक मिलन की स्थिति तक पहुँच पायेंगी। अत. निर्वाण का सम्बन्ध केवल इसी जीवन तक है जबकि आध्यात्मिक मिलन का जीवनोपरान्त भी है। एक बीच की स्थिति है जब कि दूसरी अंतिम। इस प्रकार कवयित्री ने निर्वाण की अपेक्षा आत्मा-परमात्मा के मिलन को अधिक महत्त्व देते हुए भी उसे साधन के रूप मे स्वीकार किया है।

● **जीवन-पद्धति**—महादेवी के जीवन का लक्ष्य आध्यात्मिक मिलन की अनुभूति प्राप्त करना है, अत. वे एक दिव्य पथ की पथिक एव अध्यात्म की साधिका है। ऐसी स्थिति मे उनकी जीवन-पद्धति मे भी सामान्य लोक-व्यवहार की अपेक्षा अध्यात्म-साधना का स्थान सर्वोपरि होना स्वाभाविक है। यद्यपि उनका सामान्य जीवन एवं उनका कार्य-क्षेत्र सामान्य लौकिक जीवन से बहुत भिन्न दिखाई नही पडता किन्तु अन्तत. वे अध्यात्म की साधिका है तथा उनका जीवन साधना का है। साधिका के बाह्यरूप एवं उसकी दिनचर्या के बारे मे जो परपरागत धारणा चली आ रही है, उसकी दृष्टि से वे साधिका नही दिखाई पडती क्योकि उन्होने न तो भगवे वस्त्र ही धारण किये है और न ही उन्होंने लौकिक कर्म-क्षेत्र का त्याग करके अपने हाथ मे भिक्षा-पात्र धारण किया है। ऐसी स्थिति मे स्थूल दृष्टि से देखने वालो को उनके साधिका रूप पर संदेह हो तो कोई आश्चर्य नही, किन्तु महादेवी का आन्तरिक जीवन—जैसा कि उनके जीवन-वृत्त, सस्मरणो एव काव्य-कृतियो के माध्यम से दृष्टिगोचर होता है—एक मौन एव सच्ची साधिका का जीवन है। उनकी साधना भी बाह्य विधि-विधानो एव स्थूल कर्म-काण्ड की ही नही है अपितु वह एक अत्यन्त सूक्ष्म मानसिक स्तर की साधना है। उस साधना के अंग है—अपनी वासनाओ, तृष्णाओ एव कामनाओ पर विजय प्राप्त करना, अपने अहं को विसर्जित करके लोक-सेवा में अर्पित कर देना, दूसरो के दु.ख को बँटा कर अपनी आत्मा का विस्तार करना, महान् लक्ष्य की साधना एवं अलौकिक प्रभु की

प्रतिपल होता रहता हो
युग कुलों का आलिंगन !

वस्तुत महादेवी ने कही भी अतिवादिता एव कट्टरवादिता का आश्रय नही लिया है, उनके दर्शन एव जीवन-दर्शन के अन्य पक्षो की भाँति इस क्षेत्र मे भी उन्होने परम्परा और नूतनता, प्राचीनता और आधुनिकता, अद्वैत दर्शन और बौद्ध मत के बीच समन्वय स्थापित करते हुए अपनी स्वतत्र चिन्तना का परिचय दिया है।

● मृत्यु—मृत्यु सम्वन्धी दृष्टिकोण भी व्यक्ति के जीवन-दर्शन का अंग होता है क्योकि अन्तत जीवन की स्थूल परिणति मृत्यु मे ही होती है, अत हमारे जीवन के विभिन्न क्रिया-कलाप मृत्यु सम्वन्धी धारणा से अप्रभावित नही रह सकते। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, महादेवी का दर्शन एव जीवन-दर्शन अद्वैतवाद एव बौद्ध मत से प्रभावित है तथा ये दोनो ही मत मरणोत्तर जीवन की धारणा को स्वीकार करते है, अत महादेवी के लिए मृत्यु कोई ऐसी बात नही है जिससे भयभीत हुआ जाय। अद्वैतवाद के अनुसार मृत्यु ही वह स्थिति है जिसके अनन्तर आत्मा और परमात्मा का स्थायी मिलन सभव है क्योकि जब तक आत्मा शरीर के बन्धन मे बँधी हुई है तब तक उसकी परमात्मा से स्थायी एकता सभव नही; इसीलिए कवयित्री ने बार-बार मृत्यु का आह्वान किया है:

जो वे सपना बन आवें,
तुम चिर निद्रा बन जाना !

यहाँ निद्रा मृत्यु की ही प्रतीक है। वस्तुत अद्वैतवाद के अनुसार एक तो आत्मा अमर होती है दूसरे वह परमात्मा से अभिन्न होती है—इन दोनो ही धारणाओ के कारण अद्वैतवादिनी कवयित्री के लिए मृत्यु और जीवन मे विशेष अन्तर नही है, अपितु मृत्यु अपेक्षाकृत श्रेयष्कर है, क्योकि उस स्थिति मे परमात्मा से मिलन संभव होगा।

दूसरी ओर बौद्ध मत मे भी मृत्यु चेतना के विकास की द्योतक है। प्रत्येक जन्म मे चेतना अपने कर्म-सस्कारो के अनुसार विकासोन्मुख होती हुई अन्तत. निर्वाण की ओर अग्रसर होती है—अत जन्म और मृत्यु का क्रम चेतना के विकास की ही विभिन्न मजिलो का सूचक है; महादेवी भी यत्र-तत्र इसी विचार का प्रतिपादन करती है

अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास !

या—

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग, एक समान,

अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर !

इस प्रकार प्रत्येक जीवन लक्ष्य की ओर बढता हुआ एक चरण है तथा मृत्यु उसी का दूसरा चरण है—ऐसी स्थिति मे मृत्यु जीवन का ही एक पक्ष या उसकी एक स्थिति मात्र है।

मृत्यु का अर्थ यदि मिटना भी लिया जाय तो उस अर्थ मे भी महादेवी उसे स्वीकार करती हैं क्यो कि विना मिटे ही कोई भी महान तत्त्व उपलब्ध नही होता.

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान !

इसीलिए रहस्यवादिनी साधिका महादेवी अपने जीवन-दीप को सम्बोधित करती हुई कहती है.

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
× × ×
तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलना-मय,
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल !

अस्तु, महादेवी की मृत्यु सम्वन्धी धारणा भी उनकी जीवन सम्बन्धी धारणा के ही अनुकूल, उसी की अंगभूत है। जीवन और मृत्यु—दोनो को ही वे एक-दूसरे की पूरक मानती हुई उन्हे आत्म-विकास एव परम तत्त्व की उपलब्धि के एक अवसर, साधन एवं माध्यम के रूप में स्वीकार करती हैं।

अंत मे निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि महादेवी का जीवन-दर्शन एक ओर अध्यात्मवाद के उच्च आधार पर तथा दूसरी ओर वौद्ध-दर्शन के वोध पर आधारित है, अत. उनकी जीवन-दृष्टि जहाँ जन्म-जन्मान्तरो की सीमाओ को पार कर किसी विराट चेतना की ओर अग्रसर है वहाँ वह सासारिक दु खो को—यहाँ तक कि मृत्यु को भी सहज भाव से स्वीकार करती हुई शान्त भाव से साधना-रत है। वस्तुत. उनका समस्त जीवन-दर्शन उनकी अडिग आस्था की ज्योति से प्रकाशित है; अत. एक शब्द मे उनका जीवन-दर्शन 'आस्थामय' है। चाहें तो उसे 'आस्थावाद' भी कह सकते हैं।

* * *

प्रतीक्षा मे दीप की भाँति जलते-जलते क्षीण होकर मिट जाना आदि। इन सबका सकेत उन्होने बार-बार अपने काव्य में किया है; यथा :

(क) कामनाओ का अन्त :

चिर तृप्ति कामनाओं का
कर जाती निष्फल जीवन,
बुझते ही प्यास हमारी
पल में विरक्ति जाती बन !
× × ×
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना !

(ख) अहं का विसर्जन :

तरी को ले जाओ मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णधार;
वही पहुँचा देगा पार !

(ग) दुःख के द्वारा आत्म-विस्तार :

दुःख के पद छू बहते झर-झर,
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता !

(घ) त्याग एवं आत्म-त्याग :

शून्य से बन जाओ गंभीर,
त्याग की हो जाओ झंकार,
इस छोटे प्याले में आज,
डुबा डालो सारा संसार !

या—

गला कर मृत् पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण,
सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान !

या—

> तू जल जल जितना होता क्षय,
> वह समीप आता छलनामय,
> मधुर मिलन में मिट जाना तू
> उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल।

इस प्रकार कामनाओ के अन्त से लेकर आत्म-त्याग तक उन सभी तत्त्वो को महादेवी ने अपनी साधना-पद्धति मे स्थान दिया है जो कि सामान्यत आत्म-चेतना के परिष्कार, विस्तार एवं विकास के लिए उपयोगी हैं। अन्तत अलौकिक पथ के पथिक को लौकिकता के वन्धनो से मुक्त होना पडता है, जव तक लौकिक आकर्षणो से बँधा रहता है तव तक वह सूक्ष्म अलौकिक सत्ता की अनुभूति प्राप्त करने मे असमर्थ रहता है। अत महादेवी के लिए इस प्रकार के साधना-पथ का चयन करना आवश्यक था जो उन्हे लौकिकता से ऊपर उठाकर अलौकिकता की ओर अग्रसर करे, और निश्चित ही उन्होने जो मार्ग चुना—साधना के जिन तत्त्वो को अपनाया—वे उनके परम लक्ष्य के सर्वथा अनुकूल हैं।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि कवयित्री का यह साधना-पथ या उनकी यह जीवन-पद्धति परंपरागत है या नव आविष्कृत ? इसके उत्तर मे भी हम यही कहेगे कि वह न तो परपरा से सर्वथा भिन्न है और न ही आधुनिकता एव नवीनता से शून्य है। उन्होंने इस क्षेत्र मे भी अपनी समन्वयशीलता का परिचय दिया है। साधना के उन सव तत्त्वो को जो आज के मनोविज्ञान एव समाज-दर्शन की दृष्टि से आत्म-विकास के लिए उपयुक्त सिद्ध होते है, परम्परा से ले लिया गया है पर वाह्याडम्वरो, विधि-विधानो एव कर्मकाण्ड से सम्वद्ध उन सव परंपरागत तत्त्वो को ठुकरा दिया गया है जो तात्त्विक दृष्टि से निरर्थक सिद्ध होते है। उन्होने आध्यात्म-साधना के लिए मध्यकालीन साधको की भाँति सन्यासिन या जोगिन का रूप धारण करना आवश्यक नही माना, पर दूसरी ओर उन्होने दाम्पत्य एवं गार्हस्थ्य जीवन भी स्वीकार नही किया, वे भिक्षुणी नही वनी, अध्यापिका के रूप मे वेतन-भोगी कर्मचारी का जीवन अपनाते हुए ही अपनी साधना मे लगी रही। इसी प्रकार उनका लक्ष्य अद्वैत स्थिति है पर साधनो के रूप मे उन्होने वुद्ध के अप्टाग मार्ग एव मध्यम मार्ग के तत्त्वो को उदारतापूर्वक स्वीकार किया है, सम्यक् दृप्टि, सम्यक् चिन्तन, सम्यक् कर्म आदि ही उनके साधन हैं तथा राग और विराग के वीच की स्थिति के द्योतक मध्यम मार्ग की वे पथिक हैं। जिसे वुद्ध ने मध्यम प्रतिपदा कहा है उसकी अनुभूति कवयित्री के इन शव्दो मे भी देखी जा सकती है.

> चिर मिलन-विरह पुलिनों का
> सरिता हो मेरा जीवन,

प्रतिपल होता रहता हो
युग कुलों का आलिंगन !

वस्तुत महादेवी ने कही भी अतिवादिता एव कट्टरवादिता का आश्रय नही लिया है , उनके दर्शन एव जीवन-दर्शन के अन्य पक्षो की भाँति इस क्षेत्र मे भी उन्होने परम्परा और नूतनता, प्राचीनता और आधुनिकता, अद्वैत दर्शन और बौद्ध मत के बीच समन्वय स्थापित करते हुए अपनी स्वतत्र चिन्तना का परिचय दिया है ।

मृत्यु—मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण भी व्यक्ति के जीवन-दर्शन का अग होता है क्योकि अन्तत जीवन की स्थूल परिणति मृत्यु मे ही होती है, अत. हमारे जीवन के विभिन्न क्रिया-कलाप मृत्यु सम्बन्धी धारणा से अप्रभावित नही रह सकते । जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, महादेवी का दर्शन एव जीवन-दर्शन अद्वैतवाद एव बौद्ध मत से प्रभावित है तथा ये दोनो ही मत मरणोत्तर जीवन की धारणा को स्वीकार करते है, अत महादेवी के लिए मृत्यु कोई ऐसी बात नही है जिससे भयभीत हुआ जाय । अद्वैतवाद के अनुसार मृत्यु ही वह स्थिति है जिसके अनन्तर आत्मा और परमात्मा का स्थायी मिलन संभव है क्योकि जब तक आत्मा शरीर के बन्धन मे बँधी हुई है तब तक उसकी परमात्मा से स्थायी एकता सभव नही , इसीलिए कवयित्री ने बार-बार मृत्यु का आह्वान किया है

जो वे सपना बन आवें,
तुम चिर निद्रा बन जाना !

यहाँ निद्रा मृत्यु की ही प्रतीक है । वस्तुत अद्वैतवाद के अनुसार एक तो आत्मा अमर होती है दूसरे वह परमात्मा से अभिन्न होती है—इन दोनो ही धारणाओ के कारण अद्वैतवादिनी कवयित्री के लिए मृत्यु और जीवन मे विशेष अन्तर नही है, अपितु मृत्यु अपेक्षाकृत श्रेयष्कर है, क्योकि उस स्थिति मे परमात्मा से मिलन सभव होगा ।

दूसरी ओर बौद्ध मत मे भी मृत्यु चेतना के विकास की द्योतक है । प्रत्येक जन्म मे चेतना अपने कर्म-सस्कारो के अनुसार विकासोन्मुख होती हुई अन्तत निर्वाण की ओर अग्रसर होती है—अत. जन्म और मृत्यु का क्रम चेतना के विकास की ही विभिन्न मजिलो का सूचक है , महादेवी भी यत्र-तत्र इसी विचार का प्रतिपादन करती है .

अमरता है जीवन का ह्रास
मृत्यु जीवन का चरम विकास !

या—

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग, एक समान,

अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर !

इस प्रकार प्रत्येक जीवन लक्ष्य की ओर बढता हुआ एक चरण है तथा मृत्यु उसी का दूसरा चरण है—ऐसी स्थिति में मृत्यु जीवन का ही एक पक्ष या उसकी एक स्थिति मात्र है।

मृत्यु का अर्थ यदि मिटना भी लिया जाय तो उस अर्थ मे भी महादेवी उसे स्वीकार करती है क्यो कि विना मिटे ही कोई भी महान तत्त्व उपलब्ध नही होता .

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान !

इसीलिए रहस्यवादिनी साधिका महादेवी अपने जीवन-दीप को सम्बोधित करती हुई कहती है -

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !

× × ×

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलना-मय,
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल !

अस्तु, महादेवी की मृत्यु सम्बन्धी धारणा भी उनकी जीवन सम्बन्धी धारणा के ही अनुकूल, उसी की अगभूत है। जीवन और मृत्यु—दोनो को ही वे एक-दूसरे की पूरक मानती हुई उन्हे आत्म-विकास एव परम तत्त्व की उपलब्धि के एक अवसर, साधन एव माध्यम के रूप मे स्वीकार करती हैं।

अत मे निष्कर्प रूप मे कह सकते है कि महादेवी का जीवन-दर्शन एक ओर अध्यात्मवाद के उच्च आधार पर तथा दूसरी ओर वौद्ध-दर्शन के वोध पर आधारित है ; अत. उनकी जीवन-दृष्टि जहाँ जन्म-जन्मान्तरो की सीमाओ को पार कर किसी विराट चेतना की ओर अग्रसर है वहाँ वह सासारिक दु खो को—यहाँ तक कि मृत्यु को भी सहज भाव से स्वीकार करती हुई शान्त भाव से साधना-रत है। वस्तुत: उनका समस्त जीवन-दर्शन उनकी अडिग आस्था की ज्योति से प्रकाशित है ; अत. एक शव्द मे उनका जीवन-दर्शन 'आस्थामय' है। चाहे तो उसे 'आस्थावाद' भी कह सकते हैं।

* * *

६

महादेवी का युग-बोध

'....वर्तमान आकाश से गिरी हुई सम्बन्ध रहित वस्तु न होकर भूतकाल का ही बालक है जिसके जन्म का रहस्य भूतकाल में ही ढूँढा जा सकता है।'

'......सनातन, चिरन्तन, शाश्वत जैसे शब्दों से नये युग को खीझ है, पर उन्हें ठीक समझे बिना जीवन की मूल प्रेरणा में विश्वास कठिन होगा। सनातन से अस्तित्व मात्र का बोध होता है, चिरन्तन उसके बहुत काल से चले आने को सूचित करता है और शाश्वत में हमें जीवन की मूल चेतना की क्रमबद्धता का संकेत मिलता है।'

—महादेवी

महादेवी का जीवन-दर्शन सामान्यत अद्वैत-दर्शन एव बौद्ध मत के अति सूक्ष्म एव पारलौकिक तत्त्वो पर आधारित है अत इससे सहज ही यह भ्रान्ति हो सकती है कि उनकी युगीन-दृष्टि एव सामयिक चिन्तना परम्परागत मध्यकालीन बोध पर आधारित होगी, उसमे आधुनिक चेतना के स्पर्श का अभाव होगा, जबकि वस्तुत ऐसा नही है। जिस आधुनिक युग-बोध की चर्चा प्राय आजकल की जाती है उससे महादेवी अनवगत है—ऐसा नही है। उनके गद्य-लेखो से इस बात का प्रमाण मिलता है कि उनकी आत्म-चेतना एव बौद्धिक दृष्टि आज की परिस्थितियो एव समस्याओ से विमुख नही है, उन्होने उन पर गभीरता से विचार किया है, पर उनके निष्कर्ष तथा-कथित आधुनिक बोध के निष्कर्षों के प्रतिकूल है। उन्होने भारतीय एव पाश्चात्य चिन्तको की धारणाओ का अंधानुसरण नही किया और न ही वे उन सीमाओ को स्वीकार करती है जिनसे आधुनिक चिन्तक बँधे हुए है। अत. उनका युग-बोध सीमित न होकर व्यापक है—ऐसी स्थिति मे उनके निष्कर्षों मे अन्य समीक्षको के निष्कर्षों से अन्तर होना स्वाभाविक है। यहाँ आधुनिक युग व समाज के सम्बन्ध मे उनके कतिपय निष्कर्ष प्रस्तुत है—

(क) **आधुनिक समाज**—आधुनिक समाज की परिस्तिथियो का विश्लेपण करते हुए महादेवी ने प्रतिपादित किया है कि आज हमारे जीवन मे सतुलन, व्यवस्था एवं उच्च आदर्शो का अभाव परिलक्षित होता है जिससे समाज मे अनेक विकृतियाँ आ गई हैं। इससे हमारी शक्तियो का उपयोग वैयक्तिक स्वार्थ-साधन एव दूसरो के नाश मे हो रहा है, परिणामस्वरूप समाज की प्रगति एवं उसके नव-निर्माण का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। उनके शब्दो मे—"हमारी समाजिक परिस्थिति मे अभी तक प्रतिक्रियात्मक ध्वस-युग ही चल रहा है। उसके सम्बन्ध मे ऐसा कोई स्वस्थ और पूर्ण चित्र अकित नही किया जा सका जिसे दृष्टि का केन्द्र वनाकर निर्माण का क्रम आरम्भ किया जा सकता। इस दिशा मे हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और सुविधा के अनुसार ही तोडने-फोडने का कार्य करते चलते है, अत. कही चट्टान पर सुनार की हथौडी का हल्का स्पर्श होता है और कही राख के ढेर पर लोहार के हथौडे की गहरी चोट। ··निर्माण की दिशा मे किसी सामूहिक लक्ष्य के अभाव मे व्यक्तिगत प्रयास, अराजकता के आकस्मिक उदाहरणो से अधिक महत्त्व नही पाते।"[१]

(ख) **पुरुष और नारी सम्बन्ध**—मानव-समाज के दो पक्ष है—पुरुष और नारी। अत किसी भी मानव-समाज की आन्तरिक स्थिति एव गति-प्रगति वहुत कुछ पुरुष और नारी के पारस्परिक सम्बन्धो पर निर्भर रहती हैं। पर महादेवी के विचारानुसार यह सम्बन्ध अभी तक उस रूप मे विकसित नही हो पाया जिस रूप मे वह समाज को स्वस्थ गति एव सतुलन प्रदान कर सके। इसमे दोष नारी का नही पुरुष का है। उनके विचार से नारी सदा से अपना कर्त्तव्य-निर्वाह करती रही है, जवकि पुरुष अपने कर्त्तव्य से प्राय विमुख रहा है। इसी लिए नारी के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है—"आदिमकाल से आजतक विकास-पथ पर पुरुप का साथ देकर, उसकी यात्रा को सरल वनाकर, उसके अभिशापो को स्वय झेलकर और अपने वरदानो से जीवन मे अक्षय शक्ति भरकर, मानवी ने जिस व्यक्तित्व, चेतना और हृदय का विकास किया है उसी का पर्याय नारी है।"[२] किसी भी समाज की प्रगति या दुर्गति का रहस्य भी उसके नारी सम्वन्धी दृष्टिकोण मे निहित है। जव भी कोई जाति या समाज प्रगति पथ पर अग्रसर हुई है तो वह नारी के विभिन्न रूपो और शक्तियो के वल पर ही जव कि वे जातियाँ जिन्होंने नारी को केवल विलास का साधन माना दुर्गति की ओर उन्मुख हुई है। अत. महादेवी का दृढ विश्वास है कि 'किसी भी जीवित जाति ने उससे विविध-रूपो और शक्तियो की अवमानना नही की,

---

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० २७।

२. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० २२२।

परन्तु किसी भी मरणासन्न जाति ने, अपनी मृत्यु की व्यथा कम करने के लिए उसे मदिरा से अधिक महत्त्व नही दिया ।'[3]

यद्यपि आधुनिक युग मे वौद्धिकता, प्रगतिशीलता एव यथार्थवादिता के कारण सामाजिक स्थिति मे वहुत परिवर्तन हो गया है जिससे विभिन्न क्षेत्रो मे नारी को समानता के अधिकार प्राप्त हुए है । अव वह पहले से इतनी अधिक स्वतत्र हो गयी हैं कि अपने भविष्य का निर्माण स्वय कर सकती है । 'वह आज इतनी सज्ञाहीन और पगु नही कि पुरुप अकेले ही उसके भविष्य और गति के सम्वन्ध मे निश्चय कर ले ।'[४] अब सारे संसार की नारी जाग उठी है । पर फिर भी पुरुप की दृष्टि मे जितना परिवर्तन अपेक्षित था, वह नही हुआ । वह आज भी सयम के अभाव से पीडित है—अत. उसने अपनी विलासिता की प्रवृत्ति को तुष्ट करने के लिए तथा नारी को उसका साधन बनाने के लिए ऐसे-ऐसे वादो एव सिद्धान्तो का आविष्कार कर लिया है जिससे वह नारी के शरीर का उन्मुक्त भोग कर सके । आज विज्ञान, मनोविज्ञान, कला और साहित्य के माध्यम से जिस भोगवाद का समर्थन एव प्रचार हो रहा है वह पुरुप की इस प्रवृत्ति का परिणाम है । महादेवी के शव्दो मे यह 'अनियत्रित वासना का प्रदर्शन स्त्री के प्रति क्रूर व्यग ही नही जीवन के प्रति विश्वास-घात भी है । ऐसी स्थिति मे नारी के सामने समस्या है कि वह क्या करे और क्या नही ? 'यदि वह पुरुष की इस प्रवृत्ति को स्वीकृति देती है तो जीवन को वहुत पीछे लौटा ले जाकर एक शमशान में छोड आती है और यदि उसे अस्वीकार-करती है तो समाज को पीछे छोड शून्य मे आगे वढ़ जाती है ।'[५] अत इस परिस्थिति मे नारी को पुरुष का नेतृत्व अस्वीकार करके अपना मार्ग स्वय चुनना होगा क्योकि 'स्त्री के जीवन के तार-तार को जिसने तोडकर उलझा डाला है, उसके अणु-अणु को जिसने निर्जीव वना दिया है और उसके सोने के ससार को जो धूल के मोल लेती रही है पुरुप की वही लालसा, आज की नारी के लिए, विश्वस्त मार्ग दर्शिका न वन सकेगी ।' इस प्रकार महादेवी सामाजिक जीवन मे न केवल नारी और पुरुप की समानता का अपितु नारी की पूर्ण स्वतत्रता का भी समर्थन करती है, अन्यथा समाज का उत्थान सभव नही ।

(ग) आज की धार्मिक परिस्थियाँ—आज धर्म की क्या स्थिति है ? क्या वह समाज के मार्ग-दर्शन एव सहज विकास मे सफल सिद्ध हो रहा है ? इन प्रश्नो पर विचार करती हुई महादेवी इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि धर्म की स्थिति भी सतोषजनक नही । समाज की भाँति धर्म मे भी अनेक विकृतियाँ आ चुकी है । 'एक चल नही सकता, दूसरा वृत्त के भीतर वृत्त वनाता हुआ एक पैर से दौड लगा रहा है । गर्म और ठडे जल से भरे पात्रो की निकटता जैसे उनका तापमान एकसा कर देती है

३-५. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० २२२-४ ।

उसी प्रकार हमारे धर्म और समाज की सापेक्ष स्थिति उन्हे एक सी निर्जीवता देती रहती हैं। आज तो वाह्य और आन्तरिक विकृति ने धर्म को ऐसी परिस्थिति मे पहुँचा दिया हैं जहाँ रूढिग्रस्त रहने का नाम निष्ठा और रीतिकालीन प्रवृत्तियो की चंचल क्रीडा ही गतिशीलता हैं।'[६]

धर्म की अधोगति का एक भयकर परिणाम यह हुआ कि हमारे मन से आस्तिकता और आस्था विदा हो गई। अनेक व्यक्ति धर्म और ईश्वर दोनो को अस्वीकार करने लगे। पर उनके स्थान पर किसी 'अन्य व्यापक आदर्श की प्रतिष्ठा न होने के कारण यह अस्वीकृति एक उच्छृङ्खल विरोध-प्रदर्शन मात्र रह गई। नास्तिकता उसी दशा मे सृजनात्मक विकास दे सकती हैं जब ईश्वरता से अधिक सजीव और सामञ्जस्यपूर्ण आदर्श जीवन के साथ चलता रहे। जहाँ केवल अविश्वास ही उसका सम्वल हैं, वहाँ वह जीवन के प्रति भी अनास्था उत्पन्न किये विना नही रहती। और जीवन के प्रति अविश्वासी व्यक्ति का, सृजन के प्रति भी अनास्थावान हो जाना अनिवार्य हैं। ऐसी स्थिति का अतिम और अवश्यम्भावी परिणाम, जीवन के प्रति व्यर्थता की भावना और निराशा ही होती है।'[७] इस प्रकार धर्म के पतन एव ईश्वर के प्रति अनास्था ने हमारे जीवन की प्रेरणाओ एवं आशाओ को ही समाप्त कर दिया हैं।

(घ) आधुनिक राजनीति—आज की राजनीतिक स्थिति धर्म की स्थिति से भी अधिक घातक हैं। 'धर्म ने यदि अपने-आपको कूप के समान पत्थरो से वाँध लिया है तो राजनीति ने धरती के ढाल पर पडे पानी के समान अनेक धाराओ मे विभक्त होकर शक्ति को विखरा डाला है।'[८] हमारे 'वौद्धिक विकास के परिणाम-स्वरूप इस युग मे राजनीतिक विचार-धाराओ का तो पर्याप्त विकास हुआ किन्तु उनकी परिणति इतने अधिक वादो एव पद्धतियों मे हुई कि जिससे जीवन मे अनावश्यक द्वन्द्व एव युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी हैं। अनेक वादो की उपस्थिति से उत्पन्न स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हुए महादेवीजी ने लिखा हैं—'पुराना पर स्वार्थी साम्राज्यवाद, नवीन पर क्रूर नात्सीजम और फासिज्म अध्यात्म-प्रधान गाँधीवाद, जनसत्तात्मक साम्यवाद, समाजवाद आदि सब रेल के तीसरे दर्जे के छोटे डव्वे मे ठसाठस भरे उन यात्रियो जैसे हो रहे है, जो एक दूसरे के सिर पर सवार होकर ही खडे रहने का अवकाश और लडने-झगडने मे ही मनोरजन के साधन पा सकते है।···· एक की सीमाएँ स्पप्ट हुए विना ही दूसरी अपने लिए स्थान बनाने लगती है और इस प्रकार विश्व का राजनीतिक जीवन परस्पर विरोधिनी शक्तियो का मेला मात्र रह गया है।'[९]

भारतीय दृष्टि से हमारे यहाँ दो राजनीतिक विचारधाराएँ प्रमुख है—एक गाँधीवाद एवं दूसरा साम्यवाद। महादेवी ने गाँधीवाद का समर्थन अवश्य किया है

६-९. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० २९-३१।

क्योंकि यह वाह्य दृष्टि से राष्ट्र का सयुक्त मोर्चा था तथा आन्तरिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण था। पर साम्यवाद को वे भारतीय भूमि के लिए अपरिचित एव अनावश्यक ही मानती है। उनके शब्दो मे—'उसकी स्थिति ऐसी ही है जैसी पैराशूट से इस धरती पर उतर आने वाले रूसी की हो सकती थी जिसकी मित्रता मे विश्वास करके भी हम जिसके इस देश-सम्वन्धी ज्ञान मे सदेह करेगे, जिसे अपनी संस्कृति और जीवन का मूल्य समझाने का प्रयत्न करेंगे और न समझने पर खीझ उठेंगे।'[१०]

गाँधीवाद सम्वन्धी उपर्युक्त विचार वहुत पहले के है, अत. कहा नही जा सकता कि महादेवी का अव उसके सम्वन्ध मे क्या मत है। पर इधर जिस प्रकार गाँधीवाद निष्क्रिय एव प्रभाव-शून्य हो गया है उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि विश्व की ही भाँति भारत की राजनीतिक स्थिति अस्पष्ट एव उलझी हुई है।

(ङ) **आज की आर्थिक स्थिति**—आर्थिक दृष्टि से भी आज हमारे समाज की स्थिति विपम है। 'इस विपम मानव-समष्टि मे, सौ मे चौरानवे मनुष्य तो जड और निर्धन श्रमजीवी है जिनकी स्थिति का एक मात्र उपयोग शेप छ. के लिए सुविधाएँ जुटाना है और शेप छ मे, अकर्मण्यधनजीवी, उच्च वुद्धिजीवी, निम्न बुद्धिजीवी श्रमिक आदि इस प्रकार एकत्र है कि एक की विकृति से दूसरा गलता-छीजता है।'[११]

कदाचित् धनिक वर्ग की उन्नति एवं वैभव को सामाजिक प्रगति एव समृद्धि का सूचक माना जाय, पर महादेवी इससे सहमत नही है। उनके शब्दो मे—'केवल धनजीवियो मे, किसी जाति की स्वस्थ विशेषताओ और व्यापक गुणो को खोजना व्यर्थ का प्रयास है। उनकी स्थिति तो उस रोग के समान है जो जितना अधिक स्थान घेरता है उतना ही अधिक स्वास्थ्य का अभाव प्रकट करता है और जैसे-जैसे तीव्र होता है वैसे-वैसे जीवन के संकट का विज्ञापन वनता जाता है।'

ये धनजीवी समाज के लिए तो अस्वास्थ्य के सूचक है ही, स्वय अपने-आपके के लिए भी किसी स्वस्थ स्थिति के द्योतक नही है क्योंकि नितान्त बुद्धिजीवी वर्ग जैसे एक ओर उच्च वनने की आकाक्षा और दूसरी ओर अभाव की शिलाओ से दवकर टूट जाता है उसी प्रकार सर्वथा समृद्ध भी उच्चताजनित गर्व और सुविधाओ के दृढ़ साँचे मे पथराता रहता है।[१२]

दूसरी ओर श्रमजीवियों की स्थिति क्या है ? धन और श्रम के असम वितरण ने उनके जीवन के सतुलन को भी भग कर दिया है। 'केवल श्रम ही श्रम के भार और विश्राम देने वाले साधनो के नितान्त अभाव ने हमारे श्रमजीवी जीवन का समस्त सौन्दर्य नष्ट कर दिया है।'[१३] फिर भी सामान्य मानवता एव सांस्कृतिक मूल्यो की

१०-१३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० २३२-३४।

दृष्टि से यह श्रमजीवी वर्ग अव भी अन्य वर्गों की तुलना मे आदरणीय है क्योकि उसका पतन अभी उस सीमा तक नही हुआ जिस सीमा तक धनिक वर्ग एव बुद्धिजीवी वर्ग का हो गया है। वे लिखती है—'इस मानव-समष्टि मे ज्ञान के अभाव ने रूढियो को अतल गहराई दे दी है यह मिथ्या नही और अर्थ-वैपम्य ने इसकी दयनीयता को असीम वना डाला है यह सत्य है, परन्तु सव कुछ कह-सुन-चुकने पर इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि श्रम का यह उपासक, केवल वुद्धि व्यापारी से अधिक स्वाभाविक मनुष्य भी है और जातीय गुणो का उससे अधिक विश्वसनीय रक्षक भी।.... जीवन के सघर्ष मे ठहरने की वह जितनी क्षमता रखता है उतनी किसी बुद्धिवादी मे सभव नही।'[१४] इस प्रकार महादेवी आज की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करती हुई अपने व्यापक प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय देती है। यद्यपि वे मार्क्सवादी विचारो मे विश्वास नही करतीं किन्तु जहाँ तक समाज की आर्थिक विषमता का प्रश्न है वे वर्ग-भेद की मान्यता को स्वीकार करती हुई इसे मानवता के लिए अभिशाप मानती है।

(च) **शिक्षा की स्थिति**—आज हमारी शिक्षा की स्थिति भी शोचनीय है। किसी सुविकसित एव सुनियोजित राष्ट्रीय शिक्षा-प्राणली के अभाव मे हमारा शिक्षित वर्ग आदर्श-विहीन, निरुद्देश्य एव लक्ष्यच्युत हो गया है। शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य नौकरी प्राप्त करना हो गया है। इसीलिए 'छोटी से छोटी नौकरी रूपी अपवर्ग का आभास मिलते ही वह वेशभूषा से लेकर सिद्धान्त तक इस तरह उतार फेंकता है जैसे उनमे असाध्य रोग के कीटाणु भर गये हो। जिन्हे ऐसा अपवर्ग नही मिलता वे या तो निराशा और कटुता से चारो ओर के वातावरण को विपाक्त करके नरक की सृष्टि करते रहते है या आँख मूंद कर उच्छृङ्खल विकृतियो के चलचित्रों का काल्पनिक स्वर्ग रचते है।'[१५]

शिक्षित वर्ग की शक्तिहीनता एवं लक्ष्य-विहीनता की स्थिति का दिग्दर्शन कराती हुई वे लिखती है—'आज जव जीवन का प्रत्येक क्षण शक्ति की परीक्षा चाहता है, प्रत्येक दिन निर्माण के इतिहास मे नया पृष्ठ जोड़ जाता है तव भी उनके पास कोई लक्ष्य नही जिसे केन्द्र वनाकर उसकी कल्पना, स्वप्न, सकल्प आदि स्वस्थ विकास पा सकें। उनके निकट लेने योग्य केवल दासता है और देने के लिए विकृति मात्र।'[१६]

विद्यार्थियो एवं शिक्षितो की इस स्थिति के लिए शिक्षक वर्ग को उत्तरदायी वताया जा सकता है। पर यह वर्ग स्वय अपने सारे कर्त्तव्यो एव उत्तरदायित्वो को भूल कर अपने लिए अधिक से अधिक सुविधाएँ जुटाने मे निरत है। जो शक्ति एवं समय उसके पास अवशिष्ट है उसका उपयोग अपने ही साथियो से सघर्ष करने मे

---

१४. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ३४।

१५-१६. वही; पृ० २५६।

करता है, फलत. वह 'कभी एक की अवज्ञा कभी दूसरे से ईर्ष्या का व्यवसाय करके अथवा वेतन-वृद्धि के सघर्ष मे विजयी या पराजित होकर जीते रहते है। ये विद्या-व्यवसायी या तो इतने निश्चिन्त हैं या इतने सघर्षलीन कि उन्हे अपने कर्त्तव्य की गुरुता पर विचार कर अपनी स्थिति से विद्रोह करने का अवकाश नही मिलता।'

शिक्षक वर्ग की इस मन· स्थिति एव परिस्थिति का ही परिणाम है कि 'जैसे हर टकसाल मे एक प्रकार के सिक्के ढलते रहते है उसी प्रकार हमारे शिक्षा-गृहो से एक ही प्रकार के लक्ष्यहीन, हताश पर कल्पनाजीवी विद्यार्थी निकलते रहते है। अवश्य ही इसका उत्तरदायित्व सम्पूर्ण व्यवस्था पर रहेगा, पर आज अन्य क्षेत्रो से अधिक तटस्थ और सम्मानित क्षेत्र मे कार्य करने वाले यदि अपनी व्यावसायिक बुद्धि और सकीर्ण दृष्टिकोण को बदल सकते तो एक नई पीढ़ी के भविष्य की रेखाएँ स्पष्ट और उज्ज्वल हो उठती।'[१७]

(छ) **बौद्धिकता एवं बुद्धिजीवी वर्ग**—शिक्षा की उपर्युक्त स्थिति के कारण ही आज हमारी चेतना का एकागी विकास हो रहा है, हमारी समस्त मानसिक शक्तियाँ विज्ञान और बौद्धिकता की ओर उन्मुख है जिसके फलस्वरूप हृदय की भावात्मकता कुठित होती जा रही हैं। महादेवी के शब्दो मे—'विज्ञान के चरम विकास ने हमारी आधुनिकता को एकागी बुद्धिवाद मे इस तरह सीमित किया है कि आज जीवन के किसी भी आदर्श को उसके निरपेक्ष सत्य के लिए स्वीकार करना कठिन है। परिणामत एक निस्सार बौद्धिक उलझन भी हमारे हृदय की सम्पूर्ण सरल भावनाओ से अधिक सारवती जान पडे तो आश्चर्य ही क्या है।' इस शुष्क बौद्धिकता से एक ओर तो जीवन मे विश्रृंखलता या बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है तो दूसरी ओर वैयक्तिकता का प्रादुर्भाव अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है।

भारतीय बुद्धिजीवियो की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय है। उन्होने जिस बौद्धिकता का वरण किया है वह स्वयं उनके द्वारा विकसित न होकर पाश्चात्य चिन्तको से उद्धृत है। वे न अपनी बुद्धि से सोचते हैं और न ही अपनी दृष्टि से देखते है। एक प्रकार से मानसिक गुलामी एव हीनता की भावना से ग्रस्त पश्चिम का आतक उनकी चेतना पर बुरी तरह छाया हुआ है। इसीलिए 'उनका पगु से पगु स्वप्न भी विदेशीय पंख लगा लेने पर स्वर्ग का सन्देशवाहक मान लिया जाता है। उनका विरूप से विरूप आदर्श भी पश्चिमीय साँचे मे ढलकर सुन्दरतम के अतिरिक्त और कोई सज्ञा नही पाता। उनका मूल्यहीन से मूल्यहीन सिद्धान्त भी दूसरी संस्कृति की छाया का स्पर्श करते ही पारसो का शिरोमणि कहलाने लगता है। उनका दरिद्र से दरिद्र विचार

---

१७. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० २५८।

भी देशी परिधान में विदेशी पेवन्द लगा कर समस्त विचार-जगत् का एक छत्र सम्राट् स्वीकार कर लिया जाता है।'[१८]

वस्तुत इस मानसिक दासता एवं हीनता की भावना का ही परिणाम है कि आज हमारे पास न तो अपनी परम्पराओ की ठोस आधार भूमि है और न ही भविष्य के निर्माण के लिए कोई अपना स्वप्न है। जिस स्थिति मे आज हम है उसे देखते हुए यह कहना ठीक ही है कि 'ऐसे अव्यवस्थित बुद्धिजीवियो मे सस्कृति की रेखाएँ टूटी हुई और जीवन का चित्र अधूरा ही मिलेगा।'[१९]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी की जीवन-दृष्टि न तो मध्यकालीन विश्वासो के घेरे मे आवद्ध है और न ही आधुनिक युग-वोध से असयुक्त है। उनका चिन्तन प्रत्येक दृष्टि से सतुलित एव सूक्ष्म है। वे आज के तथाकथित आधुनिकता-वादियो की भाँति युग के केवल एक अश—केवल समकालीन खड—को ही अपनी दृष्टि का केन्द्र नही वनाती अपितु वे उसे अतीत एव भविष्य की व्यापक परिधियो के सदर्भ एव परिप्रेक्ष्य मे देखती हुई अपनी दूरदर्शिता का भी परिचय देती है। उनकी दृष्टि सामयिकता के धुंधले वातावरण तक ही सीमित नही है, अपितु वह उससे आगे और पीछे के दृश्यों को भी देख पाने की क्षमता से युक्त है। इसीलिए उन्होने आधुनिक समाज, धर्म, अर्थ, राजनीति, शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान से सम्वद्ध विभिन्न स्थितियो एव परिस्थितियो का सूक्ष्म विश्लेपण करते हुए युगीन विपमताओ एव समस्याओ का निदान एव समाधान पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत किया है। महादेवी के इस विवेचन-विश्लेपण से भले ही वे लोग, जिनकी दृष्टि समसामयिकता के विन्दु तक सीमित हैं, सहमत न हो पाये किन्तु जिनकी चेतना और अनुभूति वर्तमान के लघुतम क्षण को भी अतीत और भविष्य से सुसयुक्त रूप मे देखने की अभ्यस्त है, वे निश्चित ही महादेवी के युग-वोध को एक महत्त्वपूर्ण युग-मीमास के रूप मे स्वीकार किये विना न रह सकेंगे—ऐसा हमारा विश्वास है।

* * *

१८-१९. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ३५।

महादेवी : नया मूल्यांकन

द्वितीय खण्ड

महादेवी की काव्य-वस्तु का विश्लेषण

महादेवी की काव्य-वस्तु का विश्लेषण

- छायावाद और महादेवी

  * *छायावाद : परम्परागत धारणाएँ*

  ** *छायावाद : नयी दृष्टि से*

  *** *महादेवी के काव्य में छायावादी प्रवृत्तियाँ*

- रहस्यवाद और महादेवी

  **** *रहस्यवाद : सामान्य विवेचन*

  ***** *महादेवी की रहस्यानुभूति*

- महादेवी के काव्य में वेदना, करुणा और दुःख

  * *महादेवी का वेदना-भाव*

  ** *महादेवी का करुण-भाव*

  *** *महादेवी का दुःखवाद*

- महादेवी के काव्य में प्रकृति

१

छायावाद : परम्परागत धारणाएँ

"मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बन्धनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोडने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है। छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है··· ।" —महादेवी

महादेवी ने जिस युग मे काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया वह हिन्दी साहित्य की दृष्टि से 'छायावाद-युग' कहा जाता है तथा इस वाद के चार प्रमुख एव प्रतिनिधि कवियो मे महादेवी को स्थान दिया जाता है—इस दृष्टि से इनका छायावाद के साथ घनिष्ठ सम्वन्ध स्वीकार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में महादेवी के काव्य की आधारभूत साहित्यिक पृष्ठभूमि, युगीन चेतना एव मूल प्रवृत्तियो को हृदयगम करने के लिए छायावाद का सम्यक् वोध आवश्यक है। यद्यपि अब तक बीसों ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है जिनमे छायावाद के विभिन्न पक्षो की विवेचना अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए उसके सम्वन्ध मे विभिन्न मतव्य दिये गये है तथा अवश्य ही इससे छायावाद का स्वरूप एव विकास-क्रम स्पष्ट हुआ है, फिर भी हमारे सामने यहाँ समस्या है कि अनेक विद्वानो के परस्पर-विरोधी मतो मे से हम यहाँ किसे ग्रहण करें और किसे नही। अत' छायावादी परिप्रेक्ष्य मे महादेवी का अध्ययन करने से पूर्व हमे छायावाद के सम्वन्ध मे अपना दृष्टिकोण एव बोध सुस्पष्ट कर लेना चाहिये।

(१) छायावाद : परम्परागत धारणाओं का अध्ययन

छायावाद क्या है ? हिन्दी कविता मे लगभग १९१८ ई० से १९३५ ई० तक के समय मे एक नये काव्य-आन्दोलन का प्रवर्त्तन एव विकास हुआ, जिसके अग्रणी

जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एवं महादेवी—ये चारो कवि थे। यह आन्दोलन मूलभूत प्रवृत्तियों एव वाह्य रूप-रगो की दृष्टि से परम्परागत काव्य-धाराओ से इतना भिन्न था कि एकाएक इसे स्वीकार नही किया जा सका। पूर्व प्रतिष्ठित आलोचको एव साहित्यकारो ने इसे उपेक्षा एव उपहास की दृष्टि से देखते हुए, कदाचित् इसे विद्रूप करने के लिए, इसे 'छायावाद' नाम दिया। यद्यपि यह नामकरण इस नयी धारा की किसी आन्तरिक या वाह्य प्रवृत्ति के सम्यक् बोध पर आधारित नही था, फिर भी यही नाम क्रमश· प्रचलित, प्रसिद्ध एव सर्वमान्य हो गया।

किसी वाद, मत या संप्रदाय की व्याख्या सर्वप्रथम उसके नाम-विशेप की विवेचना से आरभ होती है क्योकि किसी भी वाद का सर्वप्रमुख लक्षण या उसकी आधारभूत दृष्टि का द्योतक उसका नाम ही होता है, पर दुर्भाग्य से छायावाद को यह सौभाग्य प्राप्त नही हो सका—फलत. इस वाद की विवेचना मे इसके नामकरण से कोई सहायता नही मिलती। अधिक से अधिक 'छायावाद' सज्ञा का यही अर्थ निकाला जा सकता है कि प्रारभ मे अपनी नूतन अनुभूति एवं लाक्षणिक अभिव्यजना-पद्धति के कारण तद्युगीन साहित्यकारो को यह काव्य अस्पष्ट, धुंधला एवं छाया-जैसा प्रतीत हुआ, इसी प्रतीति का सूचक 'छायांवाद' शब्द है। आगे चलकर एक ओर प्रसाद जैसे समर्थ कवियो ने अपने वुद्धि-बल पर इस 'छाया' के भी नये-नये अर्थो का सधान करके तथा दूसरी ओर बगला से अभिज्ञ आलोचको ने बगाल की छायावादी कविता का सदर्भ प्रस्तुत करके इस नामकरण को स्वरूपगत एव विकासमूलक सार्थकता देने का प्रयास किया। अवश्य ही इससे प्रयास करने वालो की प्रतिभा एवं विद्वता की शक्ति प्रमाणित होती है, पर फिर भी इससे छायावाद के स्वरूप के स्पष्टीकरण मे कोई योग नही मिलता। सच पूछें तो एक भ्रान्तिपूर्ण नाम को स्वीकृति प्रदान करके हमने एक वहुत वडी भ्रान्ति को स्थायित्व दे दिया है जिसका परिणाम यह होता है कि इस काव्य के अध्ययन मे प्रवृत्त होने वाला प्रत्येक अध्येता एव अनुसधित्सु सर्व प्रथम 'छायावाद' के विभिन्न अर्थो एव परिभाषाओ की भूल भुलैया मे चक्कर काटता है और अन्त मे पर्याप्त भटक लेने के वाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'छायावाद' नाम का छायावादी काव्य के स्वरूप एव उसकी प्रवृत्तियो से कोई सम्वन्ध नही है। कल्पना कीजिये, हम दिल्ली नगर के जंक्शन पर एक साइन-बोर्ड लगा दें—'रामपुर' एवं जक्शन के वाहर एक दूसरे साइन बोर्ड पर लिख दे—'यह रामपुर नही दिल्ली है !'—तो इससे यात्रियो को कितनी असुविधा होगी ! ऐसी ही असुविधा 'छायावाद' नामकरण के कारण हिन्दी-साहित्य क्षेत्र मे यात्रा करने वाले हमारे असख्य स्वदेशी-विदेशी छात्र-छात्राओ को हुई है। इतना ही नही, कभी-कभी तो दिग्गज आचार्य भी इससे भ्रमित हुए है। फिर भी हमे नही लगता कि हमारा रूढ़िग्रस्त मस्तिष्क 'छाया-वाद' के स्थान पर कोई और नया नाम स्वीकार कर लेगा।

अस्तु, छायावादी काव्य के स्वरूप-वोध के लिए उसके नाम को भूलकर दो दृष्टियो से विचार करना उचित होगा। एक तो स्वरूप की दृष्टि से यह देखना होगा कि इसकी मूल प्रवृत्ति क्या है, तथा उसकी अभिव्यंजना का वाह्य रूप कैसा है? उसकी कौनसी ऐसी आन्तरिक एव वाह्य प्रवृत्तियाँ है जो उसे पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काव्य-धाराओ से पृथक् करती है। साथ ही हमे ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए उसकी मूल प्रेरणाओ, प्रेरक शक्तियो एव उसके विकास-क्रम को भी स्पष्ट करना होगा। क्रमश इन दोनो दृष्टियो को तात्त्विक दृष्टि एव ऐतिहासिक दृष्टि की सज्ञा दी जा सकती हैं। यहाँ इन दोनो ही दृष्टियो से अलग-अलग विचार किया जाता है।

● **तात्विक दृष्टि से विचार**—इससे पूर्व कि हम अपनी दृष्टि से छायावाद की कोई तात्त्विक मीमासा प्रस्तुत करे, हमे पूर्ववर्ती कवियो एव आलोचको के साक्ष्य पर भी विचार कर लेना चाहिए। इस प्रसग मे स्वय छायावादी कवियो की मान्यताओ को प्राथमिकता देते हुए उनका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है

(क) जयशंकर प्रसाद—'... ...जव **वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी** अभिव्यक्ति होने लगी तव हिन्दी मे उसे छायावाद नाम से अभिहित किया गया है।'[1] (काव्यकला तथा अन्य निवन्ध)

'... मूल मे यह **रहस्यवाद भी नहीं** है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिविम्व है। इसलिये प्रकृति को काव्यगत व्यवहार मे ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है—यह सिद्धान्त भी भ्रामक है।'[2] (वही)

'....'यद्यपि प्रकृति का आलम्वन, स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य धारा मे होने लगा है किन्तु **प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।**'[3]

'.... **ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान** तथा **उपचार-वक्रता** के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ है।'[4]

प्रसाद के उपर्युक्त कथनो का विश्लेषण करते हुए उन्हे सूत्र रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

● विषयगत प्रवृत्तियाँ—(१) वेदना।
(२) स्वानुभूति।

● शैलीगत प्रवृत्तियाँ—(१) ध्वन्यात्मकता।
(२) लाक्षणिकता।
(३) प्रतीक-विधान।
(४) उपचार-वक्रता।

१-४. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान; पृ० २६-२७।

- निषेधात्मक लक्षण—(१) रहस्यवाद छायावाद से पृथक् है।
  (२) प्रकृति से छायावाद का अनिवार्य सम्बन्ध नही है।

(ख) सुमित्रानन्दन पंत—'' ......छायावाद नाम से मैं संतुष्ट नही हूँ।' '...... हिन्दी-कविता छायावाद के रूप मे ह्रास-युग के वैयक्तिक अनुभवो.......स्वप्नो, निराशाओ और सवेदनाओ को अभिव्यक्त करने लगी।'[५] 'छायावादी कवियों का व्यापक सघर्ष विश्वात्मा तथा नयी मानव-आत्मा की अभिव्यक्ति का सचर्ष था।'[६]

'छायावाद पर रहस्यवादी दृष्टि से विचार करना मात्र अतिरजना है और उस युग की मुख्य काव्य-प्रवृत्ति पर एक गलत मानदड का प्रयोग करना है।'[७]

'उसमे नये यथार्थ, नयी काव्य-वस्तु की झलक के साथ पिछली रूढि रीतियो के ढाँचे मे वन्दी सामाजिकता के प्रति घोर विद्रोह की भावना तथा क्रान्ति का शखनाद मिलता है।'[८]

'छायावाद के लाक्षणिक प्रयोगो, अमूर्त उपमानो या अप्रस्तुत विधानो की मात्र चित्र-भापामयी शैली मानना भी केवल उसके बाह्य कलेवर पर दृष्टिपात करना अथवा उसकी कला-बोध की प्रक्रिया के वारे मे निर्णय देकर संतोप कर लेना है।'[९]

'वास्तव मे छायावाद स्थूल के प्रति विद्रोह न कर, न उसका सस्कार या रूपान्तर ही कर नये मूल्य की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न करता है।'[१०]

कविवर पत की उपर्युक्त उक्तियो के विश्लेषण से छायावाद के सम्बन्ध मे उनकी निम्नाकित धारणाएँ प्रकाश मे आती है—

- 'छायावाद' नाम असगत है।
- छायावाद की विपय-वस्तु वैयक्तिक है।
- छायावाद के विषय-क्षेत्र मे व्यक्तिगत अनुभूतियाँ, स्वप्न (कल्पना), निराशा, वेदना आदि आते है।
- उसमे अतीत की रूढ़ियो के प्रति विद्रोह है।
- उसमे लाक्षणिक प्रयोग, अमूर्त्त उपमान, अप्रस्तुत-विधान चित्रमयी भाषा आदि है, पर यह केवल वाह्य पक्ष है।
- छायवाद का लक्ष्य नये मूल्यो की प्रतिष्ठा करना था।
- विश्वात्मा या नयी मानव-आत्मा की अभिव्यक्ति करना।
- छायावाद रहस्यवाद से भिन्न है।

सक्षेप में पतजी के अनुसार छायावाद के ये प्रमुख लक्षण है—**वैयक्तिकता,**

५, ६, ७, ९. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान, पृ० २८-२९।
८, १०. छायावाद पुनर्मूल्याकन; पृ० २४-२७।

अनुभूति और कल्पना की प्रमुखता, रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, शैली मे लाक्षणिकता, अमूर्तता, अप्रस्तुत-विधान एव बिम्ब-योजना की प्रमुखता, नूतन एवं व्यापक जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा आदि। छायावाद का निषेधात्मक लक्षण पतजी के अनुसार भी उसकी रहस्यवाद से पृथकता है।

(ग) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—निरालाजी ने छायावाद के सम्वन्ध मे अधिक नही लिखा पर 'परिमल' की भूमिका मे उन्होंने अपनी कुछ धारणाएं अवश्य व्यक्त की है[११]—

"...... "अनुशासन के समुदाय चारो तरफ से जकडे हुए है, साहित्य के साथ-साथ राज्य, समाज, धर्म, व्यवसाय, सभी कुछ पराधीन हो गये है।"

"... ... साहित्य मे इस समय यही प्रयास जोर पकडता जा रहा है और यही मुक्ति-प्रयास के चिह्न भी है।"

"....... भावो की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति-चाहती है। यहाँ भाषा, भाव और छन्द तीनो स्वतत्र है।"

सक्षेप मे निराला के विचार से छायावाद विचार, भाव, भापा-शैली आदि की परम्परागत रूढ़ियो से मुक्ति का प्रयास है, दूसरे शव्दो मे वह रूढ़ियो के प्रति विद्रोह है।

(घ) महादेवी वर्मा—"......उसके (छायावाद) जन्म से प्रथम कविता के वन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के वाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।"[१२] (=बाह्य वन्धनो एवं रूढियो के प्रति विद्रोह एव स्वानुभूतियो की व्यजना)

"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के ......सम्वन्ध मे प्राण डाल दिये। ...... केवल प्रतिविम्व न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है।"[१३]

"छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तो का सचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया।"[१४]

"छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नही रहा, यह निर्विवाद है। ...... 'छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य-लोक मे ही यह भावात्मक दृष्टिकोण मिला; जीवन मे नही।"[१५]

---

११ हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान; पृ० ३०-३१।

१२. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ६०।

१३. वही; पृ० ६६।

१४. वही; पृ० ६६।

१५. वही; पृ० ७२।

"प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप, कल्पनाओ की समृद्धि, स्वानुभूति सुख-दु खो की अभिव्यक्ति इस काव्य की ऐसी विशेपताएँ है जो परस्पर सापेक्ष रहेगी ।"[१६]

महादेवी की उपर्युक्त धारणाओ को सूत्र-रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

- छायावाद के मूल मे वाह्य वन्धनो के प्रति विद्रोह है ।
- उसमे स्वानुभूतियो की व्यजना प्रमुख है ।
- उसका प्रकृति के साथ सजीव एव घनिप्ठ सम्वन्ध है ।
- छायावाद अध्यात्मवाद या धर्म-संप्रदाय को सीमित रूप मे स्वीकार नही करता ।
- उसकी चेतना व्यापक एव समष्टिगत है ।
- छायावाद का दृष्टिकोण वैज्ञानिक न होकर भावात्मक (रागात्मक) है ।
- उसमे कल्पना की समृद्धि है ।

(ङ) डा० रामकुमार वर्मा—डा० वर्मा की धारणाएँ इस प्रकार है[१७] .

- छायावाद वास्तव मे हृदय की अनुभूति है ।
- इस ससार मे उस दैवी सत्ता का दिग्दर्शन कराने के कारण ही इस प्रकार की कविता को छायवाद की सज्ञा दी गयी है ।
- जिस प्रकार सहस्रो वर्ष पूर्व वेद की ऋचाओ मे यह छायावाद और रहस्य-वाद था उसी प्रकार आज से सहस्रो वर्ष वाद भी किसी दूसरे रूप मे यह छायावाद और रहस्यवाद होगा ।
- छायावाद मे कवि का जीवन के क्षेत्र मे रागात्मक अनुभूति का दृष्टिकोण रहता है ।
- उच्चकोटि की कल्पना, प्रकृति के रहस्यों का उद्‌घाटन, सुख-दु'ख की एक तीव्र संवेदना, सौन्दर्य का एक आलोकमय दृष्टिकोण और चित्रात्मकता छाया-वाद की विभूतियाँ है ।

सक्षेप मे डा० वर्मा के विचार से छायावाद में हृदय की अनुभूतियो, रागात्मकता, प्रकृति के रहस्यो, सवेदना की तीव्रता, चित्रात्मकता आदि की प्रमुखता रहती हैं । प्रसाद और पत की धारणाओ के विपरीत वे छायावाद और रहस्यवाद को एक ही मानते हैं ।

आलोचकों के विचार

(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—' ·····उसका (छायावाद का) प्रधान लक्ष्य

---

१६. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य , पृ० ७८ ।

१७. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान ; पृ० ३५ ।

काव्य-शैली की ओर था, वस्तु-विधान की ओर नही । अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर वहुत संकोच हो गया ।'[१८]

'........छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थो मे समझना चाहिए । एक तो रहस्य-वाद के अर्थ मे जहाँ उसका सम्वन्ध काव्य-वस्तु से होता है, ... छायावाद शब्द का, दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ मे है ।'[१९]

'काव्य मे भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमता और विचित्रता लाने मे ही प्रवृत्त हुई ।'[२०]

'........अत. अन्योक्ति पद्धति का अवलम्वन भी छायावाद का एक विशेप लक्षण हुआ ।'[२१]

'........छायवाद की रचनाएँ गीतो के रूप मे ही अधिकतर होती है ।'[२२]

'....... छायावाद की शाखा के भीतर धीरे-धीरे काव्य-शैली का वहुत अच्छा विकास हुआ, इसमे सदेह नही । इसमे भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध-चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप सघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पडी ।'[२३]

उपर्युक्त उद्धरणो के आधार पर आचार्य शुक्ल की निम्नाकित मान्यताएँ बतायी जा सकती है

- मूलत छायावाद का लक्ष्य नयी काव्य-शैली था ।
- छायावाद रहस्यवाद से अभिन्न है ।
- छायावाद शैली-विशेष का नाम है ।
- छायावाद मे कल्पना की प्रधानता है ।
- छायावाद मे अन्योक्ति-पद्धति की प्रधानता है ।
- छायावाद मे मुख्यत गीति शैली का प्रयोग होता है ।
- छायावाद की शैली मे भावप्रवणता, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त-विधान, भापा की वक्रता, विरोधभास, कोमल पदावली आदि गुण दृष्टि गोचर होते है ।

(ख) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'...... हमारी नई कविता छायावाद या रहस्यवाद कहलाती है । ... 'आधुनिक काव्य की शैली छायात्मक या रहस्यात्मक है

---

१८. हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान ; पृ० ३७ ।

१९-२३. हिन्दी की छायावादी कविता का शिल्प-विधान ; पृ० ३७-३९ ।

किन्तु इसमे सामयिक प्रेरणाएँ, विचारणाएँ और प्रगतियाँ भी कुछ कम मात्रा मे नही ।'[२४]

'………मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्व मान्य व्याख्या हो सकती है ।'[२५]

'… … आज हम जिसे छायावाद की कविता कहते है, वह क्या कोई एक वस्तु है ? ………थोडी-सी भावात्मकता, थोडी-सी सांकेतिकता और थोडा-सा रहस्य, थोडी-सी दुरुहता, थोडी-सी कोमल कान्त-पदावली और थोड़ा-सा अतीतानुराग, थोडा-सा प्रकृति-प्रेम, थोडी-सी उच्छृङ्खलता—इस प्रकार थोडी-थोड़ी अनेक वस्तुएँ उसमे सम्मिलित हैं ।'[२६]

उपर्युक्त उद्धरणो का निष्कर्ष यह है :

- छायावाद और रहस्यवाद एक है ।
- वह प्रकृति मे अध्यात्म का बिम्ब देखता है ।
- उसमे भावात्मकता, रहस्यात्मकता, प्रकृति-प्रेम, उच्छृङ्खलता या स्वच्छन्दता, साकेतिकता, दुरूहता, कोमल पदावली आदि की प्रवृत्तियाँ मिलती है ।

(ग) डा० नगेन्द्र—'निष्कर्ष यह है कि छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है ; जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है ।'

'छायावाद का रहस्यवाद एक अग तो है, पर्याय नही ।'[२७]

'………छायावाद की कविता का विषय अतरग व्यक्तिगत जीवन हुआ ।'

'………छायावाद की कविता प्रधानतः शृगारिक है ।'[२८]

'………निदान प्रकृति का उपयोग यहाँ दो रूपो मे हुआ है । एक कोलाहलमय जीवन से दूर शान्त स्निग्ध विश्रामभूमि के रूप मे और दूसरे प्रतीक के रूप मे ।'[२९]

'………लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता, व्यजना-शक्ति का विकास… विशेषण-विपर्यय, ध्वनि-चित्रण, मानवीकरण आदि ज्यो के त्यो अपना लिये गये और भाषा की चित्र-मयता बढ गयी ।'[३०]

सक्षेप मे डा० नगेन्द्र के अनुसार छायावाद और रहस्यवाद एक नही है, उसमे व्यक्तिगत जीवन की शृगारिक अनुभूतियो की प्रमुखता है, प्रकृति उसमे वातावरण एवं प्रतीक रूप मे आई है तथा उसकी शैली मे लाक्षणिकता, मूर्तिमत्ता, व्यजना-शक्ति, विशेषण-विपर्यय, ध्वनि-चित्रण, मानवीकरण, भाषा की चित्रमयता आदि विशेषताएँ मिलती हैं।

(घ) आचार्य विनय मोहन शर्मा ने इसकी ये पाँच प्रमुख प्रवृत्तियाँ मानी हैं :[३१] (१) आत्माभिव्यजना, (२) नूतन छद-विधान या मुक्त छदता, (३) प्रकृति का मानवी-करण, (४) प्रतीक लक्षणा, व्यजना-प्रयोग और (५) विश्वबधुत्व ।

२४-२६. हिन्दी की छायावादी कविता का शिल्प-विधान ; पृ० ४१-४३ ।

२७-३१. हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान ; पृ० ५३-५८ ।

निष्कर्ष—इस प्रकार छायावाद के स्वरूप के सम्बन्ध मे विभिन्न कवियो एव आलोचको के मतो को समन्वित करते हुए उनका निष्कर्ष यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :

(क) सर्व सम्मत मत

(अ) विषयगत प्रवृत्तियाँ :

(१) स्वानुभूति या व्यक्तिगत अनुभूतियो की प्रमुखता ।
(२) भावात्मक दृष्टि या दृष्टिकोण की प्रमुखता ।
(३) परपरागत समाजिक एवं साहित्यिक रूढ़ियो के प्रति विद्रोह ।
(४) कल्पना की प्रमुखता ।
(५) प्रकृति के साथ निकट सम्बन्ध ।
(६) शृंगारिकता की प्रमुखता ।
(७) विश्वमानवता की भावना ।

(आ) शैलीगत प्रवृत्तियाँ :

(१) लाक्षणिकता ।
(२) प्रतीक विधान ।
(३) ध्वन्यात्मकता ।
(४) मूर्तिमता (बिम्ब योजना) ।
(५) अप्रस्तुत-विधान ।
(६) भाषा की वक्रता ।
(७) विशेषण-विपर्यय ।
(८) मानवीकरण ।
(९) कोमल शब्दावली ।
(१०) गीति शैली की प्रधानता ।

(ख) विवादास्पद मत

(१) छायावाद और रहस्यवाद भिन्न हैं या अभिन्न ।
(२) छायावाद का प्रकृति से अनिवार्य सम्बन्ध है या नही है ।
(३) छायावाद शैली-विशेष है ।

उपर्युक्त सर्वसम्मत निष्कर्षो के सम्बन्ध मे तो यहाँ और विचार करने की आवश्यकता नही है किन्तु विवादास्पद धारणाओ पर यहाँ पुनर्विचार करते हुए अपना निर्णय देना आवश्यक है, अत. इन्हें क्रमश. लिया जाता है :

● **क्या छायवाद और रहस्यवाद अभिन्न है ?**—छायावादी कवियों ने प्रायः व्यक्तिगत प्रणयानुभूतियों की व्यंजना करते हुए कहीं-कहीं उसमें आत्मा और परमात्मा के प्रेम (जिसे 'रहस्यवाद' कहते हैं) का भी संकेत किया है। कुछ कवि लौकिक प्रेम के धरातल से ऊपर उठकर आध्यात्मिक प्रेम की ओर भी अग्रसर हुए; अतः उनमें छायावाद के साथ-साथ रहस्यवाद की भी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, इसी से यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि छायावाद और रहस्यवाद एक हैं। पर मूलतः छायावाद के लिए यह आध्यात्मिक प्रेम आवश्यक नहीं है जबकि रहस्यवाद के लिए यह अनिवार्य है। रहस्यवाद का पर्याय ही आत्मा और परमात्मा का प्रणय है। ऐसी स्थिति में न तो प्रत्येक छायावादी को रहस्यवादी कहा जा सकता है और न ही प्रत्येक रहस्यवादी को छायावादी कहा जा सकता है, उदाहरण के लिए कवि पन्त की 'ग्रन्थि' लौकिक प्रेम की शुद्ध छायावादी रचना है जिसमें रहस्यवाद का सर्वथा अभाव है तो साथ ही कबीर में रहस्यवाद की पूर्णता होते हुए भी उन्हें छायावादी नहीं कहा जा सकता। अतः हमारे विचार में छायावाद और रहस्यवाद दो पृथक्-पृथक् प्रवृत्तियाँ हैं जो संयोग से यहाँ मिल गयी हैं। इतना अवश्य है कि कल्पना-प्रधान भावात्मक एवं वैयक्तिक दृष्टि के कारण धर्म और दर्शन के विभिन्न रूपों में से अद्वैतवाद व रहस्यवाद छायवादी कवि की प्रकृति के अनुकूल पड़ते हैं, अतः वह अधिक ग्राह्य हुआ। अस्तु, छायावाद और रहस्यवाद एक-दूसरे के अनुकूल होते हुए भी मूलतः एक नहीं हैं।

● **क्या छायावाद का प्रकृति से अनिवार्य सम्बन्ध है ?** छायावादी कवि की रुचि के तीन प्रमुख विषय रहे हैं—प्रकृति, नारी और अध्यात्म। कुछ कवि इन तीनों की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर हुए तो कुछ ने इन्हें एक साथ ही ग्रहण किया तथा कुछ उत्तरोत्तर इनसे विमुख भी हुए। प्रसाद क्रमशः प्रकृति, नारी, एवं अध्यात्म की ओर बढ़े, पन्त एक-एक कर तीनों की ओर अग्रसर तथा तदनन्तर विमुख हुए, जबकि महादेवी में प्रारम्भ से ही अध्यात्म साध्य है, प्रकृति साधन एवं नारी साधिका है। अस्तु, किसी न किसी रूप में ये तीनों विषय छायावाद के साथ सम्बद्ध हैं पर तीनों के ही प्रति उनका विशिष्ट दृष्टिकोण है। प्रकृति न केवल उनकी विषय-वस्तु है अपितु वह उनकी शैली भी है—एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा वे अपनी नारी एवं अध्यात्म सम्बन्धी अनुभूतियों को व्यक्त करते हैं। अतः प्रकृति का छायावाद से घनिष्ठ सम्बन्ध तो है पर अनिवार्य नहीं। छायावाद में ऐसी कविताएँ भी आ जाती हैं जिनमें प्रकृति गौण है। दूसरे, [illegible] जहाँ प्रकृति है भी छायावादी नहीं कहा जा सकता—सेनापति या पद्माकर के प्रकृति-चित्रण का छायावाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः हमारे विचार में प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भी छायावाद की अनेक प्रवृत्तियों में एक प्रवृत्ति के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है, पर वही सर्व-मुख्य नहीं है; उसके बिना भी छायावाद का अस्तित्व सम्भव है।

● **क्या छायावाद केवल शैली-विशेष है ?** प्रारभ में आचार्य शुक्ल जैसे आलोचको की धारणा थी कि छायावाद अभिव्यजना की विशेप पद्धति या शैली मात्र है। पर अभिव्यंजना यदि यथार्थ अभिव्यजना है तो उसकी प्रत्येक विशेषता या नूतनता मे दृष्टि एव अनुभूति की भी विशेपता या नूतनता सदा विद्यमान रहती है। अत. छायावाद की शैलीगत नूतनता मे उसके कवियो की नयी चेतना, नयी दृष्टि एव विशिष्ट अनुभूति का योग स्वीकार करना होगा। आगे चलकर स्वय आचार्य शुक्ल तथा उनके अनुयायियो ने भी यह स्वीकार कर लिया कि छायावाद मे शैली के साथ-साथ विषय की भी नूतनता है—भले ही उस विपय को उन्होने भ्रान्तिवश 'रहस्यवाद' ही समझ लिया। अस्तु, छायावाद एक विशिष्ट आतरिक चेतना, जीवन-दृष्टि एव अनुभूति की देन है, शैली तो उसका वाह्य आवरण मात्र है

● **ऐतिहासिक दृष्टि से विचार**—छायावाद की स्वरूपगत विवेचना के अनन्तर हम ऐतिहासिक दृष्टि से उसके उद्भव एव विकास पर विचार कर सकते है। इस प्रसग को भी सुविधा के लिए तीन शीर्पकों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) छायावाद के उद्भव के कारण, (२) छायावाद का विकास-क्रम, (३) छायावाद का ह्रास। यहाँ क्रमश: इन तीनो को लिया जाता है—

(१) **छायावाद के उद्भव के कारण**—छायावाद का उद्भव हिन्दी मे किन कारणो, प्रेरणाओ एवं परिस्थितियो के प्रभाव से हुआ—इस सम्वन्ध मे हिन्दी के कवि एव विद्वान् एक-मत नही हैं। सामान्यत इस सम्वन्ध मे प्रमुख मत ये है .

(क) 'वाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पडी थी।'[३२] (जयशकर प्रसाद)

(ख) 'छायावाद और उत्तर युद्ध कालीन कविता दोनो, भिन्न-भिन्न रूप से' इस संक्रान्ति-युग के स्नायविक विक्षोभ की प्रतिध्वनियाँ है।'[३३] (सुमित्रानन्दन पत)

(ग) '····वह····उस भावना की पुकार थी जो वाहर की ओर राह न पाकर 'भीतर' की ओर स्वप्न-सोपानो' पर आरोहण करती हुई युग के अवसाद तथा विवशता को वाणी देने का प्रयत्न कर रही थी।'[३४] (पत)

(घ) '··· कवीन्द्र रवीन्द्र भारतीय पुनर्जागुरण के अग्रदूत बनकर आये।···· कवीन्द्र के युग मे जो महान् प्रेरणा हिन्दी काव्य-साहित्य को मिली वह वास्तव मे छायावाद के रूप मे विकसित हुई।[३५] (पत)

(ङ) '·· छायावाद ऐतिहासिक दृष्टि से अनुपयोगी विगत वास्तविकता को अपनी वोध-दृष्टि से अतिक्रम कर नवीन यथर्थोन्मुख आदर्श की खोज मे ···सामाजिक ढाँचे के वासी सौन्दर्य से ऊबकर वह प्रकृति की ओर मुड़ा····पिछली रूढि रीतियो के

३२-३५. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान।

(ट) '....अंग्रेजी अमलदारी के साथ इस देश मे अंग्रेजी साहित्य पढाया जाने लगा। उसी के फलस्वरूप इस देश के कवियो मे भी वैयक्तिक स्वाधीनता का जोर वढ़ता गया। ....इगलैण्ड में यह हवा वहाँ के भीतरी जीवन का परिणाम थी जबकि इस देश मे वह विदेशी संसर्ग और अन्य कारणो का फल था।'[४२] (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

(ठ) '....सारांश यह है कि स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। 'स्थूल' शब्द वडा व्यापक है। इसकी परिधि मे सभी प्रकार के बाह्य रूप रग रूढ़ियाँ आदि सन्निहित है और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह; नैतिक रूढियो के प्रति मानसिक स्वातत्र्य का विद्रोह और काव्य के बधनो के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनीक का विद्रोह।'[४३] (डा० नगेन्द्र)

(ड) '....भारत की उद्‌बुद्ध चेतना युद्ध के बाद अनेक आशाये लगाये बैठी थी। उसमे स्वप्नो की चंचलता थी। ....पश्चिम के स्वच्छन्द विचारो के संपर्क से राजनैतिक और सामाजिक बन्धनो के प्रति असतोष की भावना मधुर उभार के साथ उठ रही थी, भले ही उनको तोड़ने का निश्चित विधान अभी मन मे नही आ रहा था। राजनीति मे ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवाद की दृढ़ नैतिकता असतोप और विद्रोह की इन भावनाओं को बहुर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नही देती थी। निदान वे अतर्मुखी होकर धीरे-धीरे अवचेतन मे जाकर बैठ रही थी और वहाँ से शक्ति की पूर्ति के लिए छाया चित्रो की सृष्टि कर रही थी।'[४४] (डा० नगेन्द्र)

(ढ) '....द्विवेदी-युग की कविता इतनी गहरी न हो सकी कि हृदय को छू लेती। ....इस प्रकार वौद्धिकता, आलोचनात्मक प्रवृत्ति, विश्लेपण, बाह्यार्थ निरूपण, भावात्मकता और गहरी सवेदनशीलता का अभाव—द्विवेदी-युग को इन सब प्रवृत्तियो का अतिशय्य—छायावाद के आरभ और प्रवर्त्तन का कारण वना।"[४५] (डा० केसरी नारायण शुक्ल)

(ण) '....द्विवेदी युगीन सास्कृतिक चेतना धार्मिक और परलोक तथा ईश्वर केन्द्रित है इसलिए वह नयी पीढी के लोगो को जो अग्रेजी-साहित्य के वातावरण मे पले थे, सतोष न दे सकी। ....द्विवेदी-युग की नीति भावना पौराणिक रूढियो मे वद्धमूल थी, छायावादी कवि आधुनिक मनोवृत्ति के थे; फलत. उन्हे वह रुचिकर न हुई। ....अत हम यह भी कह सकते है कि छायावाद अनाधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था।'[४६] (डा० देवराज : छायावाद का पतन)

४२-४४. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान।

४५-४६. छायावाद का विश्लेषण और मूल्याकन।

(त) '....छायावाद भारत के नये पूजीवादी अभ्युदय के साथ उत्पन्न हुआ। .. अपने सांस्कृतिक रूप मे उसने सामन्ती परंपराओ का विरोध किया.. .।'[४७] (डा० रामविलास शर्मा)

(थ) '.. 'पश्चिमी साहित्य से और विशेष रूप से अग्रेजी साहित्य से उन्हे (साहित्यकारो को) परिचित कराके साहित्य मे नये-नये प्रयोग करने की प्रेरणा दी। उनमे सामाजिक वन्धनो को तोडने और प्रगति को रोकने वाली रूढियो से विद्रोह करने की उदात्त भावना की सृष्टि की।'[४८] (डा० रामविलास शर्मा . प्रगति और परम्परा)

(द) ' . वास्तव मे छायावादी कविता रीतिकालीन परम्परा की विरोधी थी। ... हिन्दी की नयी रोमाटिक कविता ने हिन्दी के लिए वहुत कुछ वही किया जो इस तरह की कविता ने इगलैण्ड मे अग्रेजी के लिए किया था। रीतिकालीन परंपरा को उसने पूरी तरह खत्म कर दिया।' (डा० रामविलास शर्मा : सस्कृति और साहित्य)।'[४९]

(ध) '... यह सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध उठते हुए पूजीवाद का विद्रोह था। इस प्रकार इस युग की कविता पूर्ण रूप से पूंजीवादी और राष्ट्रीयतावादी (धर्म-निरपेक्ष) हो गई।'[५०] (डा० शम्भूनाथसिंह : छायावाद युग)

(न) '....पाश्चात्य छायाभास, अंग्रेजी रोमाटिक कविता अथवा वंगला और रवीन्द्र-काव्य का छायावाद पर चाहे जितना भी प्रभाव पड़ा हो किन्तु छायावाद की मूल प्रेरणाएँ तो निश्चय ही तद्युगीन राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं आर्थिक परिस्थितियो से मिली। ...मै कदापि सहमत नही कि 'छायावादी भाव-धारा की प्रेरणा का मूल स्रोत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियो की कविता ही हो सकती है।'[५१] (श्री दीनानाथ 'शरण')

इस प्रकार छायावाद के उद्भव एवं प्रेरणा-स्रोत के सम्वन्ध मे हमारे सामने विभिन्न विद्वानो के लगभग वीस मत प्रस्तुत हैं जिन्हें विवेचन-सुविधा के लिये यहाँ सूत्ररूप मे परिवर्तित किया जाता है :

छायावाद के उद्भव का कारण है :

(१) काव्य की प्रवृत्ति का अन्तर्मुखी होना। (प्रसाद)
(२) युग के स्नायविक विक्षोभ की प्रतिक्रिया (पत)
(३) रवीन्द्र का प्रभाव (पंत)
(४) अतीत की रूढ़ियो के प्रति विद्रोह (पत)

४७-४९. छायावाद का विश्लेपण और मूल्यांकन।
५०. छायावाद-युग।
५१. छायावाद : विश्लेपण और मूल्यांकन।

(५) स्वच्छन्दता की सहज प्रवृत्ति (महादेवी)
(६) बगला के माध्यम से प्राप्त प्रेरणाएँ (महादेवी)
(७) पाश्चात्य प्रतीकवाद का प्रभाव (आ० शुक्ल)
(८) द्विवेदी-युग की कविता के प्रति विद्रोह (आ० शुक्ल)
(९) अग्रेजी-साहित्य का प्रभाव (आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी)
(१०) स्थूल (=उपयोगितावाद, रूढ़ियो, बधनो) के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह (डा० नगेन्द्र)
(११) राजनीतिक पराधीनता एवं सामाजिक नैतिकता के प्रति विद्रोह की बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का न हो पाना (डा० नगेन्द्र)
(१२) द्विवेदी-युग की शुष्कता एव बौद्धिकता की प्रतिक्रिया (डा० केसरी नारायण शुक्ल)
(१३) द्विवेदी युगीन पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक चेतना का विद्रोह (डा० देवराज)
(१४) पूंजीवाद का सामन्तवादी परपराओ के विरुद्ध अभ्युदय (डा० रामविलास शर्मा)
(१५) अंग्रेजी साहित्य का सम्पर्क सामाजिक रूढियो का विरोध (डा० रामविलास शर्मा)
(१६) रीतिकालीन परंपरा का विरोध (डा० रामविलास शर्मा)
(१७) सामन्तवाद एव साम्राज्यवाद के विरुद्ध पूजीवाद का विद्रोह (डा० शभूनाथसिह)
(१८) तद्‌युगीन राजनीतिक सामाजिक, साहित्यिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ। (प्रो० दीनानाथ 'शरण')

उपर्युक्त विचार-सूत्रो को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

(क) वैयक्तिक कारण—
१. अन्तर्मुखी होना (प्रसाद)
२. स्वच्छन्दता की सहज प्रवृत्ति (महादेवी)

(ख) पूर्ववर्ती साहित्य की प्रतिक्रिया-सम्बन्धी कारण—
१. द्विवेदी युगीन साहित्य की प्रतिक्रिया (आ० शुक्ल, डा० नगेन्द्र, डा० देवराज, डा० केसरी नारायण शुक्ल)
२. रीतिकालीन परम्पराओ का विरोध (डा० रामविलास शर्मा)

(ग) हिन्दीतर-साहित्य का प्रभाव—
१. बंगला (विशेषतः रवीन्द्र) के साहित्य का प्रभाव (पंत, निराला, महादेवी)

२. पाश्चात्य प्रतीकवाद का प्रभाव (आ० शुक्ल)
३. अग्रेजी के रोमांटिक काव्य का प्रभाव (आ० द्विवेदी, डा० रामविलास शर्मा)

(घ) वाह्य परिस्थितियो का प्रभाव—
१. राजनीतिक पराधीनता-जन्य विवशता (डा० नगेन्द्र)
२ सामाजिक नैतिक बन्धनो से उत्पन्न विवशता (डा० नगेन्द्र)
३. आर्थिक परिस्थियाँ—
सामतवादी परंपराओ के विरुद्ध पूजीवाद का उत्थान (डा० रामविलास शर्मा)
सामतवाद एव साम्राज्यवाद के विरुद्ध पूजीवाद का अभ्युत्थान (डा० शभूनाथसिह)
४. राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियो का सम्मिलित प्रभाव (प्रो० दीनानाथ 'शरण')
५. पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह (डा० देवराज)

निष्कर्ष—हमारे विचार से उपर्युक्त सभी कारण आशिक रूप मे स्वीकार्य है ; वे छायावाद के उद्भव की कहानी के किसी न किसी पक्ष से न्यूनाधिक रूप में सम्बद्ध हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से वृक्ष के प्रस्फुटन, पल्लवन एव फलित होने मे मूल वीज, आधार-भूमि, जल-वायु, खाद, धूप ये सभी किसी न किसी मात्रा मे योग देते है , यह दूसरी बात है कि किसी का योग अधिक होता है और किसी का कम। यहाँ भी यही वात लागू होती है। अधिक विस्तार मे न पडकर निष्कर्प रूप मे कहा जा सकता है कि कवियो का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व एव स्वच्छन्दता की सहज प्रवृत्ति छायावाद के उद्-भव का मूल कारण है ; रीतिकालीन परपराओ एव द्विवेदी-युगीन काव्य की शुष्कता ने उसके लिए आधारभूमि निर्मित की ; बगला (रवीन्द्र) एव अग्रेजी के रोमाटिक साहित्य ने उसे प्रस्फुटित किया एव राष्ट्र की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एव धार्मिक परिस्थितियो ने उसे पोपित किया। इस प्रकार अनेक स्रोतो से अनेक प्रकार के प्रभाव ग्रहण करते हुए कवियो की मूल चेतना के अनुसार छायावादी काव्य विकसित हुआ। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि सभी कवियो पर सभी स्रोतो का एक जैसा प्रभाव नही है—किसी पर किसी स्रोत का अधिक है और किसी पर किसी अन्य का ; यही कारण है कि एक मे स्वच्छन्दता अधिक है, दूसरे मे कल्पना, तीसरे मे विद्रोह और चौथे मे अध्यात्म की प्रमुखता है। वस्तुत. छायावाद मूलतः तो वैयक्तिक दृष्टि, स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति, एव अन्तर्मुखी स्वभाव की ही उपज है पर परपरा और युग के प्रभाव का

रग भी न्यूनाधिक मात्रा मे उस पर दृष्टिगोचर हो तो यह कोई अस्वाभाविक बात नही है।

छायावाद का विकास एवं पतन—सामान्यत. यह स्वीकार किया जाता है कि छायावाद का प्रवर्त्तन जयशंकर प्रसाद की कविताओं द्वारा लगभग १९१३-१४ मे हुआ तथा इसके तीन-चार वर्षो के बाद ही पत और निराला का आगमन इस क्षेत्र मे हुआ। इस प्रकार लगभग १९१८ ई० मे पूर्णत· प्रतिष्ठित होकर कामयानी के रचनाकाल १९३६-३७ तक यह निरन्तर विकासोन्मुख रहा। इसके अनन्तर हिन्दी काव्य मे क्रमश प्रगतिवाद एव प्रयोगवाद का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे छायावाद की परपरा खडित हो गयी। अनेक विद्वानों का मत है कि १९३७ ई० के बाद छायावाद समाप्त हो गया या मर गया जबकि कुछ विद्वानो के विचार से वह अभी जीवित है, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद उसी के विकसित रूप है। छायावाद के कवि सुमित्रानन्दन पत ने स्वय एक बार स्वीकार किया था—'छायावाद इसलिए अधिक नही रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नही था।⋯ ' पर अब उन्होने अपने नये ग्रन्थ छायावाद · पुनर्मूल्यांकन' मे इसी मत का खडन करते हुए कहा है—"⋯ ⋯वास्तव मे जिस आधुनिक काव्य-वस्तु तथा कला-बोध को तब छायावाद कहा गया वह आज भी उस युग की संकीर्णताओ तथा उपेक्षाओं का अतिक्रम कर निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होने का प्रयास कर रहा है।" (पृष्ठ-४१)

कवयित्री महादेवी ने भी अप्रत्यक्ष रूप मे छायावाद के मृत या अप्रचलित हो जाने की बात स्वीकार करते हुए लिखा है—'छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तो का सचय न देकर हमे केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था, इसी से उसे यथार्थ-रूप मे ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।' इसी प्रकार श्री इलाचन्द्र जोशी ने अपने १९४० ई० मे प्रकाशित (विशाल भारत अक्टूबर '४०) लेख—'छायावाद का विनाश क्यो हुआ ?'—मे छायावाद के नाश के कारणो की व्याख्या की है तो प्रो० नवलकिशोर गौड ने भी छायावाद की शव-परीक्षा करते हुए अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। डा० देवराज ने इस प्रसग को लेकर एक पुस्तक ही लिख डाली—'छायावाद का पतन' अस्तु,। हम देखते हैं कि सन् १९४० के लगभग कवि और आलोचक-गण छायावाद की मृत्यु की घोषणा अपने-अपने ढंग से करते हुए दिखाई पड़ते है।

पर इन घोषणाओं के बावजूद भी आज (१९४० के लगभग २५-३० वर्ष बाद भी) छायावादी स्वर नये-नये रूपों, नये-नये कवियो द्वारा सुनाई दे रहे है जिन्हे दृष्टि में रखते हुए यह स्वीकार करना कठिन है कि छायावाद अब स्पन्दन-शून्य हो गया है। उसका आकर्षण और प्रभाव न्यून हो सकता है पर उसकी गति अभी अवरुद्ध नही

हुई है। इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए प्रो० क्षेम, श्री हीरालाल तिवारी, प्रो० दीनानाथ 'शरण' प्रभृति ने सशक्त स्वरो मे घोषणा की है कि छायावाद आज भी जीवित है। प्रो० शरण ने लिखा है— "…… ''नरेन्द्र, नेपाली, शभूनाथसिह, हसकुमार तिवारी, प्रदीप, गुलाव, नीरज, किशोर, प्रभात आदि की कविताओ मे क्या छायावाद ही जीवित नही है। ….. साराश यह है कि छायवाद की कविता आज भी जीवित है ही। आज भी जव छायावाद की कविताएँ लिखी जा रही हैं तो फिर छायावाद का पतन अथवा मृत्यु कैसे मानी जा सकती है ?" (छायावाद विश्लेपण और मूल्यांकन', पृष्ठ १६९)

हमारे विचार से यह विवाद अवैज्ञानिक दृष्टि का परिणाम है। वैज्ञानिक दृष्टि एव विकासवादी सिद्धान्तो के ज्ञान के अभाव मे छायावाद को एक युगीन प्रवृत्ति-मात्र मान लिया गया। जिससे उसके स्वरूप एव विकास के बारे मे अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित हो रही है। वस्तुत' छायावाद मात्र युग-प्रवृत्ति नही है अपितु एक युग-युगीन धारा है जिसका सम्बन्ध मानव-मन की आधारभूत चेतना से है, अतः उसकी गति कभी तीव्र एव कभी मद हो सकती है, उसके विस्तार में भी कही व्यापकता और कही सकीर्णता आ सकती है, पर उसका एकाएक लोप कभी सभव नही। इस धारणा को अधिक स्पष्ट करने के लिए छायावाद के स्वरूप एवं विकास की यथातथ्य व्याख्या करनी होगी। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए हम आगे वैज्ञानिक दृष्टि से छायावाद की विवेचना प्रस्तुत करने का प्रयास करेगे।

* * *

२

छायावाद : नयी दृष्टि से

अब तक हमने छायावाद के विभिन्न पक्षो पर परम्परागत धारणाओ के आधार पर विचार किया है—ये धारणाएँ जहाँ विभिन्न विचारको की वैयक्तिक दृष्टि एवं निजी मान्यताओ की सूचक है वहाँ वे छायावाद के भी विभिन्न पक्षो एव तत्त्वो का उद्घाटन आशिक रूप मे करती है। इसीलिए ये धारणाएँ न तो सर्वाश मे त्याज्य है और न ही सर्वांश मे ग्राह्य हैं अपितु वैज्ञानिक पद्धति से उनका विश्लेपण, सशोधन एवं सश्लेपण करने के अनन्तर ही उन्हे अपनाया जा सकता है। पिछले पृष्ठो मे हमने ऐसा ही करने का प्रयास किया है। पर इससे छायावाद के स्थूल गोचर रूप का तो सधान हो गया है पर उसके मूल मे निहित सूक्ष्म अगोचर रूप का अनुसधान अभी वाकी है। दूसरे शब्दो मे, छायावाद के रूप-रग एव प्रवृत्तियो की स्थूल विवेचना तो हो चुकी है किन्तु उसकी अतरग सूक्ष्म प्रकृति एव तत्सम्बन्धी वृत्तियो की मीमासा किसी व्यापक नियम के आधार पर अभी तक नही हुई। जिस प्रकार व्यक्ति की वाह्य प्रवृत्तियो की मीमासा मनोविज्ञान के किसी सामान्य व्यापक नियम के अनुसार की जाती है तो वे प्रवृत्तियाँ मानव-मन की किसी सामान्य प्रकृति के किसी व्यापक लक्षण से सम्बद्ध दिखाई पडती है, उसी प्रकार साहित्य की स्थानीय एव कालिक प्रवृत्तियो की मीमासा साहित्य-विज्ञान के किसी व्यापक सिद्धान्त के आधार पर करने पर वे किसी निश्चित एव सर्वमान्य प्रकृति के अग-रूप मे दृष्टिगोचर होती है। वस्तुत हमारा सामान्य ज्ञान वस्तु के वाह्य रूप का ही वोध प्रदान करता है उसके अन्तर्निहित सत्य का उद्घाटन तो विशिष्ट ज्ञान या विज्ञान के द्वारा ही होता है—यह वात छायावाद पर भी लागू होती है।

छायावाद हिन्दी साहित्य के काल-विशेप की विशेप प्रवृत्ति है या वह स्थान-विशेप के प्रभाव से आयातित प्रवृत्ति है अथवा परिस्थिति-विशेष के प्रभाव से उद्वुद्ध प्रवृत्ति

है—ये सव धारणाएँ छायावाद के मूल रूप को उद्घाटित करने की अपेक्षा उसे तिरोहित अधिक करती है। किसी काल, स्थान या परिस्थिति की विशेपता मे ही किसी प्रवृत्ति का उद्भव मान बैठने वाले विद्वान् मनोविज्ञान एव विज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त की अवहेलना करते है—वह यह है कि प्रवृत्ति के पीछे सदा किसी न किसी वृत्ति या प्रकृति की सत्ता होती है, देश-काल की परिस्थितियाँ किसी वृत्ति एव प्रकृति के उद्वोधन मे सहयोग तो दे सकती है किन्तु उसकी स्थानापन्न नही वन सकती। जिस प्रकार वीज ही प्रस्फुटित होकर वृक्ष का रूप धारण करता है। उसी प्रकार वृत्ति या प्रकृति का कोई विशेप तत्त्व ही देश-काल की परिस्थितियो से उद्वुद्ध होकर प्रवृत्ति के रूप मे व्यक्त होता है। देश-काल की परिस्थितियाँ कितनी ही वलवती क्यो न हो वे मूल वीज का स्थान नही ले सकती। किसी भी देश या काल मे आम की गुठली से नारियल का पौधा प्रस्फुटित नही होगा, पर देश-काल की धरती एव वायु का सपर्क पाये विना भी वह अस्फुट ही रहेगा। अत देश-काल एव परिस्थितियाँ को कम महत्त्वपूर्ण न मानते हुए भी हमे उन्हे सहयोगी कारण के रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए, मूल प्रकृति या वृत्ति के अनन्तर ही उनका स्थान मानना चाहिए। अस्तु, वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति या वृत्ति + देश-काल = प्रवृत्ति।

अभी तक छायावाद को एक प्रवृत्ति के रूप मे ही देखा गया है और साथ ही उस प्रवृत्ति की उद्वोधक परिस्थितियों को भी हृदयगम किया गया किन्तु उसमे निहित मूल वृत्ति या प्रकृति को प्राय उपेक्षित कर दिया गया—फलतः इस दृष्टि से की गयी व्याख्याएँ उसके वाह्य कारणों की ही मीमासा करती है, उसकी आधारभूत शक्ति का पता उनसे नही चलता। इस तथ्य को स्पष्ट रूप मे ग्रहण करने के लिए हमे साहित्य की वृत्तियो से सम्वन्धित सिद्धान्त को समझना होगा जिसे आगे संक्षेप मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

साहित्य की आधारभूत वृत्तियाँ एवं तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ—साहित्य का सम्वन्ध एक ओर तो मानव-मन की मूल वृत्तियो से है तो दूसरी ओर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियो से है, अतः साहित्य की वैज्ञानिक मीमासा इन दोनो पृष्ठभूमियो को ध्यान मे रखकर ही होती है। मनोविज्ञान के अनुसार मानव-मन की तीन आधारभूत वृत्तियाँ है—(१) जानना (ज्ञान), (२) अनुभूति या भावना, (३) चेष्टा या क्रिया। यद्यपि ये तीन वृत्तियाँ मूलत. सभी मनुष्यो मे विद्यमान है फिर भी सर्वत्र और सर्वदा समान रूप मे कार्य नही करती अर्थात् देश-काल की परिस्थितियो के अनुसार उनमे से एक प्रमुख हो जाती है और अन्य गौण हो जाती है। एक ओर व्यक्ति का व्यक्तित्व उसमे निहित वृत्ति-विशेप की प्रमुखता के अनुसार विकसित होता है तो दूसरी ओर व्यक्तियो के समूह की सामाजिक एवं सास्कृतिक वृत्तियो एव प्रवृत्तियो का विकास वृत्ति-विशेप की प्रमुखता के अनुसार होता है इसीलिए प्रसिद्ध सांस्कृतिक इतिहासकार सोरोकिन

ने विश्व की प्राचीन एवं अर्वाचीन सस्कृतियो के तीन प्रमुख भेद किये है—(१) विचार-प्रधान, (२) भावना-प्रधान और (३) इन्द्रिय-प्रधान। इनमे क्रमशः ज्ञान, भावना और क्रिया की प्रमुखता होती हैं। साहित्य मे भी मूल वृत्ति एव सास्कृतिक प्ररूप के अनुसार ही विशिष्ट प्रवृत्ति का उद्वोधन होता है, जिससे विश्व के समस्त प्राचीन एव अर्वाचीन साहित्य के तीन रूप निश्चित किये जा सकते है—(१) विचार-प्रधान (आदर्श-मूलक), (२) भावना-प्रधान (स्वच्छन्तामूलक) और (३) इन्द्रिय-प्रधान या क्रिया-प्रधान (यथार्थमूलक)। इन्ही को अंग्रेजी मे क्रमश. क्लासिक (Classic), रोमाटिक (Romantic) एव रीयलिस्टिक (Realistic) कहा जाता हैं। वस्तुत. व्यापक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि विश्वसाहित्य मे साहित्यकारो की मूल वृत्तियो एव सामाजिक—सास्कृतिक प्रवृत्तियो के अनुसार समय-समय पर आदर्शवादी, स्वच्छन्तावादी एव यथार्थ-वादी साहित्य की धाराओ का आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन बरावर होता रहा है, किसी देश और किसी काल मे कोई एक वृत्ति प्रमुख हो गयी तो आगे चलकर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरी और तीसरी वृत्तियाँ क्रमश उन्मीलित हो गयी हैं। इन वृत्तियो को किसी एक स्थान (देश) और एक काल (युग) की प्रवृत्ति मान कर देखना अपनी दृष्टि को सीमित, विचार-परिधि को सकीर्ण एवं निर्णय को असंगत बनाना हैं। पर दुर्भाग्य से छायावाद को जो कि वस्तुतः स्वच्छन्तावाद है, इसी सीमित दृष्टि एवं सकीर्ण परिधि से देखा गया; फलतः हम असगत निर्णयो पर पहुँचे।

उपर्युक्त विवेचन को तालिका रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

मूल मानसिक वृत्ति	सामाजिक-सांस्कृतिक प्ररूप	साहित्यिक प्रवृत्ति
१. ज्ञानात्मकता	विचार-प्रधानता	आदर्शवादिता।
२. भावात्मकता	भावना-प्रधानता	स्वच्छन्दतावाद।
३ क्रियात्मकता	ऐन्द्रियकता एव कर्म की प्रधानता	यथार्थवाद।

● **भारतीय साहित्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की परम्परा**—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान् जो कि भारतीय सस्कृति का एक मात्र प्रतिनिधि पुरुषोत्तम राम को मानते थे, इस भ्रान्ति से ग्रस्त थे कि भारतीय सस्कृति सदा आदर्शवादी रही है—इसीलिए उन्होने मध्यकालीन स्वच्छन्दतावादी प्रेमाख्यानो को, रीतिमुक्त स्वच्छन्दता-वादी मुक्तको एवं आधुनिक स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) काव्य को किसी न किसी अभारतीय स्रोत से सम्बद्ध करते हुए उसे फारसी मसनवियो, सूफी साधको या अंग्रेजी ईसाइयो व पाश्चात्य साहित्यकारो से प्रभावित माना। वस्तुत यह मान्यता भारतीय सस्कृति के विकास-क्रम एवं स्वरूप के एकांगी व एक पक्षीय वोध पर आधारित है। यदि हम समग्र रूप मे भारतीय संस्कृति एव साहित्य के स्वरूप-विकास पर दृष्टिपात

करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि कालक्रमानुसार आदर्शवाद, स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद तीनों की ही प्रवृत्तियो का उत्थान-पतन हमारी जाति एवं साहित्य के इतिहास मे अनेक बार स्वतंत्र प्रेरणा से हुआ हैं, यह दूसरी बात है कि देश-काल की परिस्थितियाँ एव बाह्य प्रेरणाएँ इस उत्थान-पतन की गति को मद या तीव्र करने मे न्यूनाधिक योग देती रही है। यहाँ सक्षेप मे इस तथ्य को भारतीय इतिहास के आधार पर स्पष्ट किया जाता हैं।

भारतीय सभ्यता, सस्कृति एव साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास वैदिक युग से आरभ होता हैं। ऋग्वेद की प्रारभिक ऋचाओ मे हम विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियो के दर्शन करते है—यम-यमी सवाद मे आदर्शवादिता झलकती है तो उर्वशी-पुरुरवा संवाद स्वच्छन्दतामूलक प्रवृत्तियो का द्योतक है। वस्तुत' ये ऋचाएँ विभिन्न युगो मे रचित होने के कारण विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियो की द्योतक है, फिर भी सामान्य रूप मे वैदिक ग्रन्थो का मूल स्वर आदर्शपरक ही है—वहाँ विवाह के अनन्तर वर-वधू के प्रथम समागम एव पुत्रोत्पत्ति के कारण-कार्य से लेकर जीवन के नाना क्रिया-कलाप दैवी प्रेरणाओ एव धार्मिक विधि-विधानो पर आधारित हैं। यह आदर्शवाद उपनिषदो मे आकर तत्त्ववाद की सूक्ष्मता के रूप मे अपनी चरम पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है। राम-युग की सभ्यता भी इन्ही आदर्शवादी प्रेरणाओ से अनुप्राणित है जहाँ विवाह, राज्य-प्राप्ति, पत्नी-त्याग आदि सभी उदात्त धार्मिक क्रियाओ के अग मात्र है। इसीलिए साहित्य के क्षेत्र मे रामायण या रामचरित से सम्बद्ध रचनाएँ प्राय' आदर्शवादी रूप को प्रस्तुत करती है।

पर राम-युग के अनन्तर हमारी सस्कृति तीव्र गति से स्वच्छन्दतावाद की ओर अग्रसर हुई—महाभारत-कालीन समाज इस स्वच्छन्दतावाद के चरम रूप का प्रतिनिधि है। इसमे विचार, सिद्धान्त या परम्परागत मर्यादाओ के स्थान पर व्यक्ति की भावनाओ का सर्वोपरि महत्त्व है, इसीलिए राजा शान्तनु प्रणय-भावना से प्रेरित होकर धीवर-कन्या सत्यवती को पत्नी रूप मे स्वीकार करता है, द्रौपदी के सौदर्य पर मुग्ध होकर पाँचो पाण्डव वहु-विवाह का नया प्रयोग करते है, भीम, अर्जुन, प्रद्युम्न आदि अनार्य कन्याओ से विवाह करते है। वस्तुत. विवाह के क्षेत्र मे अब कुल, जाति, धर्म के वन्धनो को त्यागकर भावना की स्वच्छन्दता को स्वीकार कर लिया गया। जीवन के अन्य क्षेत्रो मे भी स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति प्रमुख दिखाई पड़ती है, इसलिए कृष्ण ने युगानुसार धर्म की नयी व्याख्या—भावना-प्रधान व्याख्या की। जहाँ राम ने तपस्या करते हुए शम्बुक की भावना को न समझकर उसके वाह्य कर्म के आधार पर ही उसे प्राण-दड दिया वहाँ कृष्ण ने कर्म के वाह्य रूप को सर्वथा गौण सिद्ध करते हुए अर्जुन को केवल भावनाओ की शुद्धि के अनुसार कर्म करने का उपदेश दिया। धर्म का भावना प्रधान रूप ही भक्ति मार्ग हैं।

महाभारतोत्तर युग मे हम भारतीय सस्कृति को यथार्थवाद की ओर अग्रसर होते पाते है। लगभग छठी शताब्दी ईसा-पूर्व युग तक धर्म, राजनीति, समाज और कला के क्षेत्र मे यथार्थोन्मुखी प्रवृत्तियाँ उभरने लगी। जैन और बौद्ध जैसे अनीश्वर-वादी धर्मो का उदय और उनमे जन-साधारण की भावनाओ एव प्रवृत्तियो की स्वीकृति तथा जन-भापा प्राकृत को माध्यम रूप मे अपनाया जाना—इस बात का प्रमाण है कि हमारी धार्मिक चेतना अव आदर्श से यथार्थ की ओर अग्रसर हो रही थी। दूसरी ओर आगे चलकर 'अर्थ-शास्त्र', 'काम-सूत्र', 'चौर्य्य शास्त्र' जैसे ग्रन्थो की रचना, उनमे कूट-नीति, काम-वासना एव परदारा-गमन तक को स्वीकृत किया जाना घोर यथार्थोन्मुखता का परिचायक है। साथ ही प्राकृत भापाओ मे रचित साहित्य—मुख्यत हालकृत 'गाथा सप्तशती' तक भारतीय समाज और साहित्य मे यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियो का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है।

परवर्ती युग मे जवकि वौद्धधर्म का प्रभाव न्यून होने लगा तथा हिन्दू धर्म का अभ्युदय होने लगा तो भारतीय संस्कृति मे क्रमश· आदर्शवादी एवं स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का पुन. उन्मीलन होने लगा। स्मृतिकारो ने धर्म और समाज को विधि-विधानो मे वाँधकर तथा पौराणिको ने अवतारवाद एव मूर्त्तिपूजा की प्रतिष्ठा करके भारतीय समाज को आदर्श की ओर उन्मुख किया। कदाचित् यह प्रक्रिया तीन-चार शताव्दियो तक चलती रही—गुप्त-साम्राज्य के युग मे भारतीय आदर्शवादिता पुन. अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। फलत· इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छन्दता-वादी प्रवृत्तियो का उन्मीलन होने लगा। 'बृहत्कथा' से लेकर सुवन्धु की 'वासवदत्ता', वाण की 'कादम्वरी' और दडी के 'दशकुमार-चरित' मे हम जिन सामाजिक एव सास्कृ-तिक प्रवृत्तियो का प्रतिविम्व देखते है—वे शुद्ध स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण की द्योतक है। सौदर्य को ही जीवन की मूल प्रेरणा, धर्म, जाति एव वंश-परम्परा की रूढियो से मुक्त प्रथम परिचय जन्य उन्मुक्त प्रेम, प्रणय के सम्मुख जीवन के अन्य सभी उद्देश्यो की गौणता, प्रेमी या प्रेमिका की प्राप्ति के लिए ही देश-देशान्तरो की यात्रा अथवा जन्म-जन्मान्तरो तक प्रतीक्षा, स्वप्नलोक मे विचरण—ये सव प्रवृत्तियाँ स्वच्छन्दतावादी दृष्टि-कोण की ही सूचक है। आगे चलकर प्राकृत एव अपभ्र श मे 'कथा', 'चरित्र', 'आख्यान' आदि शीर्षको से शताधिक ऐसे प्रेमाख्यान लिखे गये जो कि मूलत रोमास या स्वच्छन्द प्रेम को लेकर चलते है। यह परम्परा दसवी शती तक अखड रूप मे चलती रहती है।

परवर्ती युग मे पुन भारतीय समाज और साहित्य मे यथार्थोन्मुख दृष्टि का विकास दृष्टिगोचर होता है। आदर्शों से दूर, स्वच्छन्दता से मुक्त राष्ट्र क्षुद्र मनोवृत्तियो सकीर्ण स्वार्थो एवं छिछले अह से ग्रस्त होकर खड-खड होने लगता है। राष्ट्र के अधि-नायको के जीवन के दो ही लक्ष्य रह जाते है—धरती और नारी ; जिनकी प्राप्ति के

पहले युद्ध और प्राप्ति के अनन्तर विलासिता का दौर चलता है। धर्म, दर्शन, समाज, नीति-नियम सब रूढ़ियो से ग्रस्त हो जाते हैं। धर्म की ओट मे काम और अहं की तुष्टि होने लगती है। ऐसे-ऐसे धर्म सप्रदाओ का प्रवर्त्तन होता है जो कि अपने अनुयायियो को मास, मदिरा, मैथुन आदि के सेवन की पूरी स्वतत्रता के साथ-साथ मोक्ष या मुक्ति की भी गारंटी देते है ; सहजयानी बौद्ध, कापालिक ; कौल आदि ऐसा ही करते हैं। जैन, वैष्णव आदि सप्रदाय जो कि ऐसा नही कर पाते वे कम से कम अपने चरित्र-नायको के चरित्र मे भोग-विलास का पुट देकर सरसता का सचार अवश्य करते है। राधा-कृष्ण की प्रेम कहानियो का आविष्कार भी इसी लक्ष्य की पूर्त्ति के निमित हुआ। इस प्रकार धर्म केवल आवरण मात्र रह गया, यथार्थ मे वासनाएँ ही प्रमुख हो गयी। समाज मे नारी के सभी अधिकार छीन लिए गये—वह वासना-पूर्त्ति का साधन-मात्र रह गयी साहित्य मे जयदेव जैसे कलाकारो का अवतरण हुआ जो 'दृष्टिस्मरण' और 'विलास-कला का ज्ञान'—दोनो लक्ष्यो की पूर्ति एक ही रचना से करते हुए राधा को नायिका के विभिन्न उदाहरणों के रूप मे और उसकी चेष्टाओं व क्रियाओ को कामशास्त्रीय विधियो के नमूने के रूप मे प्रस्तुत करते है। यथार्थोन्मुखता का यह चरम रूप भारतीय सस्कृति को अधोगति की ओर ले जाने वाला सिद्ध हुआ।

सास्कृतिक पतन के साथ-साथ ही संस्कृत का भी पतन हुआ और उसके स्थान पर लोक-भाषाएँ प्रतिष्ठित हुई। हिन्दी-भाषा की साहित्य मे प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसमे क्रमश संत-काव्य एव भक्ति-काव्य का उन्मीलन हुआ। सत-काव्य प्रारम्भ से ही स्वच्छन्दतामूलक आदर्शोन्मुख दृष्टि से प्रेरित था जवकि भक्ति काल पूर्ववर्ती पौराणिक धर्म का नव अभ्युत्थान था। इसमे भी विचार की अपेक्षा भावना की ही प्रमुखता थी फिर भी सत काव्य एव भक्ति काव्य को हम शुद्ध स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से अनुप्राणित नही कह सकते। उनमे प्रमुखता आदर्श की ही है, गौण रूप मे स्वच्छन्द भावात्मक दृष्टि का भी सम्मिलन है। पर आगे चलकर प्रेमाख्यानो एव स्वच्छन्द प्रेम मूलक मुक्तको (घनानन्द, वोधा, आलम आदि) के रूप मे शुद्ध स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का उन्मीलन एव विकास हुआ। यद्यपि भारतीय परम्पराओ के सम्यक् ज्ञान के अभाव मे प्रेमाख्यानो एव स्वच्छन्द मुक्तको को फारसी मसनवियो या सूफी भावनाओ से प्रेरित एवं प्रभावित होने की वात वार-वार कही गयी है जो कि भ्रान्तिपूर्ण है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण हमने अपने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' मे किया है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इन प्रवन्धों एंव मुक्तको में जिस स्वच्छन्द प्रेम का निरूपण हुआ है वह स्वरूप एव प्रवृत्तियो की दृष्टि से वहुत-कुछ वही है जो वहुत पूर्व 'वृहत्कथा' 'वासवदत्ता', 'कादम्वरी', 'दशकुमार चरित', 'लीलावती', 'सुदर्शन-चरित' आदि में निरुपति हो चुका था। अत इसे अभारतीय स्रोतों पर आधारित मानना दृष्टि-दोष ही है।

इन स्वच्छन्दता मूलक काव्य के परिपार्श्व मे दूसरी ओर रीतिवद्ध शृगारी काव्य एवं प्रशसामूलक वीर काव्य विकसित हुआ जो मूलत. यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। राधा-कृष्ण के नाम पर शृगारिक प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति, नायिका-भेद एवं काव्य-शास्त्र के वहाने काम-चर्चा, काव्य रचना के माध्यम से आश्रय-दाताओ की तुप्टि और उससे धन-प्राप्ति—ये सव मूलत· काम, अह और अर्थ की प्रेरणाओ के सूचक है। इस प्रकार तथा कथित 'रीति-काव्य' के रूप मे मध्यकालीन यथार्थोन्मुखता अपने चरम रूप मे दृष्टिगोचर होती हैं। यथार्थोन्मुखता की यह धारा भी अन्त मे मुगल साम्राज्य की परम्परा के उच्छेद एव अग्रेजी राज्य की प्रतिष्ठा के साथ-साथ समाप्त होती हैं।

आधुनिक युग का आरभ भारतेन्दु युगीन आदर्शोन्मुखी सरल भावात्मकता की प्रवृत्तियो के रूप मे होता है, तथा द्विवेदी-युग तक आते-आते यह आदर्शोन्मुखता सुदृढ आदर्शवाद मे परिणत हो जाती हैं। व्रह्म समाज, आर्य समाज, राम-कृष्ण मिशन आदि इस आदर्शवादिता के मूलाधार थे तो दूसरी ओर स्वराज्य-आन्दोलन भी हमे यथार्थ जीवन के क्षुद्र स्वार्थो से ऊपर उठाकर किसी व्यापक राष्ट्रीय आदर्श की ओर अग्रसर कर रहा था। फिर भी उसी के परिपार्श्व मे अन्तर्मुखी कल्पनाशील भावुक युवक कवियों का एक ऐसा वर्ग भी पनप रहा था जिसकी मूल प्रकृति एव अन्तश्चेतना शुप्क आदर्शवादिता की अपेक्षा तरल स्वच्छन्दता की ओर उन्मुख थी। देश-विदेश के रोमानी साहित्य एव सौन्दर्य और प्रेम की मधुर कल्पनाएँ ही इनकी मूल प्रकृति एव अभिरुचि के अधिक अनुकूल थी। साहित्य के क्षेत्र मे आदर्शो का वखान वार-बार हो चुका था—अत. ऐसी स्थिति मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का उन्मीलन एव विकास होना सहज स्वाभाविक था। इन्ही प्रवृत्तियो को 'छायावाद' का नाम दिया गया। वस्तुत. यह 'छायावाद' 'स्वच्छन्दतावाद' ही था, पर दुर्भाग्य से एक भ्रान्तिपूर्ण नाम चल पड़ा जो आज भी प्रचलित है। इस स्वच्छन्दतावाद की भी प्रतिक्रिया आगे सामाजिक यथार्थवाद (प्रगतिवाद) एवं व्यक्तिपरक यथार्थवाद (प्रयोगवाद) के रूप मे हुई जिसका परिचय यहाँ अनावश्यक है।

इस प्रकार हम देखते है कि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का उन्मीलन भारतीय साहित्य मे अनेक वार हुआ है। ऋग्वेद के उर्वशी-पुरुरवा सम्वाद मे, महाभारत के 'नल-दमयन्ती' उपाख्यान मे तथा अन्य प्रेमकथानको मे, 'हरिवंश-पुराण' एव 'विष्णु-पुराण' के प्रद्युम्न-प्रभावती, उषा-अनिरुद्ध प्रकरण मे, प्राकृत की 'वृहत्कथा' एव सस्कृत की 'वासवदत्ता' 'कादम्वरी' 'दशकुमार-चरित' मे अपभ्र श के 'चरित' संज्ञक जैन-प्रवन्धो मे, हिन्दी के मध्यकालीन प्रेमाख्यानो एवं स्वच्छन्द प्रेममूलक मुक्तको मे तथा आधुनिक युग के छायावादी काव्य मे स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति उन्मीलित व विकसित हुई है।

महाभारत से लेकर छायावाद तक के सभी स्वच्छन्दतामूलक काव्यों मे निम्नांकित प्रवृत्तियाँ समान रूप में दृष्टिगोचर होती है—

- सौन्दर्य की प्रेरणा से विवाह-पूर्व प्रेम ।
- प्रेम के क्षेत्र मे कुल, समाज और धर्म की मर्यादाओ का तिरस्कार ।
- प्रणय-स्वप्नो की पूर्ति के लिए सघर्ष ।
- मरणोत्तर स्वर्गीय जीवन एव धरती के यथार्थ जीवन की चिन्ताओ एव समस्याओ से मुक्ति ।
- प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण काल्पनिक ससार मे विचरण ।
- विपय-वस्तु में यथार्थ की अपेक्षा कल्पना की प्रमुखता ।
- तथ्यो एव विचारो की अपेक्षा भावना पर अधिक बल ।
- शैली मे लाक्षणिकता एव वैचित्र्य की प्रमुखता ।

अवश्य ही ये प्रवृत्तियाँ युग-भेद के अनुसार विभिन्न परिवेशो मे प्रस्फुटित हुई है—उनकी स्थूल सामग्री एवं वाह्य रूप-रेखा मे परस्पर अन्तर आ गया है तथा साथ ही विभिन्न सामयिक प्रवृत्तियाँ भी उनमे घुल-मिल गयी हैं, फिर भी मूल चेतना या वृत्ति सब मे एक ही है—जिसे सक्षेप मे तीन शव्दो मे वताया जा सकता है—स्वच्छन्दता, भावना और कल्पना अत छायावाद को भी इसी परम्परागत स्वच्छन्दतामूलक प्रवृत्ति के ही नव अभ्युत्थान एवं सहज प्रस्फुटन के रूप मे स्वीकार करना उचित होगा । उस पर देश-काल की विभिन्न परिस्थितियो एव प्रवृत्तियो का प्रभाव है, जिससे, स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति प्रस्फुटित, पल्लवित एव फलित हुयी, पर मूलत. उसे कवियो के विशिष्ट व्यक्तित्व की मूल भूत चेतना या अन्तश्चेतना ने सहज स्वाभाविक रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए । वीज मे वृक्ष के रूप मे परिणत होने की क्षमता होते हुए भी परिस्थितियो की प्रतिकूलता के कारण वह अस्फुट या अविकसित रह सकता है, पर फिर भी यदि वह अनुकूल परिस्थितियों मे वृक्ष के रूप मे परिणत होता है तो उसके फल, फूल ओर पत्तो के गुण-अवगुणो का उत्तरदायी वहुत-कुछ अशो मे आधारभूत वीज को ही मानना होगा । परिस्थितियो का महत्त्व केवल मूल शान्ति के मार्ग मे सहयोग या अवरोध उत्पन्न करने की दृष्टि से ही है , इससे अधिक नही ।

छायावाद का विकास-क्रम—जैसा कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार छायावाद के मूल मे स्वच्छन्दता की सहज वृत्ति थी जो कि इस वाद के प्रवर्त्तक कवियो की अन्तश्चेतना मे नैसर्गिक रूप मे विद्यमान थी । प्रसाद, पत, निराला, महादेवी प्रभृति कवियो के व्यक्तित्व के विश्लेपण से ज्ञात होता है कि ये सभी मूलत. अन्तर्मुखी स्वभाव के व्यक्ति थे, प्रसाद और पत सदा जन-भीरु रहे, भीड-भाड़ से दूर एकान्त मे या प्रकृति की गोद मे जीना इन्हे प्रिय रहा है । निराला विद्रोही होते हुए भी सासारिक जीवन मे पूर्णत. असफल रहे—आर्थिक दृष्टि से । महादेवी ने भी

गार्हस्थ्य जीवन के वन्धनों को अस्वीकार कर दिया। अन्तर्मुखी व्यक्ति चेतना के बाह्य स्तर पर जितना मौन और शान्त होता है आन्तरिक स्तर पर उतना ही विद्रोही एव अशान्त होता है। दूसरे उनके व्यक्तित्व मे विचार और तथ्य की अपेक्षा सवदेना और कल्पना की प्रमुखता रहती है, अस्तु, इनके व्यक्तित्व मे ही वे सब मूल प्रवृत्तियाँ विद्यमान थी जो कि परिस्थितियो की प्रेरणा से स्वच्छन्दतामूलक प्रवृत्तियो के रूप मे व्यक्त हुई।

छायावाद की मूल वृत्ति—स्वच्छन्दता—किन परिस्थितियो के प्रभाव से प्रस्फुटित या अभिव्यक्त हुई, इस सम्वन्ध मे विद्वानो मे परस्पर मत-भेद है किन्तु हमारे विचार मे रवीन्द्र की 'गीताजलि' को नोवल-पुरस्कार मिलने की घटना (१९१३ ई०) ही एक ऐसा प्रत्यक्ष कारण है जिसने भारतीय भाषाओ के अनेक युवा कवियो का ध्यान आकृष्ट कर लिया। अन्तत. 'गीताजलि' मे ऐसी क्या बात है जिससे कि उसे विश्व का सवसे वडा सम्मान मिला—यह जिज्ञासा सहज ही नये कवियो के मन मे उद्भूत हुई। फलत. नवयुवा कवियो द्वारा 'गीतांजलि' के मूल या अनूदित रूप का गभीर अनुशीलन होने लगा तथा जिन कवियो की मूल प्रवृत्ति इसके अनुकूल थी, उनकी भाव-धारा उसी भाँति वह निकली जिस प्रकार वर्फ पर उष्णता का प्रभाव पडने पर वह जल-धारा बन कर वह निकलती है। 'गीताजलि' का अध्ययन सैकडो कवियो ने किया होगा फिर भी वे सभी छायावादी कवि नही वने—इसका कारण यह है कि जिनकी मूल वृत्ति मे ही 'गीताजलि' के अनुकूल तत्त्व विद्यमान थे उन्ही मे छायावादी प्रवृत्तियो का प्रस्फुटन सभव था। धूप के प्रभाव से वर्फ ही जल मे परिवर्तित होगा, लकडी या पत्थर नही—यही वात इन कवियों पर लागू होती है।

छायावाद के उन्मीलन मे रवीन्द्र के प्रभाव को स्वय छायावादी कवियो—पत, निराला, महादेवी प्रभृत्ति—ने भी नि.सकोच रूप मे स्वीकार किया है। श्री पत लिखते है—'कवीन्द्र रवीन्द्र भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत वन कर आये। 'कवीन्द्र के युग' मे जो महान् प्रेरणा हिन्दी काव्य-साहित्य को मिली, वह वास्तव मे छायावाद के रूप मे विकसित हुई।' (गद्य पथ-पृ० १५१) इसी का अनुमोदन करते हुए निराला ने स्वीकार किया है—'रवीन्द्र नाथ द्वारा बंग-भाषा को वह जीवन मिलता है। उनकी अकेली शक्ति वीस कवियों का जीवन तथा इन्द्रजाल लेकर साहित्य के हृदय-केन्द्र से निकली और फैली। हिन्दी मे छायावादी कहलाने वाले कवियो से इसका श्री गणेश हुआ।' (प्रवन्ध-पद्म) महादेवी की भी यही मान्यता है कि '···विशेषतः वंगला से उन्हे जो मिला वह तत्त्वत. भारतीय ही था क्योंकि रवीन्द्र स्वय भारतीय सस्कृति के प्रथम प्रहरी है।' अस्तु, इसमे कोई सदेह नही है कि हिन्दी के छायावादी काव्य के प्रस्फुटन मे योग देने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत रवीन्द्र का काव्य है।

छायावाद की प्रारम्भिक प्रवृत्तियो का स्वरूप भी वहुत-कुछ 'गीताजलि' के

अनुसार है । 'गीतांजलि' मे मुख्यत· उदात्त प्रेम, रहस्यानुभूति, प्रकृति का सजीव रूप मे अकन, वेदना की छाया, वैयक्तिक अनुभूतियों के रूप मे कथ्य, कोमल, मधुर गीति शैली—आदि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । ये सभी प्रवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा मे प्रारम्भिक छायावाद मे दृष्टिगोचर होती है । वस्तुत· 'गीताजलि' मे प्रणयानुभूतियो को भले ही वे लौकिक हो या अलौकिक, अत्यन्त उदात्त गभीर एव पवित्र रूप दिया गया है—अत. वे सर्वत्र ही रहस्याभास और रहस्यवाद से सम्वद्ध दिखाई पड़ती है । छायावाद मे भी प्रारभ मे इसी प्रवृत्ति की प्रमुखता थी कदाचित् इसीलिए प्रारंभिक आलोचको ने छायावाद और रहस्यवाद को एक ही मान लेने की भूल की ।

पर आगे चलकर छायावाद केवल रवीन्द्र की सीमाओ तक ही सीमित नही रहा—वह स्वतत्र गति से आगे वढता हुआ, राह मे पडने वाली अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियो से कुछ ग्रहण करता हुआ और कुछ त्यागता हुआ विकसित हुआ । जैसा कि कवियो की अनेक स्वीकारोक्तियो एव आलोचको के विश्लेषण से ज्ञात होता है, इन कवियो की प्रेरणा का दूसरा प्रमुख आधार अग्रेजी के रोमाटिक या स्वच्छन्दतावादी कवियो—वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैले आदि का काव्य रहा है । इन कवियो मे रहस्यवाद कम और मानवी-सौदर्य, लौकिक प्रेम, विरह अधिक है तथा इनकी शैली मे मानवीकरण, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता आदि की प्रवृत्तियाँ भी प्रमुख है—अत ये प्रवृत्तियाँ भी हिन्दी के छायावादियो मे उन्मीलित हुई । वैसे देखा जाय तो मध्यकालीन स्वच्छन्द कवि घनानन्द, वोधा आदि मे भी इनमे से बहुत-सी विपयगत एवं शैलीगत प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है—अत. इनका स्वच्छन्दता की मूल प्रवृत्तियो—भावात्मकता एव कल्पना की प्रधानता—से नैसर्गिक सम्वन्ध ही स्वीकार करना चाहिए । स्वच्छन्दतावादी चेतना अपनी भाव-प्रवणता एव कल्पनात्मकता के कारण सहज ही प्रवृत्तियो मे व्यक्त होती है, यह दूसरी वात है कि परिस्थितियो एव प्रेरणा-स्रोतो की अनुकूलता या प्रतिकूलता के कारण उस अभिव्यक्ति का मार्ग व्यापक या सकीर्ण हो जाता है । फिर भी अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के अनुकूल प्रभाव से इन कवियो का रहस्याभास अधिकाधिक लौकिकता—प्राकृतिक सौन्दर्य एव नारी-प्रेम की ओर उन्मुख होता गया । दूसरे, द्विवेदी-युग के आलोचको के विरोध का सामना करने के लिए भी अपेक्षित मनोवल एव काव्य-शास्त्रीय आधार इन्हे अंग्रेजी के कवियो द्वारा ही प्राप्त हुआ । वे जानते थे कि उनका विरोध उसी भाँति हो रहा है जिस भाँति अंग्रेजी के स्वच्छन्द कवियो का हुआ था तथा अन्त मे उन्हे उन्ही की भाँति प्रतिष्ठा भी प्राप्त होगी । स्वच्छन्दतावादी काव्य के पक्ष मे वने-वनाये तर्क और सिद्धान्त भी इन्हे वही से प्राप्त हो गये । अत. कहना चाहिए कि अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य ने इन कवियो को एक व्यापक एव सुदृढ आधार प्रदान किया ।

छायावादी कवियो का तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना एव स्वराज्य-आन्दोलन से

भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अवश्य है पर उस सम्बन्ध का स्वरूप क्या है—इस सम्बन्ध मे अनेक विवादास्पद धारणाएँ प्रचलित है । कुछ विद्वानो के विचार से हिन्दी के छायावादी कवि स्वराज्य आन्दोलन से विमुख थे, उसके प्रति उदासीन थे तो कुछ के विचार से उस समय स्वराज्य-आन्दोलन विफल हो गया था, अत. उससे उत्पन्न निराशा से ये कवि ग्रस्त थे तो दूसरी ओर कतिपय आलोचको के विचार से उनमे राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति विद्यमान थी जो प्रसाद के ऐतिहासिक नाटको मे व्यक्त हुई है । एक अन्य मत के अनुसार ये राष्ट्रीयता की सकीर्ण चेतना की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीयता की व्यापक भावना से अनुप्राणित थे—अत. इनमे राष्ट्रीयता की सीमाएँ ढूंढना अनुचित हैं । हमारे विचार से ये सभी मत आंशिक सत्य के द्योतक है जिन्हे सर्वांश मे ग्रहण नही किया जा सकता हैं । यह कहना कि ये तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना एव स्वराज्य आन्दोलन से जरा भी प्रभावित नही थे, ठीक नही ; पर उस युग की अनेक ऐसी घटनाओ को—जैसे जलियाँवाला काण्ड, भगतसिंह की फाँसी, साइमन बहिष्कार, गाँधी की डाडी-यात्रा—बिल्कुल चित्रित न करना एक विशेष आश्चर्य की बात हैं । इन घटनाओ ने भारत के जनमानस को बड़ी गहराई से आन्दोलित कर दिया था, अत. इनसे इन सवेदनशील कवियों का अप्रभावित रहना अस्वाभाविक लगता हैं । अवश्य ही ये प्रभावित हुए होगे पर अपने अन्तर्मुखी स्वभाव, सामाजिक भीरुता एव राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ये उसे व्यक्त नही कर पाये । प्रकृति की गोद मे प्रेयसी के ध्यान मे तल्लीन कवि को यह पसन्द नही था कि वह कोई ऐसी बात कहे जिसके कारण पुलिस उसके घर का द्वार खटखटाए और उसे ले जाकर जेलखाने की कोठरियो मे बन्द कर दे ! कोमल तन एव मधुर प्राण वाले छायावादी कवि ऐसी कठोर परिस्थितियो का सामना करना तो दूर उसकी कल्पना से भी भय खाता था । फिर भी राजनीतिक द्रोह की सीमा से बाहर रहते हुए अतीत के माध्यम से राष्ट्रीय गौरव के जागरण मे वह जो योग दे सकता था, उसका प्रयास अवश्य उसके द्वारा हुआ । वैसे भी छायावादी कवि वर्त्तमान की अपेक्षा अतीत और भविष्य मे ही रहना अधिक पसन्द करता था ।

यह कहना कि उस समय स्वराज्य आन्दोलन के विफल हो जाने से उत्पन्न निराशा से ये कवि ग्रस्त थे—सर्वथा अनुपयुक्त है । सन् १९०९ से लेकर १९४२ तक अनेक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ और दुर्घटनाएँ हुई जिनसे भारत का जनमानस बार-बार थर्रा गया ! पर इन दुर्घटनाओ और काण्डो से भारतीय चेतना न तो सीमित, दुर्बल या अशक्त हुई अपितु क्रमश. अधिकाधिक व्यापक एवं सशक्त होती गयी—हत्याकाण्डो एव फाँसियो ने भले ही कुछ महान् व्यक्तियो के प्राण ले लिये हो पर उससे स्वराज्य आन्दोलन की आग शान्त होने के स्थान पर और अधिक तेज हुई—अत. हमारे विचार मे यह मानना कि स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व स्वराज्य आन्दोलन किसी

भी समय विफल हो गया था और उससे निराशा उत्पन्न हो गयी थी—उचित प्रतीत नही होता ।

हमारे यहाँ राष्ट्रीयता की धारणा कभी भी उस रूप मे विकसित नही हुई जो कि अन्तर्राष्ट्रीयता की विरोधी या अवरोधक हो । विवेकानन्द, अरविन्द, गाँधी ने हमे राष्ट्रीयता का जो बोध दिया वह अन्तर्राष्ट्रीयता का अंग था—वह हमे व्यापकता की ओर ही अग्रसर करता था—ऐसी स्थिति मे यह सोचना कि छायावादी कवियो की राष्ट्रीयता एव अन्तर्राष्ट्रीयता परस्पर-विरोधी थी, एक के कारण दूसरी का उन्मीलन न हो सका, उचित प्रतीत नही होता । ऐसी स्थिति मे यह बात भी स्वीकार्य नही है कि अपनी अन्तर्राष्ट्रीयता के कारण इन कवियो ने राष्ट्रीयता की अवज्ञा की ।

अस्तु, सक्षेप में कहा जा सकता है कि छायावादी कवियो की मूल चेतना राष्ट्रीयता के अनुकूल होती हुई भी वह व्यक्तित्व की अन्तर्मुखता, जन-भीरुता, एव सामयिक परिस्थितियो व राजनीतिक उत्पीडन की कठोरता सहन करने की अक्षमता के कारण ही उसमे प्रत्यक्ष रूप मे—विशेषत. स्वराज्य-आन्दोलन मे—प्रवृत्त न हो सकी । युगीन चेतना के सदर्भ मे छायावादी कवियो की यह सबसे बड़ी दुर्बलता या सीमा मानी जा सकती है । जिस समय स्वराज्य-प्राप्ति के लिए राष्ट्र के अनगिनत युवक शहीद हो रहे थे, उस समय इन कवियों का पेड-पोधो की छाया या किसी युवती वाला के आँचल की ओट मे दुवक जाना—छायावादी कवियो के माथे पर बहुत वडा कलक है । 'जव रोम जल रहा था तो नीरो बाँसुरी बजा रहा था'—यह कहावत अनेक छायावादी कवियो पर भी लागू होती है । इतिहास उन्हे इसके लिए क्षमा नही कर सकता ।

भारतीय वेदान्त—विशेषत. विवेकानन्द एव अरविन्द की व्याख्याओ—का प्रभाव भी प्रमुख छायावादी कवियो पर दृष्टिगोचर होता है । इस प्रभाव ने एक ओर तो उनकी रहस्योन्मुखता की प्रवृत्ति को दृढ किया तो दूसरी ओर उन्हे भारतीयता, आध्यात्मिकता एव विश्व-वन्धुत्व के गुणो से भी विभूपित किया । द्विवेदी युगीन साहित्यकारो द्वारा आरोपित अनेक आक्षेपो—विदेशीपन, छिछलापन, अनैतिकता, उच्छृङ्खलता आदि से सम्वन्धित—के निराकरण मे भी इन गुणो से सहायता मिली । दूसरी ओर वौद्धमत के प्रभाव ने इन्हे अतीत की गरिमा, अन्तर्राष्ट्रीयता, मानवतावाद, विश्व-मैत्री, करुणा और दु खवाद का भी वोध प्राप्त हुआ । अत. वेदान्त और वौद्ध मत छायावाद के पूरक सिद्ध हुए ।

इस प्रकार छायावाद अपने प्रथम उत्थान में अपनी मूल चेतना के अनुसार अनेक स्रोतो से प्रेरणा और वाधा ग्रहण करता हुआ क्रमश अनेक दिशाओ की ओर अग्रसर हुआ । सक्षेप मे विभिन्न स्रोतो से प्राप्त प्रेरणाओ का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

छायावाद को विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रेरणाएँ एवं प्रवृत्तियाँ

स्रोत	प्रवृत्तियाँ
• निजी व्यक्तित्व एव अतश्चेतना से>	१. स्वच्छन्ता की वृत्ति
	२. भावुकता या संवेदनशीलता
	३ कल्पना-प्रियता
• रवीन्द्र और उनकी 'गीताजलि' से>	४ प्रेम का उदात्त रूप
	५. रहस्योन्मुखता
	६ प्रकृति की सजीवता
	७. वेदना की छाया
	८. गीति शैली
• अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य से>	९ मानवी सौन्दर्य व प्रेम
	१०. वैयक्तिकता
	११. प्रकृति से अतिशय प्रेम
	१२. शैली मे मानवीकरण
	१३. प्रतीकात्मकता
	१४ लाक्षणिकता
	१५ भाषा की कोमलता
• तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना एव स्वराज्य आन्दोलन से>	१६. प्राचीन भारत के गौरव का चित्रण
• वेदान्त-दर्शन से>	१७ रहस्योन्मुखता मे दृढता (रहस्यवाद)
• वौद्ध दर्शन से>	१८ मानवतावाद
	१९ विश्वमैत्री
	२०. करुणा की भावना
	२१ दु खवाद

वैसे इनके अतिरिक्त विभिन्न कवियो के सदर्भ मे अन्य स्रोतो की भी चर्चा की जा सकती है, जैसे—प्रसाद के संदर्भ मे शैव-दर्शन की या पत के सदर्भ मे अरविन्द दर्शन की, पर सामान्य रूप मे ये गौण है, अत' इनकी चर्चा यहाँ करना आवश्यक नही है।

छायावाद का विघटन—छायावाद अपने प्रस्फुटन काल (१९१३ ई०) से लेकर १९२७ ई० तक क्रमशः अधिकाधिक संगठित, विकसित एवं व्यापक होता गया—इस काल तक इसे उपर्युक्त स्रोतो से नयी-नयी प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ प्राप्त हुई जिन्हे ग्रहण करता हुआ यह अधिकाधिक पुष्ट एव शक्तिशाली होता गया। पर १९२७ ई०

के अनन्तर इसमे हम एक ऐसा परिवर्तन-क्रम देखते हैं जो कि इसकी ह्रासोन्मुखता एव विघटनात्मकता का सूचक है। जिन प्रवृत्तियो का पहले क्रमश सगठन हुआ था, अब वे बिखरती हुई या अलग होती हुई दृष्टिगोचर होने लगती है। प्रसाद का स्वच्छन्द प्रेम क्रमश अधिकाधिक दार्शनिकता एव आध्यात्मिकता से अनुस्भूत होता हुआ 'कामायनी' तक पहुँचते-पहुँचते शैव दर्शन की सुदृढ़ भूमि पर विशुद्ध रहस्यवादी रूप धारण कर लेता है। दूसरे शब्दो मे, झरना, लहर और प्रेम-पथिक का स्वच्छन्दतावादी कवि कामायनी मे आकर आदर्शवाद से समन्वित हो जाता है। इसका अर्थ यह नही है कि वे स्वच्छन्दतावाद से विमुख हो गये—अपितु यह है कि उनका स्वच्छन्दतावाद ही आदर्शवादी प्रवृत्तियो से अनुप्राणित हो गया। जिस प्रकार प्रेमचन्द के आदर्शवाद को यथार्थोन्मुख आदर्शवाद कहा जाता है वैसे ही 'कामायनी' के स्वच्छन्दतावाद को 'आदर्शोन्मुख स्वच्छन्दतावाद' कहा जा सकता है। इसके विपरीत पत का स्वच्छन्दतावाद आदर्श के स्थान पर यथार्थ की ओर अग्रसर होता है। 'वीणा' मे जो कवि प्रकृति की मधुर छाया के सम्मुख बालाओ के सौन्दर्य-जाल को सरलता से ठुकरा चुका था, 'वही अब 'गुंजन' में भावी पत्नी की प्रतीक्षा मे खोया हुआ, प्रकृति की रगीनी एवं फूलों की मुस्कुराहट मे अपनी प्रेयसी के रंग-रूप एवं मुस्क्यान की प्रतिच्छाया देखता है। 'युगान्त' 'युगवाणी' आदि मे पत अधिकाधिक यथार्थोन्मुख होते गये है। पर पत की चंचल प्रकृति कभी भी एक स्थल और एक दिशा में स्थिर नही रही अपितु वे आगे चलकर यथार्थ-वाद की सीमाओ को लाँघते हुए आदर्शोन्मुखता की ओर अग्रसर होते है। अरविन्द दर्शन से प्रभावित उनकी विभिन्न रचनाएँ इसी आदर्शोन्मुखता की द्योतक हैं। इस प्रकार पत का स्वच्छन्दतावाद क्रमश. यथार्थोन्मुखता एव आदर्शोन्मुखता की ओर अग्रसर होता है। यही बात एक सीमा तक निराला मे मिलती है। वे प्रारम्भ मे स्वच्छन्दतावादी थे पर आगे चलकर कभी यथार्थ और कभी आदर्श के द्वन्द्व से ग्रस्त दिखाई पडते है। वस्तुत. पत किसी सीमा तक परिवर्तित मार्ग और दिशा के साथ अपनी गति की सगति बिठाने मे प्राय. सफल रहे—छोडे हुए मार्ग और अपनाये गये नये मार्ग के बीच द्वन्द्व या भटकाव उनमे बहुत कम मिलता है जब कि निराला एक ही साथ दो दिशाओ के बीच द्वन्द्व-रत दिखाई देते हैं। इसीलिए वे 'तुलसीदास' जैसी आदर्शोन्मुख एव 'कुकुरमुत्ता' जैसी यथार्थोन्मुख रचनाएँ एक ही साथ प्रस्तुत करते हुए दिखाई पडते हैं।

महादेवी का काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश लगभग उसी समय हुआ जब कि छायावाद अपने विकास की सीमा तक पहुँच कर विघटन और ह्रास की ओर अग्रसर होने लगा था। यद्यपि महादेवी की छायावादी चेतना का विस्तृत विश्लेषण हम अन्यत्र करेंगे पर यहाँ संक्षेप मे इतना ही निर्देश करना पर्याप्त होगा कि वे प्रारंभ से ही अध्यात्मवादी, रहस्यवादी एवं आदर्शवादी प्रेरणाओ से अनुप्राणित रही तथा अपने काव्य-रचना-काल

मे वे स्थिर एवं सुदृढ़ गति से अपनी मूल दिशा की ओर ही अग्रसर रही। अस्तु, महादेवी को शुद्ध आदर्शोन्मुखी स्वच्छन्दतावादी कवयित्री कहना उचित होगा। वस्तुत. उनमे कही-कही आदर्शवाद स्वच्छन्दतावाद से भी प्रमुख हैं, अत उन्हे स्वच्छन्दतोमुखी आदर्शवादी कहना अधिक ठीक होगा।

अस्तु, १९२७ से १९३६ तक हिन्दी का स्वच्छन्दतावाद अनेक दिशाओ की ओर अग्रसर होता हुआ निरन्तर विघटित हो रहा था। पर १९३६-३७ मे प्रगतिवाद आन्दोलन के उन्मेप ने छायावाद के दुर्वल एव निस्तेज प्राणो को गहरी क्षति पहुँचायी। यदि यह आन्दोलन जो कि स्वच्छन्दतावाद के विरोधी यथार्थवाद की चेतना से अनु-प्राणित था, छायावाद के संगठन-काल मे आया होता तो वह कभी इसे इतनी क्षति न पहुँचा पाया होता। पर इसका आविर्भाव उस समय हुआ जबकि छायावाद अपनी प्रौढ़ावस्था की चरम सीमा तक पहुँच कर वहुत-कुछ शिथिल हो चुका था—इसीलिए अनेक छायावादी कवि जिनकी आस्थाएँ दुर्वल एव प्रवृत्तियाँ चचल थी—तुरन्त ही नये धर्म मे दीक्षित होकर उसके स्वर मे स्वर मिलाने लगे। इससे छायावाद को एक लाभ भी हुआ—अनेक ऐसे कवि जो मूलत स्वच्छन्दतामूलक वृत्तियो से युक्त न थे, केवल युग की देखा-देखी छायावादी स्वर उच्चरित करने लगे थे, शीघ्र ही उससे अलग हो गये, छँट गये। ऐसी स्थिति मे सच्चे छायावादी ही इस क्षेत्र मे टिके रह सके।

छायावाद और प्रगतिवाद का द्वन्द्व लगभग १९४२ तक सशक्त रहा। अवश्य ही एक वार ऐसा लगा कि प्रगतिवाद छायावाद को सदा के लिए शान्त कर देगा। स्वयं छायावादी कवियों में से अनेक ने उसे मृत घोषित कर दिया तथा अनेक नूतन आलोचक उसकी शव-परीक्षा करके उसकी मृत्यु के कारणो का अनुसधान करते हुए परस्पर-विरोधी रिपोर्टों से हिन्दी-जगत् को चौकाने में लग गये। पर फिर भी, यदि आलोचक खुली आँख से वर्त्तमान के जीवित छायावादी स्वरो को देख सके तथा उनकी मूल चेतना को पहचान सके तथा हमारे इतिहासकार नये युग पर नया लेविल लगा कर शताधिक कवियों के अस्तित्व को गौण न कर दें तो ज्ञात होगा कि १९४२ के वाद भी छायावाद अपनी मूल शक्ति के साथ जीवित है। जव किसी भी वाद या सम्प्रदाय पर वाहरी आक्रमण होता है तो उसकी आन्तरिक शक्ति एवं सोई हुई क्षमताएँ जाग्रत हो उठती है—फलत. जव तक उसमे प्राण शेष रहते है वह अपेक्षाकृत अधिक सचेत एव सक्रिय रूप मे उद्वोधित हो उठता है। यही वात छायावाद पर लागू होती है। निश्चय ही इस द्वन्द्व-काल मे दुर्वल छायावादी और नकली छायावादी उसके क्षेत्र से पलायन कर गये, उनमे से अनेक विरोधी दल मे भी जा मिले, तथा उसके अनेक ऐसे पक्ष एव प्रवृत्तियाँ जो कि छायावाद को वाह्य स्रोतो से प्राप्त हुई थी विभक्त एवं खडित हो गईं, फिर भी वह अपने मूल रूप मे जीवित रहा। द्वन्द्व ने उसको सीमित एवं संतुलित ही किया, अपनी सवलता के कारण वह पूर्णतः नप्ट नही हुआ।

सन् १९४२ के अनन्तर एक नये आन्दोलन—प्रयोगवाद—का प्रवर्त्तन हुआ जो कि छायावाद और प्रगतिवाद दोनो का सामान्य शत्रु था। इस स्थिति से छायावाद—प्रगतिवाद के पारस्परिक द्वन्द्व व विरोध का शमन हुआ तथा वे अलग-अलग प्रयोगवाद से निपटने मे लग गये। वस्तुत· प्रारभ मे छायावादियो को प्रयोगवाद से विशेष चिन्ता नही हुई—अत एक प्रकार से उन्हे वाह्य विरोध एवं द्वन्द्व से मुक्ति ही मिली। यही कारण है कि परवर्ती युग मे छायावादी कवियो को पुन शान्त एव धीर गति से अपनी दिशा की ओर अग्रसर होते देखते है। सन् १९४२ के अनन्तर छायावादी धारा अनेक उप-धाराओ मे विभक्त होकर आगे बढती हुई दिखाई पडती है। ये उपधाराये मुख्यतः निम्नलिखित हैं—

(क) **रहस्योन्मुख धारा**—जानकीवल्लभ शास्त्री, विद्यावती कोकिल, हरिकृष्ण 'प्रेमी' आदि।

(ख) **राष्ट्रीयता की ओर उन्मुखधारा**—माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि।

(ग) **वैयक्तिक प्रेममूलक स्वच्छन्द धारा**—बच्चन, भगवती चरण वर्मा, आरसी प्रसाद सिंह, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, तारा पांडेय, रामावतार त्यागी, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, रामानन्द 'दोपी' आदि।

वस्तुत छायावाद की मूल चेतना का प्रतिनिधित्व यह वैयक्तिक प्रेममूलक स्वच्छन्द धारा ही कर रही हैं जिसके अंतर्गत शताधिक कोमल, मधुर एव मादक स्वर आज भी निनादित हो रहे है। आलोचको और इतिहासकारो ने अपनी आँख मूँदकर इनके अस्तित्व को ठुकराने का प्रयास किया है पर जन-मानस मे आज भी ये अपना सर्वोच्च स्थान बनाये हुए हैं। प्रगतिवाद एव प्रयोगवाद के उत्थान ने छायावाद की सोयी हुई शक्ति को जगाने एव उसके ढलते हुए वेग को तीव्र करने मे योग दिया—बाह्य आक्रमण, द्वन्द्व एव आघात के कारण उसके अपेक्षाकृत अधिक सयत एव सतुलित रूप का विकास हुआ हैं। वह प्रारंभिक आरोपित प्रवृत्तियो से मुक्त होकर अपने सहज स्वाभाविक रूप मे प्रकट हो गया—यह दूसरी बात है कि इस स्थिति मे उसका आकार-प्रकार लघु एव विस्तार सीमित हो गया हैं, पर फिर भी इसे उसका पतन, नाश या लोप नही कह सकते। जिन कवियो एव आलोचको ने छायावाद की मृत्यु का ढिंढोरा पीटा था, वे वस्तुत सामयिक भ्रान्ति से ग्रस्त थे, प्रगतिवाद के तुमुल घोष के सम्मुख छायावादी रागिनी कुछ समय के लिए 'नक्कारखाने मे तूती की आवाज' बन गयी थी, ऐसी स्थिति मे वे लोग जो कि इस कोमल, मद, क्षीण स्वर को सुन पाने मे असमर्थ हैं, छायावाद को मृत घोपित करे तो क्षम्य हैं। पर प्रगतिवादी नक्कारखाने और प्रयोगवादी चहचहाट के परिपार्श्व मे गूजने वाले रामावतार त्यागी, रामानन्द दोषी, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, रमानाथ अवस्थी, डा० शम्भूनाथसिंह, बालस्वरूप 'राही' प्रभृति के स्वरों

का माधुर्य यह सिद्ध कर रहा है कि छायावाद आज भी जीवित है। इतिहासकारो द्वारा काल-विभाजन की भ्रामक पद्धति का प्रयोग किये जाने के कारण ही आधुनिक युग को 'छायावाद युग', 'प्रगतिवादी युग', 'प्रयोगवादी युग' आदि खडो मे विभक्त किया गया है जबकि वस्तुत ये तीनो आन्दोलन क्रमश विकसित तीन परम्पराओं के प्रतिनिधि है जो कि आज भी समानान्तर रूप मे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। अत इन परम्पराओ को साहित्य मे सम्यक् स्थान देने के लिए इतिहास को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हुए उसे नये रूप मे वर्गीकृत करना होगा—प्रस्तुत पक्तियो के लेखक ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' मे इसी प्रकार का तुच्छ प्रयास किया भी है जिससे यह तथ्य भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद आज भी अपनी मूल शक्ति एव शान्त गति से हिन्दी काव्य-क्षेत्र मे प्रवहमान है। ऐसी स्थिति मे उसके अस्तित्व के सम्बन्ध मे और अधिक तर्क न देकर केवल इतना ही निवेदन करेगे कि इसे मृत घोषित करने वाले विद्वान् उन शताधिक जीवित गीतिकारो पर दृष्टिपात करे जो कि अपनी वैयक्तिकता, स्वच्छन्दता, रागात्मकता, एव प्रगीतात्मकता के कारण छायावादी परम्परा का प्रतिनिधित्व कर रहे है और इसीलिये जिन्हे आलोचक और इतिहासकार किसी भी अन्य परम्परा मे स्थान नहीं दे पा रहे हैं तथा जिनकी वाणी आज भी जन-मानस को आन्दोलित करने मे समर्थ है। ऐसी स्थिति मे प्रत्यक्ष को प्रमाणित करने के लिए और किसी प्रमाण की अपेक्षा होगी ?

* * *

३

महादेवी के काव्य में छायावादी प्रवृत्तियाँ

"......महादेवीजी ही छायावादियों में एक मात्र वह चिरन्तन भाव-यौवना कवयित्री हैं जिन्होंने नये युग के परिप्रेक्ष्य में राग तत्त्व के गूढ संवेदन तथा राग मूल्य को अधिक मर्मस्पर्शी, गंभीर, अन्तर्मुखी, तीव्र सवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है......।"

—सुमित्रानन्दन पंत

यद्यपि प्रत्येक वाद, सप्रदाय या आन्दोलन से सम्वद्ध विभिन्न व्यक्तियो मे विचार-धारा की दृष्टि से अनेक सामान्य प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती है तथा उन्ही सामान्य प्रवृत्तियो को तत्सम्बन्धी वाद की प्रतिनिधि प्रवृत्तियो के रूप मे स्वीकार किया जाता है, फिर भी हमे इस तथ्य की उपेक्षा न करनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति के बाह्य रूप, आन्तरिक वोध, उसकी प्रकृति एव प्रवृत्ति मे दूसरे से इतना सूक्ष्म अन्तर सदा विद्यमान रहता है कि जिसके कारण उसे अपनी जाति के समूह से पृथक् किया जा सके। 'मनुष्य' शब्द धरती के समस्त मनुष्यो के सामूहिक एवं सामान्य लक्षणो का प्रतिनिधित्व करता है पर फिर भी प्रत्येक मनुष्य मे देश-काल, जाति, वंश-परपरा, रूप, स्वभाव एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से ऐसा वैशिष्ट्य मिलता है कि उसका सहोदर भी उसका स्थानापन्न नही वन सकता। व्यक्ति की यह विशिष्टता अन्य क्षेत्रो मे भले ही गौण या उपेक्षित रह जाय किन्तु साहित्य के क्षेत्र मे, जो कि वैयक्तिकता से प्रगाढ रूप में सम्वद्ध है, तो इसे अनिवार्य रूप मे प्रमुखता देनी पडती है। इसीलिए छायावाद के स्वरूप के सामान्य विवेचन से विभिन्न कवियो की सामान्य प्रवृत्तियो का तो स्पष्टीकरण होता है किन्तु छायावादी कवि के रूप मे महादेवी के वैशिष्ट्य का वोध उससे नही हो पाता। छायावाद सम्बन्धी सामान्य निष्कर्ष हमे एक ऐसी व्यापक आधारभूमि प्रदान करते है

जिनके परिप्रेक्ष्य मे महादेवी के वैशिष्ट्य को समझना व परखना अधिक सुकर हो गया है ।

● **महादेवी का वैशिष्ट्य**—अन्य छायावादी कवियो की तुलना मे महादेवी का वैशिष्ट्य अनेक दृष्टियो से है । एक तो प्रसाद, पत, निराला प्रभृति जहाँ पुरुष-समाज के प्रतिनिधि थे, वहाँ महादेवी युवा नारी थी । पुरुष और नारी का अन्तर भारतीय समाज मे विशेषत उस युग मे, परिस्थितियो एव स्थितियो के एक बहुत बडे अन्तर का सूचक है । दूसरे, महादेवी को जैसा पारिवारिक वातावरण एव सुसंस्कृत परिवेश प्राप्त हुआ था, वह भी पूर्ववर्ती कवियो के वातावरण व परिवेश से अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल एव प्रेरणाप्रद था । पारिवारिक जीवन के जिन कष्टो एव आर्थिक सकटो का सामना प्रसाद-निराला को करना पडा, सौभाग्य से महादेवी उनसे बची रही । तीसरे, महादेवी का काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश उस समय हुआ जव कि प्रसाद, पत, निराला आलोचको के कटु प्रहार एव तीव्र व्यग्यो को सहन करते हुए भी छायावाद की उवड-खावड भूमि को एक सुव्यवस्थित पक्की सडक का रूप दे चुके थे, जबकि विरोधी भी उसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मे स्वीकार करने लगे थे । दूसरे शब्दो मे, जिस समय महादेवी की प्रथम काव्य-कृति 'नीहार' (१९२९ ई०) प्रकाशित हुई थी, उस समय तक छायावाद भली भाँति हिन्दी मे प्रतिष्ठित हो चुका था, इतना ही नही वह विभिन्न अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो से ग्राह्य एव त्याज्य को ले-देकर अपना स्वरूप विकसित कर चुका था । जसा कि हमने पीछे स्पष्ट किया है—सन् १९२७ ई० तक छायावाद अपने संगठन काल की चरम सीमा तक पहुँच चुका था, इसके अनन्तर तो इसमे क्रमश विघटनात्मक प्रवृत्तियाँ ही पनपी जो कि आगे चलकर छायावाद को अनेक उप धाराओ मे विभक्त करती हुई उसके रूप को स्पष्ट, आकार को लघु एव प्रवृत्तियो को सीमित करने मे सफल हुई । अस्तु, महादेवी का छायावाद के क्षेत्र मे ठीक उस समय आगमन हुआ जब कि वह अपने सौन्दर्य, यौवन एव आकर्षण की चरम सीमा पर था—यह सौभाग्य निश्चित ही न पूर्ववर्ती छायावादियो को प्राप्त हुआ और न ही परवर्तियो को । उनके काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश से पूर्व ही छायावाद का विरोध वहुत-कुछ न्यून हो गया था तथा असख्य श्रोता एव पाठक उसके रोमानी गीतो, प्रणय-वेदना के स्वरो एव रगीन शब्दो मे रुचि लेने लग गये थे । फिर भी एक रिक्तता का अनुभव वे अवश्य करते थे—वह यह है कि पुरुष-कंठो से वेदना के गीत एव दु खपूर्ण उच्छवास वहुत उपयुक्त प्रतीत नहीं होते थे , महादेवी ने आकर इस रिक्तता को भी परिपूर्ण कर दिया । छायावादी काव्य का मूल कोमल, मधुर एव आर्द्र स्वर नारी कठो मे ही अधिक फबता था—इसीलिए श्रोताओ ने महादेवी के अवतरण पर अनुभव किया मानो जिस वात की वे अव तक प्रतीक्षा कर रहे थे उसकी पूर्ति अव हुई है । निश्चित ही पूर्ववर्ती

कवियों की तुलना मे महादेवी को काव्यक्षेत्र मे वहुत शीघ्रता से स्वागत सम्मान एवं स्थान प्राप्त हुआ ।

आगे चलकर जव छायावाद के क्षेत्र मे अनेक कवि-कवयित्रियाँ उतर आई तो उसके प्रति आकर्पण अपेक्षाकृत कम हो गया । अत. महादेवी के अनन्तर इस क्षेत्र मे अवतीर्ण होने वाली प्रतिभाओ को भी अपेक्षाकृत विलम्ब से मान्यता प्राप्त हुई ।

परिस्थितियो की दृष्टि से उपर्युक्त अनुकूलता को स्वीकार करते हुए भी हमे यहाँ एक विशेप प्रतिकूल स्थिति को भी ध्यान मे रखना चाहिए जो कि महादेवी के युवा नारी होने के कारण उत्पन्न हुई थी । उस युग मे जव कि हमारा समाज नारी को परदे की ओट मे, सौन्दर्य-प्रेम और विरह के सम्वन्ध मे मौन एव आत्माभिव्यक्ति के क्षेत्र मे निष्क्रिय ही देखने का अभ्यस्त था—एक युवती के लिए सौन्दर्य और प्रेम के स्वच्छन्द भावो को अभिव्यक्ति करना कितना दुष्कर था, इसका अनुमान लगाना आज की परिस्थितियो मे असभव है । भावुक, रोमानी एव प्रणय-गीतो की गायिका मे तद्-युगीन समाज न केवल अतिरिक्त रुचि लेने लगा अपितु वह अपनी कुत्सित दृष्टि एव व्यग्यपूर्ण उक्तियो से उसे अपने पथ से विचलित कर देने या अपने कुरुचिपूर्ण मतव्यो द्वारा उसकी साधना को कलुषित कर देने के प्रयासो से भी वह न चूका । सचमुच ही यह स्थिति उससे कही अधिक विपम थी जिसका सामना पूर्ववर्ती छायावादियों ने किया । पूर्ववर्तियो का उपहास अधिक से अधिक उनकी रचनाओ के गुण-अवगुणो को ही लेकर किया गया, अधिक से अधिक उन्हे अस्पप्ट, विचार-शून्य, वाचाल, कल्पनाशील, पलायनवादी, उच्छृङ्खल ही कहा गया, चरित्र सम्वन्धी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आक्षेप उन पर आरोपित नही हुए जो कि केवल नारी होने के कारण महादेवी की ओर प्रक्षिप्त किये गये । अस्तु, महादेवी को अपने पथ पर अग्रसर होने के लिए अपेक्षाकृत अधिक आत्म विश्वास, स्वाभिमान, साहस एव धैर्य्य से काम लेना पड़ा ।

महादेवी की परिस्थितियो के वैशिष्ट्य के अतिरिक्त उनके निजी व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य भी कम महत्त्वपूर्ण नही है । वैयक्तिक एव चारित्रिक दृष्टि से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी का व्यक्तित्व प्रसाद, पंत, और निराला के व्यक्तित्व की अपेक्षा अधिक दृढ, गभीर एव सतुलित है । प्रसाद का मानसिक विकास अनेक आन्तरिक एव वाह्य द्वन्द्वो से ग्रस्त होता हुआ क्रमश अनेक दिशाओ की ओर अग्रसर हुआ । वे व्रज-भापा कवि के रूप मे शृगार-रस की अनुभूतियाँ लेकर काव्य-क्षेत्र में अवतरित हुए, जिन रचनाओ को उन्होंने पहले शृगारी रूप दिया था, नये संस्करणो मे उन पर अलौकिकता का आवरण डाल दिया, 'प्रेम-पथिक' मे उन्हे हम लौकिक प्रेम जन्य निराशा से विगलित पाते हैं, 'महाराणा के महत्त्व' मे वे देश-प्रेम की ओर उन्मुख होते है तो 'कामायनी' तक पहुँचते-पहुँचते वे अध्यात्म और अलौकिक प्रेम की ओर प्रयाण कर जाते है । वस्तुतः 'कामायनी' का मनु जिस प्रकार श्रद्धा और

इड़ा, प्रेम और निर्वेद, चिन्ता और आनन्द के पारस्परिक द्वन्द्व के झूले मे झूलता हुआ दिखाई पड़ता है—लगभग उसी प्रकार प्रसाद का व्यक्तित्व स्वच्छन्द प्रेम के गीतों, आदर्शोन्मुखी रूपको, नाटको के रूप मे अतीत के खडहरो एवं यथार्थोन्मुख उपन्यासो के माध्यम से वर्तमान की विभीषिकाओ के बीच जूझता हुआ दिखाई पडता है। अवश्य ही यह उनके व्यक्तित्व की अनेकोन्मुखता, रुचियो की विविधता, चेतना की व्यापकता, प्रवृत्तियो की वहुविधता का सूचक है—इन सव से प्रसाद के एक विराट व्यक्तित्व का वोध होता है और निश्चित ही ऐसा विराट व्यक्तित्व ही एक नयी चेतना और नयी धारा का प्रस्फुटन एव उन्मीलन कर सकता है तथा वह अपने युग को नेतृत्व प्रदान कर सकता है, पर इतना सव-कुछ होते हुए भी, हम प्रसाद के श्रद्धालुओ से क्षमा माँगते हुए—यह कहने का साहस करते है कि 'कामायनी' के अतिम सर्गो मे ज्ञान, क्रिया और भावना के जिस समन्वय की बात उन्होने कही है, वह समन्वय प्रसाद मे नही, महादेवी में उपलब्ध होता है। रुचियो का वैविध्य एव प्रवृत्तियो का विस्तार प्रसाद के काव्य को एक व्यापक फलक एवं विस्तृत भूमि तो प्रदान कर पाया है, पर उन रुचियो को समन्वित कर पाना, प्रवृत्तियो को सगठित एवं सतुलित कर पाना इससे उतना ही कठिन हो गया। इसलिए हम प्रसाद के छायावाद मे प्रवृत्तियो का क्रमिक विकास एव वैविध्य तो पायेंगे किन्तु उस सतुलन, सामजस्य एवं सगठन का उसमे अभाव है जो महादेवी मे सहज ही—प्रारंभ से अव तक—दृष्टि गोचर होता है। संक्षेप मे, प्रसाद की तुलना मे महादेवी का कवि-व्यक्तित्व लघु और सीमित तो है पर वह जितना भी है, सुसमन्वित एव सश्लिष्ट है—यही उनकी काव्यात्मक विशिष्टता का मूलाधार है।

पंत के व्यक्तित्व की तुलना मे महादेवी और भी अधिक स्थिर एव सुदृढ दिखाई पडती है। पंत का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत कोमल एव लचकीला है जो कि परिस्थितियो के प्रभाव को वहुत शीघ्र ग्रहण कर लेता है—इसे चाहे तो 'गतिशीलता' या 'प्रगति-शीलता' कह कर उनका गुण माना जा सकता है या दूसरी दृष्टि से 'चंचलता' एवं 'दुर्वलता' कह कर उनके व्यक्तित्व को अति सुकुमारता के रूप मे स्वीकार किया जा जा सकता है। उनकी इस प्रवृत्ति के कारण उनके काव्य ने प्रत्येक नयी दशाब्दी मे नया रंग-रूप और नया परिवेश ग्रहण किया, वे तीव्र गति से समय के साथ दौडते रहे, इसलिए परवर्ती युग के प्रत्येक आन्दोलन के वे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप मे साथी रहे ; यह निश्चित ही उनकी एक वहुत वड़ी उपलब्धि है जिस पर वे गर्व कर सकते हैं, पर जो गांभीर्य एव औदात्य एक धीर, शान्त पथिक की सयमित एव संतुलित गति और सुनिश्चित दिशा के अग्रसरण मे दिखाई पड़ता है, उसका पंत मे अभाव है। इसके लिए उन्हे दोषी नही कहा जा सकता—उनके व्यक्तित्व की अतिशय कोमलता एव सुकुमारता का विकास

विविधता, व्यापकता एवं बहुरगीपन मे ही हो सकता था ; यही उनके लिए स्वाभाविक था।

निराला का व्यक्तित्व सर्वाधिक उद्दाम, तेजस्वी एव विस्फोटक था। ऐसा व्यक्तित्व किसी भी निश्चित, पूर्व निर्मित, योजनावद्ध मार्ग पर अग्रसर नही होता, उसकी गति एव दिशा भी सर्वदा एक-जैसी नही रहती। द्वन्द्व उसके जीवन की प्रेरणा ही नही रहता अपितु कही-कही लक्ष्य होता हुआ दिखाई पडता है। यदि वह किसी भाँति इन द्वन्द्वो पर विजय प्राप्त करले तो युगावतार की सी सफलता प्राप्त कर सकता है—कवीर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कवीर का भी व्यक्तित्व इतना ही द्वन्द्व-ग्रस्त था तथा उनकी परिस्थितियाँ भी उतनी ही प्रतिकूल थी, किन्तु अपनी आस्था की दृढता के कारण वे सारे द्वन्द्वो एव विरोधो को आत्मसात् करने मे सफल हुए, जबकि दुर्भाग्य से निराला इस स्थिति तक पहुँचने से पूर्व ही चल बसे। निराला की शक्तियाँ द्वन्द्व को पूरी तरह समाप्त कर पाती कि उससे पूर्व ही द्वन्द्व उन पर हावी हो गया—फलत उनका कवि-व्यक्तित्व खडित एव विभक्त होकर अनेक रूपो और अनेक दिशाओ मे विखर गया। इसका तात्पर्य यह नही है कि हम निराला के व्यक्तित्व एव कृतियो का अवमूल्यन कर रहे है, हमारा प्रतिपाद्य केवल इतना ही है कि निराला का काव्य उनकी संभावनाओ से कुछ कम हैं, उनमे इससे भी वडा कवि वनने की सभावनाएँ थी।

महादेवी का व्यक्तित्व निश्चित ही निराला के व्यक्तित्व की तुलना मे कम शक्तिशाली है, स्वच्छन्दता, उद्दामता, तेजस्विता एव सघर्ष करने की क्षमता उनमे निश्चित ही कम है, पर उनकी भावुकता पर वौद्धिकता का, आदर्शवादिता पर व्यावहारिकता का, स्वच्छन्दता पर चिन्तित मूल्यो का, विरोधो पर सामजस्य के सूत्रो का नियत्रण है जिससे वे अपना मार्ग विरोधो और अवरोधो के बीच से भी निकाल लेती हैं, उनकी भावुकता बुद्धि के कूलो का परित्याग करके स्वच्छन्द स्रोतो के रूप मे वहना, भटकना या विखरना नही जानती अपितु वह अनुशासित धारा की भाँति अपने लक्ष्य के महासागर की ओर धीर गति से अग्रसर रहती हैं। क्षमताएँ उनमे कम है, सभावनाएँ और भी कम, पर जितना भी जो-कुछ उनके पास था, उसका उपयोग पूर्ण रूप मे वे कर पायी हैं—इसमें कोई सदेह नही। इस सफलता का रहस्य इस तथ्य मे निहित है कि उनका समस्त वाह्य जीवन उनकी आन्तरिक शक्ति के निर्देशो से वँधा हुआ है और उनकी आन्तरिक शक्ति एक ऐसे अक्षय कोष से युक्त है—जिसे हम 'आस्था' कहते है। एक सुदृढ, अडिग एव अकम्पित आस्था की ज्योति से उनका समस्त जीवन और काव्य आलोकिक है, इसीलिए विरोधो, द्वन्द्वो, असफलताओ और निराशाओ की छाया उनमे कही भी दृष्टिगोचर नही होती। आस्था की जिस शक्ति के वल पर महादेवी विरोध, द्वन्द्व एवं कटता के महासागर को स्वयं ही तैर गयी, उसी के अभाव ने अन्य कवियो को चंचल, ढुलमुल, और क्षुब्ध वनाये रखा।

अस्तु, हमारा लक्ष्य यहाँ किसी के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना या नीचा गिराना नही—अपितु उन मौलिक विशेपताओ का अनुसधान करना है जिनके कारण महादेवी पूर्ववर्ती छायावादियो से पृथक् दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष-रूप में कहा जा सकता है कि प्रसाद, पंत और निराला से महादेवी की न केवल परिस्थियो मे अपितु उनके व्यक्तित्व मे भी गहरा अन्तर है, जिसके कारण उनकी विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियो मे अनेक विशेपताएँ दृष्टिगोचर होती है। इन विशेपताओ का विवेचन-विश्लेपण आगे करेंगे किन्तु यहाँ सामान्य रूप मे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके काव्य मे आरभ से लेकर अन्त तक एक ही दिशा और एक ही लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है, जिसकी ओर वे निरन्तर शान्त, मन्थर, मृदुल एव सयमित गति से अग्रसर दिखाई पडती है, उनमें कही भी लक्ष्य के प्रति सदेह या अपने प्रति अविश्वास दृष्टिगोचर नही होता। दशाब्दियो के बीतने के साथ-साथ युग बदलते रहे, हिन्दी मे विदेशो से आयातित प्रेरणा-स्रोतो के बल पर अनेक आन्दोलन आये और गये, उनके बहुत-से साथी उनका साथ छोडकर नये आन्दोलनो मे दीक्षित हो गये और अपनी नव-नव नूतना एव ग्रहणशीलता का शखनाद करने लगे पर महादेवी पर इसका कोई प्रभाव नही पडा। वे नितान्त अकेली ही अपनी साधना के दीप को जलाये हुए अपने लक्ष्य की ओर अविचलित भाव से अग्रसर रहीं। निजी अभावो से भी अधिक प्रभावशाली युग-प्रभाव है, युग की हवा से बचना कोई साधारण बात नही है। महादेवी ऐसा कर सकी उसके पीछे निश्चित ही उनके व्यक्तित्व की महानता एव दृढता है—इसमे कोई सदेह नही।

● **महादेवी का छायावाद सम्बन्धी दृष्टिकोण**—महादेवी न केवल छायावादी कवयित्री है अपितु वे उसकी प्रौढ चिन्तक एवं व्याख्याता भी हैं। उन्होने छायावाद के स्वरूप एव विकास के विपय मे स्वतत्र दृष्टि से विचार करते हुए अपने निष्कर्षो को 'छायावाद' शीर्पक लेख मे प्रस्तुत किया है। उन्होंने छायावाद के नामकरण, स्वरूप एव उद्‌भव की मीमासा करते हुए लिखा है—'उसके जन्म से पूर्व प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द मे चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।'[1] यहाँ कवयित्री ने छायावाद के सम्बन्ध मे इन तथ्यो का सकेत किया है—(१) पूर्ववर्ती काव्य-बन्धनो एवं उनकी बाह्यनिरूपिणी वृत्ति के प्रति विद्रोह, (२) हृदय की अपनी अभिव्यक्ति, (३) अनुभूतियाँ, (४) स्वच्छन्द छन्द

---

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ६०।

शैली)। इस प्रकार उन्होने विद्रोह, आत्मानुभूति, वैयक्तिक भावनाओ एवं स्वच्छन्दता को छायावाद के मूल तत्त्वो के रूप मे स्वीकार किया है, जो ठीक ही है।

छायावाद के आविर्भाव के सम्बन्ध मे महादेवी का मत है कि यह मानव-हृदय की सहज स्वाभाविक स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति पर ही आधारित है— '....मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बन्धनो का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनो से ऊबकर उनको तोड़ने मे अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है। छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव मे छिपा हुआ है।'[२] छायावाद पर विदेशो का कितना ऋण है —या वह भारतीय स्रोतो पर कितना आधारित है—इसका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होने स्वीकार किया है कि विदेशी साहित्य का प्रभाव एक सीमा तक छायावाद पर है किन्तु वह प्रभाव सीधे नही आया अपितु बंगला (रवीन्द्र) के माध्यम से आया। दूसरे छायावादी कवियो ने इस प्रभाव को अन्ध भाव से ग्रहण नही किया अपितु अपनी खुली दृष्टि से उसे परखकर ही स्वीकार किया। महादेवी लिखती हैं—'छायावाद आज के यथार्थ से दूर जान पड़ने पर भी भारतीय काव्य की मूल प्रेरणाओ के निकट है। उसके प्रतिनिधि कवि भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा प्राचीन साहित्य से विशेष परिचित रहे। पश्चिमीय और बंगला काव्य-साहित्य से उनका परिचय हुआ अवश्य, परन्तु उसका अनुकरण मात्र काव्य को इतनी समृद्धि नही दे सकता था। विशेषत. बगला से उन्हें जो मिला वह तत्त्वत भारतीय ही था, क्योकि रवीन्द्र स्वय भारतीय सस्कृति के सबसे समर्थ प्रहरी हैं। उन्होने अपने देश की आध्यात्म-सुधा से पश्चिम का मृत्तिका-पात्र भर दिया, इसी से भारतीय कवियो मे उनके दान को अपना ही मानकर ग्रहण किया और पश्चिम ने कृतज्ञता के साथ।'[३] इससे स्पष्ट है कि कवयित्री के विचार से विदेशी प्रभाव की अपेक्षा भारतीय स्रोतो और रवीन्द्र-साहित्य का ही छायावाद पर अधिक प्रभाव है।

छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियो को देखकर भी अनेक आलोचक चकित एव भ्रमित हो गये। कोई किसी प्रवृत्ति पर बल देकर उसे एक नाम देता तो अन्य किसी अन्य प्रवृत्ति को प्रमुखता देता हुआ तदनुसार उसकी परिभाषा करता। पर महादेवी यहाँ व्यापक समन्वयात्मक दृष्टि का परिचय देती हुई छायावाद की सभी प्रवृत्तियो को छायावाद के विभिन्न अगो के रूप मे स्वीकार कर लेती है। छायावाद के इस वैविध्य-पूर्ण रूप के सम्बन्ध मे उनका मत है—'बुद्धि की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति मे बिखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की ओर दोनों के साथ-साथ स्वानुभूत सुख-दु:खो

---

२. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ५६।
३. वही; पृ० ७७।

को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामो का भार सभाल सकी।'[४] वस्तुत. महादेवी के अनुसार छायावाद मे बुद्धि और हृदय, प्रकृति और अध्यात्म, प्रणय और रहस्यवाद—इन सभी का समन्वय है, अत प्रकृति-प्रेम, भाव-प्रधानता आध्यात्मिकता, रहस्योन्मुखता आदि सभी को उसकी विभिन्न प्रवृत्तियो के रूप मे ग्रहण करना चाहिए।

छायावाद पर विभिन्न आक्षेप और महादेवी—विभिन्न आलोचको ने छायावाद पर अनेक आक्षेप प्रस्तुत किये है—जैसे—(१) छायावाद सूक्ष्म की ओर अधिक उन्मुख हो रहा है, (२) उसमे वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव है, (३) वह यथार्थ से पलायन कर रहा है, (४) उसकी शैली साकेतिक और अस्पष्ट है; आदि। इन सभी आक्षेपो का निराकरण महादेवी ने अत्यन्त सवल तर्कों और ठोस प्रमाणो के आधार पर किया है। पहले आक्षेप के उत्तर मे वे कहती है—'छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुआ था, अत. स्थूल को उसी रूप मे स्वीकार करना उसके लिए सभव न हुआ, परन्तु उसकी सौदर्य दृष्टि स्थूल के आधार पर नही है, यह कहना स्थूल की परिभाषा को सकीर्ण कर देना है।'[५] छायावादी कवियो ने प्रकृति, वन, उपवन, प्रणय-विरह आदि के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं वे दृष्टि की सूक्ष्मता के तो द्योतक है पर उनका आधार स्थूल जगत् या वास्तविक जीवन है। उनकी कविता अध्यात्म के सूक्ष्म पर आधारित नही, जीवन की कठोरताओ के सूक्ष्म वोध पर आधारित है। पर जो इस रूप मे भी सूक्ष्मता से डरते या चौंकते है, उन्हे कवयित्री का स्पष्ट उत्तर है—'जीवन की समष्टि मे सूक्ष्म से इतने भयभीत होने की आवश्यकता नही है क्योकि वह तो स्थूल से वाहर कही अस्तित्व ही नही रखता। ... वह सूक्ष्म जिसके आधार पर एक कुत्सित से कुत्सित, कुरूप से कुरूप और दुर्बल से दुर्बल मानव, वानर या वनमानुष की पक्ति मे न खडा होकर सृष्टि मे सुन्दरतम ही नही शक्ति और बुद्धि मे श्रेष्ठतम मानव के भी कन्धे से कन्धा मिलाकर उससे प्रेम और सहयोग की साधिकार याचना कर सकता है, वह सूक्ष्म जिसके सहारे जीवन की विषम अनेकरूपता मे भी एकता का तन्तु ढूंढकर हम उन रूपो मे सामजस्य स्थापित कर सकते है, धर्म का रूढ़िगत सूक्ष्म न होकर जीवन का सूक्ष्म है। इससे रहित होकर स्थूल अपने भौतिकवाद द्वारा जीवन में वही विकृति उत्पन्न कर देगा जो अध्यात्म परम्परा ने की थी।'[६] इससे स्पष्ट है कि महादेवी के विचारानुसार छायावाद का सूक्ष्म शुद्ध पारलौकिक, आध्यात्मिक या काल्पनिक तत्त्व नही है अपितु वह स्थूल जगत एवं यथार्थ जीवन के भावना से

४. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य; पृ० ६१।
५-६. वही; पृ० ६८-६।

उत्पन्न सूक्ष्म अनुभूति मात्र है ; जिसका परित्याग संभव नही । यदि हम इसे भी त्याग-कर कोरे भौतिकवाद या स्थूलवाद को अपना लेगे तो वह एक ऐसी अतिवादिता होगी जो जीवन के लिए घातक सिद्ध होगी । ऐसी स्थिति मे स्वीकार किया जा सकता है कि छायावाद मे सूक्ष्मता अपेक्षित रूप मे ही है ।

दूसरा आक्षेप वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव के सम्बन्ध मे है । प्रायः यह कहा जाता है कि छायावादी कवि अपनी अतिशय भावुकता या भावात्मकता के कारण जीवन के प्रति बौद्धिक एव भावात्मक दृष्टिकोण नही अपना पाया जिससे वह यथार्थ जीवन की समस्याओ का सामना करने मे असफल सिद्ध हुआ । इस आक्षेप के उत्तर मे महादेवी का तर्क है—'छायावाद का जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण नही रहा, यह निर्विवाद है, परन्तु कवि के लिए यह दृष्टिकोण कितना आवश्यक है, इसके कई उत्तर है । ··· इस प्रकार यह बुद्धि-प्रसूत चिन्तन मे ही अपना स्थान रखता है । इसी लिए कवि को इसके विपरीत एक रागात्मक दृष्टिकोण का सहारा लेना पडता है । जिसके द्वारा वह जीवन के सुन्दर और कुत्सित को अपनी सवेदना मे रग कर देता है । वैज्ञानिक दृष्टिकोण जीवन का बौद्धिक मूल्य देता है, चित्र नही ··· । आज का बुद्धिवादी युग चाहता है कि कवि बिना अपनी भावना का रग चढाये यथार्थ का चित्र दे, परन्तु इस यथार्थ का कला में स्थान नही क्योकि वह जीवन के किसी भी रूप से हमारा रागात्मक सम्बन्ध नही स्थापित कर सकता ।'[७] इस प्रकार महादेवी के विचार से वैज्ञानिक दृष्टिकोण कवि के लिए नही अपितु वैज्ञानिक या दार्शनिक के लिए ही अपेक्षित है , इतना ही नही कवि का कार्य बिना रागात्मक दृष्टि के नही चल सकता । एक अन्य तर्क प्रस्तुत करती हुई वे यह भी कहती है कि जब भी किसी राष्ट्र या जाति के जीवन मे नयी आशाएँ और नये स्वप्न उदित होते है तो उसका दृष्टिकोण रागात्मक हो जाता है । यह बात छायावादियो पर भी लागू होती है ।

हमारे विचार मे यहाँ कवयित्री ने कवि की वस्तुगत भावात्मकता और उसके दृष्टिकोण की भावात्मकता को घुला-मिला दिया है । बौद्धिक तथ्यो, दार्शनिक सत्यो एवं वैज्ञानिक निष्कर्षो को भी कवि रागात्मकता मे रग कर काव्य का रूप दे सकता है—अतः यह आवश्यक नही है कि उसकी आधार-भूत वस्तु एव जीवन-दृष्टि भी सर्वत्र भावात्मक ही हो, बौद्धिक नही । लोभ करना बुरा है, मृत्यु सबकी प्रतीक्षा कर रही है—ये निष्कर्ष बौद्धिक दृष्टिकोण की उपलब्धियाँ है जिन्हे कबीर ने काव्यात्मक रूप दे दिया है :

(क) माखी गुड़ में गड़ि रही पंख रही लपटाय ।
ताली पीटे सिर धुनै मीठे बोइ माय ।।

---

७. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ७१ ।

(ख) माली आवत देखिकै कलियाँ करें पुकार।
फूलै-फूलै चुनि लिये काल्हि हमारी बार ॥

उपर्युक्त पद्य क्रमश' दो बौद्धिक तथ्यो का निरूपण करते है, उनकी आधारभूत वस्तु बौद्धिक है पर कवि ने उन्हे अपनी भावना या अनुभूति मे रग कर प्रस्तुत किया है ; अत हम इतना तो स्वीकार करते है कि कविता मे भावना, अनुभूति एव कल्पना का रग तो आवश्यक है पर मूल प्रतिपाद्य या आधार वस्तु भी भावात्मक हो यह आवश्यक नही । काव्य मे बौद्धिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भी अभिव्यक्ति अनुभूतिपूर्ण शब्दावली मे सभव है—अत हमारे विचार मे यह तर्क युक्ति-सगत नही है कि प्रत्येक कवि के लिए भावात्मक दृष्टिकोण अनिवार्य है, इसीलिए छायावादियो ने इसे अपनाया। वस्तुत छायावाद की मूल चेतना ही भावात्मक या भाव प्रधान थी, अत. उनके दृष्टिकोण मे भी इसकी अतिशयता का होना स्वाभाविक था । पर ज्यो-ज्यो छायावाद परिस्थितियो की चपेट से यथार्थ की ओर आता गया, त्यो-त्यो उसका भावात्मक दृष्टिकोण भी बौद्धिकता से समन्वित होता गया । प्रसाद ने कामायनी मे जिस जीवन-दर्शन को प्रस्तुत किया है, वह उनकी अनुभूति पर नही अपितु चिन्तना पर आश्रित है , उसमे शुद्ध रागात्मक दृष्टि की उपलब्धि नही है अपितु बौद्धिकता, दार्शनिकता एव मनोवैज्ञानिकता से समन्वित है—अत उसे कोरा भावात्मक दृष्टिकोण नही कहा जा सकता । वस्तुत कामायनी का सदेश—ज्ञान, क्रिया और भावना के समन्वय का सदेश—मानव-सभ्यता एव भावी सस्कृति के लिए एक बहुत बडा दार्शनिक सत्य एव वैज्ञानिक निर्देश है , यह दूसरी बात है कि अपनी अशक्तता के कारण आज का मानव उसे न ग्रहण कर पाये । अत उपर्युक्त आक्षेप छायावाद के प्रारभिक रूप पर ही लागू होता है, जबकि छायावाद अपनी बाल्यकालीन कल्पनाओ मे खोया हुआ था—उसके परवर्ती प्रौढ रूप पर वह लागू नही होता ।

तीसरा आक्षेप यह है कि छायावादी कवि यथार्थ का सामना करने मे असमर्थ है, अत वह अतीत के खंडहरो, भविष्य की कल्पनाओ, प्रकृति के सौदर्य-लोक एव अध्यात्म की सूक्ष्मता मे पलायन कर जाता है । 'महादेवी इतना तो स्वीकार करती हैं कि छायावादी कवि मे जीवन की भौतिक परिस्थितियो से पलायन तो है किन्तु यह पलायन मानव की मूल वृत्ति है जिसकी प्रेरणा से वह परिवर्तनशील एवं गतिशील बना रहता है । पलायन वृत्ति सदा दुर्बलता की द्योतक न होकर नवीनता की खोज एव जिज्ञासा की भावना पर भी आधारित होती है । अत. वह मन की एक 'आवश्यक प्रेरणा' है । छायावाद जीवन के बौद्धिक पक्ष से भाव पक्ष की ओर ही पलायन करता है और यदि विचार कर देखा जाय तो जीवन से केवल भाव जगत् मे पलायन उतना हानिकर नही जितना जीवन से केवल बुद्धि पक्ष मे पलायन, क्योकि हमारे कुछ क्षणो

को गतिशील कर जाता है और दूसरा हमारा सम्पूर्ण सक्रिय जीवन माँग लेता है।'[८] छायावाद के पक्ष मे यह तर्क भी बहुत समीचीन प्रतीत नही होता—भावुकता एव भावात्मकता गति लाती है, पर यदि सामने कोई गहरा कूप या अथाह गहवर हो तो वहाँ गतिशीलता की अपेक्षा जड़ता ही कदाचित् अधिक श्रेयष्कर सिद्ध होगी। अत भावुकता एव भावात्मकता की ओर पलायन सदा वौद्धिक निष्क्रयता से हितकर ही सिद्ध होती हैं, ऐसा स्वीकार करना कठिन है। वस्तुत छायावादी चेतना के मूल मे स्वच्छन्दता, भावात्मकता एव कल्पना की वृत्तियाँ स्थायी रूप मे रहती है तथा यह कल्पना की वृत्ति ही उसे सपनो की दुनियाँ मे और सौदर्य के लोक की ओर ले जाती हैं, अत. इसे उसकी दुर्बलता या सवलता न मानकर एक सहज प्रवृत्ति के रूप मे स्वीकार करना चाहिए।

चौथा आक्षेप छायावाद की शैली की सांकेतिकता एवं अस्पष्टता के सम्बन्ध मे है। वस्तुत जैसा कि 'साहित्य-विज्ञान' के तृतीय खड 'साहित्य की शैली' मे विस्तार से स्पष्ट किया गया है, जब अभिव्यक्ति के मूल मे भावोद्वेलन होता है तो वहाँ भाषा की लक्षणा शक्ति उद्दीप्त हो जाती है जिसके कारण शैली मे वक्रता, भगिमा, अस्पष्टता आदि का आ जाना सहज है। इसे दूसरे शब्दो मे लाक्षणिकता भी कहा जाता है। महादेवी ने भी उपर्युक्त आक्षेप के उत्तर मे बहुत ही उपयुक्त बात कही है—'इस प्रकार की अभिव्यक्तियो मे भाव रूप चाहता है, अत. शैली का कुछ सकेतमयी हो जाना सहज सम्भव है।'[९] इससे हम अक्षरशः सहमत है।

अस्तु, महादेवी ने अपने दृष्टिकोण से विभिन्न आक्षेपो का उत्तर देने का सुन्दर प्रयास किया है। उनके उत्तरो से हम सहमत हो या न हो, इससे कोई अन्तर नही पडता, लक्ष्य करने की वात यह है कि उनमे ऐसी प्रतिभा और मेधा है कि वे आक्षेपो के निराकरण के लिए युक्तियाँ सोच सकी, उनमे ऐसी दृढता और साहस है कि वे उन आक्षेपों को एक सीमा तक स्वीकार कर सकी और आलोचको से उनकी ही भाषा और उनकी ही शैली मे वात कर सकी। इतना ही नही, महादेवी ने विपय-प्रतिपादन मे जिस वाक् संयम एव वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया है वह तो छायावाद के आलोचको में कदाचित् वहुत खोजने पर ही कही दृष्टिगोचर होगा।

उपर्युक्त विवेचन से एक वात स्पष्ट है कि महादेवी न छायावाद की अनुयायिनी एव सहचरी है अपितु उसकी एक सजग, सवल एव सशस्त्र प्रहरी भी हैं जो उनके छायावाद से प्रगाढ़ सम्वन्ध का सूचक है।

● **छायावाद की प्रवृत्तियाँ और महादेवी**—छायावाद की विभिन्न प्रवृत्तियाँ

---

८. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य।

९. वही; पृ० ६२।

महादेवी के काव्य में पर्याप्त विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इनमें से अनेक प्रवृत्तियो का अध्ययन आगे अलग-अलग अध्यायो मे स्वतंत्र रूप मे किया जायगा पर यहाँ छायावादी दृष्टि से उन पर थोड़ा प्रकाश डाला जाता है।

(क) **स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति**—छायावाद के मूल मे स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति निहित है। महादेवी में यह प्रवृत्ति जन्मजात है—कदाचित् इसी कारण उन्होने सासारिक बन्धनो को अस्वीकार करते हुए एक स्वतत्र भिक्षुणी का जीवन अपनाने का विचार अपनी युवावस्था के आरभ में ही किया था। यद्यपि वे इस विचार को क्रियान्वित नही कर पायी, किन्तु फिर भी विवाह-सम्वन्ध एव गार्हस्थ्य जीवन को ठुकरा कर एक प्रकार से अपनी स्वच्छन्दता की वृत्ति को तुष्ट कर लिया है। उनका व्यक्तित्व एवं चरित्र अपने ही विचारो एवं निर्णयो के अनुसार निर्मित है—इसका प्रमाण उनके इन शब्दो में मिलता है—"जीवन के तुतले उपक्रम से लेकर अब तक मेरा मन अपने प्रति विश्वासी ही रहा है। मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रान्त होने और चली राह मे पग-पग गिनकर पश्चाताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नही मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है... ।" इसी प्रकार एक प्रसग मे यह पूछे जाने पर कि उनके पतिदेव ने उन्हे विवाह-सम्वन्ध से मुक्त किस प्रकार कर दिया, वे उत्तर देती हैं—"मन के विरुद्ध चलने के लिए कैसे विवश किया जा सकता था? यह वह जान गये थे कि यह अपने प्राण दे देगी पर आत्म-समर्पण नही करेगी।"[१०] इन शब्दो में निश्चय की जिस दृढ़ता एवं निर्णय की जिस अटलता का परिचय मिलता है वह इस बात को स्पष्ट करती है कि महादेवी मे स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति कितने गभीर एव शक्तिशाली रूप मे है। अपनी इसी स्वच्छन्दता एव स्वतत्रता की प्रवृत्ति के वल पर वे कुल, परिवार, समाज और साहित्य के अकुशो की परवाह न करती हुई, उन्हे ठुकराती हुई निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इसीलिए उनमे इतना आत्म-विश्वास और साहस है कि वे काँटो को चुनौती देती हुई अपरिचित पथ और अनजान दिशा मे अकेली ही आगे वढ़ती हुई दृष्टिगोचर होती हैं.

> **पंथ होने दो अपरिचित**
> **प्राण रहने दो अकेला!**
> **और होंगे चरण हारे,**
> **अन्य हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे,**
> × × ×
> **मैं लगाती चल रही नित,**
> **मोतियो की हाट औं' चिनगारियों का एक मेला!**

---

१०. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व—शिवचन्द्र नागर; पृ० ६३।

यहाँ जिस आत्मविश्वास, दृढता एवं निर्भयता की अभिव्यक्ति हुई है उसके पीछे कवयित्री के स्वतत्र एव स्वच्छन्द व्यक्तित्व की उद्दाम तेजस्विता निहित है। जिसमे कष्टो से सघर्ष करने की क्षमता, साहस, त्याग एव आत्म-बलिदान की भावना होती है, उसी की स्वच्छन्दता सार्थक होती है, अन्यथा वह केवल डिम-डिम-घोप मात्र वन-कर रह जाती है इस दृष्टि से महादेवी मे स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति अपने वास्तविक रूप मे विद्यमान है- -इसमे कोई सदेह नही।

(ख) **रागात्मकता**—छायावादी चेतना मूलत रागात्मक है अर्थात् उसमे अन्य वृत्तियो की अपेक्षा रागात्मकता या भावात्मकता की प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। इसीलिए छायावादी कवियो का जीवन और जगत् के प्रति जो दृष्टिकोण है। उसे प्राय रागात्मक कहा जाता है। यह रागात्मकता विभिन्न कवियो मे अलग-अलग स्तरो पर अलग-अलग रूपो मे व्यक्त हुई है, कही वह शुद्ध भावुकता वन कर प्रकृति की काल्पनिक गोद मे अकारण आँसू बहाती है तो कही वह नारी की कोमल छाया मे सौन्दर्य और प्रणय का सुख लूटती हुई दिखाई पडती है और कही वह यथार्थ से टकरा कर दु ख और क्षोभ मे परिणत होती हुई प्रगतिवाद से अपना गठ-बन्धन जोडती है। प्रकृति-प्रेम, नारी-प्रेम, विश्व-बधुत्व आदि इसी रागात्मकता के विभिन्न क्षेत्र है। महादेवी मे रागात्मकता चचल भावुकता एव आर्द्र प्रणय के स्तर के वहुत ऊपर उठी हुई है, उसके मूल मे ऐन्द्रिकता कम, और वौद्धिकता अधिक है। इसीलिए उमका आलम्बन स्थूल भौतिक न होकर कोई अलौकिक सूक्ष्म सत्ता है, जिसे विचार या विश्वास के रूप मे ही ग्रहण किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे उनकी रागात्मकता को वुद्धि समन्वित रागात्मकता—दूसरे शव्दो मे श्रद्धा या आस्था—कहना अधिक उचित होगा। फिर भी उनकी दृष्टि एव अनुभूति मे वौद्धिकता जन्य शुष्कता की अपेक्षा रागात्मकता जन्य तरलता ही अधिक है, अत उनके काव्य मे भावात्मकता की ही प्रमुखता स्वीकार की जा सकती है।

जहाँ प्रसाद, पन्त, निराला प्रभृति छायावादी कवियो मे रागात्मकता क्रमश विकसित होती हुई प्रकृति, नारी, मानव, अध्यात्म आदि विभिन्न क्षेत्रो की ओर उन्मुख होती हुई विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न रग-रूपो मे व्यक्त हुई वहाँ महादेवी मे वह प्रारभ से अव तक निरन्तर एक ही क्षेत्र और एक ही रूप मे विकासोन्मुख दृष्टिगोचर होती है। उनकी रागात्मकता एव प्रणय भावना का केन्द्र सदा से ही अध्यात्म रहा है अत उनका प्रेम भी सदा अलौकिक ही रहा। लौकिक प्रेम की अनुभूति और अभिव्यक्ति उनमे प्रत्यक्ष रूप मे दृष्टिगोचर नही होती—यह दूसरी वात है कि अलौकिक के माध्यम से प्राप्त अनुभूतियो को ही हम किसी न किसी प्रकार लौकिक प्रणय की अनु-भूतियो से सम्वन्धित सिद्ध कर दे। क्या उनका अलौकिक प्रणय लौकिक प्रेम का ही परिवर्तित, विकसित 'या आरोपित रूप है—इस प्रश्न पर हम अन्यत्र विचार करेंगे,

यहाँ संक्षेप मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि महादेवी मूलत लौकिक प्रणय की नही अपितु रहस्यवाद की गायिका हैं। जहाँ अन्य छायावादियो मे रहस्यवाद कही-कही आवरण मात्र है, उसके मूल मे लौकिक प्रणय की धारा ही दृष्टिगोचर होती है वहाँ महादेवी मे स्थिति इसके विपरीत है वे पहले रहस्यवादिनी है फिर छायावादिनी —इसमे सदेह नही।

(ग) **प्रकृति**—प्रकृति का छायावाद से इतना घनिष्ठ सम्वन्ध है कि प्रारम्भ मे अनेक आलोचको ने प्रकृति-प्रेम को ही छायावाद की सज्ञा दी। वरतुत छायावादी कवि कल्पना-शील होने के कारण यथार्थ की कुरूपताओ की अपेक्षा प्रकृति की रगीनी को अधिक पसन्द करता है, पर प्रकृति उसका आलम्वन नही है, उद्दीपन और माध्यम ही है। प्रकृति को लेकर लिखे गये अनेक स्वतंत्र गीतो मे मानवीकृत रूप ही दृष्टिगोचर होगा जो मूलत. मानवी प्रेम या नारी-प्रेम का सूचक है। पत जैसे कवियो ने प्रारभ मे प्रकृति के समक्ष नारी को ठुकरा कर अपने अतिशय प्रकृति-प्रेम का परिचय दिया, पर यह स्थिति चिर स्थायी न हो सकी। 'वीणा' का पत 'गु जन' तक पहुँचते-पहुँचते प्रकृति के हास्य मे प्रेयसी की ही मुस्कुराहट का जादू देखता हुआ 'भावी पत्नी की प्रतीक्षा' मे लीन हो जाता है फिर भी अन्य कवियो मे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रकृति के प्रति न्यूनाधिक प्रेम अवश्य दृष्टिगोचर होता है। पर महादेवी यहाँ भी अपवाद है।

महादेवी ने प्रकृति पर मानवी भावनाओ का आरोपण किया हैं, उसे हँसते हुए, रुदन करते हुए, खेलते हुए—नाना रूपो मे देखा है, पर वह उसकी आराध्य या उसकी भावनाओ की आलम्वन कही नही वन पायी। उससे अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए पृष्ठभूमि, वातावरण, माध्यम एव साधन का ही काम वे लेती है, उसके प्रति वे अपना हार्दिक अनुराग प्रदर्शित नही करती। यह दूसरी वात है कि वे कही-कही उसमे अपने प्रियतम की झलक देखती हुई, उसके प्रति अपनी रागात्मकता व्यक्त करती है—पर इसे हम प्रकृति के प्रति प्रत्यक्ष अनुराग नही मान सकते। यदि दर्पण मे दिखाई पड़ने वाले 'प्रिय के प्रतिविम्व के प्रति हम अपनी भावनाएँ व्यक्त करते है तो उनका लक्ष्य प्रिय ही माना जायगा—दर्पण नही', यही वात यहाँ लागू होती है।

अस्तु, महादेवी के लिए प्रकृति अपने दार्शनिक विचारो, भावनाओ एव आध्यात्मिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति की माध्यम और साधन मात्र हैं, इससे अधिक महत्त्व उसका नही है। इतना ही नही, कही-कही तो वे मानव-दु ख के समक्ष प्रकृति के सम्पूर्ण वैभव की भी उपेक्षा करती हुई दिखाई पडती हैं

कह दे माँ क्या अब देखूँ !
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,

तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूं !

× × ×

तुझमें अम्लान हँसी है
इसमें अजस्र आँसू जल,
तेरी वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ !

यद्यपि यहाँ प्रकृति और मानव-जीवन के वीच वैषम्य की स्थापना करते हुए कवयित्री ने अपनी दुविधा ही व्यक्त की है, पर उनके समस्त काव्य पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने प्रकृति के वैभव की अपेक्षा मानव-जीवन का क्रन्दन ही अधिक देखा है या फिर-प्रकृति मे भी उन्होने मानवी जीवन के अनुरूप ही क्रन्दन देखा है। अत यह कहना ठीक होगा कि महादेवी मे प्रकृति का चित्रण तो मिलता है पर वह वहाँ आलम्बन रूप मे वहुत कम है।

(घ) वैयक्तिकता—छायावादी कवि अतीत और वर्तमान के अन्य पात्रो की अनुभूतियो और क्रिया-कलापो का चित्रण करने की अपेक्षा निजी अनुभूतियो को वैयक्तिक रूप मे व्यक्त करना अधिक रुचिकर समझता है। यदि दूसरो की अनुभूतियो को भी वह अपनाता है तो उन्हे वह प्राय निजी अनुभूतियो के रूप मे ही व्यक्त करता है। वस्तुत छायावादी कवि सृष्टि की अन्य सभी बाह्य सत्ताओ की अपेक्षा निजी व्यक्तित्व को सर्वाधिक महत्त्व देता है। महादेवी मे भी यह वैयक्तिकता की प्रवृत्ति पर्याप्त विकसित एव परिष्कृत रूप मे उपलब्ध होती है। उनसे काव्य का विषय प्रकृति मानव या अलौकिक प्रियतम आदि मे से कोई भी हो, उनका स्वर मूलत व्यक्ति केन्द्रित ही दिखाई पडता है। प्रियतम से बात करते हुए भी वे उनकी कम सुनती है, अपनी ही अधिक कहती है। इतना ही नही, कई वार वे प्रियतम से मिलने—स्थायी मिलन—का प्रस्ताव भी इसीलिए ठुकरा देती है कि उसमे उनके व्यक्तित्व के लुप्त हो जाने की आशका है। अमरो के सुखद लोक को भी वे इसीलिए ठुकरा देती हैं कि वहाँ उनकी वैयक्तिकता—निजी अधिकार—के समाप्त हो जाने की शका है :

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

इसी उद्दाम वैयक्तिकता के कारण वे सूनापन, एकान्त, विरह, दुःख आदि सव-कुछ सहन करती हुई भी अपने पर गर्व किये विना नही रह पाती—

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो,
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन !

कभी-कभी वे असीम से अपनी सीमा का मेल करवा देने की चर्चा करती हुई, अपने निर्वाण की स्थिति को स्वीकार करती है, पर वहाँ भी वे अपने व्यक्तित्व के लोप के स्थान पर उसके व्यापक विस्तार की ही कल्पना करती है :

उड़ उड़कर जो धूलि करेगी
मेघों का नभ में अभिषेक,
अमिट रहेगी उसके अंचल—
में मेरी पीड़ा की रेख !

वस्तुत यह वैयक्तिकता ही महादेवी को अन्य रहस्यवादियो से पृथक् करती है। इस दृष्टि से वे छायावादियो के अधिक निकट है। पर यहाँ हमे यह भी न सोचना चाहिए कि यह वैयक्तिकता किसी प्रकार के अह, दभ या मिथ्याभिमान पर आश्रित है, अपितु यह मन की सहज वृत्ति के रूप मे ही है। अन्तर्मुखी एवं आत्मकेन्द्रित दृष्टि ही इसके मूल मे है जो कि छायावादी चेतना की प्रमुख विशेषता है।

(ड) **शैली**—विपय की अपेक्षा शैली की दृष्टि से महादेवी अधिक छायावादिनी हैं; कई वार ऐसा लगता है कि मूलत. महादेवी का विषय रहस्यवाद है जिसे उन्होंने छायावादी भाषा मे व्यक्त किया है। इसका अर्थ यह नही है कि उनमे छायावाद की विषयगत प्रवृत्तियाँ नही मिलती—जैसा कि पीछे स्पष्ट किया गया है, उनमे ऐसा है पर फिर भी वे यथार्थ मे रहस्यवादी प्रेरणाओ से अनुस्भूत है या यो कहिए कि उनमे विषयगत छायावाद उसी सीमा तक है जहाँ तक वह रहस्यवाद के प्रतिकूल नही पडता। वैसे तो प्राय सभी छायावादी कवियो मे रहस्योन्मुखता कही न कही दृष्टिगोचर होती है, अत. छायावाद की एक प्रवृत्ति रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी मानी जाती है, पर जहाँ अन्य छायावादियो मे मूलाधार छायावाद है उस पर रहस्यवाद के छीटे ही कही-कही है वहाँ महादेवी मे स्थिति इसके विपरीत है पर शैली पक्ष मे सर्वत्र ही महादेवी छायावादी शैली को अपनाती है। गीति शैली, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, मूर्त्त-विधान, कोमल पदावली आदि जितनी भी शैलीगत प्रवृत्तियाँ

छायावाद से प्रगाढ़ रूप मे सम्बन्धित है वे सभी महादेवी के काव्य में दृष्टिगोचर होते है। इसका स्पष्टीकरण अन्यत्र महादेवी के शैली पक्ष पर विचार करते समय किया जायगा, अतः यहाँ उसकी पूर्नावृत्ति उचित न होगी।

रही बात छायावाद की अन्य प्रवृत्तियों—विश्वबन्धुत्व की भावना, विश्व मानवता, राष्ट्रीयता, करुणा, दु खवाद आदि—की , उनकी विवेचना यहाँ अनपेक्षित है क्योकि ये प्रवृत्तियाँ मूलत छायावाद या स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियाँ न होकर उसमे विभिन्न स्रोतो से आकर मिलने वाली सहयोगी या सहचारी प्रवृत्तियाँ है। वस्तुत प्रसाद, पत, निराला, महादेवी—इन सभी मे स्वच्छन्दतावाद के अतिरिक्त और भी कई सामयिक प्रवृत्तियाँ मिश्रित है जो शुद्ध छायावादी नही है। अत. महादेवी से सम्बद्ध इस प्रकार की प्रवृत्तियो की विवेचना आगे स्वतत्र रूप मे की जायगी।

अन्त मे हम कह सकते है कि भले ही महादेवी छायावाद के क्षेत्र मे प्रसाद, पन्त, निराला के वहुत बाद आयी और भले ही उनमे छायावाद की अपेक्षा रहस्यवाद की प्रवृत्तियाँ अधिक मिलती हो, पर इसमे कोई सदेह नही कि उन्होने अपनी प्रतिभा चिन्तना और साधना के वल पर छायावाद को एक सुदृढ आधार एव स्थायी विश्वास प्रदान किया। जव प्रसाद की मृत्यु हो गयी, निराला विक्षिप्त हो गये और पत अन्यत्र पलायन कर गये तो महादेवी ही अकेली एक ऐसी सशक्त गायिका इस क्षेत्र मे रह गयी थी जिन्होने अपनी पूरी शक्ति एव सम्पूर्ण आस्था से अपना स्वर उच्चरित करते हुए इसके प्रकाश को मद न होने दिया। उनकी 'दीपशिखा' का दीप अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो मे सदा अकलुष एव निष्कप भाव से प्रज्ज्वलित रहता हुआ, छायावाद की यश-ज्योति को विकीर्ण करता रहा है , इसमे हमे कोई संदेह नही।

* * *

४

रहस्यवाद : सामान्य विवेचन

'· रहस्य का अर्थ वहाँ से होता है जहाँ धर्म की इति है। रहस्य का उपासक हृदय में सामंजस्यमूलक परमतत्त्व की अनुभूति करता है और वह अनुभूति परदे के भीतर रखे हुए दीपक के समान अपने प्रशान्त आभास से उसके व्यवहार को स्निग्धता देती है।'
—**महादेवी**

● **अर्थ मीमांसा**—'रहस्यवाद' का सम्बन्ध रहस्यानुभूति से है तथा 'रहस्यानुभूति' (रहस्य+अनुभूति) का सामान्य अर्थ है रहस्य की अनुभूति या कोई भी ऐसी अनुभूति जो रहस्यमयी, गोपनीय या विचित्र हो, किन्तु लगभग १९२० ई० से हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे इसका प्रयोग अग्रेजी के 'मिस्टिक' एव 'मिस्टिसिज्म' के समानान्तर होने लगा है[1], वस्तुत इन अग्रेजी शब्दो के पर्यायवाची रूपो मे ही 'रहस्य', 'रहस्यानुभूति', 'रहस्यवाद', 'रहस्य-साधना' आदि शब्दो की अवतारणा हुई, अत इनके प्रचलित अर्थ को स्पष्ट करने के लिए आधारभूत अग्रेजी शब्दो को समझ लेना आवश्यक है।

अग्रेजी के 'मिस्ट्री' (Mystery), 'मिस्टिक' (Mystic) और 'मिस्टिसिज्म' (Mysticism) परस्पर सम्वद्ध है। 'मिस्ट्री' के सामान्य अर्थ तो 'कोई गुप्त या छिपी हुई वात', 'कोई ऐसी वात जो मानव-वुद्धि की समझ के वाहर हो' या 'कोई व्यक्तिगत गुप्त वात' आदि है[2] जिनका प्रतिनिधित्व हिन्दी का 'रहस्य' शब्द भी भली भाँति करता है, जवकि अध्यात्म के क्षेत्र मे इसका विशिष्ट अर्थ 'आक्सफोर्ड डिक्शनैरी' के अनुसार इस प्रकार है—१. कोई ऐसा धार्मिक सत्य जिसका प्रकटीकरण केवल दैवी

---

१. 'रहस्यवाद'—डा० राममूर्ति त्रिपाठी, पृ० ९।
२. आक्सफोर्ड डिक्शनैरी।

प्रेरणा से संभव हो ।[3] २. कोई धार्मिक आचार ।[4] 'मिस्ट्री' से ही बना हुआ 'मिस्टिक' (Mystic) है, जिसके विभिन्न अर्थ ये हैं—१. अध्यात्म सम्बन्धी, २. किसी प्राचीन धर्म-ज्ञान, तंत्र विद्या आदि से सम्बन्धित, ३ गुप्त, अज्ञात । ४. आत्मा और परमात्मा के सीधे तादात्म्य से सम्बन्धित अध्यात्मविद्या सम्बन्धी ।[5]

इसी प्रकार 'मिस्टिसिज्म' (Mysticism) के अर्थ उक्त डिक्शनरी के अनुसार ये है—१ रहस्यवादी व्यक्ति के विचार, धारणाएँ, प्रवृत्तियाँ, आदतें, अनुभूतियाँ आदि । २. उल्लासमय चिन्तन (ध्यान) के द्वारा दिव्य शक्ति से तादात्म्य की सम्भावना में विश्वास ।[6] 'एनसाइक्लोपीडिया आफ् ब्रिटानिका' में भी इसका अर्थ—'अन्तिम सत्य या परमात्मा से एकता की तात्कालिक अनुभूति'[7]—दिया गया है ।

अब यदि हम तीनों शब्दों के विभिन्न अर्थों में क्रम एवं संगति स्थापित करते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करें तो इनके अर्थों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

- मिस्ट्री = सामान्य अर्थ—गुप्त या अलौकिक बात ।
  = आध्यात्मिक अर्थ—दैवी प्रेरणा से प्राप्त ज्ञान या अनुभव ।
- मिस्टिक = आत्मा और परमात्मा की एकता से सम्बन्धित ।
- मिस्टिसिज्म = १. रहस्यवादी व्यक्ति के सामान्य लक्षण ।
  २. आत्मा-परमात्मा के तादात्म्य की सम्भावना में विश्वास ।

अस्तु, 'मिस्ट्री' शब्द दैवी प्रेरणा से प्राप्त अनुभव का द्योतक है तो 'मिस्टिक' दैवी या आध्यात्मिक एकता से सम्बन्धित है तथा 'मिस्टिसिज्म' उसी आध्यात्मिक एकता के विश्वास या सिद्धान्त को सूचित करता है । 'रहस्य', 'रहस्यात्मक' एवं 'रहस्यवाद'—क्रमश. इन तीनों शब्दों के ही पर्यायवाची हैं तथा इनके अर्थों को वहन करते हैं । अत: समग्र रूप में 'रहस्यवाद' के तीन विशिष्ट लक्षण निर्धारित किये जा सकते हैं—

- रहस्यवाद का सम्बन्ध एक विशिष्ट अनुभूति से है ।
- उसका क्षेत्र आध्यात्मिक है ।

---

3. 'A religious truth known only by divine revalation.'
4. 'A religious ordinance'
5. 'Connected with that branch of theology which relates to the direct—communion of the soul with God.'
   —(*Shorter Oxford Dictionory*)
6. 'Belief in the possibility of union with the Divine nature by means of ecstatic contemplation.'
7. 'The immediate experience of one-ness with ultimate Reality.'

• उसका लक्ष्य आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति प्राप्त करना है।

इसी अनुभूति के विचार पक्ष को हम 'रहस्यवाद' एव अनुभूति-पक्ष को 'रहस्यानुभूति' कहे तो अनुचित न होगा। महादेवी के काव्य मे विचार अनुभूति के रूप मे ही प्रस्तुत है इसीलिए इस अध्याय के शीर्षक मे 'रहस्यवाद' के स्थान पर 'रहस्यानुभूति' का प्रयोग किया गया है।

स्वरूप-मीमांसा—रहस्यानुभूति एवं रहस्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विचारको ने इसकी विभिन्न परिभापाएँ निर्धारित की हैं, जिनमे से कुछ ये है—

(क) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—'चिन्तन के क्षेत्र मे जो अद्वैतवाद है भावना के क्षेत्र मे रहस्यवाद है।'[८]

(ख) डा० रामकुमार वर्मा—'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिनमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्वन्ध जोडना चाहती है और वह सम्वन्ध यहाँ तक वढ जाता है कि दोनो मे कोई अन्तर नही रह जाता।'[९]

(ग) परशुराम चतुर्वेदी—'रहस्यवाद' शब्द काव्य की एक धारा-विशेप को सूचित करता है। वह प्रधानत. उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति की ओर सकेत करता है जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष, गम्भीर एवं तीव्र अनुभूति के साथ सम्वन्ध रखती है।[१०]

(घ) महादेवी वर्मा—'जव प्रकृति की अनेकरूपता मे, परिवर्त्तनशील विभिन्नता मे, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय में समाया हुआ था तव प्रकृति का एक-एक अश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा। परन्तु इस सम्वन्ध मे मानव-हृदय की सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय सम्वन्धों मे जव तक अनुराग-जनित आत्म-विसर्जन-का भाव नहीं घुल जाता तव तक वे सरस नही हो पाते और जव तक यह मधुरता सीमातीत नही हो जाती तव तक हृदय का अभाव नही दूर होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान वना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।'[११]

(ङ) डा० गोविन्द त्रिगुणायत—'सक्षेप मे हम रहस्यवाद को ब्रह्म के

८-१०. साहित्यिक निवन्ध (डा० ग. च. गुप्त)।

११. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य।

आध्यात्मिक स्वरूप से आत्मा की भावात्मक ऐक्यानुभूति के इतिहास का प्रकाशन कह सकते हैं।'[१२]

(च) **विश्वम्भर 'मानव'**—'आत्मा और ब्रह्म की इसी पारस्परिक प्रणयानुभूति को रहस्यवाद कहते है।'[१३]

(छ) **डा० राममूर्त्ति त्रिपाठी**—'रहस्यवाद रहस्यदर्शियो का वह साकेतिक कथन या वाद है—जिसके मूल मे अखण्डानुभूति और तत्त्वानुभूति निहित है।'[१४]

उपर्युक्त परिभाषाओ का विश्लेषण करने पर रहस्यवाद से सम्बन्धित निम्नाकित तथ्यो एव तत्त्वो का उदघाटन होता है—

(क) आचार्य शुक्ल—रहस्यवाद का दार्शनिक आधार अद्वैतवाद है।

(ख) डा० वर्मा—रहस्यवाद का सम्बन्ध व्यक्ति की उस मूल प्रवृत्ति से है जो परमात्मा से निकट सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है।

(ग) श्री चतुर्वेदी—रहस्यवाद का सम्बन्ध विश्वात्मक-सत्ता की अनुभूति से है।

(घ) श्रीमती वर्मा—प्रकृति के माध्यम से असीम चेतन से, उस पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण करते हुए रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना या प्रणय निवेदन रहस्यवाद है।

(ङ) डा० त्रिगुणायत—ब्रह्म से भावात्मक ऐक्यानुभूति के इतिहास का प्रकाशन रहस्यवाद है।

(च) श्री 'मानव'—आत्मा और ब्रह्म की प्रणयानुभूति ही रहस्यवाद है।

(छ) डा० त्रिपाठी—रहस्यदर्शियो की तत्त्वानुभूति का साकेतिक कथन रहस्यवाद है।

इन सभी मे सामान्यतः आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे स्वीकार किया गया है पर साथ ही प्रत्येक व्याख्याता ने किसी विशिष्ट तत्त्व का भी सकेत किया है जो निम्नलिखित है—

(क) आचार्य शुक्ल—अद्वैतवादी दर्शन।

(ख) डा० वर्मा—मूल प्रवृत्ति।

(ग) श्री चतुर्वेदी—अनुभूति।

(घ) श्रीमती वर्मा—(१) प्रकृति का माध्यम।
(२) मधुर व्यक्तित्व का आरोपण।

(ङ) डा० त्रिगुणायत—ऐक्यानुभूति का इतिहास।

---

१२. कबीर और जायसी का रहस्यवाद; पृ० ३४५।

१३ महादेवी की रहस्यभावना; पृ० ४८।

१४. रहस्यवाद; पृ० २८।

(च) श्री 'मानव'—प्रणयानुभूति ।

(छ) डा० त्रिपाठी—सांकेतिक कथन ।

वस्तुत ये विशिष्ट तत्त्व रहस्यवाद की विभिन्न विशेषताओ के ही सूचक है, अतः इन सबका समन्वय करते हुए कह सकते है कि रहस्यवाद मानव मन की एक ऐसी मूल प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जो अद्वैतवादी दर्शन या विचार-धारा के आधार पर प्रकृति के माध्यम से उस पर मधुर व्यक्तित्व का आरोपण करती हुई ब्रह्म के साथ अपनी प्रणयानुभूतिं एव ऐक्यानुभूति के इतिहास को साकेतिक शब्दावली मे व्यक्त करती हैं। सक्षेप मे इस निष्कर्ष मे रहस्यवाद की विभिन्न विशेषताओ का समाहार सामान्य रूप मे हो जाता है, पर फिर भी इसे भली भाँति समझने के लिए इसके विभिन्न बोधक एव भेदक लक्षणो पर विचार करना उचित होगा ।

बोधक लक्षण—रहस्यवाद के उन आधारभूत तत्त्वो को जो कि रहस्यानुभूति के लिए अनिवार्य है, 'बोधक लक्षणो' की सज्ञा दी जा सकती है। हमारे विचार के अनुसार वे चार है—(१) अलौकिक शक्ति के अस्तित्व में आस्था । (२) अद्वैत भावना (३) रागात्मक सम्बन्ध और (४) भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति । इनका आगे क्रमश. विवेचन किया जाता है—

(१) **आस्था**—रहस्यवादी के लिए सर्व प्रथम आस्तिक एव आस्थावान होना आवश्यक है। आस्तिकता से हमारा अभिप्राय यह नही कि वह किसी विशेष धर्म या दर्शन का अनुयायी हो अपितु यह है कि उसका ईश्वर की सत्ता मे दृढ़ विश्वास होना चाहिए, चाहे वह किसी भी मत को मानता हो ।

(२) **अद्वैत भावना**—अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार मूलतः आत्मा और परमात्मा या जीव और ब्रह्म एक ही है इस सिद्धान्त मे पूर्ण विश्वास होना, यहाँ तक कि व्यक्ति इस अद्वैतता को हृदय के स्तर पर अनुभव करने लगे, अद्वैत भावना है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अद्वैत भावना का केवल भारतीय अद्वैत दर्शन या किसी अन्य दर्शन पर आधारित होना आवश्यक नही हैं; विश्वास का आधार चाहे जो हो किन्तु रहस्य-वादी के हृदय में इस विश्वास का होना आवश्यक हैं।

(३) **रागात्मक सम्बन्ध**—रहस्यवादी की अद्वैत भावना या परमात्मा के साथ उसकी एकता या समानता की भावना गभीर होने पर प्रणय मे परिणत हो जाती है। लौकिक प्रणय की भाँति इस प्रणय में भी मिलन की आकाक्षा, विरह की व्यथा और सयोग की आनन्दानुभूति उन्ही अनुभावो एव संचारियो में व्यक्त होती है जो प्रेम के उदात्त रूप से सम्बद्ध है। ऐन्द्रियकता, कामुकता एवं शारीरिकता से अनुप्राणित भावों को छोड़कर शृगार रस के शेष सभी अनुभाव एवं सचारी भाव रहस्यवाद मे भी होते हैं।

(४) **भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति**—रहस्यवादी साधक अपनी अनुभूति को

किसी भी माध्यम से व्यक्त कर सकता है ; वह चाहे तो केवल हँसकर, आँसू बहाकर या मस्ती से नाच कर भी अपने उल्लास को व्यक्त कर सकता है पर रहस्यवादी काव्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी अनुभूति को भाषा मे—काव्यात्मक भाषा मे—व्यक्त करे। अन्य माध्यम से व्यक्त करने पर वह रहस्यवादी साधक तो हो सकता है पर रहस्यवादी कवि नही।

उपर्युक्त परिभाषा मे उल्लिखित अन्य तत्त्व, जैसे—'प्रकृति पर मधुर व्यक्तित्व का आरोपण', 'साकेतिक शब्दावली' आदि रहस्यवाद की कुछ प्रवृत्तियो से तो सम्वन्धित है किन्तु फिर भी उन्हे रहस्यवाद के अनिवार्य लक्षणो मे स्थान देना आवश्यक नही।

भेदक लक्षण—रहस्यवादी कवियो और काव्य के सम्वन्ध मे अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित है जिनका मूल कारण यह है कि प्रायः हम रहस्यवाद के बोधक लक्षणों को तो ध्यान मे रखते है किन्तु उसके भेदक लक्षणो को भुला देते है। सक्षेप मे इसके प्रमुख भेदक लक्षण ये है—

(१) अद्वैतवाद और रहस्यवाद एक नहीं—प्राय. अद्वैतवाद के पद्यबद्ध प्रतिपादन को ही रहस्यवाद समझ लिया जाता है, जैसे कबीर की निम्नाकित उक्ति द्रष्टव्य है ·

> **जल में कुंभ, कुंभ में जल है,**
> **बाहर भीतर पानी।**
> **फूटा कुंभ जल जल ही समाना,**
> **यह तत्त कथौं ग्यानी ॥**

यहाँ पद्य मे अद्वैतवादी विचार का कथन या प्रतिपादन-मात्र किया गया है, कवि निजी अनुभूति का प्रकाशन नही कर रहा है, अत ये पंक्तियाँ अद्वैतवादी ही है—रहस्यवादी नही। वस्तुत. अद्वैतवाद एक दर्शन मात्र है जव कि रहस्यवाद उसकी अनुभूति है, अतः रहस्यवाद का पहला भेदक लक्षण यह है कि कोई भी दर्शन या कोरा दार्शनिक विचार रहस्यवाद नही है अपितु वह एक अनुभूति-विशेष है।

(२) भक्ति और रहस्यवाद एक नहीं—भक्ति और रहस्यवाद—दोनो मे ही ईश्वर की सत्ता पर विश्वास एवं उसके प्रति रागात्मक सम्वन्ध की अनुभूति एव भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति होती है, पर फिर भी दोनो एक नही हैं। भक्त ईश्वर को अपने से महान एव भिन्न मानता हुआ उसके प्रति श्रद्धापूर्ण राग (=भक्ति) की भावना व्यक्त करता है जव कि रहस्यवादी व्रह्म को अपना ही रूप एव अपने से अभिन्न मानता हुआ उसके प्रति माधुर्यपूर्ण राग या प्रणय की अभिव्यक्ति करता है। इसीलिए भक्त जहाँ द्वैतभाव के आधार पर सगुण अवतार के प्रति अपनी श्रद्धा की व्यंजना करता है वहाँ रहस्यवादी का आराध्य सर्वव्यापी निर्गुण निराकार व्रह्म होता है। कई वार

व्यावहारिक स्तर पर भक्त भी (मीराँ की भाँति) माधुर्य भावना से अनुस्यूत हो जाता है तथा रहस्यवादी भी अपने ब्रह्म पर साकार रूप का आरोपण कर लेता है पर इन्हे अपवाद-स्वरूप सीमा-लंघन ही मानना चाहिए। मध्य काल मे भक्ति के भेदोपभेदो की संख्या मे अभिवृद्धि करते हुए उसका एक भेद माधुर्य भाव की भक्ति को माना गया, पर जैसा कि हम अन्य पुस्तक मे स्पष्ट कर चुके हैं, ये भेद भक्ति के मूल स्वरूप के प्रतिकूल है, अत इन्हे उचित नही कहा जा सकता। दूसरे, भक्त माधुर्य भाव से अनुप्राणित होने पर भी वह सगुण साकार के प्रति ही आत्म-निवेदन करता हुआ द्वैतभाव से अनुप्राणित रहता है, अतः रहस्यवादी की अद्वैत भावना से उसका अन्तर प्राय. बना रहता है। अस्तु, रहस्यवाद का दूसरा भेदक लक्षण यह है कि उसमे आस्था एव अनुभूति द्वैत भावना पर आश्रित नही होनी चाहिए।

(३) **रहस्यवाद अनिवार्यतः काव्य नहीं है**—यद्यपि रहस्यवादी साधको ने काव्य रचे है और काव्य में रहस्यवाद की चर्चा होती है, पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक रहस्यवादी अभिव्यक्ति काव्य है या प्रत्येक काव्य के लिए रहस्यानुभूति आवश्यक है। वस्तुत ये दोनो दो स्वतत्र सत्ताएँ है। जैसे, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से प्रणय-निवेदन करता है तथा दूसरी ओर एक कवि प्रणय-काव्य लिखता है, यहाँ यह आवश्यक नही कि पहले व्यक्ति (प्रेमी) का प्रणय-निवेदन काव्यात्मक ही हो या दूसरे व्यक्ति (कवि) का प्रणय-काव्य उसकी अपनी प्रेमिका पर ही आधारित हो—उसी प्रकार रहस्यवादी साधक और रहस्यवादी कवि दोनो पृथक् है। तुलसीदास ने लका काण्ड मे युद्ध का वर्णन किया है पर इसका तात्पर्य यह नही है कि तुलसीदास अनिवार्य रूप मे योद्धा थे। उसी प्रकार कवि के लिए रहस्यवादी साधक होना आवश्यक नही है।

दूसरे, रहस्यवाद या रहस्यानुभूति एक आध्यात्मिक अनुभूति है ; उस अनुभूति का सर्वत्र काव्यात्मक रूप मे ही प्रकाशित होना आवश्यक नही है , यदि सयोग से रहस्यवादी साधक कवि-प्रतिभा से युक्त हुआ तो उसकी अभिव्यक्ति काव्यात्मक रूप ले सकती है, अन्यथा नही। कबीर और महात्मा गाधी—दोनो ही साधक एव लोक-नेता थे, पर एक की अभिव्यक्ति काव्यात्मक है जब कि दूसरे की नही। इसी प्रकार कवि के पास अनेक विपय एव अनेक अनुभूतियाँ होती है, अत· यह आवश्यक नही कि वह रहस्यानुभूति की ही व्यजना करे।

तीसरे, रहस्यवादी के लिए कवि होना और कवि के लिए रहस्यवादी होना भी कोई विशेष महत्त्व की बात नही है।- अत. रहस्यवादी कवि का मूल्यांकन हम केवल उसकी रहस्यानुभूति के आधार पर ही नही अपितु उसकी काव्यात्मक सफलता के आधार पर ही करेंगे।

इतना अवश्य है कि कवि जिस विपय का वर्णन या जिस भाव की व्यंजना करता है, उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति या आत्मानुभूति भी उसे प्राप्त हो तो उससे उसकी

काव्यात्मकता में अभिवृद्धि होती है ; तुलसीदास यदि चंदवरदायी की भाँति युद्धों के प्रत्यक्ष अनुभवी होते तो निश्चित ही लका-काण्ड के युद्ध-वर्णन मे उन्हे अधिक सफलता मिलती—इसमे कोई सदेह नही ।

अस्तु, न तो प्रत्येक रहस्यानुभूति काव्यात्मक होती है और न ही प्रत्येक काव्यानुभूति रहस्यात्मक होती है—रहस्यवाद और काव्य दो भिन्न सत्ताएँ है जो सयोग से ही एकत्र होती है ।

(४) छायावाद और रहस्यवाद एक नहीं—अनेक छायावादी कवियो मे रहस्यानुभूति की प्रवृत्ति भी मिलती है, इसलिए यह समझ लिया गया कि छायावाद और रहस्यवाद एक है । वस्तुत यह शुद्ध भ्रान्ति है । छायावादी का सम्वन्ध स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति, सौंदर्योन्मुखता एव लौकिक प्रणय से है जव कि रहस्यवादी अद्वैत भावना की प्रेरणा से अलौकिक प्रणय की अनुभूति प्राप्त करता है—अत दोनो का क्षेत्र मूलत भिन्न है । इसीलिए प्रत्येक छायावादी के लिए रहस्यवादी और प्रत्येक रहस्यवादी के लिए छायावादी होना आवश्यक नही । कवीर रहस्यवादी होते हुए छायावादी नही कहे जा सकते तो भगवतीचरण वर्मा को छायावादी होते हुए भी रहस्यवादी नही कहा जा सकता । अत हमे इस भ्रान्ति से वचना चाहिए कि छायावाद और रहस्यवाद अभिन्न हैं ।

अस्तु, उपर्युक्त चारो भेदक लक्षणो से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि रहस्यवाद कोरा अद्वैतवाद नही है, वह भक्ति से भिन्न है, उसका सर्वदा काव्यात्मक होना या प्रत्येक रहस्यवादी का छायावादी होना आवश्यक नही है ।

● **रहस्यवाद के भेद-प्रभेद**— विभिन्न विद्वानों ने रहस्यवाद के अनेक भेदोपभेद किये है । यथा-पाश्चात्य विद्वान् स्पर्जन ने अंग्रेजी साहित्य मे व्यक्त रहस्यवाद की विवेचना करते हुए इसके चार भेद निर्धारित किये है—(१) प्रेम और सौन्दर्य सम्वन्धी रहस्यवाद । (२) दर्शन सम्वन्धी रहस्यवाद । (३) धर्म और उपासना सम्वन्धी रहस्यवाद और (४) प्रकृति सम्वन्धी रहस्यवाद । हमारे विचार मे ये चारो भेद रहस्यवाद के मूल स्वरूप को खडित एव विच्छिन्न करने मे योग देते हैं, अत. भ्रामक है । जैसा कि पीछे स्पष्ट किया जा चुका है, रहस्यवाद के मूल मे प्रेम या अलौकिक प्रेम, अद्वैत दर्शन धार्मिक आस्था, प्रकृति का माध्यम आदि तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में रहते हैं तथा इनमे से कोई भी एक रहस्यवाद नही है । क्या कोरे प्रेम, कोरे दर्शन, कोरे धर्म या कोरी प्रकृति को लेकर रहस्यवाद की स्थापना की जा सकती है ? वस्तुतः इनमे से कोई भी तत्त्व अकेला रहस्यानुभूति का आधार नही वन सकता, अतः इन भेदो को स्वीकार करना असगत होगा ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के दो प्रमुख भेद किये हैं—(१) साधनात्मक रहस्यवाद और (२) भावात्मक रहस्यवाद । जैसा कि पीछे वताया गया है, रहस्यवाद एक अनुभूति है, वह अनुभूति चाहे साधना से प्राप्त हो या दर्शन-विशेष के ज्ञान

से अथवा अपनी कल्पना से—जब तक उसमे अनुभूति या भाव न होगा तब तक उसे रहस्यवाद नही कहा जा सकता ; ऐसी स्थिति मे रहस्यवाद के एक भेद को साधनात्मक और दूसरे को भावात्मक कहना कहाँ तक उचित है ? क्या तथाकथित 'साधनात्मक रहस्यवाद' भावात्मक नही होगा, यह रहस्यवाद के कुछ भेदो मे ही भावना होगी, अन्य मे नही—ऐसा सभव है ? हमारे विचार मे रहस्यानुभूति का साधन जो चाहे हो वह प्रत्येक स्थिति मे **भावात्मक** होता है, अत. उपर्युक्त भेद निरर्थक एव भ्रान्ति-मूलक कहे जा सकते है ।

इधर डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने रहस्यवाद के अनेक भेदो की चर्चा की है ; जैसे—आध्यात्मिक रहस्यवाद, प्रकृतिमूलक रहस्यवाद, प्रेम मूलक रहस्यवाद, यौगिक रहस्यवाद आदि । हमारे विचार मे प्रत्येक रहस्यवाद आध्यात्मिक होता है और प्रत्येक मे प्रेम होता है, अत. केवल कुछ भेदो को 'आध्यात्मिक' या 'प्रेममूलक' कहना उचित नही । इसी प्रकार केवल प्रकृति या कोरा योग भी रहस्यवाद के लिए पर्याप्त नही है, प्रकृति मूलक और योगमूलक रहस्यवाद भी आध्यात्मिकता एव रागात्मकता से युक्त हुये विना 'रहस्यवाद' की सज्ञा से विभूषित नही होते , अत. यह वर्गीकरण भी अवैज्ञानिक एव असगत सिद्ध होता हैं ।

हमारे विचार मे रहस्यवाद एक अखड आध्यात्मिक अनुभूति है, अत. उसे भदोपभेदो मे विभक्त करना आवश्यक नही हैं—पर फिर भी यदि हम उसे वर्गीकृत करना ही चाहे तो उसे अनुभूति की यथार्थता एव काल्पनिकता के आधार पर दो भेदो मे वर्गीकृत किया जा सकता हैं । कुछ कवि जहाँ जीवन मे प्रत्यक्ष आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करते हुए उसकी प्रेरणा से रहस्यानुभूति की व्यजना करते है वहाँ कुछ कवि कल्पना के आधार पर या लौकिक प्रेम की अनुभूति पर अलौकिकता का आवरण चढ़ा कर रहस्यवादी काव्य की रचना करते है । कवि अपनी प्रतिभा के वल पर किसी भी वस्तु या भाव की प्रत्यक्ष अनुभूति के अभाव मे भी उसका निरूपण कर सकता है, यह दूसरी वात है कि उसमे उसे उतनी सफलता नही मिलेगी जितनी की अनुभूति की प्रत्यक्षता होने पर मिलती है, फिर भी कवि लोग इस प्रकार का प्रयास वरावर करते रहे है । तुलसी दास ने अनेक ऐसे प्रसगो एवं भावो की व्यजना की है, जिनसे उनका प्रत्यक्ष सम्वन्ध कदाचित् कभी नही रहा । अस्तु, प्रत्यक्ष अनुभूति पर आधारित रहस्यवाद को 'यथार्थानुमोदित रहस्यवाद' एव दूसरे को 'कल्पनाश्रित रहस्यवाद' की संज्ञा देते हुए रहस्यवाद के दो भेद स्वीकार किये जा सकते है । मध्यकालीन कविय मे जहाँ प्राय. प्रथम कोटि का रहस्यवाद दृष्टिगोचर होता है वहाँ आधुनिक युग के अनेक कवियो ने दूसरे प्रकार के रहस्यवाद की व्यजना की है । वस्तुत. यह दूसरे प्रकार का रहस्यवाद आरोपित होने के कारण अधिक स्थिर एव गभीर सिद्ध नही होता—पत और निराला इसके प्रमाण है ।

रहस्यवाद की अवस्थाएँ—कोई भी रहस्यवादी अपने लक्ष्य तक एकाएक नही पहुँच जाता अपितु उसे अनेक मनोवैज्ञानिक स्थितियों एव भाव-दशाओं को पार करते हुए आगे वढना पडता है। सामान्यत रहस्यवाद के विकास-क्रम की ये पाँच अवस्थाएँ मानी जा सकती है—(१) **जिज्ञासा**—प्रारभिक अवस्था में व्यक्ति की ईश्वर एवं अध्यात्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है; इस जिज्ञासा के असंख्य कारण हो सकते है—कुछ कवि प्रकृति के नाना रूपो एवं विचित्र क्रियाकलापो को देखकर उसके पीछे निहित सत्ता की खोज मे प्रवृत्त होते है तो कुछ वैयक्तिक रुचि, व्यक्तिगत संपर्क, निजी जीवन की किसी विशेप घटना या किसी सासारिक अनुभव की प्रेरणा से परम शक्ति की जिज्ञासा मे प्रवृत्त होते है। इससे साधक अध्यात्मज्ञान मे रुचि लेने लगता है। (२) **आस्था**—आध्यात्मिक ज्ञान एव चिन्तन-मनन से साधक के मन मे परम तत्त्व की सत्ता मे दृढ विश्वास उत्पन्न हो जाता है, जिसे 'आस्था' कहते है। यह रहस्यवाद के विकास की दूसरी अवस्था है। आस्था के मूल मे कोरी वौद्धिकता न होकर रागात्मकता भी होती है, वस्तुतः इसमे वुद्धि और भावना का घनिष्ठ योग रहता है। (३) **अद्वैत भावना**—इस अवस्था मे साधक परमात्मा से अद्वैत सम्वन्ध या एकता की भावना का अनुभव करने लगता है। (४) **विरहानुभूति**—अद्वैत भावना के तीव्र होने पर साधक परमात्मा से मिलने, उसे जीवन मे प्राप्त करने अथवा उसमे लीन हो जाने के लिए उत्कंठित हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह तीव्र प्रणय-वेदना या विरहानुभूति का अनुभव करता है। (५) **संयोगानुभूति**—अन्त मे साधक परमात्मा के प्रत्यक्षीकरण मे या उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल हो जाता है जिसे लौकिक प्रेम की शव्दावली मे संयोगानुभूति की अवस्था कह सकते है। इस प्रकार सामान्य रूप मे ये पाँच अवस्थाएँ है, किन्तु कवि की विशिष्ट स्थिति के कारण इनमें परिवर्तन भी सभव है, तथा सभी रहस्यवादी सभी अवस्थाओ तक पहुँच पाने मे सफल हो—यह भी आवश्यक नही है।

भारतीय साहित्य में रहस्यवाद की परम्परा—यद्यपि रहस्यवाद का पूर्ण रूप वहुत वाद मे विकसित हुआ है, किन्तु उसके कुछ तत्त्व हमारे प्राचीनतम ग्रथ—ऋग्वेद मे उपलव्ध हो जाते है। रहस्यवाद की मूल वृत्ति—जिज्ञासा का विकास प्राचीन वैदिक ऋपि मे भी उसी प्रकार मिलता है, जैसा कि आज के युग मे संभव है। सृष्टि की लीला से चमत्कृत होकर वह पूछ वैठता है—

> "को अद्धा वेद ! क इह प्रवोचत्; कुत आजाता, कुत इयं विसृष्टिः ?
> अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा, को वेद यत आवभूव !
> इयं विसृष्टिर्यत आवभूव, यदि वा दधे वदि वा न।
> यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।
> (ऋग्वेद १०।१२६।६-७)

अर्थात्—कौन ठीक-ठीक जानता है ? कौन यह सच-सच बता सकता है कि इस सृष्टि का उद्भव कहाँ हुआ, कैसे हुआ, और कब हुआ ! सृष्टि का निर्माण स्वत ही हुआ या किसी ने किया ! यह सब कुछ वह अन्तरिक्षवासी ही जानता है या वह भी जानता है या नही—किसे पता !

यहाँ हमे प्रारम्भिक जिज्ञासा ही मिलती है किन्तु आगे चलकर उपनिषद् ग्रथो मे हमे उस अद्वैत का प्रतिपादन मिलता है जो रहस्यवाद का मूलाधार है। छादोग्य उपनिषद् मे आत्मा और परमात्मा की एकता को व्यक्त करते हुए कहा गया है—"तात्सत्य स आत्मा तत्त्वमसि" (वह सत्य है, वह आत्मा है, वह तू है !) एक अन्य उपनिषद् में लिखा है—"अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद" (वह अन्य है, मैं अन्य हूँ—जो यह जानता है वह (कुछ नही जानता !) वस्तुत उपनिषदो मे अद्वैत ज्ञान का पूर्ण विकास मिलता है किन्तु उसकी वह काव्यमय अनुभूति नही मिलती, जिसे रहस्यवाद कह सकते है।

परवर्ती धार्मिक साहित्य मे क्रमश. बौद्धिकता के स्थान पर भावात्मकता का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप ज्ञान का स्थान भक्ति ने ले लिया। भक्ति-सूत्र और पौराणिक ग्रथो मे अलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम-भावना का तो विकास हुआ किन्तु रहस्यवाद का मूलाधार—अद्वैत विचार ही लुप्त हो गया। भक्ति के लिए एक का महत् और दूसरे का लघु होना आवश्यक है, अतः ऐसी स्थिति मे उपनिषदो की अद्वैत-मूलक चिन्तन धारा का प्रचार शिथिल हो जाना स्वाभाविक था। आठवी-नवी शती मे शकराचार्य ने पुन. अद्वैतवाद का उद्धार किया, किन्तु परवर्ती आचार्यो ने विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि का आविष्कार करके अद्वैतवाद का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। अत. शुद्ध भारतीय-परम्परा मे पन्द्रहवी शती तक अद्वैतवाद उस स्थिति तक नही पहुँच सका जिससे वह रहस्य का रूप धारण कर पाता। इस सम्बन्ध मे प्राय. सिद्धो एव नाथ-पथियो का उल्लेख किया जाता है, किन्तु हमारी दृष्टि मे दोनो ही रहस्य से शून्य हैं। सिद्धो की साधना-पद्धति मे कुछ रहस्य अवश्य था, नारी या साधिका के स्थूल शरीर को ही वे अपनी साधना का सबसे बडा साधन समझते थे, उनमे अद्वैतावस्था भी मिलती है, किन्तु वह पुरुष और नारी की शारीरिक अद्वैतावस्था है, आत्मा और परमात्मा से उसका कोई सम्बन्ध दृष्टिगोचर नही होता, अतः उसे 'रहस्यवाद' नही 'भुक्तिवाद' कहना चाहिए। नाथ-पथियो मे अवश्य आध्यात्मिक एकता का निदर्शन हुआ है, किन्तु उनकी इस एकता का साधन भावना न होकर योग-साधना है, भावात्मक अनुभूति के बिना किसी भी अद्वैत साधना को रहस्यवाद का नाम नही दिया जा सकता।

चौदहवी-पन्द्रहवी शती मे भारतीय संतो द्वारा रहस्यवाद का प्रवर्त्तन मुख्यतः दो धार्मिक सम्प्रदायो के योग से हुआ—एक था नाथ-पंथी सम्प्रदाय और दूसरा वैष्णव-

भक्ति संप्रदाय। संत लोग एक ओर तो नाथ-पंथियों के निर्गुण की उपासना स्वीकार करते थे, किन्तु वे हठयोग की साधना-पद्धति से बचना चाहते थे, दूसरी ओर वे भक्ति-आन्दोलन की भावात्मकता को ग्रहण करना चाहते थे पर उसके सगुणवाद से दूर रहे। इस प्रकार नाथ-पथियो का निर्गुण वैष्णव-भक्ति के भक्तिभाव से मिश्रित होकर रहस्यवाद का आधार बन गया। नामदेव, कबीर, दादू आदि संतो मे हमे यही रूप दृष्टिगोचर होता है। हमारे अनेक विद्वानों की मान्यता है कि सतो का रहस्यवाद सूफी मत का प्रभाव है, किन्तु इसका कोई प्रमाण अभी तक उपलब्ध नही हुआ। नामदेव और कबीर ने नाथ-पथ के प्राय. सभी पारिभापिक शब्दों को ग्रहण किया है, तथा वैष्णव-भक्ति आन्दोलन के प्रति गहरी श्रद्धा व्यक्त की है किन्तु सूफी मत के सम्बन्ध मे ऐसी कोई बात नही मिलती। हाँ, कही-कही सूफी मत का खडन करने के लिए उसकी चर्चा अवश्य की है, जिसका कोई महत्त्व नही है। अपनी प्रणय-विह्वल अवस्था मे कबीर सर्वत्र हरि, गोविन्द, राम आदि का ही उच्चारण करते है, यद्यपि वे उन्हे सगुण अर्थ मे ग्रहण नही करते। इसके अतिरिक्त सतो की प्रणय-भावना के स्वरूप मे भी सूफियो की भावना से गहरा अन्तर है। सूफी परमात्मा को प्रेयसी के रूप मे ग्रहण करते है जबकि संत उसे पति के रूप मे स्वीकार करते है, सूफी मार्गानुयायियो की विरह व्यंजना मे मार-काट, हृदय के घाव, रक्त के आँसुओं आदि की चर्चा के कारण बीभत्सता मिलती है जिसका भारतीय सतो मे अभाव है। दार्शनिक दृष्टि से भी सूफी मत के मूल मे सर्वात्मवाद है जबकि सतो की भावना अद्वैतवाद पर आश्रित है। सतो ने सूफियों के शैतान को न लेकर वेदान्त के मायावाद को ग्रहण किया है। अतः जहाँ तक दार्शनिक मान्यताओ, प्रेम-पद्धति, रूपको एव प्रतीको का प्रयोग और भापा शब्दावली के क्षेत्र की बात है, सतो का रहस्यवाद शुद्ध भारतीय परम्परा मे आता है, अत उस पर सूफी प्रभाव की कल्पना करना निराधार है।

आधुनिक युग मे रहस्यवाद का पुनरुत्थान वेदान्त दर्शन के नवोत्थान के साथ-साथ हुआ। उन्नीसवी-बीसवी शती मे रामकृष्ण परमहस, विवेकानन्द, अरविन्द जैसे चिन्तकों एव साधको ने भारतीय दर्शन को नयी शब्दावली मे प्रस्तुत करके न केवल भारतीय जनता का अपितु विश्व के अनेक प्रबुद्ध विचारको का ध्यान इस ओर आकर्पित कर लिया। विशेपत. स्वामी विवेकानन्द ने इस क्षेत्र मे नव जागृति का जो शंख फूका वह तो अद्भुत है। उनके अद्वैतवादी विचारो से देश-विदेश के सहस्रो व्यक्ति प्रभावित हुए—ऐसी स्थिति मे कवि और कलाकार पीछे कैसे रह सकते थे! कदाचित् इस क्षेत्र मे सबसे पूर्व रवीन्द्र अग्रसर हुए जिन्होने दर्शन के अद्वैतवाद को अपनी 'गीताजलि' मे भावात्मक स्तर पर प्रस्तुत करते हुए आधुनिक भारतीय काव्य मे रहस्यवाद का प्रवर्त्तन किया, उन्ही के प्रभाव से हिन्दी मे छायावाद एव रहस्यवाद का प्रवर्त्तन हुआ—इसका स्पष्टीकरण पीछे 'छायावाद' के प्रसंग मे किया जा चुका है।

रवीन्द्र के अतिरिक्त कबीर, दादू, मीराँ आदि संतो एव भक्तो के काव्यानुशीलन ने भी हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी धारा के विकास मे योग दिया। महादेवी से पूर्व प्रसाद, पत, निराला प्रभृति कवि रहस्यवादी स्वर निनादित कर चुके थे—अत महादेवी को सर्वथा नूतन पथ का अन्वेपण नही करना पडा।

इस प्रकार भारतीय रहस्यवादी परम्परा के आधारभूत तत्त्वों—आस्तिकता, आस्था, अद्वैत दर्शन आदि का आविर्भाव तो वेदो और उपनिषदो के युग मे ही हो गया था किन्तु उनकी भावात्मक अनुभूति एवं काव्यात्मक अभिव्यक्ति मध्यकालीन संतो एव आधुनिक कवियो मे उपलब्ध होती है। इस दृष्टि से रहस्यवाद एक दीर्घ परम्परा पर अवस्थित एव क्रमश विकसित दृष्टिगोचर होता है। पर विभिन्न युगो मे तात्कालिक प्रभावो से भी यह बराबर समन्वित होता रहा है। जहाँ मध्यकाल मे वह वैष्णव भक्ति के विभिन्न तत्त्वो (सगुण उपासना को छोडकर राम, गोविन्द, हरि, आदि के नामो, सुदृढ़ आस्था एव उत्कट भाव आदि) से अनुप्राणित दिखाई पडता है वहाँ आधुनिक काल मे वह प्रकृति के मानवीकरण, सम्प्रदाय-निरपेक्षता, छायावाद की शैलीगत प्रवृत्तियो आदि से भी युक्त हुआ है। वस्तुत. युगीन परिवेश के अनुकूलित हो पाने की क्षमता के कारण ही रहस्यवाद रूढि नही बना अपितु एक सशक्त परम्परा के रूप मे जीवित है—यह दूसरी बात है कि कभी उसके स्वर मद हो जाते है तो कभी तीव्र। कवयित्री महादेवी आधुनिक रहस्यवादी कवियो मे रहस्यानुभूति की तीव्रता एव गभीरता की दृष्टि से न केवल उच्च स्थान की अधिकारिणी है अपितु वे उसका समुचित प्रतिनिधित्व भी कर रही है। यह तथ्य आगे महादेवी की रहस्यानुभूति के अनुशीलन से ही भलीभाँति हृदयगम हो सकेगा—यहाँ हमारा प्रतिपाद्य केवल इतना है कि महादेवी का रहस्यवाद भारतीय रहस्यवाद की दीर्घ एव सुप्रतिष्ठित परम्परा पर आधारित है, इसलिए वह न केवल युगीन प्रवृत्ति है अपितु परम्परानुमोदित भी है। परम्परा और युग—दोनो का सामजस्य अपने-आप मे एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है जो कि विकासपरक दृष्टि से एक उपलब्धि मानी जा सकती है।

* * *

५

महादेवी की रहस्यानुभूति

"... रहस्यानुभूति 'भावावेश की आँधी नहीं वरन् ज्ञान के अनन्त आकाश के नीचे अजस्रप्रवाहमयी त्रिवेणी है, इसी से हमारे तत्त्वदर्शक बौद्धिक तथ्य को हृदय का सत्य बना सके।"
—महादेवी

● **आधार-स्रोत**—किसी भी व्यक्ति मे, चाहे वह साहित्यकार हो या सामान्य सामाजिक, विभिन्न प्रवृत्तियो का उन्मेष एवं प्रतिफलन सामान्यत इन आधारो पर होता है—(१) जन्मजात विशिष्ट या सामान्य वृत्ति की प्रेरणा से। (२) पारिवारिक एव सामाजिक वातावरणजन्य सस्कारो से। (३) अन्य व्यक्तियो के अथवा बाह्य सत्ता के प्रभाव, दवाव या आदेश से। वस्तुत मूल प्रवृत्ति तो वही मानी जायेगी जो व्यक्ति की जन्मजात वृत्तियो पर आधारित हो किन्तु उसका सम्यक् विकास या अवरोध बहुत-कुछ पारिवारिक एव सामाजिक सस्कारो पर निर्भर रहता है। किन्तु जहाँ कोई प्रवृत्ति मूलवृत्तियो एव संस्कारो पर आधारित न होकर किसी बाह्य प्रभाव या दवाव मात्र से प्रेरित होती हो उसे व्यक्ति की निजी, वास्तविक या स्वाभाविक प्रवृत्ति नही कह सकते। जीवन की विभिन्न परिस्थितियो से विवश होकर व्यक्ति कई बार इस प्रकार की आरोपित या कृत्रिम प्रवृत्तियो को भी अपनाता है किन्तु वह उनका भली-भाँति निर्वाह करने मे सफल नही हो पाता। साहित्य-क्षेत्र में तो यह बात विशेष रूप से लागू होती है। जब केशवदास जैसे यथार्थोन्मुख रसिक व्यक्ति केवल तुलसी-जैसे भक्त कवि को सम्मानित होते देखकर ही राम-भक्ति की प्रवृत्ति को वलात् अपनाते हुए 'रामचद्रिका' के प्रणयन का प्रयास करते हैं तो वहाँ वे न अपने साथ न्याय कर पाते है और न ही अवतार-पुरुष राम के साथ। इसी प्रकार केवल रवीन्द्र एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखो की प्रेरणा से राष्ट्रीयता के कवि मैथिलीशरण गुप्त ऊर्मिला की

विरह-व्यथा को लेकर छायावादी गीतो का अनुसरण करने लगते है तो वहाँ वे अपनी प्रतिभा और प्रवृत्तियो से दूर चले जाते है—फलतः 'साकेत का नवम सर्ग' बहुत दीर्घ हो जाने के वाद भी न कवि को सतोष प्रदान करता है और न ही पाठक को। वस्तुत· जिस प्रकार भक्ति-भावना केशव की मूल प्रवृत्ति के अनुकूल न थी उसी प्रकार शृगारिकता और विरह-भावना— और वह भी विशेषतः गीति शैली मे—वीरता और राष्ट्रीयता के कवि मैथिलीशरण गुप्त की स्वभावगत प्रवृत्तियो के अनुरूप न थी। कदाचित् 'रामचद्रिका' और 'साकेत' की सफलता के मूल मे सवसे बडा बाधक तत्त्व यही था। अस्तु, किसी भी कवि की प्रवृत्तियो पर विचार करते समय यह देखना आवश्यक है कि उनका मूलाधार क्या है ? क्या वे कवि की जन्मजात वृत्तियो एव उसके सस्कारो के अनुरूप है—या वे किसी वाह्य परिस्थिति से आरोपित है ?

जहाँ तक महादेवी की रहस्योन्मुखी प्रवृत्तियो का सम्वन्ध है, वे उनके व्यक्तित्व की जन्मजात वृत्तियो पर आधारित सिद्ध होती है। व्यक्ति के मन मे मूलत दो प्रकार की वृत्तियाँ मानी जा सकती हैं—रागपरक (आकर्षण मूलक) और विरागपरक (विकर्षण मूलक)। महादेवी का व्यक्तित्व सासारिक स्तर पर आरभ से ही विरागपरक दिखाई पडता है। उनकी रुचियाँ ऐन्द्रियक, भोगपरक एव सासारिक कम एव बौद्धिक त्यागपरक एव आध्यात्मिक अधिक दिखाई पडती है। इसीलिए उनमे वाल्यकाल से ही जहाँ एक ओर ऐन्द्रियक स्तर के स्वादो के प्रति विरक्ति रही वहाँ फूल-पौधो मे सजीवता, पशु-पक्षियो तक के प्रति व्यापक सहानुभूति, तथा पर-दु खकातरता की भावना रही। गृहस्थ जीवन के प्रति अरुचि, बौद्ध भिक्षुणी बनने की इच्छा एव वैवाहिक सम्वन्धो का परित्याग—ये सब उनके मन की उन उदात्त वृत्तियो के सूचक है जो कि व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करती हैं। अवश्य ही ये वृत्तियाँ सामान्य नही है पर अस्वाभाविक भी नही कही जा सकती।

महादेवी की जन्मजात वैराग्यमूलक वृत्तियो को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करने मे उनके पारिवारिक सस्कारो ने भी कम योग नही दिया। इस सम्वन्ध मे वे स्वय भी लिखती है— "··· एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने सस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय मे न वँधनेवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर, माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीराँ, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के सगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा मे पद-रचना आरभ की थी।" (आधुनिक कवि , पृष्ठ ३५) वस्तुत. कोरी भावुकता धर्म के क्षेत्र मे भक्ति की ओर ले जाती है तो कोरी बौद्धिकता व्यक्ति को दार्शनिक वना देती है, जव

कि रहस्यवाद में भावात्मकता बौद्धिकता पर आधारित या उससे समन्वित होकर उपस्थिति होती है ; अत. कहना चाहिए कि रहस्यवादिनी महादेवी मे माता और पिता —दोनो के सस्कारो का समन्वित योग है ।

अस्तु, स्वभावगत वृत्तियो एव माता-पिता के संस्कारो से पोषित महादेवी की काव्य-चेतना जब कविता के क्षेत्र मे प्रवृत्त हुई तो अनायास ही उसमे वे सब प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हो गयी जिन्हे हम शास्त्रीय भाषा मे 'रहस्यवाद' की संज्ञा देते है । यद्यपि इनके काव्य-गुरु ने इन्हे प्रारभ मे ब्रजभाषा मे समस्या-पूर्ति करने का अभ्यास करवाते हुए, तत्कालीन प्रचलित विषयो की ओर उन्मुख करने का असफल प्रयास किया था, किन्तु इनके द्वारा ग्यारह वर्ष की आयु मे रचित खडी बोली की प्रथम पूर्ण रचना इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि काव्य-रचना के आरभ काल से ही इनमे रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थी । इस तथ्य को सुस्पष्ट करने के लिए इनकी प्रथम रचना का विश्लेषण करना उचित होगा । वह रचना यह है :

धूलि के जिन लघुकणों में है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान !
आग कर देती जिसे पल में जला कर क्षार,
है बनी उस तूल से वर्त्ती नई सुकुमार ।
तेल में भी है न आभा का कहीं आभास,
मिल गये सव तब दिया तू ने असीम प्रकाश ।
धूलि से निर्मित हुआ है, यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभिराम ।
प्रेम का ही तेल भर जो हम बने निःशोक,
तो नया फैले जगत् के तिमिर में आलोक !

उपर्युक्त कविता मे निम्नांकित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती है—

(१) मानव शरीर की तुलना दीपक से करते हुए दोनो को 'धूलि-कणो' से निर्मित वताना । (प्रथम दो पंक्तियाँ)

(२) मानव जीवन की ही भाँति वर्त्ती को भी क्षण-भंगुर वताना । (तीसरी और चौथी पंक्ति)

(३) मानव-जीवन रूपी वर्ती को प्रभु से प्राप्त मानना । (आठवी पंक्ति)

(४) जीवन के शोक से छुटकारा पाने का उपाय प्रेम (आध्यात्मिक प्रेम) को मानना ।

(५) आध्यात्मिक प्रेम के प्रकाश के द्वारा ही संसार के अंधकार रूपी तिमिर का नाश मानना ।

(६) दीपक के माध्यम से मानव-जीवन की व्याख्या करना।

निश्चित ही यह कविता रहस्यानुभूति से ओत-प्रोत नही मानी जा सकती, किन्तु इसमे जिन बौद्धिक, भावात्मक एव शैलीगत प्रवृत्तियो का उन्मेष दृष्टिगोचर होता है वह उनके परवर्ती 'रहस्यवादी काव्य का बीज माना जा सकता है। वस्तुत. यहाँ ये प्रवृत्तियाँ अकुर मात्र है जब कि आगे चलकर वे पल्लवित-पुष्पित होकर विकसित हुईं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि कवयित्री ने अपनी पहली कविता मे दीपक और उसकी वर्ती के माध्यम से मानव-जीवन के दु ख-शोक रूपी अधकार को अध्यात्म-प्रेम या स्नेह के सयोग से दूर करने की जो भावना व्यक्त की है—वह उनके समस्त परवर्ती काव्य के मूल भाव को सूचित करती है। इतना ही नही उनका अतिम काव्य-ग्रन्थ 'दीप-शिखा' और उसकी विभिन्न रचनाएँ इस दीपक के रूपक का ही निर्वाह करती हुई दिखाई पड़ती है। यहाँ तुलना के लिए उनकी दीप सम्बन्धी परवर्ती कविताओ के कुछ अंश प्रस्तुत हैं .

(क)

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
× ×
वसुधा के जड़ अन्तर में भी
वन्दी हैं तापों की हलचल !
× ×
तम के अणु-अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल !

—नीरजा

(ख)

दीप मेरे जल अकम्पित
घुल अचंचल !
× ×
पथ न भूले, एक पग भी
घर न खोये, लघु विहग भी !
× ×
प्रात हँस रोकर गिनेगा

—दीपशिखा-१

(ग)

सब बुझे दीप जला लूँ !
× ×
देखकर कोमल व्यथा को
आँसुओं के सजल रथ में !
× ×
फैलती आलोक सी
झंकार मेरी स्नेह गीली !

—वही

इसी प्रकार 'दीप-शिखा' की अनेक कविताएँ केवल दीपक के प्रतीक पर आधारित है, जैसे—

(क) धूप-सा तन दीप-सी मै (गीत सख्या-१४)
(ख) यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो ! (१३)
(ग) किस लिए हर साँस तम में
सजल दीपक राग गाती ! (१६)
(घ) गो धूली अब दीप जगा ले ! (१८)
(ङ) मोम सा तन घुल चुका
अब दीप-सा मन जल चुका है ! (२३)
(च) उर का दीपक····वर्ती सी साँस अशेष रही ! (२९)
(छ) पूछता क्यों शेष कितनी रात ?
अमर सम्पुट में ढला तू ! (४२)
(ज) पुजारी दीप कहीं सोता है ! (४५)
(झ) जले दीप को फूल का प्राण देदो (४६)

इस प्रकार महादेवी के काव्य मे प्रारभ से अब तक सर्वत्र आत्म-वेदना, विश्व-करुणा, एव आध्यात्मिक प्रेम के स्वर मिले-जुले रूप मे सुनाई देते है जिनका माध्यम प्राय दीप रहा है। इस विश्लेपण से स्पष्ट है कि उनकी उक्त प्रथम कविता न केवल उनकी काव्य-प्रवृत्तियो के प्रारभिक सहज रूप का अपितु उनके समस्त काव्य का प्रतिनिधित्व बीज रूप मे करती है। यह तथ्य इस बात का भी सूचक है कि महादेवी ने जीवन के विकास के साथ-साथ अनुभूति की तीव्रता एवं अभिव्यजना की सशक्तता तो प्राप्त की है—पर अपना पथ उन्होने सदा अपरिवर्तित रखा है तभी तो वे यह कहने का साहस करती है—"मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रान्त होने और चली हुई राह मे पग-पग गिनकर पाश्चाताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नही मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है; केवल इतना ही नही वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये है।" (यामा की भूमिका ; पृ० ५) महादेवी की यह स्वीकारोक्ति उनकी रहस्य-यात्रा के मार्ग को भी स्पष्ट करने मे सहायक सिद्ध होती है।

महादेवी के काव्य मे आध्यात्मिकता एव रहस्योन्मुखता की प्रवृत्ति को जन्मजात मानने का तात्पर्य यह भी नही है कि उन्होने इस प्रवृत्ति को विकसित करने मे कही से भी कुछ ग्रहण नही किया या वे वाह्य प्रभावो से सर्वथा वची रही। वे अपनी चुनी हुई दिशा और सुनिश्चित पथ पर ही सदा अग्रसर रही पर उनकी शक्ति और गति की अभिवृद्धि मे योग देने वाले तत्त्वो को भी उन्होने समय-समय पर ग्रहण किया

है। वृक्ष के अंकुरित होने का मूल श्रेय बीज को है, उसे आश्रय देने वाली धरती को भी है, पर साथ ही जल, वायु, प्रकाश आदि अनेक तत्त्वो की भी सर्वथा उपेक्षा नही की जा सकती। जन्मजात प्रवृत्ति और माता-पिता के सस्कारो के अतिरिक्त उन्होने क्रमशः भारतीय तत्त्व-दर्शन, मध्यकालीन सतों की अनुभूति, रवीन्द्र प्रसाद प्रभृति पूर्ववर्ती कवियो के काव्य का प्रभाव भी न्यूनाधिक मात्रा मे अवश्य ग्रहण किया है। इस प्रसग मे उन्होंने स्वय स्वीकार किया है—'आज गीत मे हम जिसे रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं वह इन सब की विशेषताओ से युक्त होने पर भी उन सबसे भिन्न है। उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र मे बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।' (म० वि० ग० १०६)

इससे स्पष्ट है कि महादेवी की रहस्यानुभूति उनकी वैयक्तिक वृत्तियो, उनके पारिवारिक सस्कारो, भारतीय साहित्य की परम्पराओ, मध्यकालीन सतो की भाव-धारा तथा सामयिक कवियो की रचनाओ के प्रभाव से युक्त है। यही कारण है कि उसका आधार जितना पुष्ट है, उसका विकास एवं प्रसार भी उतना ही व्यापक है। परम्परा और युगीन तत्त्वो के सामंजस्य से ही प्रत्येक वस्तु अपने विकास की चरम स्थिति तक पहुँचती है—महादेवी के रहस्यवादी काव्य के चरमोत्कर्ष का रहस्य भी यही है।

● **महादेवी की रहस्यानुभूति : शंकाएँ और आक्षेप**—महादेवी की रहस्यानुभूति के सम्बन्ध मे समय-समय पर अनेक प्रकार की शंकाएँ और आक्षेपपूर्ण आलोचनाएँ की जाती रही है, जिनमे से कुछ तो ऐसी है जो रहस्यवाद को सामान्य रूप मे ही अस्वीकार करती है और कुछ का सम्बन्ध विशेष रूप मे महादेवी से ही है। यहाँ दोनो प्रकार की शकाओ पर क्रमश विचार किया जाता है। आधुनिक युग के अनेक विद्वानो एवं आलोचको की धारणा है कि रहस्यवाद आध्यात्मिक विश्वासो एव अलौकिक सत्ता के बोध पर आश्रित होने के कारण आधुनिक युग की बौद्धिकता के प्रतिकूल है—अतः यह संभव नही कि कोई सुशिक्षित बुद्धिजीवी इसकी यथार्थता पर विश्वास करे। अवश्य ही जिन लोगो का भौतिकवादी सिद्धान्तो एव विचारो मे पूर्ण विश्वास है तथा जो ईश्वर की सत्ता या किसी सूक्ष्म अलौकिक शक्ति के अस्तित्व मे विश्वास नही करते उनके लिए रहस्यवाद भी उतना ही निरर्थक है जितना कि अध्यात्मवाद। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि आज के सभी व्यक्ति भौतिकवाद के अनुयायी हो गये हैं—या किसी भी कवि या साहित्यकार के लिए यह सभव नही कि वह अध्यात्म मे

विश्वास रखे। भले ही यह विश्वास भौतिकवादियो की दृष्टि मे अन्धविश्वास ही क्यों न हो किन्तु आज भी इस धरती पर ऐसे आस्थावान् व्यक्तियो की कमी नही है जो कि परमात्मा की सत्ता में पूर्ण विश्वास करते है और जिनके विचारो मे, भावो मे और कर्मो मे सदा इसी दिव्य विश्वास की अनुगूँज सुनाई पडती है जिनकी चेतना इतनी सूक्ष्म नही है कि वह उस दिव्य सत्ता का बोध प्राप्त कर सके या जिनकी बुद्धि स्थूल जगत् के पीछे निहित किसी सूक्ष्म शक्ति तक पहुँच पाने मे असमर्थ है, वे यदि इन आस्थावान व्यक्तियो को अध विश्वासी कह सकते है तो इनकी दृष्टि मे भौतिकतावादियो को भी मात्र स्थूल-द्रष्टा कहा जा सकता है।

- अस्तु, भौतिकतावादियो से हमारा इतना ही निवेदन है कि वे अध्यात्म की सत्ता में विश्वास करे या न करे किन्तु इतना तो स्वीकार करे ही कि आज भी ऐसे व्यक्तियो का अस्तित्व सभव है जो कि अध्यात्म में पूर्ण विश्वास करते हों। और यदि हम विश्वास की संभावना को स्वीकार करते है तो हमे यह भी स्वीकार करना होगा कि यह विश्वास जब बुद्धि के स्तर से उतर कर हृदय की निधि बन जाता है तो उसका रागात्मक अनुभूति मे परिणत हो जाना भी संभव है और साथ ही उस अनुभूति का सामान्य शब्दावली या काव्यात्मक शैली मे व्यक्त हो जाना भी स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति मे अध्यात्मवादी और रहस्यवादी अनुभूतियो का काव्य मे अभिव्यक्त होना अस्वाभाविक नही कहा जा सकता।

कुछ विद्वान् ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हुए भी रहस्यवाद पर आक्षेप करते है। इन विद्वानो मे मूर्धन्य आलोचक प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रहे है जिन्होने रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए उसे इसलिए अव्यावहारिक माना है क्योंकि वह ईश्वर के सगुण और साकार रूप के स्थान पर निर्गुण-निराकार रूप पर आश्रित है। उनका तर्क है—'अज्ञात और अव्यक्त के प्रति केवल जिज्ञासा हो सकती है, अभिलाषा या लालसा नही।' हमारे विचार मे यह तर्क एक ओर तो इस भ्रान्ति पर आधारित है कि रहस्यवादी ईश्वर को अज्ञात और अव्यक्त मानता है तथा दूसरी ओर यह अपने-आप मे भी भ्रामक है। रहस्यवादी ईश्वर के निर्गुण रूप मे आस्था रखता हुआ भी यह जानता है कि सृष्टि के कण-कण में, प्रकृति के नाना रूपों मे तथा चेतन संसार के सभी प्राणियों मे उसी परम शक्ति की सत्ता है, सारी सृष्टि उसी का व्यक्त रूप है—अतः यह नही कहा जा सकता कि रहस्यवादी का आराध्य 'अज्ञात और अव्यक्त' होता है। हाँ, रहस्यवाद में जिज्ञासा की स्थिति भी रहती है किन्तु वह केवल आरंभिक अवस्था मात्र होती है—जिज्ञासा की तृप्ति के साथ-साथ ज्यों-ज्यों व्यक्ति का विश्वास दृढ़ होता जाता है त्यों-त्यो उसकी लालसा या भावना भी तीव्र होती जाती है। अतः यह कहना उचित नहीं कि रहस्यवादी की मिलन-अभिलाषा अस्वाभाविक या अव्यावहारिक है। वस्तुतः ईश्वर की सत्ता मे सुदृढ़ विश्वास या आस्था को रहस्यवाद

का पहला लक्षण माना गया है और यदि उसका ईश्वर सर्वथा 'अज्ञात और अव्यक्त' होता तो उसके प्रति विश्वास और आस्था कैसे होती !

साथ ही यह भी विचारणीय है कि क्या अज्ञात सम्बन्धी जिज्ञासा कभी भी अभिलापा मे परिणत नही हो सकती ? घूंघट में छिपी हुई गोरी का सौन्दर्य दूल्हे के लिए अज्ञात और अव्यक्त होता है पर उसे देखने-छूने और पाने के लिए वह कितना लालायित रहता है ! सडक पर खडे हुए जादूगर का तमाशा दर्शको के लिए—तमाशा देखने से पूर्व सर्वथा अज्ञात होता है फिर भी उसे देखपाने के लिए वे किस तरह आतुर हो जाते है ! और यदि यह कहा जाय कि ईश्वर के सगुण रूप का ही ध्यान सभव है, उसके निर्गुण रूप का सभव नही तो यह भी यथार्थ नही है ।

जो लोग महात्मा गाँधी के आदर्शो एव विश्वासो से परिचित है वे जानते हैं कि आज के युग में भी सत्य की सूक्ष्म सत्ता, परमात्मा के निर्गुण रूप एव उसकी शक्ति की महानता मे अटूट श्रद्धा और अटल विश्वास किया जा सकता है । यह आश्चर्य की वात है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को जो कि गाँधी के समकालीन थे—इस प्रकार की वास्तविकता पर भी सदेह करने की आवश्यकता पड़ी ।

प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक का यह सुदृढ विश्वास है कि कोरा भौतिकवाद उसी प्रकार एकागी दृष्टि का परिणाम है, जिस प्रकार भौतिकता से निरपेक्ष कोरा अध्यात्म-वाद एकागी वोध का सूचक है—वस्तुत. ये दोनो ही सत्य के दो पक्ष है । आज का वैज्ञानिक यह मानता है कि स्थूल द्रव्य (Matter) की सूक्ष्म शक्ति (Energy) मे तथा सूक्ष्म शक्ति की स्थूल द्रव्य मे परिणति सभव है तथा द्रव्य के प्रत्येक कण मे उससे अरवो गुना शक्ति छिपी हुई है । शक्ति और द्रव्य की अद्वैतता का सिद्धान्त दार्शनिक अद्वैतता का ही वैज्ञानिक सस्करण है । दर्शन के अनुसार भी परम शक्ति अजर, अमर एव अक्षय है तो विज्ञान के अनुसार व्रह्माण्ड मे व्याप्त सम्पूर्ण शक्ति न कभी घट सकती है, न वढ सकती है और न ही नष्ट हो सकती है । वैज्ञानिक नयी शक्ति उत्पन्न नही करते अपितु वे द्रव्य मे सुषुप्त शक्ति को ही जागृत एव नियंत्रित करके उसका उपयोग करते है । अस्तु, व्रह्माण्ड के सारे क्रिया-कलाप शक्ति के ही विभिन्न रूपों से परिचालित है । यदि हम परमात्मा को विज्ञान की शव्दावली मे परमशक्ति या विश्व की सम्पूर्ण शक्ति मान ले तो भौतिकवाद और अध्यात्मवाद जा अन्तर लुप्त हो जाता है ।

प्रत्येक शताव्दी का मानव अपने युग के ज्ञान को ही सर्वोत्तम ज्ञान मानता हुआ परम्परागत ज्ञान की अवहेलना करता है किन्तु वह भूल जाता है कि इसी प्रकार आनेवाली शताव्दी मे उसका ज्ञान भी उपेक्षा ओर अवहेलना की वस्तु वन जायगा । हमारा आशय यह है कि जिस भौतिकवादी ज्ञान पर हम वीसवी शती मे गर्व कर रहे है, कौन जानता है कि इक्कीसवी शती मे यह अभिमान की वस्तु रहेगा या उपहास की !

अस्तु, शकराचार्य, कवीर, विवेकानन्द, अरविन्द, गाँधी, टैगोर जैसे साधको

और चिन्तकों की आस्था और भावना की आलोचना और निन्दा वही कर सकता है जो अपने-आपको सर्वज्ञ मानता हो या इस बात का दावा करता हो कि उसने ससार का अन्तिम सत्य जान लिया है। अन्यथा, आध्यात्मिकता के सूक्ष्म वोध और रहस्य-वाद की दिव्य अनुभूतियों को चाहे हम अपने लिए अस्वीकार्य, अव्यावहारिक एव अनावश्यक माने किन्तु जिन्होने इनकी उपलब्धि की है, उनकी सत्यता पर सदेह करना उनके साथ वहुत वड़ा अन्याय है।

दूसरी श्रेणी मे उन आलोचको के आक्षेप आते है जो कि रहस्यवाद की संभावना पर तो आपत्ति नही करते किन्तु महादेवी की रहस्यानुभूति की यथार्थता को अस्वीकार करते है। इन आलोचको के भी अलग-अलग मत है जो मुख्यतः तीन प्रकार के है— (१) महादेवी की रहस्यानुभूति यथार्थ रहस्यानुभूति न होकर उनकी किसी लौकिक अनुभूति का ही परिवर्तित रूप हैं। (२) महादेवी लौकिक प्रेम के क्षेत्र मे असफल हुईं, अतः उनका रहस्यवाद इस असफलता की ही पूर्त्तिमात्र हैं। (३) महादेवी लौकिक जीवन में प्रणय से वंचित रही अतः उनकी रहस्यानुभूति इस वचनाजन्य कुण्ठा का ही व्यक्त रूप है। वस्तुत. ये सब मत आलोचको की निजी कल्पना पर आधारित है, किसी ने भी कोई ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नही किया जिससे कि इन्हे स्वीकार किया जा सके। स्वयं महादेवी ने इन शकाओ और आक्षेपों का स्पष्टीकरण व निराकरण करते हुए दृढ़तापूर्वक कहा है—"यह तो पाठक की अपनी बात है। वह अपने मन मे इस मान्यता को लेकर चलता है कि इस युग मे कोई भी ऐसी स्त्री नही हो सकती जिसमे वासना और विलास की भावना न हो। वस वह यही निर्णय कर लेता है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध से यह निराशा हुई है। पर वात ऐसी नही किसी व्यक्ति के प्रति यह मन झुका ही नही, नही तो कोई बात थोडे ही थी। मैं सम्वन्धो के प्रति अनुदार नही हूँ। यदि किसी से ऐसे सम्बन्ध की भावना जगी होती तो मैं उसे अपना साथी वना ही लेती। समाज से या किसी से डर की वात नही थी।"[1] यहाँ महादेवी ने स्पष्ट ही इस शका का निराकरण कर दिया है कि उन्होने लौकिक जीवन मे किसी से प्रेम किया था, जिसमे वे निराश हुई होगी। इसी प्रकार यह पूछे जाने पर कि उनके जीवन मे कोई न कोई ऐसा व्यक्ति तो रहा ही होगा जिसके सामने उन्होंने आत्मसमर्पण किया होगा— उन्होंने स्पष्ट रूप मे उत्तर दिया है—"विरक्ति की भावना के साथ-साथ ही उस विराट के प्रति आत्म-समर्पण हो चुका था जो सदैव ही अखड है। आत्म समर्पण पूर्ण ही था। उसमे किसी व्यक्ति के लिए जगह रह ही नही गयी थी तो फिर कैसे होता? साथी चुनने की वात दो प्रकार से मन मे उठती है—एक तो ऐसा साथी जो शारीरिक वासना मे साथ दे सके और दूसरा ऐसा जो मानसिक स्तर पर साथ-साथ विचरण कर सके।

---

१. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व—शिवचंद्र नागर; पृ० ६५-६६।

शारीरिक वासना जैसी चीज का तो मैंने अनुभव ही नही किया और गृहस्थ वनने की इच्छा नही थी। रहा मानसिक स्तर का प्रश्न, उस स्तर पर आत्म-निवेदन में साथ देने वाला वह विराट व्यक्तित्व ही है। उसके जैसा छोड संसार मे साढ़े तीन हाथ का व्यक्ति और कौन मिल सकता था? ससार में किसी को भी वात्सल्य के अतिरिक्त और कुछ न दे सकी। डा० (पति) कभी वीमार हो जाते है तो मैं उनकी सेवा-सुश्रुपा कर सकती हूँ पर उसमे संवेदना और वात्सल्य की ही भावना होगी।"[२]

अस्तु, महादेवी के उपर्युक्त शब्द इस शका का भलीभाँति निर्मूलन कर देते है कि उनकी रहस्यानुभूति के मूल मे लौकिक प्रेम की अनुभूति छिपी हुई है। पर इस स्थिति मे क्या यह मान लिया जाय कि उनका रहस्यवाद लौकिक प्रणय से वंचित रहने के कारण उत्पन्न कुण्ठा का परिणाम है? इस सम्वन्ध में उनके वैवाहिक सम्वन्ध पर भी विचार किया जा सकता है। महादेवी का विवाह नौ वर्ष की आयु मे ही उनके माता-पिता के द्वारा कर दिया गया था। उस समय उन्हें इसका जरा भी वोध नही था। विवाह के अनन्तर भी वे पिता के घर ही रही और शिक्षा प्राप्त करती रही। जव उन्होंने इटर कर लिया तो इनके मन में स्पष्ट हो गया कि उनकी रुचि एवं प्रवृत्ति गार्हस्थ्य जीवन मे नहीं है, अतः उन्होंने भिक्षुणी वन जाने का विचार किया। इस सम्वन्ध मे वे स्वय वताती हैं—"जव मैं नौ वर्ष की थी तभी मेरा विवाह कर दिया था।.... मुझे भी कुछ याद नहीं विवाह कव हुआ था! क्या हुआ....इटरमीडियेट के वाद डाक्टर (इनके पति) भी एम० वी० वी० एस० हो गये थे। अव भेजने की वात उठी। अव तक मन मे उदात्त भावना आ गई थी, भिक्षुणी हो जाने की वात मन में उठी। मैंने जाने से मना कर दिया।.... विवाह हो गया होगा पर मैं नही जानती। मन तो पत्नीत्व रूप मे नही झुका। वी० ए० भी कर लिया, अव किसी तरह छुटकारा न था। घर पर सवने कहा पर मैंने तो भिक्षुणी होने की वात सोचली थी। डाक्टर (पति) यहाँ आये। उनसे मैंने यही कह दी कि आप से मेरा विवाह हुआ होगा—पर मैं नही जानती और न मैं मानती ही हूँ कि मेरा विवाह हुआ है क्योंकि मन नहीं मानता।.... डाक्टर भी वोले; अच्छा भाई भिक्षुणी न होओ, भिक्षुणी होकर माँगती फिरोगी, यह अच्छा न लगेगा। जैसे तुम्हारा मन करे वैसे रहो।"[३]

यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि विवाह-सम्वन्धो का परित्याग उन्होंने किसी वाह्य कारण से या पति से अनवन के कारण नही किया अपितु उसका सम्वन्ध उनके मन की जन्मजात विरागमूलक प्रवृत्तियो से है। जैसा कि उन्होने स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया है—'....आज भी भगवा वस्त्र वहुत अच्छे लगते हैं। मेरी छोटी वहिन है वह गृहस्थी

---

२. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व—शिवचंद; पृ० ९४।
३. वही; पृ० ८९, ९२।

और चिन्तको की आस्था और भावना की आलोचना और निन्दा वही कर सकता है जो अपने-आपको सर्वज्ञ मानता हो या इस बात का दावा करता हो कि उसने ससार का अन्तिम सत्य जान लिया है। अन्यथा, आध्यात्मिकता के सूक्ष्म बोध और रहस्य-वाद की दिव्य अनुभूतियो को चाहे हम अपने लिए अस्वीकार्य, अव्यावहारिक एव अनावश्यक माने किन्तु जिन्होने इनकी उपलब्धि की है, उनकी सत्यता पर संदेह करना उनके साथ बहुत बडा अन्याय है।

दूसरी श्रेणी मे उन आलोचकों के आक्षेप आते है जो कि रहस्यवाद की संभावना पर तो आपत्ति नही करते किन्तु महादेवी की रहस्यानुभूति की यथार्थता को अस्वीकार करते है। इन आलोचको के भी अलग-अलग मत हैं जो मुख्यत. तीन प्रकार के है— (१) महादेवी की रहस्यानुभूति यथार्थ रहस्यानुभूति न होकर उनकी किसी लौकिक अनुभूति का ही परिवर्तित रूप है। (२) महादेवी लौकिक प्रेम के क्षेत्र मे असफल हुई, अत. उनका रहस्यवाद इस असफलता की ही पूर्तिमात्र है। (३) महादेवी लौकिक जीवन मे प्रणय से वंचित रही अतः उनकी रहस्यानुभूति इस वचनाजन्य कुण्ठा का ही व्यक्त रूप है। वस्तुत. ये सब मत आलोचको की निजी कल्पना पर आधारित है, किसी ने भी कोई ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नही किया जिससे कि इन्हे स्वीकार किया जा सके। स्वय महादेवी ने इन शंकाओ और आक्षेपों का स्पष्टीकरण व निराकरण करते हुए दृढ़तापूर्वक कहा है—"यह तो पाठक की अपनी बात है। वह अपने मन मे इस मान्यता को लेकर चलता है कि इस युग मे कोई भी ऐसी स्त्री नही हो सकती जिसमे वासना और विलास की भावना न हो। बस वह यही निर्णय कर लेता है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध से यह निराशा हुई है। पर बात ऐसी नही किसी व्यक्ति के प्रति यह मन झुका ही नही, नही तो कोई बात थोडे ही थी। मैं सम्बन्धो के प्रति अनुदार नही हूँ। यदि किसी से ऐसे सम्बन्ध की भावना जगी होती तो मैं उसे अपना साथी बना ही लेती। समाज से या किसी से डर की बात नही थी।"[1] यहाँ महादेवी ने स्पष्ट ही इस शका का निराकरण कर दिया है कि उन्होने लौकिक जीवन मे किसी से प्रेम किया था, जिसमे वे निराश हुई होगी। इसी प्रकार यह पूछे जाने पर कि उनके जीवन मे कोई न कोई ऐसा व्यक्ति तो रहा ही होगा जिसके सामने उन्होने आत्मसमर्पण किया होगा— उन्होने स्पष्ट रूप मे उत्तर दिया है—"विरक्ति की भावना के साथ-साथ ही उस विराट के प्रति आत्म-समर्पण हो चुका था जो सदैव ही अखड है। आत्म समर्पण पूर्ण ही था। उसमे किसी व्यक्ति के लिए जगह रह ही नही गयी थी तो फिर कैसे होता ? साथी चुनने की वात दो प्रकार से मन में उठती है—एक तो ऐसा साथी जो शारीरिक वासना मे साथ दे सके और दूसरा ऐसा जो मानसिक स्तर पर साथ-साथ विचरण कर सके।

---

१. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व—शिवचद्र नागर ; पृ० ९५-९६।

शारीरिक वासना जैसी चीज का तो मैंने अनुभव ही नही किया और गृहस्थ वनने की इच्छा नही थी। रहा मानसिक स्तर का प्रश्न, उस स्तर पर आत्म-निवेदन मे साथ देने वाला वह विराट व्यक्तित्व ही है। उसके जैसा छोड ससार में साडे तीन हाथ का व्यक्ति और कौन मिल सकता था ? संसार मे किसी को भी वात्सल्य के अतिरिक्त और कुछ न दे सकी। डा० (पति) कभी वीमार हो जाते है तो मैं उनकी सेवा-सुश्रुषा कर सकती हूँ पर उसमे संवेदना और वात्सल्य की ही भावना होगी।"[२]

अस्तु, महादेवी के उपर्युक्त शब्द इस शंका का भलीभाँति निर्मूलन कर देते है कि उनकी रहस्यानुभूति के मूल मे लौकिक प्रेम की अनुभूति छिपी हुई है। पर इस स्थिति मे क्या यह मान लिया जाय कि उनका रहस्यवाद लौकिक प्रणय से वचित रहने के कारण उत्पन्न कुण्ठा का परिणाम है ? इस सम्वन्ध मे उनके वैवाहिक सम्वन्ध पर भी विचार किया जा सकता है। महादेवी का विवाह नौ वर्ष की आयु मे ही उनके माता-पिता के द्वारा कर दिया गया था। उस समय उन्हे इसका जरा भी वोध नही था। विवाह के अनन्तर भी वे पिता के घर ही रही और शिक्षा प्राप्त करती रही। जव उन्होंने इटर कर लिया तो इनके मन मे स्पष्ट हो गया कि उनकी रुचि एव प्रवृत्ति गार्हस्थ्य जीवन मे नही है, अतः उन्होंने भिक्षुणी वन जाने का विचार किया। इस सम्वन्ध मे वे स्वयं वताती है—"जव मैं नौ वर्ष की थी तभी मेरा विवाह कर दिया था।···· मुझे भी कुछ याद नही विवाह कव हुआ था ! क्या हुआ····इटरमीडियेट के वाद डाक्टर (इनके पति) भी एम० वी० वी० एस० हो गये थे। अव भेजने की वात उठी। अव तक मन मे उदात्त भावना आ गई थी, भिक्षुणी हो जाने की वात मन मे उठी। मैंने जाने से मना कर दिया।···· विवाह हो गया होगा पर मैं नही जानती। मन तो पत्नीत्व रूप मे नही झुका। वी० ए० भी कर लिया, अव किसी तरह छुटकारा न था। घर पर सवने कहा पर मैंने तो भिक्षुणी होने की वात सोचली थी। डाक्टर (पति) यहाँ आये। उनसे मैंने यही कह दी कि आप से मेरा विवाह हुआ होगा—पर मैं नही जानती और न मैं मानती ही हूँ कि मेरा विवाह हुआ है क्योकि मन नही मानता।···· डाक्टर भी वोले ; अच्छा भाई भिक्षुणी न होओ, भिक्षुणी होकर माँगती फिरोगी, यह अच्छा न लगेगा। जैसे तुम्हारा मन करे वैसे रहो।"[३]

यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि विवाह-सम्वन्धो का परित्याग उन्होंने किसी वाह्य कारण से या पति से अनवन के कारण नही किया अपितु उसका सम्वन्ध उनके मन की जन्मजात विरागमूलक प्रवृत्तियो से है। जैसा कि उन्होंने स्पष्ट रूप मे स्वीकार किया है— "····आज भी भगवा वस्त्र वहुत अच्छे लगते है। मेरी छोटी वहिन है वह गृहस्थी

---

२. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व—शिवचंद ; पृ० ६४।

३. वही ; पृ० ८६, ६२।

मे बहुत सुखी है। उसके सात-आठ बच्चे हैं, पर मुझे शुरू से ही यह सब अच्छा नही लगता था।' आरभ से ही उनमें गृहस्थी के प्रति अरुचि रही है। विवाह सम्बन्धो के परित्याग के बाद भी उनका उनके पति से वही सम्बन्ध है जो उनका किसी भी अन्य व्यक्ति से हो सकता है; महादेवी के शब्दों मे उनसे 'बहुत अच्छे सम्बन्ध है। कभी-कभी पत्र भी आता जाता रहता है। जब इलाहाबाद आते है तो मिलकर अवश्य जाते है।'[४] इतना ही नही, जैसा कि उन्होने नागरजी को बताया—अपने पति के दूसरे विवाह के लिए उनके उपयुक्त लडकी को समझा-बुझाकर इन्होने तैयार किया पर वे दूसरा विवाह करने को तैयार नही हुए। न केवल महादेवी ने अपितु उनके पति ने भी दूसरा विवाह नही किया। ये तथ्य इस बात को प्रमाणित करते है कि महादेवी का दाम्पत्य जीवन से मुक्त होना किसी भी प्रकार की पारस्परिक कटुता या अनबन का परिणाम नही है। उनके सम्बन्ध अब भी पति से तथा दूसरो से सहज है।

ऐसी स्थिति मे यह कैसे स्वीकार किया जाय कि उनका रहस्यवाद किसी कुण्ठा का परिणाम है! कुण्ठा तब होती है जब कोई वस्तु चाही जाय और वह न मिले—किन्तु जहाँ चाह ही नही है; मिली हुई वस्तु को ही जान बूझकर ठुकराया जाय, वहाँ कुण्ठा का प्रादुर्भाव सभव नही। वस्तुत. महादेवी की रहस्यानुभूति किसी लौकिक प्रेम का आवरण, उसकी प्रतिक्रिया या उससे उत्पन्न कुण्ठा का परिणाम नही है अपितु उसका मूलकारण उनकी जन्मजात वैराग्यमूलक वृत्तियाँ, सूक्ष्म सत्ता के प्रति विश्वास, अध्यात्म के प्रति पूर्ण आस्था ही हैं। वे आधुनिक होती हुई भी इतनी भौतिकतावादी नहीं है कि परम सत्ता के अस्तित्व मे अविश्वास करने लग जायँ। उनकी विचार-धारा तो यह है—'अध्यात्म के सूक्ष्म और विज्ञान के स्थूल का समन्वय जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने मे भी प्रयुक्त हो सकता है।'[५] इसीलिए वे नि.सकोच स्वीकार करती है—'इस बुद्धिवाद के युग मे भी मुझे जिस अध्यात्म की आवश्यकता है वह किसी रूढि, धर्म या सम्प्रदायगत न होकर उस सूक्ष्मसत्ता की परिभाषा है जो व्यष्टि सप्राणता मे समष्टिगत एक प्राणता का आभास देती है, इस प्रकार वह मेरे सम्पूर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है जो जीवन के सब रूपों के प्रति मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है।'[६] इसी प्रकार एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—'मेरे अस्वस्थ शरीर और व्यस्त जीवन को जब कुछ क्षण मिल जाते है तब वह एक अमर चेतना और व्यापक करुणा से तादात्म्य करके अपने आगे बढने की शक्ति प्राप्त करता है....।'[७]

इन सब युक्तियो से भली-भाँति स्पष्ट है कि महादेवी की काव्यानुभूतियाँ उनके जीवन की यथार्थ आध्यात्मिक अनुभूतियो पर आधारित है। भले ही यह बात कुछ

---

४. महादेवी : विचार और व्यक्तित्व; पृ० ६१।

५-७. 'आधुनिक काव्य' और 'यामा' की भूमिका से।

लोगो को अपवाद या विचित्र प्रतीत हो या जिन लोगो की आँखों पर सदा लौकिकता या भौतिकता के रग का ही चश्मा चढ़ा रहता है उन्हे महादेवी की अनुभूतियो मे भी वही रग दिखाई दे तो कोई आश्चर्य की बात नही, किन्तु यह एक तथ्य है कि महादेवी युग और समाज की सामान्य प्रवृत्तियो के विपरीत दिशा मे अग्रसर होने वाली अध्यात्म मार्ग की पथिक है ; उनकी काव्य-साधना अध्यात्म-साधना का ही व्यक्त रूप है। इस युग-विरोधी दिशा मे अग्रसर होने के कारण उन्हे बहुत-कुछ सुनना पडा और सहन करना पडा पर वे इससे कभी विचलित नही हुईं। इसीलिए उन्होंने लिखा है—'मेरी दिशा और मेरा पथ एक रहा है, केवल इतना ही नही वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये है।'[८]

अस्तु, महादेवी की स्पष्टोक्तियो को ध्यान मे रखते हुए उपर्युक्त शकाओं और आक्षेपो को हम निराधार एव निरर्थक मानते हैं। वे आलोचकों की अपनी दृष्टि और निजी कल्पना की ही उपज है—महादेवी की रहस्यानुभूति से उनका कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। वस्तुत. प्रारंभ से लेकर अब तक वे उत्तरोत्तर जिस विश्वास एवं साहस से इस ओर अग्रसर होती गयी है, वह इस बात का प्रमाण है कि उनका रहस्यवाद न तो कृत्रिम है, न उधार लिया हुआ और न ही आरोपित। युग और समाज के आघातो को केवल सच्चा, शान्त और गभीर रहस्यवादी ही सहन कर सकता है, वही निरन्तर युग-युगो तक अविचलित भाव से अपने लक्ष्य और अपनी दिशा की ओर अग्रसर रह सकता है—महादेवी ने ऐसा ही कर दिखाया है। अतः हमे इसमे कोई संदेह नही कि उनकी रहस्यानुभूति शुद्ध एवं यथार्थ रहस्यानुभूति है यह दूसरी बात है कि उसकी अभिव्यक्ति लौकिक शब्दावली मे हुई है, और ऐसा ही होना सभव था।

● **महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति की व्यंजना**—महादेवी के काव्य मे रहस्यानुभूति की व्यजना सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, उनकी प्रथम काव्य-रचना 'नीहार' के प्रथम गीत से लेकर अब तक प्रकाशित रचनाओ मे अन्तिम काव्य-ग्रथ 'दीपशिखा' के अंतिम गीत तक रहस्यानुभूति या दिव्य प्रणयानुभूति अविच्छिन्न रूप मे व्यक्त हुई है—अतः उनके काव्य का मूल भाव या स्थायी भाव रहस्यानुभव को ही माना जा सकता है। रस-सैद्धान्तिक दृष्टि से रहस्यवाद का विवेचन-विश्लेषण कदाचित् किसी ने नही किया है,—अत इसका निर्णय करना तो कठिन है कि उनके काव्य को शृंगार रस में स्थान दिया जाय या शान्त रस मे अथवा उज्ज्वल रस मे ? इस विषय पर हम अन्यत्र—महादेवी के काव्य का रस-सैद्धान्तिक मूल्याकन करते समय—विचार करेंगे, यहाँ केवल रहस्यवाद सम्बन्धी परम्परागत धारणाओ के आधार पर ही उनकी रहस्यानुभूति का विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास किया जायगा।

---

८. 'आधुनिक काव्य' और 'यामा' की भूमिका से।

जिज्ञासा—जैसा कि पिछले अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है—विकास-क्रम की दृष्टि से रहस्यानुभूति की पाँच अवस्थाएँ मानी जा सकती है—(१) जिज्ञासा, (२) आस्था, (३) अद्वैत भावना, (४) विरहानुभूति और (५) मिलन की अनुभूति। इनमे से प्रथम अवस्था—जिज्ञासा का अस्तित्व तो महादेवी के काव्य मे कही दृष्टिगोचर नही होता ; कदाचित् जीवन के आरभ मे उनमे परमात्मा के प्रति जिज्ञासा की स्थिति रही होगी पर काव्य-रचना के समय तक यह जिज्ञासा, अडिग आस्था मे परिवर्तित हो चुकी थी। जिज्ञासा मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति पर निर्भर रहती है, जब तक किसी भी वस्तु या विषय का ज्ञान हमारे मन मे अस्पष्ट रहता है तभी तक उसके प्रति जिज्ञासा का भाव रहता है, जब हमारा ज्ञान और बोध स्पष्ट हो जाता है तो उसके प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण बन जाता है जो रागात्मक या विरागात्मक भाव में परिणत हो जाता है। महादेवी अपने काव्य-जीवन के आरंभ मे ही ऐसी स्थिति मे दिखाई देती है जब कि अलौकिक सत्ता के प्रति उनका दृष्टिकोण एव उसका बोध एक गंभीर रागात्मक भाव मे परिणत हो चुका था—अतः उनके काव्य मे भी तदनुरूप स्थिति का होना स्वाभाविक है।

आस्था—रहस्यानुभूति की दूसरी अवस्था—आस्था—परमात्मा के अस्तित्व मे सुदृढ़ विश्वास—की है। इसकी अभिव्यक्ति महादेवी के काव्य मे पूर्ण गभीरता के साथ हुई है ; यथा .

> **छिपा है जननी का अस्तित्व**
> **रुदन में शिशु के अर्थ-विहीन**
> **मिलेगा चित्रकार का ज्ञान,**
> **चित्र की जड़ता में लीन!**

जिस प्रकार चित्र का अस्तित्व ही उसके रचयिता की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है, उसी प्रकार यह रग-बिरगी सृष्टि ही स्रष्टा के अस्तित्व को प्रमाणित कर देती है—यह युक्ति भले ही किसी शुष्क तार्किक मन को तोष न दे पाये किन्तु इससे कवयित्री की दृढ़ आस्था का बोध अवश्य होता है।

अद्वैतभावना—आस्था की अगली स्थिति अद्वैत भावना की है ; अर्थात् साधक की साध्य से एकात्मकता की अनुभूति रहस्यानुभूति की मूलाधार है। महादेवी की दार्शनिक मान्यताओ का विवेचन करते हुए पीछे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उनमे भारतीय अद्वैतवाद के सभी तत्त्व उपलब्ध होते हैं ; पर रहस्यवादी के लिए केवल दार्शनिक तत्त्वो पर विश्वास होना ही पर्याप्त नही है अपितु उनकी भावात्मक अनुभूति भी आवश्यक है। कवयित्री ने आत्मा और परमात्मा की अद्वैतता का निरूपण प्रायः अनुभूतिपूर्ण शब्दो में किया है :

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मै स्वर-संगम,
तू असीम में सीमा का भ्रम,
काया-छाया में रहस्यमय,
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या ?

यहाँ जिस धारणा को व्यक्त किया गया हैं वह अद्वैतवादी दर्शन के सर्वथा अनुकूल है ; आत्मा शरीर की सीमाओ मे आवद्ध है जब कि परमात्मा असीम है, मुक्त है ; अन्यथा दोनो एक ही है ।

पर यह अद्वैत स्थिति द्वैत से सर्वथा शून्य भी नही है, क्योंकि :

मै तुमसे हूँ एक एक है
जैसे रश्मि प्रकाश !
मैं तुमसे हूँ भिन्न भिन्न ज्यों
घन से तड़ित् विलास !

आत्मा-परमात्मा मूलतः एवं अन्तत. एक है, पर बीच मे एक ऐसी स्थिति भी आती है जव कि दोनो पृथक् हो जाते है ; यह पृथकता वैसी ही है जैसी कि विद्युत् की घन से होती है ; अर्थात् जव तक आत्मा शरीर के बन्धन मे बँधी हुई परमात्मा से वियुक्त हैं तव तक वास्तविक पृथकता न सही, पृथकता का आभास तो हो ही सकता है।

कदाचित् ज्यो-ज्यो कवयित्री रहस्य-पथ पर अग्रसर होती जाती है त्यो-त्यो उनकी अद्वैत भावना भी गंभीरतर होती जाती हैं—इसलिए जहाँ प्रारम्भिक रचनाओ में वह कभी-कभी अद्वैत के साथ-साथ द्वैत भाव से ग्रस्त होती हुई दिखाई देती है वहाँ 'नीरजा' तक पहुँचते-पहुँचते वह प्रत्येक स्थिति मे अपने-आपको ब्रह्म से अभिन्न देखती है ·

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पद चिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में ।

यहाँ अद्वैत की अनुभूति केवल इसी जीवन तक सीमित नही है अपितु वह जन्म जन्मान्तर तक चलने वाली अविच्छिन्न धारा के रूप मे दिखाई देती है। सृष्टि के आदि से लेकर प्रलय के अन्त तक, यहाँ तक कि जब सृष्टि का सृजन भी न हुआ था, उस

समय भी साधिका की आत्मा परमात्मा के रूप में विद्यमान रही है ; दूसरे शब्दो मे आत्मा और परमात्मा का अद्वैत सम्बन्ध शाश्वत, सनातन और चिर स्थायी है ।

अस्तु, इसमे कोई सन्देह नही कि महादेवी की अद्वैत भावना अन्तत' अत्यन्त सुदृढ, गभीर एवं विकसित रूप को प्राप्त कर लेती है । उनकी यह भावना कोरे दार्शनिक ज्ञान या तत्त्व-चिन्तन पर आधारित नही है अपितु उसमे हृदय का भावात्मक योग भी परिलक्षित होता है । इसीलिए कहा जा सकता है कि उनकी रहस्यानुभूति एक अत्यन्त सुदृढ आधार पर अवस्थित है क्योकि अद्वैत भावना की गभीरता ही रहस्यानुभूति को सुदृढता प्रदान करती है ।

प्रगयानुभूति : प्रारंभिक संयोग—लौकिक प्रणय के प्रतिकूल रहस्यानुभूति का आरम्भ प्रायः विरहानुभूतियो से होता है, सयोग की अनुभूति तो साधक को सिद्धि प्राप्त होने के अनन्तर ही प्राप्त होती है, पर महादेवी पर यह बात लागू नही होती । उनके काव्य से प्रतीत होता है कि उनके दिव्य प्रेम का प्रारभ ही प्रारभिक संयोग से हुआ । यद्यपि यह कहना तो कठिन है कि यह सयोग किस रूप मे हुआ—दिवा-स्वप्न के रूप मे या रात्रि के स्वप्न मे अथवा किसी अन्य रूप मे ; पर इसमे कोई संदेह नही कि उनमे प्रणयानुभूतियो का स्फुरण प्रियतम के साक्षात्कार से ही हुआ है । 'नीहार' की प्रथम कविता मे ही इस साक्षात्कार की घटना या अनुभूति का विवरण साकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है, देखिये :

कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधु मदिरा का मोल'
झटक जाता था पागल वात
धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार !

उपर्युक्त अश के आरंभ मे कली और मधुमास के माध्यम से कवयित्री ने अपनी ही स्थिति स्पष्ट की है । उस समय कली से वसन्त उसके यौवन-माधुर्य का मोल पूछ रहा था अर्थात् कवयित्री अपनी युवावस्था के आरभ मे थी, जबकि युवक उसके सौन्दर्य एवं यौवन के प्रति आकृष्ट हो रहे थे , पर 'वात' की तरह कोई उन्मुक्त व्यक्ति उसके जीवन मे आकर उसके आँसुओ के हार को झटक कर धूल मे मिला चुका था । निराशा की ऐसी ही स्थिति मे जीवन मे दिव्य प्रेम का मधुर संगीत सचार करते हुए प्रियतम इस पार आये !

प्रथम दर्शन के समय वे कैसे लग रहे थे—उनके दर्शन से किस प्रकार की अनुभूति हो रही थी ? एक ओर उनकी स्नेह व सहानुभूति से परिपूर्ण दृष्टि कवयित्री

के मन मे असंख्य नये स्वप्नों को जन्म दे रही थी तो दूसरी ओर उनके ओठो की मुस्कराहट उसके हृदय मे उस मधुर पीडा की सृष्टि कर रही थी, जिसे 'प्रेम' कहते है ?[१]

इस दिव्य प्रेम का संचार होते ही वह पिछले राग—सासारिक सम्बन्धों को भूलने लगी। लौकिक भावो से वह ऊपर उठने लगी, यद्यपि प्रारभ मे वह अध्यात्म की ओर अग्रसर होती हुई अनेक प्रकार की भूले करती थी, पर करुणेश ने उस पर कभी क्रोध नही किया, लगता था मानो जिस प्रकार बच्चे की भोली भूलो पर माता-पिता का प्यार उमड़ता हैं, उसी प्रकार कवयित्री की भूलों पर भी प्रियतम का प्यार और अधिक उमडता था ![२]

यह है प्रियतम से सम्पर्क की प्रारभिक कहानी ! पर लगता हैं यह सम्पर्क जीवन मे एक ही बार होकर रह गया ! लगता हैं प्रियतम केवल एक बार प्रणय-वेदना जागृत करने के लिए ही इस जीवन मे आये थे, उसके अनन्तर तो केवल प्रतीक्षा—और प्रतीक्षा ही रह गयी :

> गए तब से कितने युग बीत
> हुए कितने दीपक निर्वाण,
> नहीं पर मैने पाया सीख
> तुम्हारा सा मन-मोहन गान !

मिलन की उस प्रथम अनुभूति के अनन्तर न जाने कितने युग बीत गये है—उसके पश्चात् न जाने कितनी संध्याएँ आयी। कितनी बार प्रणयिनी ने प्रतीक्षा के दीप जलाए, और इस प्रकार न जाने कितने दीप जल-जल कर बुझ गये है ; पर वे फिर नही आये !

'नीहार' की दूसरी कविता मे भी मिलन की इसी अनुभूति को और भी अधिक मार्मिक शब्दो मे दोहराया गया है :

> मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से
> स्वप्न लोक के से आह्वान,

---

१. बिछाती थी सपोंन के जाल, तुम्हारी वह करुणा की कोर ;
   गई वह अधरों की मुस्कान, मुझे मधुमय पीड़ा में बोर।

२. भूलती थी मैं सीखे राग,
      बिछलते थे कर बारम्बार,
   तुम्हें तब आता था करुणेश !
      उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान !
चल चितवन के दूत सुना,
उनके, पल में रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलकों में
मचा गए क्या क्या उत्पात !

और बस उसी दिन ने उनके जीवन मे प्रणय के उन्माद, विरह की व्याकुलता, पीडा के साम्राज्य एवं रुदन की मूक व्यथा का सचार हो गया ·

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ है प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले !

पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !

अस्तु, प्रिय का स्वप्न मे दर्शन ही महादेवी की प्रणयानुभूति—रहस्यानुभूति के उद्‌बोधन का मूल आधार है। इस स्वप्न की चर्चा आगे और भी कई कविताओं मे उन्होने की है .

कन कन में जब छाई थी
वह नवयौवन की लाली,
मै निर्धन तब आई ले,
सपनों से भर कर डाली !
× × ×
उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते !
आँखो के कोष हुए हैं
मोती बरसा कर रीते !

कदाचित् कोई उनके इस 'सुनहरे सपने' को या प्रियतम से मिलन की अनुभूति को एक सामान्य सपना मात्र कह कर गौण करना चाहे उसे आध्यात्मिक अनुभूति न

मान कर अचेतन मन की वासना या कल्पना मात्र बता कर उसके महत्त्व को न्यून करना चाहे, पर महादेवी इसे स्वीकार नही करती :

> कैसे कहती हो सपना है
> अलि ! उस मूक मिलन की बात !
> भरे हुए अब तक फूलों में
> मेरे आँसू उनके हास !

अब भी उन्हे प्रकृति के सौन्दर्य मे उनकी मुस्कराहट एव अपनी प्रणय-वेदना की छाया दिखाई पड़ती है ; आज भी उनके मन मे प्रथम मिलन-जन्य अनुभूति का बोध और आस्वाद विद्यमान है—अत. वे कैसे मान लें कि यह सपना कोरा सपना ही था।

इतना ही नही, उन्हे तो आशा है कि वह सपना फिर उनके जीवन मे आयेगा ; प्रभु उन्हे पुन. स्वप्न में दर्शन देंगे ; पर वे नही चाहती कि उस बार वह स्वप्न-मिलन क्षणिक सिद्ध हो ; इसलिए अपनी अन्तरात्मा को निर्देश देती हैं कि यदि प्रभु पुन. इस जीवन मे आयें तो तुम निद्रा से चिर निद्रा (मृत्यु) मे लीन हो जाना, जिससे-कि उनका स्वप्न-मिलन स्थायी मिलन मे परिणत हो जाय :

> मेरे जीवन की जागृति !
> देखो फिर भूल न जाना,
> जो वे सपना बन आवें
> तुम चिर निद्रा बन जाना

और जब चिर-प्रतीक्षा के अनन्तर भी वह इस ओर नही आता तो वे कहती है—

> फिर भी इस पार न आवे
> जो मेरा नाविक निर्मम,
> सपनो में बाँध डुबाना
> मेरा छोटा सा जीवन !

अस्तु, प्रियतम का पुन साक्षात्कार हो या न हो, पर प्रथम मिलन के स्वप्न को ही प्रणयिनी अपने समस्त जीवन का केन्द्र बना लेती हैं ; वह उनके समस्त प्रणयलोक का आधार है, विरह-वेदना का स्रोत है, और पुनर्मिलन का विश्वास है। प्रियतम के न मिलने पर भी वे उस सपने के सहारे ही अपने शेष जीवन को व्यतीत करती हुई, अंत तक उसे अपने हृदय से लगाये हुए इस संसार से विदा हो जाना चाहती हैं। वस्तुतः

वह स्वप्न-मिलन की अनुभूति ही उनके हृदय की अथाह अनुभूति एवं अक्षय निधि वन गयी है जिसके वल पर वे जीवन और मृत्यु ; विरह और मिलन के वीच की दूरी को पार कर लेगी। महादेवी की अडिग आस्था, अटूट विश्वास एवं अविच्छिन्न रहस्यानुभूति का अक्षय वल भी इसी में निहित है। जिसने उसे कभी न देखा हो वह उसके अस्तित्व के प्रति कभी जिज्ञासु, कभी शंकालु और कभी-कभी विश्वासी हो सकता है ; किन्तु एक वार जिसने उसका साक्षात्कार किसी न किसी रूप मे कर लिया हो वह उसे फिर कभी नही भूल सकता।

विरहानुभूति—महादेवी का अलौकिक प्रणय मिलन की कहानी से आरम्भ होता है किन्तु वह प्रारम्भिक मिलन इतना क्षणिक था कि वह सदा के लिए विरह मे परिणत हो गया। अभी कवयित्री के जीवन का शैशवकाल पूरी तरह वीत नही पाया था, यौवन की मधुरिमा का किंचित् उन्मेष मात्र हुआ था ; वह प्रणय और विरह की भाषा को भली-भाँति समझने के योग्य भी न हुई थी कि प्रियतम की मात्र एक चितवन ने उसे विरह-वेदना का स्थायी साम्राज्य प्रदान कर दिया :

इन ललचाई पलकों पर
पहरा जव था व्रीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला
उसे चितवन ने पीड़ा का।

और तव से वह अपने इस सूने राज्य की एक मात्र साम्राज्ञी है—इस राज्य का अधिनायक दूर है, पर अपने जीवन का दीप जलाये वह उसी की मौन प्रतीक्षा में लीन है :

अपने इस सूनेपन की,
मै हूँ रानी मतवाली,
प्राणों का दीप जला कर
करती रहती दीवाली !

इस प्रकार महादेवी का यह आध्यात्मिक विरह प्रारम्भ से ही अपनी व्यापकता एव गम्भीरता में परिपूर्ण दिखाई पडता है। वह कवयित्री के जीवन मे वून्द-वून्द संचित नही होता अपितु एकाएक उमड पड़ने वाले वादलो की भाँति वरस कर एक दीर्घ एवं विस्तृत सागर मे परिणत हो जाता है—इसलिए उसमे भावनाओ का क्रमिक उतार-चढ़ाव या वेदना का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर नही होता। पर इसका अर्थ यह भी नही है कि वह सदा-सर्वदा शान्त ही रहता है, उसमे कभी लहरे नही उठती, तूफान नही आता या वह लोल-तरगित नही होता। वस्तुतः प्रणय की सहज प्रेरणा से, विरह-

वेदना की सहज अनुभूति से किसी भी सहृदय में जिन भावानुभूतियों का उद्वेलन एवं सचार सम्भव है, वे प्राय सभी महादेवी की इन विरहानुभूतियो मे दृष्टिगोचर होगी।

भारतीय काम-शास्त्रियो एव काव्य-शास्त्रकारो ने प्रणय-वेदना का विश्लेपण करते हुए उसकी दस दशाओ का निरूपण किया है, जो ये है—(१) अभिलाषा, (२) चिन्ता, (३) स्मृति, (४) गुण-कथन, (५) उद्वेग, (६) प्रलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जडता एव (१०) मरण। यद्यपि ठीक इसी क्रम से इन्ही रूपो मे महादेवी ने विरह-वेदना की अभिव्यक्ति नही की क्योकि एक तो उनकी वेदना शुद्ध लौकिक न होकर आध्यात्मिक है और दूसरे उन्होने अपनी अनुभूतियो के निरूपण मे कही भी काव्य-शास्त्रीय आधार ग्रहण नही किया है ; फिर भी इनमे से इनके भावदशाओ के मार्मिक उदाहरण सहज ही उनके काव्य मे उपलब्ध होते हैं। यहाँ कतिपय उद्धरणो के आधार पर इसे स्पष्ट किया जाता है—

अभिलाषा प्रेम के दोनो पक्षो—सयोग और वियोग की मध्यवर्ती सूत्र है जिसमे सभी अनुभूतियाँ पुष्पावलियो की भाँति ग्रथित होकर प्रणय के परिपूर्ण हार का रूप प्राप्त कर लेती है। सयोग मे प्रियतम और प्रेयसी के मिलन की अभिलाषा कभी भी पूरी नही होती, मिलकर भी मिलने की चाह सदा वनी रहती है—वियोग मे तो कहना ही क्या! जीवन की सभी अभिलाषायें विरही के लिए एक ही अभिलापा मे केन्द्रित हो जाती है, जीवन के सारे अभाव, सारे सुख-दु.ख, सभी आमोद-प्रमोद सिमट कर एक ही इच्छा के साथ जुड जाते है! वह इच्छा है—प्रिय के मिलन की इच्छा! प्रेम लौकिक हो या अलौकिक, इससे कोई अन्तर नही पडता। जहाँ आध्यात्मिक प्रेम मार्ग के पथिक कवीर को प्रिय-दर्शन पाने की लालसा इतना अधीर, आतुर एव विकल वना देती है कि वे वेदना से विवश, पीड़ा से विह्वल एव व्यथा से करुण हो उठते हैं[1] तो वहाँ स्वच्छन्द प्रेम मार्गी वोधा के हृदय मे तो 'कव मिलेगे ? कब मिलेगे ?' की चाह ही निरन्तर अग्नि की भाँति प्रज्ज्वलित रहती हुई उनके प्राणो को दग्ध करती रहती

---

१. हौ वलियाँ कव देखौंगी तोहि।
अहनिस आतुर दरसन कारिन ऐसी व्यापै मोहि।
नैन हमारे तुम्हकूँ चाहैं रती न मानैं हारि।
विरह अगिन तन अधिक जरावै, ऐसा लेहू विचारि।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी काचें भाँडे नीर।
वहुत दिनन के विछुरे माधो, मन नही वाँधै धीर।
देह छता तुम्हे मिलहु कृपा करि आरतिवंत कवीर।

—कवीर ग्रन्थावली

है ।[1] महादेवी ने भी इसी मिलन-अभिलाषा से उत्पन्न व्यथा को बार-बार अश्रुसिक्त शब्दावली मे व्यक्त किया है :

> अलि कैसे उनको पाऊँ
> वे आँसू बन कर मेरे इस कारण ढुल-ढुल जाते,
> इन पलकों के बन्धन में मै बाँध-बाँध पछताऊँ !

यहाँ सयोग-अभिलाषा को सखी के माध्यम से व्यक्त किया गया है किन्तु कई बार जब उनका हृदय अधिक उद्वेलित हो उठता है तो वे सीधे ही प्रियतम को पुकार-पुकार कर बुलाने लगती है :

> तुम विद्युत् बन आओ पाहुन,
> मेरी पलकों में पग धर-धर !

यहाँ प्रणयिनी ने प्रियतम के स्वागत् के लिए अपनी पलकों के ही पाँवडे बिछा दिये है—इससे अधिक सुन्दर, मधुर एव उदात्त स्वागत और क्या होगा !

इस पर भी जब प्रिय नही आते तो विरहिणी का एक मात्र आधार अनुनय-विनय-दैन्य-प्रलाप रह जाता है। 'बार-बार न सही, कम से कम एक बार तो आजाओ !'—यह अनुरोध भी विरह-दग्ध हृदयो के लिए आशा का कारण बनता है। क्या प्रियतम इतने निष्ठुर है कि वे फिर न सही, एक बार भी न आयेगे ! यद्यपि न आने वाले पर इसका भी कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता, फिर भी प्रेमार्त्त प्राणियो का तो अधिकार है ही कि वे इतनी-सी आशा तो कर सकें .

> एक बार आओ इस पथ से
> मलय-अनिल बन हे चिर चंचल !
> अधरों पर स्मित सी किरणें लें
> श्रमकण- से चर्चित सकरुण मुख,
> अलसाई है विरह-यामिनी
> पथ में लेकर सपने सुख-दुख !

---

१. कबहूँ मिलिबौ, कबहूँ मिलिबौ, यह धीरज ही में धरैबो करै।
उर तें कढि आवै गरै तै फिरै, मन की मन ही में सिरैबो करै।
कवि बोधा न चाव सरी कबहूँ नितही हरवा सौ हिरैबो करै।
सहतेई बने कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबो करै।

—बोधा

इतना ही नही कवयित्री इस एक वार के मिलन को ही अंतिम मिलन स्वीकार करने के लिए भी प्रस्तुत है :

आज सुला दो चिर निद्रा में
सुरभित कर इससे चल कुन्तल !
× × ×
आज बुझा जाओ अम्बर के
स्नेह हीन यह दीपक झिलमिल !

पर कदाचित् यह अनुरोध भी असफल सिद्ध होता है। फिर भी कवयित्री की कल्पनाशील चेतना मिलन के क्षण की अनुभूतियो की कल्पना एवं चिन्तना किये बिना नही रहती। काश ! क्षण भर के लिए भी उसका मिलन पुन' हो पाता तो जीवन मे कितना बडा परिवर्तन आ जाता ! जीवन का सब-कुछ बदल जाता ! शाप वरदानो मे, पतझड़ वसन्त मे और धरती स्वर्ग मे बदल जाती ! ये छोटे से प्राण संसृति के समस्त क्रदन को समेट लेने वाले, सबके जीवन मे प्रकाश की ज्योति विकीर्ण कर देने वाले वन जाते ! मृत्यु के वाद शायद साधिका को मुक्ति मिल जाय पर भला जीवन-काल मे प्राप्त इस क्षण भर के मिलन के सम्मुख मुक्ति क्या महत्व रखती है ! उस मुक्ति के स्थान पर यदि इस मिलन के लिये सौ-सौ बन्धन भी स्वीकार करने पड़े तो वे स्वीकार्य हैं :

तुम्हें बाँध पाती सपने में !
तो चिरजीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में।
× × ×
शाप मुझे वन जाता वर सा,
पतझर मधु का मास अजर सा,
रचती कितने स्वर्ग एक
लघु प्राणो के स्पन्दन अपने में !
× × ×
प्रिय ! मै लेती बाँध मुक्ति
सौ-सौ लघुतम बन्धन अपने में !

मिलन की अभिलापा को पूर्ववर्ती रहस्यवादी एव प्रेममार्गी कवियो ने भी करुणार्द्र शव्दो मे व्यक्त की है, पर कवयित्री ने यहाँ मिलन-सुख को, मिलन-जन्य प्राप्त तृप्ति, संतोप और आनन्द को और इतना ही नही उससे उद्वुध होने वाली सासारिक-

आध्यात्मिक शक्तियो को जिस रंगीनी के साथ प्रस्तुत किया है, वह अद्‌भुत है ! कबीर ने भी इस संयोगाकाक्षा की अभिव्यक्ति बार-बार की है, पर उसमे वर्तमान वेदना की ही सघनता अधिक है, मिलन-सुख से उत्पन्न होने वाली विभिन्न स्थितियो व परिस्थितियो की रंगीन कल्पना वहाँ नही है ; यथा :

कब देखूँ मेरे राम सनेही ।
वा बिन दुःख पावै मेरी देही ।।
हूँ तेरा पंथ निहारू स्वामी ।
कबरु मिलिहुगे अन्तर्यामी ।।
जैसे जल बिन मछली तलफै ।
ऐसे हर बिन मेरा जिय कलपै ।।
निसि दिन हरि बिन नींद न आवै ।
दरस पियासी राम क्यों सचु पावै ।।
कहै कबीर अब विलम्ब न कीजै ।
अपनो जानि मोहि दर्शन दीजै ।। —क० ग्र०

यद्यपि यहाँ विरह-वेदना और मिलनाकाक्षा की तीव्रता महादेवी की अपेक्षा अधिक दृष्टिगोचर आती है, पर महादेवी ने मिलन की जिस विराट कल्पना को अपने काव्य मे साकार किया है, आध्यात्मिक मिलन से उपलब्ध शक्तियो एव क्षमताओ का जैसा आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है, वह रहस्यानुभूति की गम्भीरता की दृष्टि से न सही, काव्यात्मक अनुभूति एवं कलात्मक वैभव की दृष्टि से अनूठा है ।

कदाचित् कबीर जैसे मध्यकालीन अक्खड़ साधक के लिए इस प्रकार की रंगीन कल्पनाएँ दूर की बात समझी जायँ। पर आधुनिक युग के कल्पनाशील कवियो मे भी आध्यात्मिक मिलन की ऐसी अनूठी कल्पना शायद ही कही दृष्टिगोचर हो । यहाँ तक कि कवीन्द्र रवीन्द्र की तत्सम्बन्धी अनुभूतियो को यहाँ तुलनात्मक दृष्टि से देखा जा सकता है :

'तुमि एकटु केवल बसते दियो काछे
आमाय शुधू क्षणेक तरे ।
आजि हते आमार जा किछू काज आछे
आमि सांग करब परे ।
ना चाहिले तोमार मुख पाने
हृदय आमार विराम नाहिं जाने
काजेर माझे धूरे वेड़ाई जत,
फिरि कूल-हारा सागरे !' —गीताजलि/५

अर्थात् तुम केवल क्षण भर के लिए मुझे अपने पास बैठ लेने दो। आज से मै अपने सब कामो को पीछे पूरा करूँगा। तुम्हारे दर्शन किए विना मेरे हृदय को चैन नही पड़ता चाहे मैं इस तट-हीन भवसागर मे कितना ही काम-काज क्यों न करता फिरूँ ?'

निश्चित ही यहाँ रवीन्द्र का स्वर अपेक्षाकृत अधिक शान्त, गभीर एवं उदात्त दिखाई पड़ता है पर काव्यात्मक दृष्टि से जो माधुर्य महादेवी की रगीन कल्पनाओ मे है उसकी झलक यहाँ दृष्टिगोचर नही होती।

अभिलाषा जहाँ भावात्मक अनुभूति है, चिन्ता (प्रिय का चिन्तन), स्मृति, गुण-कथन आदि मूलतः वौद्धिक वृत्तियाँ है जो रागात्मकता से अनुस्यूत होकर विरही के हृदय और मस्तिष्क को आन्दोलित किये रहती हैं। ध्यान रहे शुद्ध वौद्धिक क्षेत्र मे भी चिन्तन, स्मृति आदि वृत्तियाँ सक्रिय रहती है किन्तु वहाँ वे विचारो के विश्लेषण मे योग देती है ; उनके कारण ऐसी तीव्र एव उत्तेजक भावात्मक प्रतिक्रिया नही होती जैसी कि प्रणय के क्षेत्र में होती है। प्रिय की अनुपस्थिति मे उसकी स्मृति, उसका चिन्तन, गुण-गान आदि मन की सहज प्रवृत्तियाँ हैं पर जव यह अनुपस्थिति अधिक व्यापक एव दीर्घकालिक हो जाती है तो तदनुसार इन वृत्तियो का स्वरूप भी गभीरतर हो जाता है। रस-सिद्धान्त को अत्यन्त स्थूल दृष्टि से परखने वाले एक आलोचक ने स्मृति आदि को संचारी भाव तक मानने पर आक्षेप किया है, पर प्रेम-काव्य का अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि स्मृति मूलतः वौद्धिक वृत्ति होते हुए भी प्रणय स्थायी भाव से सम्वद्ध होकर किस प्रकार तीव्र भावानुभूति मे परिणत हो जाती है। घनानंद के शव्दो में :

> **वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छ्वि,**
> **वहै छैलताई न छिनक विसरति है।**
> **आनन्द निधान प्राण प्रीतम सुजान जू की,**
> **सुधि सव भाँतिन सों वेसुधि करति है !**

यद्यपि महादेवी का आलम्वन इतना स्थूल एवं लौकिक तो नही था कि उसकी सुधि (स्मृति) इतने सघन एवं साकार रूप मे उपस्थित होकर उन्हे वेसुध वना दे, पर फिर भी उसकी स्मृति रात-दिन उनके मानस मे अवश्य खटका करती है :

> **वे स्मृति वन कर मानस में खटका करते हैं निशिदिन**
> **उनकी इस निष्ठुरता को जिससे मैं भूल न जाऊँ !**

या फिर पिछले मिलन की ही स्मृति साकार हो उठती है :

> **भूलती थी मैं सीखे राग !**
> **विछलते थे कर वारम्वार—**

तुम्हें तब आता था करुणेश
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

इसी प्रकार विभिन्न मनः स्थितियो मे प्रिय का गुण-कथन, चिन्तन-मनन, तर्क-वितर्क आदि भी स्वाभाविक रूप में चलता रहता है ; जैसे—

(क) गुण कथन एवं चिन्तन

तज उनका गिरि सा गुरु अन्तर
मैं सिकता-कण सी आई भर ।
× × ×
उनकी वीणा की नव कम्पन
डाल गई री मुझ में जीवन ।

(ख) तर्क-वितर्क :

जो न हृदय अपना बिंधवाऊँ
निश्वासों के तार बनाऊँ
तो कह किसका हार बनाऊँ
तारों ने वह दृष्टि, कली ने
उनकी हँसी चुराली !

(ग) आत्म-चिन्तन :

मैंने कब देखी मधुशाला ?
कब माँगा मरकत का प्याला !
कब छलकी विद्रुम सी हाला ?
मैंने तो उनकी स्मित में !
केवल आँखें धो डालीं ?
क्यो जग कहता मतवाली !

यद्यपि इन उक्तियो के मूल मे भावानुभूति की अपेक्षा बौद्धिकता की विभिन्न वृत्तियाँ ही अधिक मुखर है किन्तु इनसे प्रणय भावना के विस्तार का बोध होता है। जो अनुभूति विरोधी-गुणो एवं तत्त्वो को आत्मसात् करने में जितनी अधिक सफल होती है वह उतनी ही अधिक सबल, सशक्त एवं गम्भीर मानी जा सकती है। भारतीय आचार्यों ने विरोधी सचारो भावो को आत्मसात् कर पाने की क्षमता को स्थायी भाव का एक प्रमुख लक्षण माना है। महादेवी मे तो वैसे भी भावात्मकता के साथ

वौद्धिकता एवं कल्पना-शक्ति का समुचित सामंजस्य प्राप्त होता है—अत. उनकी विरह रागिनी के बीच-बीच मे वौद्धिक स्वरो का निनादित होना स्वाभाविक ही है।

विरह-वेदना की पूर्ण गम्भीरता मे वौद्धिकता क्रमशः क्षीण होती हुई तीव्र भावाकुलता एव भावोन्माद मे लीन हो जाती है। आचार्यों द्वारा परिगणित अंतिम पाँच भाव दशाएँ—उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मरण—क्रमशः इसी गम्भीरता के उत्तरोत्तर विकास की सूचक है। महादेवी मे भी इनमें से कुछ दशाएँ अपने सहज रूप में व्यक्त हुई है ; यथा—

(क) उद्वेग :

फिर विकल हैं प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है !
जा रहे जिस पंथ से युग-कल्प उसका छोर क्या है !

(ख) प्रलाप :

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो
हो उठी है चंचु छूकर
तीलियाँ भी वेणु सस्वर,
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले
सिहरता जड़ मौन पिंजर !

× × ×

प्रलय धन में आज राका घोल दो !

उपर्युक्त कविताओ में विरह-वेदना उद्वेग, प्रलाप व्याधि का रूप धारण करती हुई अन्त मे मृत्यु-कामना के निकट पहुँच जाती है जहाँ कवयित्री अपने प्राणो के शुक को शरीर-पिंजर से मुक्त कर देने के लिए पुकार-पुकार कर आदेश देती है।

यही विरह-व्यथा कही-कही निराशा से मिश्रित होकर रोष, क्षोभ और अमर्ष से उद्वेलित होती हुई दिखाई पडती है :

मत कहो हे विश्व ! 'झूठे,
हैं अतुल वरदान तेरे !
नभ डूबा पाया न अपनी बाढ़ में भी क्षुद्र तारे,
ढूंढ़ते करुणा मृदुल घन चीर कर तूफान हारे ;
अन्त के तम में बुझे क्यो,
आदि के अरमान मेरे !

भला, मेघ सदृश महान् प्रभु के होते हुए भी एक क्षुद्र तारे को इतनी व्यथा, इतना अलगाव और इतना विरह सहन करना पडे, यह कहाँ तक उचित है ! क्या वह सर्वशक्तिमान् इतना भी नही कर सकता कि साधिका के तुच्छ अरमानो को पूरा कर सके !

और यह भी क्या बात हुई कि विरह-साधना मे ही कवयित्री का जीवन व्यतीत हो जाय ? पथिक को यदि कभी भी मजिल प्राप्त न हो तो यह कैसा पथ ? निरन्तर चलते रह कर भी गतव्य से सदा दूर रहना वरदान है या अभिशाप ?

देव अब वरदान कैसा !
× × ×
युग-युगान्तर की पथिक मै छू कभी लूँ छाँह तेरी,
ले फिरूँ सुधि दीप सी फिर राह मै अपनी अँधेरी,
× × ×
चिर बटोही मै, मुझे,
चिर पंगुता का दान कैसा !

विरहिणी का यह रोष और क्षोभ कई बार प्रिय के प्रति उपेक्षा, उपालंभ व्यंग्य, दैन्य आदि विभिन्न रूपो मे परिणत होकर प्रस्फुटित होता है । महादेवी मे भी ये सभी, भाव स्फुटित एव सचरित होते दिखाई पड़ते है ; देखिये :

(क) विरक्तिपूर्ण उपेक्षा :

चिन्ता क्या है हे निर्मम, बुझ जाये दीपक मेरा ।
हो जायेगा तेरी ही पीड़ा का राज्य अंधेरा !

(ख) गर्व :

उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन ।
उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूना पन ।

(ग) उपालंभ-व्यग्य :

मुझे न जाना अलि ! उसने
जाना इन आँखों का पानी ।
मैंने देखा उसे नहीं
पद-ध्वनि है केवल पहचानी,
× × ×
क्यों यह निर्मम खेल सजनि ।
उसने मुझसे खेला सा है,?

(घ) दैन्य :

सिन्धु को क्या परिचय दे देव !
बिगड़ते-बनते बीचि विलास !
क्षुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश ।

वस्तुत विभिन्न भाव दशाओ एवं भावानुभूतियो का यह सचार कवयित्री की मूल भावना की व्यापकता को प्रमाणित करता है । रस सिद्धान्त की शब्दावली मे ये सव सचारी भाव है जो कि स्थायी भाव के पोषक सिद्ध होते है ।

● **संदेशों का आदान-प्रदान**—लौकिक विरह मे प्रिय को सदेश भेजने या उससे प्राप्त करने की चर्चा भी प्राय. की जाती है । विरहीजनो के पास यही एक मात्र अवलम्वन होता है जिसके सहारे वे वियोग की शोक-सरिता को ज्यो-त्यो पार कर पाते हैं । वस्तुतः सदेश केवल वौद्धिक तथ्यो की सूचना मात्र नही होता अपितु प्रेमीजनो के लिए शत-शत कोमल भावो का स्रोत, विरहाग्नि को शान्त करने वाला अमोध उपचार एवं भावी मिलन-आशा-आकाँक्षा का स्वर्णिम आधार होता है—इसीलिए कोई भी विरह-काव्य संदेशो से शून्य नही होता ; हाँ, केवल सदेश को लेकर अवश्य अनेक विरह-काव्यो का सृजन हुआ है ।

महादेवी का विरह तो अलौकिक है ! उनका प्रियतम तो किसी ऐसे स्थान पर है जहाँ धरती का कोई भी संदेशवाहक पहुँच नही पाता ! फिर उसका नाम, रूप, अता-पता, परिचय आदि कुछ भी तो स्पष्ट नही हैं ; ऐसी स्थिति में प्रिय को संदेश भेजना कितना कठिन हो जाता है, यह वताने की आवश्यकता नही । इसीलिए कवयित्री पूछती है :

अलि कहाँ सन्देश भेजूं ?
मै किसे संदेश भेजूं ?
एक सुधि अनजान उनकी,
दूसरी पहचान मन की,
पुलक का उपहार दूं या अश्रु-भार अशेष भेजूं !

—दीपशिखा-२२

और फिर उस सूक्ष्म ब्रह्म का कोई एक रूप और एक स्थान भी तो नहीं है ! संभव है कि वह प्रणयिनी के ही अन्तर मे ही छिपा हुआ हो या फिर घनसार वन कर पवन मे उड़ गया हो, ऐसी स्थिति मे तो सदेश भेजने का प्रश्न ही नही उठता :

नयन-पथ से स्वप्न में मिल,
प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ ?
जो गया छवि रूप का घन,
उड़ गया घनसार-कण बन ;
उस मिलन के देश में अब प्राण को किस वेश भेजूँ। —वही

इसी प्रकार एक अन्य कविता मे भी वे इसी समस्या को दूसरे शब्दों मे प्रस्तुत करती हुई लिखती है :

कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती।
× × ×
मै अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ, कुछ लिख जाती !
× × ×
मिलता न दूत वह चिर परिचित
जिसको उर का धन दे आती !

यदि प्रिय का पूरा पता हो, संदेशवाहक भी प्राप्त हो तो भी प्रणयीजनो के मन को विश्वास कहाँ ! हृदय मे उमडने वाली अपार व्यथा को पत्र मे भलीभाँति अंकित कर दिया है—जो-कुछ लिखना चाहते थे वह लिखा गया है, इसका तोप उन्हे कहाँ होता है ! फिर हृदय की गुप्त निधियो से परिपूर्ण प्रणय-पत्र हर किसी के हाथ मे कैसे सौंपा जा सकता है, जब तक कि पत्र-वाहक पूर्णतः परिचित या विश्वसनीय न हो। उपर्युक्त पंक्तियो में विरह-सतप्त हृदय की इन्ही उलझनो एवं भावानुभूतियो को अत्यन्त कोमल स्वर मे व्यक्त किया गया है।

महादेवी अपने सूक्ष्म अलौकिक ब्रह्म के प्रति आत्म-निवेदन करके जैसे-तैसे सदेश भेजने की कल्पना ही कर पाती है, प्रिय का सदेश प्राप्त करने की मधुर अनुभूति उन्हे बहुत कम प्राप्त होती है, पर उसका सर्वथा अभाव भी नही है। प्रकृति के मौन सकेतो से ही उन्हे कई बार प्रिय का सदेश प्राप्त हो जाता है ; यथा :

लाये कौन संदेश नये घन !
अम्बर गर्वित,
हो आया नत,
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलको के सावन
लाये कौन संदेश नये घन!

फूट पड़े अवनी के संचित
सपने मृदुतम अँकुर बन-बन !
लाये कौन संदेश नये घन !

वस्तुत: यहाँ अम्बर के जिस चिरनिस्पन्द हृदय मे पुलको के सावन उमडने की या धरती के उर मे जिन मधुरतम सपनो के अकुरित होने की बात कही गयी है, वे कवयित्री के ही मन और प्राणो के स्पन्दन के सूचक है । प्रिय का सदेश चिर सुषुप्त प्राणो मे कैसी हलचल मचा देता है, आशाओ और आकाक्षाओ से हृदय को उद्दीप्त करके किस प्रकार उसे पुलकित कर देता है और किस प्रकार एक ही क्षण मे मानस की शुष्क भूमि में अतीत के सचित सपनो को नव जीवन प्रदान कर देता है—इसका निरूपण कवयित्री ने पूर्ण मार्मिकता के साथ किया है ।

अस्तु, महादेवी ने भले ही यथार्थ मे अपने प्रिय से स्थूल पत्रो के माध्यम से संदेशो का आदान-प्रदान न किया हो किन्तु प्रकृति और कल्पना के माध्यम से उन्होंने अपनी उन भावनाओ का आदान-प्रदान अवश्य किया है जो कि लौकिक क्षेत्र में, सदेशो की संज्ञा से अभिहित है । उनमे लौकिक प्रेम से सम्बद्ध सदेशो की सी चंचलता, उष्णता एव भावाकुलता नही है, पर अनुभूति की सूक्ष्मता, व्यथा की आर्द्रता एव कल्पना की रंगीनी का उनमे अभाव नही है—इसीलिए उनके सदेश कल्पनामय होते हुए भी हमे रुचिकर एव व्यथासिक्त अनुभूत होते है ।

पुनर्मिलन—महादेवी की विरह-वेदना का आरभ ही प्रिय से प्रारभिक स्वप्न-मिलन से हुआ था, जिसकी विस्तृत चर्चा पीछे की जा चुकी है । उसके अनन्तर तो वे प्राय: विरहानुभूतियो मे ही लीन रहती है, किन्तु सौभाग्य से कभी-कभी पुनर्मिलन की आशा-प्रतीक्षा एव तैयारी मे भी सलग्न दिखाई पडती है । मुस्कराते हुए नभ से उन्हे सकेत मिलता है, शायद आज प्रिय आ जावे ! बस यह छोटा सा सकेत उनके जीवन मे कितना बडा परिवर्तन उपस्थित कर देता है, यह स्वय कवयित्री के शब्दो मे ही सुनिये :

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
विद्युत् के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता रोता जलधर ;
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर ;
दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक-रजत के मधु-प्याले हैं !

वही ससार जो सदा कवयित्री को शोक-सतप्त, करुणा-कवलित एव रुदन-लीन दिखाई पड़ता था, आज मिलन-आशा के कारण हँसता हुआ, प्यार करता हुआ व उल्लसित दिखाई देने लगता है ! आज बादल आँसू बहाते हुए नही अपितु अपनी प्रेयसी विद्युत् के

सुनहरे बाहुपाश में बँधकर—उसके आलिंगन-सुख मे हँसते हुए दिखाई पडते है ! आज सागर की गर्जन किसी दग्ध हृदय की चीत्कार के रूप में नही सुनायी पड़ती है अपितु प्रणय गीतो से उच्छवसित सुनायी पडता है ; आज रात्रि दिवस से बिछुडती हुई, दिवस रात्रि से वियुक्त होता हुआ दिखाई नही पड़ता, अपितु लगता है मानो वे एक-दूसरे को सूर्य-चाँद रूपी सुनहले-रुपहले प्यालो मे मधु आसव ढालकर पिला रहे हैं—परस्पर माधुर्य का आदान-प्रदान कर रहे है !

अव तक जो सृष्टि निरन्तर आँसू बहाती हुई दृष्टिगोचर होती थी आज वह एकाएक माधुर्य, आनन्द एव उल्लास मे डूबी हुई दिखाई देने लगती है ! क्यो ? इसलिए नही कि सृष्टि मे कोई परिवर्तन हुआ है अपितु इसलिए कि द्रष्टा की अपनी दुनिया बदल गयी है : आज उसके प्रिय आने वाले है !

प्रिय आये नही है—केवल उनके आने की संभावना मात्र है ; केवल इस संभावना मात्र ने विरहिणी के समस्त बाह्य जीवन को, जीवन-दृष्टि को और दृश्यमान सृष्टि को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया है, पर इसके साथ ही उसके आन्तरिक जीवन में जो परिवर्तन हुआ है, वह तो और भी अनूठा है , उसे कवयित्री के शब्दो मे ही वताया जा सकता है .

> **सघन वेदना के तम में सुधि जाती सुख सोने के कण भर ;**
> **सुरधनु नव रचती निश्वासें स्मित का इन भीगे अधरों पर ;**
> **आज आँसुओं के कोषों पर**
> **स्वप्न बने पहरेवाले हैं !**

अव कवयित्री की सुधि विरह के गहरे अन्धकार मे भी जाती है तो वह सुख के स्वर्णिम कण ही भर कर लाती है ! सदा भीगे रहने वाले ओठो पर अव प्रत्येक श्वास के साथ रंग-विरंगी मुस्कराहट ही नये-नये रूपो मे फूटती दिखाई पड़ती है ! निरन्तर आँसू बहाने वाले अक्षय-कोषो—नयनों—पर अव मिलन के मधुर सपनों का पहरा लग गया है ! कहाँ आँसू और कहाँ मीठे सपने !

यह मिलन की अनुभूति नही है, उस अनुभूति की कल्पना मात्र है क्योकि यहाँ सभावना मात्र है, यथार्थ नही—फिर भी भावनाओ के परिवर्तन को, सभावना-जन्य उल्लास को जिस मधुरता से यहाँ चित्रित एवं व्यजित किया गया है वह अनुभूति की आर्द्रता से परिपूर्ण है ।

मिलन की सभावना या आशा होने पर प्रतीक्षा के क्षण भी अत्यन्त भावात्मक, गंभीर एवं रोमांचक हो उठते हैं :

> **नयन श्रवणमय, श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन !**
> **रोम-रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन !**

पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं !

और जब यह सभावना वास्तविकता मे परिणत हो जाती हैं ; प्रिय का सचमुच आगमन हो जाता है तो उससे आनन्द की जो अनुभूति होती है, उसका तो कहना ही क्या ! कबीर जैसा अक्खड साधक भी मिलन-सुख मे विभोर होकर नाचता हुआ गा उठता है :

दूलहिन गावहु मंगलाचारि रे !
हम घर आयेहु राजा राम भरतारि !

जब कबीर जैसे साधक पुरुष भी इस मिलन-सुख के आनन्द को नहीं सँभाल पाते तो नारी-हृदया कवयित्री महादेवी की तो बात ही क्या ! युगो की साधना के अनन्तर, विरहाश्रुओ का सागर लहरा देने के बाद, प्रतीक्षा के दीप जलाकर सौ-सौ रात्रियों को काली कर देने के अनन्तर सौभाग्य से वह क्षण भर के लिए पुनः स्वप्न में आया। और तब लगा मानों सूने आसमान मे किसी स्वर्गीय हँसी से एकाएक कोई रंग-बिरंगा इन्द्र-धनुष निकल आया हो ; लगा मानो पतझड के पास उसके आँसू पोंछने कोई नया वसन्त आया हो या मानो इस क्षणभगुर जीवन को अपनी गोद मे लेने के लिए साक्षात् अनन्त ही उपस्थित हो गया हो :

अश्रु मेरे माँगने जब
नींद में वह पास आया !
स्वप्न सा हँस पास आया !
हो गया दिव की हँसी से
शून्य में सुर - चाप अंकित ;
रश्मि-रोमों में हुआ
निस्पन्द तम भी सिहर पुलकित ;
अनुसरण करता अमा का
चाँदनी का हास आया।
× × ×
माँगने पतझार से
हिमबिन्दु तब मधुमास आया !
× × ×
अंक में तब नाश को
लेने अनन्त विकास आया !

यद्यपि यहाँ संयोगानुभूतियो की अजस्र धारा प्रवहमान दृष्टिगोचर नही होती, उसकी क्षीण सी आभा ही द्योतित हो रही है, फिर भी साकेतिक रूप मे कवयित्री ने अपनी इस स्वप्न-मिलन की अनुभूति को वौद्धिक प्रतिमानो एव कल्पनापूर्ण दृश्यों के माध्मम से व्यक्त अवश्य कर दिया है । स्वप्न-मिलन की प्रथम अनुभूति से तुलना करने पर इसमे स्पष्ट ही भावाकुलता कम एव भाव-गाभीर्य अधिक दिखाई पडेगा । यहाँ मिलन के क्षणो मे भी कवयित्री की वौद्धिकता अधिक सजग है या यो कहिए कि यह मिलन वौद्धिकता के स्तर पर अधिक है, हृदय की तरल भावुकता इसमे वहुत कम है।

विरह और मिलन की अन्विति—महादेवी की रहस्यानुभूति की धारा क्रमशः प्रारंभिक मिलन, दीर्घ वियोग, पुन क्षणिक मिलन के तटवर्त्ती बिन्दुओ को छूती हुई अन्तत उस स्थल पर पहुँच जाती है, जहाँ मिलन और विरह, सयोग और वियोग—दो भिन्न स्थितियो के द्योतक नही रह जाते या यो कहिए कि जहाँ सयोग और वियोग दो पृथक् प्रदेशो मे विभक्त नही रहते । वहाँ सयोग मे ही वियोग एवं वियोग मे ही सयोग की अनुभूति विद्यमान रहती है । लौकिक प्रेम की दृष्टि से यह स्थिति किंचित् अव्यावहारिक, अस्वाभाविक एवं अविश्वसनीय प्रतीत होती है, पर यदि कल्पना-शक्ति पर बल दिया जाय तो इसकी यथार्थता को ग्रहण करना सर्वथा असभव भी नही है । कल्पना कीजिये, एक प्रेमी की प्राण-स्वरूप प्रेयसी उसी के घर मे एक ऐसे कमरे मे वन्द हो, जहाँ तक पहुँच पाना उसके लिए असंभव हो । वह प्रत्येक क्षण यह तो अनुभव करता है कि उसकी प्रियतमा उसी के पास है ; कभी-कभी दूर से उसके उठने-बैठने, चलने-फिरने या हँसने-वोलने की आवाज सुनकर उसके अस्तित्व का भी सुखद वोध प्राप्त कर पाता है पर फिर भी वह पूरी तरह से उससे मिलकर अपने हृदय की प्यास नही वुझा पाता । पास होते हुए भी दूर रहने की, मिलते हुए भी न मिल पाने की ऐसी दोहरी स्थिति रहस्यवादी के मन मे सदा विद्यमान रहती है , उसका प्रियतम उसके हृदय की ही कोठरी मे सदा उपस्थित रहता है, पर फिर भी वह न उससे वोल पाता है और न ही उसे छू पाता है । जो साधक अपनी साधना की उच्च स्थिति पर पहुँच जाता है वह प्रिय के नैकट्य एव तादात्म्य की इस दशा का अनुभव प्रायः करता है फिर भी उसे न तो पूर्ण मिलन कहा जा सकता है और न ही विरह । इस दोहरी स्थिति का अनुभव कवयित्री महादेवी ने भी किया है जिसकी व्यंजना अनेक गीतो मे हुई है :

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा,
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा,
मधुर मुझको होगए सब मधुर प्रिय की भावना ले !

विरह और मिलन के इसी सामजस्य भाव के कारण अन्तत' कवयित्री अपनी खोज को ही उपलब्धि, साधन को ही सिद्धि और रुदन को ही सुख समझने लगती हैं—

खोज ही चिर प्राप्ति का वर,
साधना ही सिद्धि सुन्दर,
रुदन में सुख की कथा है
विरह मिलन की प्रथा है,
शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष में !
आँसुओं के देश में !

—दीपशिखा, ९८

इस प्रकार अन्त मे महादेवी उस स्थिति को प्राप्त कर लेती है जहाँ आत्मा और परमात्मा की दूरी इतनी कम हो जाती है कि साधिका अपने हृदय मे ही परम तत्त्व के अस्तित्व का बोध प्राप्त करने लगती हैं—द्वैत और अद्वैत मे सामजस्य स्थापित हो जाता है :

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहतीं नितप्रिय का अभिनंदन रे !
× × ×
धूप बने उडते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलको का नर्तन रे !

अतत. महादेवी इस रहस्य का बोध प्राप्त कर लेती है कि आत्मा को विरह की अग्नि मे तपा कर ही इस योग्य बनाया जा सकता है कि वह अलौकिक प्रिय की सत्ता का साक्षात्कार कर सके। वस्तुतः इस जीवन-काल मे विरह के अश्रु ही उसके अस्तित्व को और उसके प्रति प्रणय की गंभीरता को प्रमाणित करते है तथा उससे स्थायी मिलन शरीर रूपी दीप के बुझ जाने पर ही सभव होगा ; अत' दीपका का अन्तिम रूप से जलकर बुझ जाना ही साधिका का काम्य है , इष्टपूर्ति का साधन है, ऐसी स्थिति में जलन या विरह-वेदना को स्वीकार करना ही होगा , इसीलिए वे कहती हैं :

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
× × ×
जब तक लौटे दिन की हलचल !
तब तक यह जागेगा प्रतिपल !

या—

मैं क्यों पूछूँ यह विरह-निशा
कितनी बीती क्या शेष रही !
× × ×
उनके हित मिट-मिट कर लिखती,
मै एक अमिट संदेश रही !

इस जीवन मे विरह-वेदना स्थायी है या जीवन भर जलना आवश्यक है—इस तथ्य की पूर्ण स्वीकृति ने ही कवयित्री के मन मे एक अपूर्व आत्म-वल, धैर्य्य एव तोष का सचार कर दिया है। जिस प्रकार एक विद्यार्थी जानता है कि पहले वह परीक्षा उत्तीर्ण करेगा तो फिर उसे प्रमाण-पत्र (सर्टीफिकेट) प्राप्त होगा—इस जानकारी के कारण न तो वह परीक्षा से पूर्व ही प्रमाण-पत्र की प्राप्ति के लिए उतावला होता है और न ही इस बात से चिन्तित होता है कि उसे परीक्षा के वाद भी प्रमाण-पत्र मिलेगा या नही। वस्तुत' उसका ध्यान इस चिन्ता से मुक्त होकर परीक्षा की तैयारी मे ही केन्द्रित हो जाता है। यही स्थिति महादेवी की है—प्रारंभ मे कदाचित् वे यह समझती थी कि इसी जीवन में प्रभु से मिलन हो जायगा पर अव उन्हे यह वोध हो गया है कि उनसे स्थायी मिलन के लिए उससे पूर्व विरह की घाटी को, जीवन की सीमाओ को पार करना पडेगा। इसी वोध ने एक ओर उनकी आन्तरिक हलचल को संयमित एव शान्त कर दिया है तो दूसरी ओर वे बाह्य रूप मे अधिक आशावान, अधिक सहिष्णु एव अधिक तुष्ट दिखाई पडती है। उनकी 'दीपशिखा' का अतिम गीत इसी तोषपूर्ण भावोल्लास को व्यक्त करता है :

अलि मै कण-कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली !
× × ×
आँसू के सव रँग जान चली !
दुःख को कर सुख-आख्यान चली !
× × ×
क्षण-क्षण का जीवन जान चली !
मिटने को कर निर्माण चली !

दु.ख वेदना, आँसू—ये सव तो जीवन के नित्य लक्षण है। यदि कवयित्री आध्यात्मिक प्रेम की ओर अग्रसर न होती या सांसारिक भोगो मे लीन होती तो भी अन्त मे उसे किसी न किसी रूप मे दु ख को स्वीकार करना ही पड़ता ! पर उन्होंने अपने आँसुओ को एक व्यापक एव उदात्त क्षेत्र मे नियोजित करके विश्व की विराट

चेतना और उसकी व्यापकता को अनुभूत कर लिया। जीवन मिटने के लिये था, वे भी मिट जायेंगी, पर उन्होंने अपनी आध्यात्मिक चेतना को जगाकर एक प्रकार से भावी जीवन का निर्माण कर लिया। साधिका के लिए यह कम सतोप की वात नही है।

अस्तु, जैसा कि महादेवी ने स्वय लिखा है—"नीहार के रचना-काल मे मेरी अनुभूतियो मे वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन मे दूर दिखाई देनेवाली अप्राप्य सुनहली उपा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। 'रश्मि' को उस समय आकार मिला जव मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। परन्तु 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दु:ख मे सामंजस्य अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम मे ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हृदय मे खिला हो ; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव मे एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख-दु.ख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विपय वनने लगी और **अब अन्त में मेरे मन ने न जाने कैसे उस वाहर-भीतर में एक सामञ्जस्य सा ढूँढ़ लिया है जिसने सुख-दु:ख को इस प्रकार बुन दिया है कि एक प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का** अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।"—'दीपशिखा' के रचना-काल के अन्त तक उनके हृदय मे एक ऐसा सामजस्य स्थापित हो गया है जिसमे सुख और दुख, मिलन और विरह ; अद्वैत और द्वैत तथा आत्मा और परमात्मा समन्वित रूप मे ही दिखाई देते है। जिस प्रकार पारखी स्वर्णकार कनक से निर्मित कंगन, कुण्डल, वलय आदि भिन्न-भिन्न आभूषणो मे उनके रूपगत पार्थक्य को देखता हुआ भी उनकी आन्तरिक या तात्त्विक एकता को कभी नही भूलता, वह उनके वाह्य द्वैत एव आन्तरिक अद्वैत को एक साथ हृदयगम करता रहता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् का भी पहुँचा हुआ साधक अन्त मे उसी अनुभूति से आप्लावित हो जाता है, जहाँ जीवन और जगत्, व्यष्टि और समष्टि, आत्मा और परमात्मा मे भेद-अभेद का साक्षात्कार होने लगता है। अतत: महादेवी भी एक अश मे इसी भेदा-भेद के वोध को प्राप्त करने मे सफल हुई हैं—ऐसा हम स्वीकार कर सकते हैं। 'एक अंश' की वात हमने इसलिए कही है कि इस वोध को पूर्ण रूप मे तो शायद ही कोई प्राणी प्राप्त कर सके, दूसरे महादेवी अवस्था के विकास के साथ-साथ अधिक वौद्धिक होती गयी हैं—उनकी चेतना भावना से चिन्तन की ओर तथा पद्य से गद्य की ओर अग्रसर हुई है—अत हम यही अनुमान कर सकते है कि यह वोध उन्हे वुद्धि के स्तर पर ही अधिक प्राप्त हुआ है, हृदय की अनुभूति उन्हे अपेक्षाकृत कम प्राप्त हुई है। यदि यह हृदय की रागात्मकता पर ही आधारित होता तो उनके रहस्यवादी स्वर 'दीपशिखा' की रचना के अनन्तर मौन एवं अप्रकाशित नही हो जाते। अत: सक्षेप में 'नीहार' की रहस्यवादिनी कवयित्री 'दीपशिखा' तक पहुँचते-पहुँचते प्रौढ़ चिन्तक, प्रवुद्ध

अद्वैत दर्शिनी एव शान्त साधिका में परिणत हो गयी है ; अनुभूति की चचलता, व्यथा की आर्द्रता एव रुदन का घोप अव उसमें कदाचित् बहुत कम शेष है। यह स्थिति उनके काव्यत्व के लिए भले ही अनुकूल न हो किन्तु उनके व्यक्तित्व के लिए, उसे आत्मिक शान्ति, उदात्त साहस, अडिग निष्ठा एव अद्भुत शक्ति प्रदान करने की दृष्टि से तो निश्चित ही उनकी महान् उपलब्धि है। विराट चेतना के जागरण एव विस्तार से उन्हे जैसा उत्साह, साहस, धैर्य एव बल प्राप्त हुआ है, वह किसी महान् साधक एव तपस्वी को ही सुलभ है , उसी की अनुगूंज इन चुनौतीपूर्ण शब्दों मे सुनाई पडती है :

पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला ?
और होंगे चरण हारे
....

दूसरी होगी कहानी
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी ;
आज जिस पर प्रलय विस्मित,
मै लगाती चल रही नित
मोतियों की हाट औ' चिनगारियो का एक मेला ;

अस्तु, आज के युग में बौद्धिकता एव भावना के स्तर पर कोई भी रहस्यवादी साधक जिस चरम विन्दु तक पहुँच सकता है, वहाँ तक कवयित्री महादेवी भी पहुँची हैं—ऐसा, कम से कम अव तक रचित आधुनिक काव्य के आधार पर हम नि.सकोच कह सकते है।

● **महादेवी और पूर्ववर्ती रहस्यवादी कवि**—हिन्दी के रहस्यवादी कवियो मे से महादेवी की तुलना सर्व प्रथम महान् साधक कवीर से की जा सकती है। कवीर एव महादेवी—दोनो ही भारतीय रहस्य परपरा के श्रेष्ठ प्रतिनिधि है। दोनो की ही मानसिक पृष्ठभूमि का निर्माण एव अद्वैतभावना का विकास भारतीय वेदान्त के आधार पर हुआ तथा दोनो ने ही अपने आराध्य को प्रियतम या पति के रूप मे स्वीकार किया। विरह और मिलन की अनुभूतियाँ भी दोनो मे न्यूनाधिक मात्रा मे उपलब्ध है, फिर भी दोनों के रहस्यवादी काव्य के मूल स्वर, बौद्धिक स्तर एव भावानुभव की गभीरता मे एकरूपता नही मिलती। जहाँ कवीर मे विरह और मिलन—दोनो की ही अनुभूतियाँ एक ऐसे प्रवल वेग से प्रवाहित होती हैं कि वे लौकिकता एव बौद्धिकता के तटो का उल्लघन करती हुई चारो ओर फैल जाती है , उनके हृदय की बाढ़ मे सामान्य व्यक्ति भी कुछ क्षणो के लिए वह जाता है, निमज्जित हो जाता है जव कि महादेवी मे रहस्यानुभूति क्रमश. उद्वेलित होती हुई, धीर, शान्त एव संयमित गति से

अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है और अन्त में वह वौद्धिकता के महासागर मे जाकर लीन हो जाती है। कवीर की रहस्यानुभूति विस्फोट के रूप मे व्यक्त होती है, इसीलिए उसमें गर्जन-तर्जन अधिक है जवकि महादेवी में वह मन्द-मन्द आँच की भाँति कभी सुलगती हुई और कभी बुझती हुई धीरे-धीरे शान्त हो जाती है; दूसरे शब्दो मे, कवीर मे भावावेग अधिक है जवकि महादेवी मे सयमित भावना का क्रमिक विकास है।

निश्चित ही आध्यात्मिकता का आधार, साधना का बल एव अनुभूति की गम्भीरता महादेवी की अपेक्षा कबीर मे अधिक स्पष्ट, अधिक सशक्त एव अधिक मुखर है। साधक के रूप मे कवीर अधिक ऊँचाई तक पहुँचते है और इसका मूल कारण यह है कि रहस्य-साधना उनके समस्त जीवत पर छायी हुई है, महादेवी की भाँति रात्रि के कुछ खाली क्षणो का आत्म-निवेदन मात्र नही है—फिर भी कवि के रूप मे महादेवी ने अपनी कल्पना-शक्ति के रग से अपनी रहस्यानुभूति को जैसा सौन्दर्य प्रदान किया है वह कवीर मे दृष्टिगोचर नही होता। सचारी भावो का जैसा वैविध्य, अनुभावो की जैसी अनेकरूपता एव अभिव्यक्ति की जैसी चित्रमयता महादेवी मे है, वह कबीर मे सम्भव नही।

इसके अतिरिक्त महादेवी मे साधिका के व्यक्तित्व की भी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ, प्रेयसी के भावो का उतार-चढ़ाव, उसकी विश्वव्यापी चेतना, सम्प्रदाय-निरपेक्ष दृष्टि, प्रकृति का मानवीकृत रूप, सृष्टि के सुख-दु ख का वोध, जगत् के प्रति करुण दृष्टि—आदि विशेषताएँ भी है जो कि उनकी काव्यानुभूति को एक व्यापक फलक एव उच्च आधार प्रदान कर देती हैं। कवीर मे—कम से कम उनके रहस्यानुभूति सम्वन्धी पदो मे—मात्र उनकी आत्मा की व्यथा है, पुकार है या फिर मिलन का उल्लास है। निश्चित ही इस दृष्टि से उनकी काव्य-परिधि सकीर्ण और सीमित है, यह दूसरी वात है कि इससे उनकी भावात्मकता को अधिक एकाग्रता एव गम्भीरता प्राप्त हुई। अवश्य ही इससे उनकी अनुभूतियाँ अधिक तीव्र हो गयी हैं—रूप-वैविध्य एव विपय-विस्तार उनमे नही आ पाया।

वस्तुत. कवीर और महादेवी के इस अन्तर को समझने के लिए दोनो के युगो और परिस्थितियों के अन्तर को भी ध्यान मे रखना चाहिए। कवीर का वोध मध्य-कालीन युग का था जिसमे ईश्वर के अस्तित्व, परमात्मा की सत्ता और यहाँ तक की अवतारवाद पर भी सन्देह नही किया जाता था, दूसरे, वह युग आध्यात्मिक साधना के लिए अनुकूल भी था। इसीलिए कवीर अधिक स्पष्टता एव तीव्रता से अपनी वात कह पाते हैं। पर साथ ही कवीर पुरुष होते हुए नारी वेप मे अवतरित होते है, निरक्षर होते हुए भी अनुभूतियो को शब्द-रूप देने का प्रयास करते है, शिक्षा और अध्ययन

की पूर्ति केवल प्रतिभा के वल पर करते है—ये तथ्य उनके काव्य-पक्ष के प्रतिकूल पड़ते है, इसीलिए काव्यत्व की दृष्टि से महादेवी आगे वढ गयी है । साथ ही आधुनिक युग की प्रौढ़ बौद्धिकता एव छायावादी कल्पना की रंगीनी ने भी महादेवी के काव्य को अपेक्षाकृत अधिक औदात्य एव आकर्पण प्रदान करने मे योग दिया है ।

पद्मावत के रचयिता जायसी को रहस्यवादी मानकर उनसे भी महादेवी की तुलना की जाती है ; पर हमारे विचार मे 'पद्मावत' मे केवल अद्वैतवाद है ; जिस प्रेम और विरह का चित्रण उसमे हुआ है उसका सम्वन्ध पद्मावती और नागमती से है—जायसी से नही । इस सम्वन्ध मे अन्यत्र हम विस्तार से स्पष्ट कर चुके है कि पद्मावत को रहस्यवादी काव्य मानना उचित नही । इसी प्रकार मीराँ भी रहस्यवादिनी न होकर भक्त-महिला थी, अत उनकी भी महादेवी से तुलना करना अनावश्यक है ।

आधुनिक कवियों मे प्रसाद, पन्त और निराला मे रहस्यवाद प्राय: लौकिक प्रेम, प्रकृति-प्रेम एवं विश्व-प्रेम का आवरण वनकर आया है । प्रसाद ने जिस 'प्रेम पथिक' को पहले लौकिक प्रेम से युक्त बनाया था उसी को अगले सस्करण मे दिव्य प्रेम का स्पर्श दे डाला, पन्त रहस्यवादी से प्रगतिवादी वन गये और निराला भी अपनी आस्था को अक्षुण्ण नही रख पाये—अत: इन कवियो की परिवर्तनशील अस्थायी रहस्योन्मुख प्रवृत्तियों से महादेवी की अविच्छिन्न रहस्यानुभूति से क्या तुलना !

अस्तु, आधुनिक युग के हिन्दी के कवियो मे रहस्यानुभूति की यथार्थता, व्यापकता एवं गम्भीरता तथा उसकी अभिव्यक्ति की कलात्मकता की दृष्टि से महादेवी अनुपम एव अतुल्य है। यह आलकारिक कथन नही अपितु भलीभाँति सोच-समझ कर, दिया गया निर्णय है—ऐसा हम निष्कर्ष रूप मे कह सकते है ।

* * *

६

महादेवी के काव्य में वेदना, करुणा और दुःख

"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। ...मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं—एक वह जो मनुष्य के संवेदनाशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।"

—महादेवी

महादेवी के काव्य मे वेदना, करुणा और दुःख की भी अभिव्यक्ति अत्यन्त सघन रूप मे हुई है जिसे अलोचको ने 'वेदना भाव,' 'करुण भाव' या 'दु.खवाद की सज्ञा दी है। यद्यपि ये तीनो प्रवृत्तियाँ कवयित्री के भावात्मक जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों एवं स्रोतो से सम्बद्ध है किन्तु अनेक आलोचको ने इन्हे एक ही मानकर मिश्रित रूप मे ही इनकी विवेचना की है जिससे वे किसी स्पष्ट एव निर्भ्रान्त निष्कर्ष तक नही पहुँच पाये। महादेवी की वेदना और शोकानुभूति पर विभिन्न आलोचको द्वारा उपहास, व्यग्य एव आक्षेपो की भी वौछार हुई है, जिसका मूल कारण इन प्रवृत्तियो को भली-भाँति न समझ पाना है। स्थूल दृष्टि से ये तीनो प्रवृत्तियाँ एक जैसी ही दृष्टिगोचर होती है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि इन तीनो के न केवल स्वरूप मे अपितु आलम्बन मे भी गहरा अन्तर है। 'वेदना' का प्रयोग महादेवी ने प्राय 'प्रणय-वेदना' के अर्थ मे किया है जवकि करुणा संसार के दु ख से प्रेरित है। दुःख का सम्वन्ध संसार के दूसरे लोगो से न होकर स्वय से है जिसे सुख एव भोग के अभाव या त्याग का सूचक मानना चाहिए। इस प्रकार उनकी वेदना (प्रणय-वेदना) का आलम्वन अलौकिक प्रियतम है, करुणा का दु खी ससार और दु ख का निजी जीवन या व्यक्तिगत जीवन है। वेदना उन्हे सदा मधुर या प्रिय है, करुणा से उनका हृदय सदा

उद्दीप्त रहता है और दुःख को वे जानबूझ कर अपनाये हुए हैं। इस प्रकार ये तीनो भाव क्रमशः प्रणय, सहानुभूति एव विरक्ति के विकसित रूप है जो उनके काव्य मे समानान्तर रूप मे प्रवाहित होते है। यद्यपि काव्यशास्त्रीय दृष्टि से ये क्रमशः आध्यात्मिक प्रणय (उज्जवल रस), करुण रस, एव निर्वेद या शान्त रस के पोपक है पर साथ ही परस्पर अविरोधी भी है। उनका उदात्त प्रणय उनके हृदय मे उस व्यापक सहानुभूति का सचार करता है जो उन्हे कण-कण के प्रति करुण बना देती है तो दूसरी ओर ये दोनो भावनाएँ ही उन्हे व्यक्तिगत जीवन मे सांसारिक सुखो के प्रति विरक्त, उदासीन एवं त्यागमयी बनाती है। अस्तु, उनकी प्रणय वेदना, करुण भावना एवं निर्वेद भावना के आलम्बन-क्षेत्रो की भिन्नता के होते हुए भी वे परस्पर साधक एव पूरक हैं फिर भी पारस्परिक साम्य एव अन्तर की इन सीमा-रेखाओ को ध्यान में रखकर ही इनका विवेचन करना उचित होगा, अन्यथा हम भी पूर्ववर्ती आलोचको के प्रयासो की ही पुनरावृति करते हुए उसी स्थिति मे पहुँच जायेगे जहाँ वे पहुँचे है। अत आगे क्रमशः अलग-अलग खडो मे इनका विवेचन-विश्लेपण प्रस्तुत किया जाता है।

(क) महादेवी का वेदना-भाव (प्रणय-वेदना)

● **'वेदना' अर्थ**—जैसा कि प्रारंभ मे बताया गया है, महादेवी ने प्रायः 'वेदना' या 'पीडा' को प्रणय के अर्थ मे प्रयुक्त किया है, इसका प्रमाण यह है कि उन्होने इसके साथ प्राय. 'मधुमय' 'मधुर' जैसे विशेषणो का प्रयोग किया है ; यथा

(क) गयी वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर !

(ख) मेरी मधुमय पीड़ा को कोई पर ढूँढ न पाये !

(ग) चाहता है यह पागल प्यार
× × ×
वेदना मधु-मदिरा की धार !

सामान्य वेदना या पीडा मधुर या मधुमय नही होती अपितु कटु एव कष्टपूर्ण होती हैं, पर प्रणय एक ऐसी भावानुभूति हैं जिसमे वेदना के साथ माधुर्य की या विषाद के साथ आह्लाद की भी अनुभूति बराबर रहती हैं। इसीलिए महादेवी से पूर्व और भी अनेक कवियो ने प्रेम को दुःख-सुख मय माना है। महाकवि घनानन्द इसे 'दुहेली दसा' (दोहरी दशा) बताते हुए कहते है :

निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप-और
लाडिले सुजान सों दुहेलीदसा को कहै !

आधुनिक कवि प्रसाद भी प्रेम को एक ही साथ विष और और अमृत मानते हुए इसके उभयपक्षी स्वरूप का परिचय देते हैं

तेरा प्रेम हलाहल प्यारे, अब तो सुख से पीते हैं।
विरह सुधा से बचे हुए हैं, मरने को हम जीते है ! —झरना

उर्दू के कवियो ने भी इसे मीठी आग या मीठा दर्द बताते हुए इसके परस्पर-विरोधी रूपो का चित्रण किया है

शायद इसी का नाम मुहब्बत है शेफता,
एक आग-सी है दिल में हमारे लगी हुई ! —गालिब

यही बात अग्रेजी के एक कवि ने स्वीकार की है

What concentrated joy or woe !
In blessed or blighted Love !

अस्तु, प्रणय मे पीड़ा और माधुर्य का सयोग होना एक परम्परा-सिद्ध बात है फिर भी अनेक आलोचको ने कवयित्री के 'पीड़ा' शब्द को सामान्य अर्थ मे ग्रहण करते हुए उन पर अनुचित आक्षेप आरोपित किये हैं। श्री जैनेन्द्रजी ने तो उनके प्रेम की वस्तविकृता पर भी सदेह करते हुए एक स्थान पर लिखा है—"घायल घाव नही चाहता है, मालूम होता है उनकी गति घायल की है ही नही।" स्पष्ट ही यहाँ 'वेदना' या 'पीडा' का अर्थ प्रणय के स्थान पर दुःख या घाव ले लिया गया है। इसी प्रकार श्री विश्वम्भर मानव ने भी लिखा है—"महादेवीजी की पीडा भावना पर एक आक्षेप किया जा सकता है, कितना ही वडा साधक हो उसकी अतिम अभिलाषा होती है, साध्य से एकाकार होने की। उस दशा में पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए।.... पर पथ पार कर लेने पर भी काँटो को कलेजे से चिपटाये रखने की, पीडा के पल्ले को न छोड़ने की हठ कैसी है ?" कहना न होगा कि यदि 'मानव' जी पीडा का अर्थ सामान्य दु.ख न लेकर प्रणय लेते तो उन्हें इन सब शकाओं का सामना नही करना पड़ता। प्रेमी या प्रेमिका प्रिय-प्राप्ति के अनन्तर भी विरह-दु ख से तो मुक्ति पा जाते है पर प्रणय से मुक्ति फिर भी नही चाहते। यहाँ तक कि वे न केवल अपने मे अपितु प्रियतम मे भी प्रणय की धारा अक्षुण्ण रूप मे देखते-खोजते रहते हैं .

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा तुम में ढूंढूगी पीड़ा।

प्रियतम मे भी पीड़ा या प्रणय खोजना किसी भी प्रणयिनी के लिए स्वाभाविक है पर यहाँ भी 'मानव' जी शकाग्रस्त हो गये है। वे पुन. 'पीडा' का अर्थ दर्द ही लेते

हुए, कवयित्री की उक्तियो का स्पष्टीकरण करते है—"अन्तिम पीडा शब्द का अर्थ है, 'पीडा मय हृदय ।' जिसके लिए इतनी पीडा सही है, उस निष्ठुर के हृदय मे भी कभी दर्द उठता है या नही यह जानने की कामना भी अत्यन्त स्वाभाविक है । .... पर लक्ष्य 'तुम' ही है पीडा नही !" यहाँ व्याख्याता महोदय ने भावार्थ स्पष्ट करते-करते मूल भाव को ही वदल दिया है । कवयित्री के लिए 'तुम' गौण है, 'पीडा' प्रमुख—जवकि मानवजी 'पीडा' को गौण और 'तुम' को प्रमुख वना देते है ।

अस्तु, हमारे विचार मे महादेवी के काव्य को समझने के लिए इस तथ्य को वराबर ध्यान मे रखा जाना चाहिए कि जहाँ भी उन्होने प्रियतम के प्रसग मे पीड़ा या वेदना का प्रयोग किया है वहाँ उसे प्रणय का पर्यायवाची मान लिया जाय । हो सकता है, इसके एक-दो अपवाद भी बहुत खोजने पर मिल जायँ, पर सामान्यत यह उनके प्रणय-काव्य को समझने की कुजी है । उपर्युक्त सभी शकाएँ और आक्षेप उस स्थिति मे निराधार और अनावश्यक सिद्ध हो जाते है ।

● **वेदना या प्रणय का उद्भव**—महादेवी के जीवन मे इस वेदना का प्रवेश या उन्मेष किस प्रकार हुआ—इसका स्पष्टीकरण उन्होने अपने काव्य में वार-वार किया है । उस समय कवयित्री एक मुग्धा बाला थी, उसके लाज के वोल भी अभी तक खुले नही थे कि किसी की चितवन से आहत होकर वह सदा के लिए पीडा या प्रणय के बन्धन मे बंध गई :

इन ललचाई पलकों पर, पहरा जब था व्रीड़ा का ।
साम्राज्य मुझे दे डाला, उस चितवन ने पीड़ा का ।

कुछ स्थलों पर कवयित्री 'चितवन' के स्थान पर उस अदृश्य की मुस्कराहट से वशीभूत होने की बात भी कहती है :

बिछाती थी सपनों के जाल तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान मुझे मधुमय पीड़ा में बोर ।

यह घटना बहुत पुरानी है । तब से न जाने कितने युग बीत गये :

गये तवसे कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण ।

महादेवीजी ने अपनी किशोरावस्था के दिनो मे ही इस प्रणय-वेदना का राग अलापना आरम्भ कर दिया था, अतः इस घटना को बहुत पुरानी बताना ठीक ही है ।

● **आलम्बन**—महादेवीजी ने अपनी प्रणय-वेदना के आलम्बन का वर्णन सांकेतिक रूप में अनेक स्थानो पर किया है । अपनी प्रथम भेंट का चित्रण करते हुए वे लिखती है :

झटक जाता था पागल वात, धूलि में तुहिन कणों के हार।
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आए थे इस पार।।

उनकी सगीतज्ञता का परिचय अन्य गीतो मे भी मिलता है :

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से, स्वप्न लोक के से आह्वान।
वे आए चुपचाप सुनाने, तब मधुमय मुरली की तान।।

या—

अलक्षित आ किसने चुपचाप सुना अपनी सम्मोहन तान।
दिखा कर माया का साम्राज्य बना डाला इसको अज्ञान।।

'मुरली की तान' का वार-वार उल्लेख हमे वाँसुरी वजाकर गोपियो को मोहित कर लेने वाले कृष्ण-कन्हैया की याद दिला देता है। यद्यपि महादेवी के आराध्य सगुण कृष्ण नही है, किन्तु फिर भी उनके अवचेतन मन पर उनके कुछ संस्कार अवश्य विद्यमान है।

अपने इस निर्गुण निराकार प्रियतम की अस्पष्ट-सी झलक कवयित्री प्रकृति के रूप-वैभव मे देखती हैं .

मेघों में विद्युत् सी छवि उनकी बन कर मिट जाती।
आँखों की चित्रपटी में जिसमें मैं आंक न पाऊँ।।

कई वार यह निर्गुण व्रह्म आत्मा के साथ आँख-मिचौनी खेलता हुआ भी दृष्टि-गोचर होता है।

मै फूलों में रोती, वे बालारुण में मुस्काते।
मै पथ में विछ जाती हूँ वे सौरभ में उड़ जाते।।

कहने का तात्पर्य यह है कि कवयित्री अपने अलौकिक प्रियतम की प्रतिछवि प्रकृति के सौन्दर्य मे देखती है। उन्हे विद्युत् मे उनकी छवि, शशि-किरणो मे उनकी आभा, सागार की तरंगो मे उनका श्वासोच्छ्वास और तारको मे उनकी अपलक चितवन का आभास मिलता है।

● **वेदना भाव का उद्दीपन : प्रकृति**—लौकिक शृंगार के क्षेत्र मे प्रकृति के उद्दीपक प्रभाव की चर्चा कवियो और आचार्यो द्वारा वरावर होती रही है। महादेवी के लौकिक प्रेम मे भी प्रकृति के विभिन्न अवयवो का प्रभाव स्पष्ट रूप मे दृष्टिगोचर होता है। छायावादी कवियो की दृष्टि मे तो प्रकृति सजीव मानवी रूप मे गोचर होती है, अत उन्हे उसमें अपनी ही भावनाओ का प्रतिरूप दिखाई दे तो स्वाभाविक ही है।

महादेवीजी भी प्रकृति के क्रिया-कलापो मे अपने प्रणय के स्वप्नो का साक्षात्कार करती है :

जिस दिन नीरव तारों से, बोली किरणो की अलकें,
सो जाओ अलसाई हैं, सुकुमार तुम्हारी पलकें।

कवयित्री अपनी ही मन:स्थिति के अनुकूल प्रकृति के भी कण-कण मे करुणा, वेदना और आँसुओ का दर्शन करती हैं :

झूम झूम कर मतवाली सी पिये वेदनाओं का प्याला,
प्राणो में रुँधी निश्वासें आतीं ले मेघों की माला,
उसके रह रह कर रोने में,
मिलकर विद्युत् के खोने में।।
धीरे से सूने आंगन में फैला जब जाती हैं रातें।
भर-भर कर ठण्डी सांसों में मोती से आँसू की पातें।
उनकी सिहराई कम्पन में किरणों के प्यासे चुम्बन में।

किन्तु विद्युत् और मेघो की यही लीला मिलनाकांक्षाओ की वेला मे हर्ष, उल्लास और माधुर्य से विलसित दृष्टिगोचर होती है। कवयित्री के जीवन मे आशा और उल्लास का संचार होता है तो उसे मेघ मुस्काते हुए, जलधर हँसते हुए और विद्युत् प्रणय की सुनहरी पाश के सदृश प्रतीत होती है :

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं!
विद्युत् के चल स्वर्ण-पाश में बँध हँस देता रोता जलधर।
अपने मृदु मानस की ज्वाला, गीतों से नहलाता सागर।
दिन निशि को, देती निशि दिन को।
कनक रजत के मधु-प्याले हैं।।

वस्तुत: प्रकृति के उद्दीपन रूप की व्यंजना महादेवी ने सफलतापूर्वक की है।

● **प्रेयसी के अनुभाव**—यद्यपि महादेवीजी ने अपनी वेदनानुभूतियो की व्यंजना अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे की है, किन्तु फिर भी उनके काव्य मे विभिन्न शारीरिक, मानसिक एव सात्विक अनुभावो का चित्रण यत्र-तत्र उपलब्ध होता है। देखिए

अलि कैसे उनको पाऊँ।
वे आँसू बन कर मेरे, इस कारण ढुल ढुल जाते।
इन पलकों के बंधन में मै बाँध बाँध पछताऊँ।

वे चुपके से मानस में आ छिपते उच्छ्वासें बन।
जिसमें उनकी साँसों को देखूँ पर रोक न पाऊँ॥

किन्तु जैसा कि स्वयं कवयित्री ने लिखा है वे, अपने 'अनुभावों' को व्यक्त नही होने देती—'मेरी आहे सोती हैं, इन ओठो की चोटो मे'—फिर भी उनके आँसुओ की चर्चा उनके काव्य मे प्राय. मिलती है ; जैसे .

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यो भर भर !

● **सचारी भाव एवं भावदशाएँ**—महादेवी के वेदना-भाव या प्रणय मे विभिन्न मानसिक अवस्थाओ, भावदशाओ एव संचारी भावो का भी निरूपण विस्तार से हुआ जिनकी विस्तृत चर्चा उनकी रहस्यानुभूति के प्रसग में की जा चुकी है , यहाँ सक्षेप मे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है .

गर्व— उनसे कैसे छोटा है, मेरा यह भिक्षुक जीवन।
उनमें अनन्त करुणा है, इसमें असीम सूनापन॥

निर्वेद— चिन्ता क्या है हे निर्मम बुझ जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा॥

दैन्य— सिन्धु को क्या परिचय दे देव ! बिगड़ते बनते बीचि विलास।
क्षुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश॥

इसी प्रकार प्रेम की विभिन्न भाव-दशाओ—मिलनाकांक्षा, प्रतीक्षा, अभिसार मिलन, विरह आदि का निरूपण भी उनके काव्य मे हुआ है। उनको प्राप्त करने की आकांक्षा—"अलि कैसे उनको पाऊँ !" मे व्यक्त हुई, तो मिलन के मधुर स्वप्नो की कल्पना करती हुई वे कहती है ·

जब असीम से हो जायेगा, मेरी लघु सीमा का मेल।
देखोगे तुम देव, अमरता खेलेगी मिटने का खेल॥

मिलन की आशा से उनके हृदय और मन की क्या दशा हो जाती है—देखिये :

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर भर
× × ×
तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन।
मेरी पलकों में पग धर धर॥

महादेवी अपने कई गीतों मे मिलन की तैयारी करती हुई दिखाई पडती हैं, जैसे :

> हे नभ की दीपावलियां, तुम पल भर को बुझ जाना।
> मेरे प्रियतम को भाता है, तम के पर्दे में आना ।।

किन्तु अन्त मे वह आता है या नही इसका स्पष्ट उल्लेख उनके काव्य मे नही मिलता। संभवत उस अलौकिक प्रियतम से जीवन मे मिलना संभव भी नही। आत्मा शरीर से मुक्त होकर ही परमात्मा का साक्षात्कार कर सकती है, किन्तु उस स्थिति मे दोनो का द्वैत भाव नष्ट हो जायगा और द्वैत नष्ट होते ही प्रेम का आधार समाप्त हो जायगा। इसलिए महादेवी इस प्रेम-शून्य मिलन की अपेक्षा प्रेम-युक्त विरह को ही स्वीकार किये हुए है :

> मिलन का मत नाम ले,
> विरह में मै चिर हूँ।

● **रसानुभूति**—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी ने 'वेदना' का प्रयोग 'प्रणय-वेदना' के अर्थ मे करते हुए निजी अनुभूतियो की व्यंजना की है। उनके काव्य मे प्रणय की विभिन्न भाव दशाओं का निरूपण अत्यन्त भावात्मक रूप में हुआ है फिर भी उसे शृंगार रस का काव्य नही कहा जा सकता। जैसा कि अन्यत्र स्पष्ट किया जा चुका है, उनके काव्य की मूल भावना रहस्यपरक है, शृंगार-परक नही, शृंगार का आरोपण उसमे अप्रस्तुत रूप मे ही हुआ है। इसीलिए शृंगार रस की आधारभूत प्रवृत्तियाँ—यौन भावना, शारीरिकता, मासलता का उसमे सर्वथा अभाव है। हाँ, विरहानुभूति से सम्बन्धित विभिन्न प्रवृत्तियाँ जो कि प्रेम के लौकिक एवं अलौकिक—दोनो रूपों से सम्बद्ध है, उनमे भी उपलब्ध होंगी। प्रेम के इन दोनो रूपो का सामान्य तत्त्व मुख्यतः एक ही है—वेदना भाव ; उसकी अभिव्यक्ति निश्चित ही उनके काव्य मे सफलतापूर्वक हुई है। शृंगार रस मे से शारीरिकता, कामुकता एवं संयोग को निकाल देने पर शुद्ध भाव के रूप मे जो कुछ अवशिष्ट रह जाता है वह सूक्ष्मरूप मे महादेवी का वेदना भाव या प्रणय भाव है ; इसमे कोई सदेह नही।

(ख) महादेवी का करुण भाव

'करुण भाव' से हमारा आशय करुणा की भावना या सहानुभूति और सवेदना की भावात्मकता अनुभूति से है। जैसा कि महादेवी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते समय स्पष्ट किया गया था, करुणा की वृत्ति उनमें जन्मजात है। बाल्यकाल मे ही छोटे-छोटे पौधो और पशु-पक्षियो तक के दु.ख की कल्पना-मात्र से उनका हृदय द्रवित

हो जाया करता था—जो उनकी अतिशय करुणा का सूचक है। आगे चलकर बौद्ध-साहित्य के अनुशीलन से उनकी यह करुण भावना अपेक्षाकृत सूक्ष्म, एव सतुलित हो गयी, क्योकि वौद्ध दर्शन के अनुसार दु ख इस जगत् का अनिवार्य तत्त्व है—अतः दुःख से, चाहे वह अपना हो या पराया, ग्रस्त होना अज्ञान का सूचक है। यही कारण है कि उनकी प्रारभिक रचनाओ में करुणा का स्वर अधिक आर्द्र है जो क्रमश. परवर्ती रचनाओं मे शुष्क एव शान्त निर्वेद मे परिणत हो गया है।

महादेवी की करुण भावना का आलम्बन मुख्यत पुष्प है। पुष्प उस भोले-भाले व्यक्ति का प्रतीक है जिसके हृदय मे कोई कपट नही और वाहरी रीतियो से जो परिचित नही। वह भरसक अपनी हँसी और सुवास से दूसरो को सुख पहुँचाता है पर निष्ठुर और कृतघ्न जगत् उसे वदले मे अपमान और दु ख की ही कडवी घूंट पिलाता है। पुष्प की इस वचनापूर्ण कहानी को कवयित्री ने वार-वार सहानुभूतिपूर्ण शब्दो मे प्रस्तुत किया है ; यथा :

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुओं से सहम अभिराम
तारकों से हे मूक अजान।
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण !

यहाँ पुष्प के उस कोमल, मधुर एव आकर्षक व्यक्तित्व का निरूपण किया गया है जो सहज ही किसी सहृदय की भावनाओ का केन्द्र वन सकता है, इसके अनन्तर उसके क्रिया-कलापो मे किसी वाल-शिशु के भोलेरूप का दिग्दर्शन करवाती हुई कवयित्री कहती हैं :

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आजात याद।
हेरती है सौरभ की हाट
कहो, किस निर्मोही की वाट !

और अन्त मे वे पूछती है.

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?

तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार !

जैसे किसी भारी भीड मे फँसे हुए, राह भुले हुए किसी अजान शिशु को देखकर सहृदय व्यक्ति पूछ बैठता है—इसके माँ-बाप कैसे निष्ठुर है जो इस भीड मे इसे अकेला छोड गये !—कुछ इसी प्रकार महादेवी फूल को देखकर पूछती है—'कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?'

इस कविता मे पुष्प के प्रति वात्सल्यपूर्ण सहानुभूति व्यक्त की गयी है जिसमें भावना की कोमलता और मधुरता तो है पर गंभीरता नही ; करुणा इतनी तीव्र नही है कि वह हमारे हृदय को आलोडित कर दे। इसका कारण यह है कि यहाँ पुष्प का कोमल व्यक्तित्व वस्तुतः स्वय कवयित्री के ही व्यक्तित्व का प्रतिनिधि है ! पुष्प भी इस काँटों भरी दुनिया के लिए अनजान है, अयोग्य है, कवयित्री भी आज के भौतिकतावादी संसार मे अपने-आपको परदेशिनी ही अनुभव करती है ! पुष्प के माध्यम से वह अपनी स्थिति का साक्षात्कार करती हुई अन्त मे इस निष्कर्ष को स्वीकार करती है :

हँसो पहनो काँटो के हार
मधुर भोलेपन के संसार

इस अतिम सत्य के कारण करुणा की धारा यहाँ नियंत्रित एवं सतुलित—सीमित रूप मे प्रवाहित हुई है।

निष्ठुर ससार के हाथो पीडित पुष्प के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए एक अन्य कविता मे भी कहा गया है :

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
'जिसके पथ में बिछे वही,
क्यों भरता इन आँखों में धूल ?'
'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौंरों की गुञ्जार ;
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार !

यहाँ भी मुरझाये फूलो की दयनीय स्थिति का बोध मार्मिक शब्दो में प्रस्तुत किया गया है पर फिर भी उसमें करुणा की अपेक्षा संसार की निष्ठुरता पर अधिक बल है ; एक प्रकार से पुष्पो की करुण परिणति सासारिक विरक्ति की पोषक है—अत. कहा जा सकता है कि यहाँ भी करुण भाव संचारी रूप मे ही है, स्थायी रूप में नही।

पर एक अन्य कविता में यह करुण भाव अपेक्षाकृत अधिक गंभीर रूप मे व्यक्त हुआ है :

था कली के रूप शौशव—
में अहो सूखे सुमन,
मुस्कराता था, खिलाती
अंक में तुझको पवन !

खिल गया जब पूर्ण तू—
मंजुल सुकोमल पुष्पवर,
लुब्ध मधु के हेतु मँडराते
लगे आने भ्रमर !

× × ×

कर रहा अठखेलियाँ
इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया—
था कभी क्या ध्यान में,

सो रहा अब तू धरा पर—
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाता हुआ !

× × ×

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिये दानी सुमन ?

मत व्यथित हो फूल किसको
सुख दिया संसार ने
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने !

यद्यपि यहाँ भी अन्त मे संसार की स्वार्थपरता पर ही वल दिया गया है, पर फिर भी पुष्प की यौवनकालीन सुखद स्थिति से उसकी अन्तिम दुखद परिणति की तुलना करते हुए उसके प्रति करुण भाव की भी अभिव्यक्ति गभीर रूप मे हुई है। कवयित्री का व्यक्तित्व दार्शनिक तथ्यो एव सत्यो से सदा इस प्रकार अनुप्राणित रहता है कि उसकी कोई भी भावना शुद्ध भावना के रूप में कदाचित् कभी व्यक्त नही होती, वौद्धिकता का आधार या आवरण उसके ऊपर-नीचे कही अवश्य विद्यमान रहता है—

अतः इस कविता मे भी पुष्प की उदारता एव संसार की स्वार्थपरता का बोध विद्यमान है पर फिर भी करुण भाव की इससे कोई क्षति नही हुई है। जहाँ तक हमे पता है, करुण भाव की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महादेवी की यह सर्वश्रेष्ठ कविता है—करुणा का उद्रेक इससे अधिक गभीर रूप मे उनके किसी भी अन्य गीत में उपलब्ध नहीं होता।

अनेक बार महादेवी के काव्य मे करुणा का आलम्बन यथार्थ न होकर काल्पनिक होता है ; प्रकृति के नाना रूपो मे करुण रूप को ही देखना उनकी निजी कल्पना का ही परिणाम कहा जा सकता है। आसमान के बादल उन्हे प्राय. दु.ख भरे श्वास लेते हुए, रुदन करते हुए या आँसू बहाते हुए ही दृष्टिगोचर हो तो इसे वास्तविकता माने या कवयित्री की अपनी कल्पना ? यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :

(क) तरल हृदय की उच्छ्वासें
जब भोले मेघ लुटा जाते !

(ख) शून्य नभ पर उमड़ जब दुख भार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओ के हार सी ;
तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?

(ग) कहाँ से आये बादल काले ?
कजरारे मतवाले !
× × ×
आँसू का तन, विद्युत् का मन,
प्राणो में वरदानों का प्रण,
धीर पदों से छोड़ चले घर,
दुःख-पाथेय सँभाले !

उपर्युक्त तीनो अशों मे ही मेघो के दु खपूर्ण रूप का चित्रण किया गया है फिर भी कवयित्री के मन मे करुणाजन्य गंभीर वेदना या सवेदना का अभाव है। वह उनके दु·ख को सहानुभूति की दृष्टि से नही अपितु प्रशसा की दृष्टि से देखती है क्योंकि उसका लक्ष्य·दु.ख को सहन करने की क्षमता प्राप्त करना है।

इस प्रकार कवयित्री क्रमशः करुणा से दु ख और निर्वेद की ओर अग्रसर हो जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप वह स्वयं को और दूसरो को अधिक से अधिक दु·ख सहन करने की प्रेरणा देती है। वस्तुत· यह दृष्टिकोण उनकी करुण भावना के तीव्र भावात्मक विकास मे बाधक सिद्ध होता है, इससे उनकी भावनाओं का प्रवाह सयमित, सतुलित

एवं शमित होकर बौद्धिक शान्ति मे परिणत हो जाता है। अत. कह सकते हैं कि उनके काव्य मे करुणा स्थायी भाव न होकर एक सबल सचारी के रूप मे ही व्यक्त हुई है।

(ग) महादेवी का दुःखवाद

'दु खवाद' से अभिप्राय दु ख की अभिव्यक्ति नही, अपितु दु.ख की स्वीकृति है। सामान्यत. लोग दु.ख से दूर भागते है जबकि कवयित्री महादेवी अपने काव्य मे दु ख को स्वीकार करती हुई तथा उसका गुण-गान करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं—इसी वैचित्र्य के कारण उनके इस दृष्टिकोण को व्यग्यात्मक रूप मे 'दु खवाद' के नाम से पुकारा जाता है। जैसा कि आरंभ मे स्पष्ट किया गया है—महादेवी मे दु.ख से सम्बन्धित तीन प्रवृत्तियाँ—प्रणय वेदना, करुणा और दु.ख की स्वीकृति—मिलती हैं, जिन्हे आलोचको ने घुला-मिला कर एक कर दिया है। वस्तुत ये तीनो प्रवृत्तियाँ अलग-अलग आलम्बनो से सम्बद्ध है, अत· इनका विवेचन-विश्लेपण पृथक्-पृथक् ही किया जाना चाहिए। इनमे से प्रथम दो का विवेचन तो 'क' और 'ख' के अन्तर्गत हो चुका है, अत. अब तीसरी प्रवृत्ति पर विचार किया जाता है।

● **दुःखवाद के मूलाधार**—महादेवी को दु ख इतना प्रिय क्यो है—इस प्रश्न पर न केवल आलोचको ने अपितु स्वय कवयित्री ने भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है। 'यामा' की भूमिका मे उन्होने लिखा है—"सुख और दु.ख के धूपछाँही डोरो से बुने हुए जीवन मे मुझे केवल दु ख ही गिनते रहना क्यो इतना प्रिय है, यह बहुत लोगो के आश्चर्य का कारण है। इस क्यो का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नही है। ससार साधारणतः जिसे दु.ख और अभाव के नाम से जानता है। वह मेरे पास नही है। जीवन मे मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दु.ख की छाया नही पडी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। -इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान वुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके ससार को दु·खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

· · ····अवश्य ही इस दु खवाद को मेरे हृदय मे एक नया जन्म लेना पडा, परन्तु आज तक उसमे पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहचानने मे भूल नही कर पाती—

·······दु.ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एक सूत्र मे बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख हमे चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दु.ख सबको बाँटकर—विश्व जीवन मे अपने जीवन को, विश्व-वेदना मे अपनी वेदना

को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र मे मिल जाता है, कवि की मोक्ष है।" (यामा : भूमिका)

महादेवी के उपर्युक्त वक्तव्य का विश्लेपण करने पर उनके दुःखवाद के सम्वन्ध मे चार तथ्यो का सकेत मिलता है—(१) उनके दु.खवाद का उनके व्यक्तिगत दु ख या अभाव से कोई सम्वन्ध नही है। व्यक्तिगत जीवन मे उन्हे अतिशय सुख मिला है, कदाचित् उसी की प्रतिक्रिया दुःखवाद के रूप मे हुई हो। (२) वौद्ध दर्शन का भी उन पर गहरा प्रभाव है। (३) उनके दु खवाद के मूल मे पिछले जन्म के भी कुछ सस्कार हैं। (४) मनोवैज्ञानिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से दु ख का जीवन और समाज मे अधिक महत्त्व है।

इन चार कारणो मे से हम किसे स्वीकार करे और किसे नही—इसका निर्णय करने के लिए इन पर आपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया जाता है।

(१) **व्यक्तिगत सुख की प्रतिक्रिया**—अपने दु खवाद के सम्वन्ध मे सवसे पहले कारण की संभावना करते हुए कवयित्री ने उसे व्यक्तिगत सुख की प्रतिक्रिया माना है। पर साथ ही 'कदाचित्' शब्द का प्रयोग यह भी सूचित करता है यह मान्यता निश्चित नही है—उस पर उन्हे सदेह भी है'। इधर श्री विशवम्भर 'मानव ने स्वयं कवयित्री के ही साहित्य के निम्नाकित उद्धरण प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महादेवी के जीवन में निश्चित ही अभाव की अनुभूति है[1]—

'समता के धरातल पर सुख-दु.ख का मुक्त आदान-प्रदान यदि मित्रता की परिभापा मानी जाये तो मेरे पास मित्र का अभाव है।'

'रहा दुःख का प्रकटीकरण—सो उसका लेशमात्र भी भार वनाकर किसी को देना मुझे अच्छा नही लगता।'

'पढ़ना समाप्त करते ही मैंने स्वय अनेक विद्यार्थियो की चिन्ता करने का कर्त्तव्य स्वीकार कर लिया ; अत. मुझे हठकर खिलाने वाले व्यक्तियो का अभाव ही रहा है।'

ये तीनो ही उद्धरण महादेवी के 'अतीत के चलचित्र' से उदधृत है जो इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि भले ही भौतिक सुख-साधनों एवं वाह्य समृद्धि की दृष्टि से कवयित्री को सभी-कुछ प्राप्त हो किन्तु भावात्मकता के स्तर पर उनके जीवन मे भी अभाव की सूक्ष्म अनुभूति अवश्य रही है। वह अभाव है—एक समान विचार-धारा वाले मित्र या प्रिय व्यक्ति का जिसके साथ भावो का आदान-प्रदान किया जा सकता है। अवश्य ही उन्होंने अपने वैवाहिक जीवन को ठुकरा कर तथा आमरण वैराग्य का व्रत लेकर जानवूझकर ही इस अभाव को अपनाया है, फिर भी अभाव तो है ही। यदि हम जानवूझकर ही कटको के पथ पर चलें तो भी कांटे चुभते ही है, कष्ट भी

१. महादेवी की रहस्यसाधना, पृ० २०।

होता ही है—यह दूसरी बात है कि उस स्थिति मे हम किसी और को दोप न देते हुए स्वय को ही उत्तरदायी मानते हुए सहिष्णुता एवं धैर्य्य के साथ उस चुभन को सहन कर लेगे। महादेवी की भी यही स्थिति है।

दूसरे, लौकिक प्रणय के अभाव की पूर्त्ति उन्होने अलौकिक प्रणय द्वारा या प्रेम के उदात्तीकरण द्वारा करली है, पर उनका अलौकिक प्रेम भी विरह-प्रधान है—अतः वह भी उनकी व्यथा का स्थायी आधार है।

ऐसी स्थिति मे उनके दु·ख को केवल 'सुख की प्रतिक्रिया' के रूप मे स्वीकार करना कठिन है। उनका 'कदाचित्' शब्द उपयुक्त ही है।

(२) **बौद्ध दर्शन का प्रभाव**—बौद्ध दर्शन की विस्तृत चर्चा करते हुए अन्यत्र यह स्पष्ट किया जा चुका है कि दु.ख के सम्बन्ध मे बुद्ध के चार आधारभूत सिद्धान्त ये है—(१) ससार दु खो से परिपूर्ण है। (२) दु ख के पीछे कारण है। (३) सासारिक दु.खो से छुटकारा मिल सकता है। (४) दु.ख से छुटकारा पाने का उपाय भी है। इन्ही चार सिद्धान्तो को बौद्ध मत मे चार आर्य सत्यो के रूप मे मान्यता दी गयी है।

सक्षेप मे बुद्ध के मतानुसार ससार के समस्त दु·ख का मूल कारण तृष्णा है—हम अपनी तृष्णाओ के कारण दुःखी होते है और यदि इन तृष्णाओ से मुक्ति पालें तो दु ख से भी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो तृष्णाओ से मुक्ति का अर्थ है सुख-प्राप्ति की कामनाओ का त्याग या दु.ख की स्वीकृति। अत. सक्षेप मे दुःख को जगत् का नित्यलक्षण मानते हुए उससे भागने की अपेक्षा उसे पूर्णत स्वीकार कर लेना ही, उससे मुक्ति पाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय है। इसी मनः स्थिति को प्राप्त कर लेना निर्वाण है। महादेवी मे भी दुःख के प्रति यह दृष्टिकोण प्राय. दृष्टिगोचर होता है; यथा :

> **सुख की चिर पूर्त्ति यही है**
> **उस मधु से फिर जावे मन।**
> × × ×
> **चिर ध्येय यही जलने का**
> **ठंडी विभूति बन जाना;**
> **है पीड़ा की सीमा यह**
> **दु·ख का चिर सुख हो जाना!**
> × × ×
> **यह चिर अतृप्ति हो जीवन**
> **चिर तृष्णा हो मिट जाना!**

यहाँ सुख की स्थायी प्राप्ति का साधन सुख या माधुर्य से विरक्ति को ही माना गया है। यदि तृष्णाये ही समाप्त हो जायँ तो जीवन मे दु ख स्वय सुख मे परिणत हो जायगा—और यदि कोई, तृष्णा या इच्छा हो तो वह केवल 'मिटजाने' की ही हो तो उस स्थिति मे दु.ख कहाँ रहेगा।

सासारिक जीवन के समस्त दु ख का मूलकारण इन अस्थिर, अनित्य एव क्षण-भगुर पदार्थो एव व्यक्तियो से मोह करना, उन्हें स्थायी रूप मे प्राप्त करने की आशा, कामना या आकाक्षा से उद्वेलित होना ही है :

मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यो हे भोले जीवन !
तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश !
× × ×
मानते विष को संजीवन
मुग्ध मेरे भूले जीवन !

या—

यहाँ किसका अनन्त यौवन
अरे अस्थिर छोटे जीवन !
× × ×
तुम्हे करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन !

अस्तु, जैसा कि पीछे महादेवी के जीवन-दर्शन की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है, कवयित्री पर बौद्ध मत का गहरा प्रभाव है जिसके कारण वे दु:ख का मूल कारण सुख-प्राप्ति की इच्छाओं को मानती हुई उनके शमन के लिए तथा दु:ख को स्वीकार करने के लिए प्रयत्नशील रहती है। बौद्ध दर्शन की पृष्ठभूमि के आधार पर यदि विचार किया जाय तो कवयित्री का यह प्रयास अस्वाभाविक या विचित्र प्रतीत न होगा। जिस व्यक्ति ने जीवन के आरभ मे ही बौद्ध दर्शन को आत्म-सात् कर लिया हो, वह यदि सुख के प्रति अरुचि एव दु:ख के प्रति स्वीकृति का भाव व्यक्त करे तो नितान्त स्वाभाविक है। अत: हमे इस तथ्य को स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है कि महादेवी के दु.खवादी दृष्टिकोण के पोषण मे बौद्ध दर्शन के प्रभाव का गहरा योग है।

(३) पूर्वजन्म के संस्कार—भारतीय अध्यात्मवादी चिन्तको ने प्राय यह स्वीकार किया है कि पूर्वजन्म के सस्कारो का अभाव अगले जन्मों मे भी विद्यमान

रहता है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार पिछले जन्म मे हमारी जैसी इच्छाएँ, भावनाएँ एव आकाक्षाएँ होती है उन्हीं के अनुरूप हमारा अगला जन्म होता है। पूर्व-जन्म की भावात्मक प्रवृत्तियाँ ही अगले जन्म मे मूल वृत्तियो के रूप मे विद्यमान रहती है। अत महादेवी का यह कहना कि उनके दु खवाद के मूल मे पूर्वजन्म के सस्कार है, इस बात का सूचक है कि दु.ख की प्रवृत्ति उनमे जन्म-जात है। आधुनिक मनो-विश्लेषण के अनुसार कहा जा सकता है कि उनका दु ख-बोध केवल चेतन स्तर तक ही सीमित नही है अपितु अचेतन मन मे भी उसका प्रभाव अकित है। वस्तुत. महादेवी में जन्म से ही करुणा एवं सासारिक सुखो से जैसी विरक्ति है—वह उनके पूर्व सस्कारो पर आधारित जन्मजात प्रवृत्ति ही है। जो पुनर्जन्म को नही मानते, उनके लिए इसका इतना ही अर्थ है कि दु ख सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ उनके अचेतन मन मे जीवन के आरभ से ही विद्यमान हैं। वस्तुत जिन प्रवृत्तियो से हमारा जन्मजात सम्बन्ध होता है वे ही जीवन मे स्थायी, गंभीर एव व्यापक रूप मे विकसित होती है जबकि परवर्ती आरोपित प्रवृत्तियाँ प्राय. अस्थिर सिद्ध होती है।

(४) मनोवैज्ञानिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से दुःख का महत्व—प्राय. विभिन्न साधको एवं कवियो ने यह स्वीकार किया है की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुख की अपेक्षा दु ख का अधिक महत्त्व है। सुख जहाँ व्यक्ति के मन मे सकीर्णता, स्वार्थपरता, अह-वादिता एव अन्य तुच्छ भावो का सचार करता है, वहाँ दु ख व्यक्ति के मन को कोमल, उदार, भाव-प्रवण, व्यापक एवं उदात्त बनाता है। महादेवी भी इस मान्यता को स्वीकार करती हैं; यथा .

> **उसमें मर्म छिपा जीवन का,**
> **एक तार अगणित कम्पन का,**
> **एक सूत्र सबके बन्धन का,**
> × × ×
> **वह उर में आता बन पाहुन**
> **कहता मन से 'अब न कृपण बन'**
> **मानस की निधियाँ लेता गिन**
> **दृग-द्वारों को खोल विश्वभिक्षुक पर, हँस बरसा जाता !**

इसके विपरीत सुख व्यक्ति को कितना स्वार्थी, कृपण एवं अनुदार बना देता है; यह कवयित्री के शब्दो मे द्रष्टव्य है .

> **मृग-मरीचिका के चिर पथ पर,**
> **सुख आता प्यासो के पग धर,**

रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता ?

इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक दृष्टि से भी आत्मा के परिष्कार एव साधना के विकास के लिए साधक के लिए दु.ख ही श्रेयस्कर है । महात्मा कबीर ने भी इस तथ्य को बार-बार स्पष्ट किया है :

सुख के माथे सिल पड़ै, नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी वा दुःख की, पल-पल नाम रटाय ।।

या—

कबीर हँसना दूरि करि रोवण सों करि चित्त ।
बिन रोया क्यों पाइये, प्रेम पियारा मित्त ।।

वस्तुतः रहस्यवादी साधक और कवि के लिए तो इस दुःखानुभूति का और भी अधिक महत्त्व है । वह तो भावनाओ के माध्यम से ही प्रिय का साक्षात्कार करता है, अत उसकी भावनाएँ जितनी ही तीव्र और गभीर होगी उतनी ही उसे लक्ष्यपूर्ति मे अधिक सफलता प्राप्त होगी । दूसरे, दु.ख से ही आत्म-विस्तार होता है जिससे ससीम और असीम मे मेल संभव है ; कवयित्री के शब्दो मे :

दुःख के पद छू बहते झरझर,
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता !

उपर्युक्त उद्धरणो से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी दुःख को इतना अधिक क्यो चाहती है । वस्तुत. जन्मजात प्रवृत्तियो के कारण उनमे करुणा की भावना प्रबल रही, बौद्ध दर्शन के प्रभाव के कारण यह करुणा दु ख की स्वीकृति मे परिणत हो गयी, निजी जीवन की विरक्ति ने इस स्वीकृति को जीवन की यथार्थ अनुभूति का रूप दे दिया तो अन्त में अलौकिक प्रणय, रहस्यवादी साधना एवं आत्म-चिन्तन से उन्हे यह बोध हो गया है कि दु ख ही जीवन का सार है, जिसकी गभीरता मे ही चरम लक्ष्य की पूर्त्ति निहित है । इस प्रकार महादेवी मे दुःख की भावना अनेक स्रोतों से क्रमशः विकसित होती हुई अन्त में एक ऐसे बोध मे परिणत हो गयी है, जहाँ दु.ख दु.ख न रह कर अन्तरात्मा का अभीप्सित साध्य ही बन गया है—ऐसी स्थिति मे यदि दुःख उन्हे सुख ही प्रतीत हो तो क्या आश्चर्य है ।

● **दुःख सम्बन्धी विभिन्न भावात्मक प्रवृत्तियाँ**—महादेवी के उपर्युक्त दुःख बोध

का विकास क्रमशः हुआ है, अतः उनमें दुःख के प्रति विभिन्न भावात्मक प्रवृत्तियाँ दृष्टि-गोचर होती है। यहाँ कुछ प्रवृत्तियो का उल्लेख किया जाता है।

(क) **प्रकृति में दुःख का प्रत्यक्षीकरण**—प्रारभ मे कवयित्री दु.ख के प्रति सहिष्णु कम, उससे विह्वल अधिक है, अतः वह प्रायः प्रकृति के क्रिया-कलापो मे भी दु.ख का साक्षात्कार करती हैं ; जैसे :

धीरे से सूने आँगन में फैला जब जाती हैं रातें
भर-भर के ठंढी सांसों में मोती से आँसू की पातें ;
उनकी सिहराई कम्पन में
किरणों के प्यासे चुम्बन में !
× × ×
कन-कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन !

यहाँ कवयित्री अपने ही सूनेपन को समस्त प्रकृति में देखती है, जिसमे दुःख के प्रति कोई आकर्षण दिखाई नही पड़ता।

(ख) **सुख और दुःख में द्वन्द्व**—सृष्टि मे सुख भी है और दुःख भी—ऐसी स्थिति मे वह किसे देखे और किसे नही ? यह प्रश्न भी कई बार कवयित्री के मन में द्वन्द्व का कारण वन जाता है :

कह दे माँ क्या अब देखूँ !
× × ×
सौरभ पी-पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुःख की घूँटें पीतीं या
ठंढी साँसों को देखूँ !

जीवन और जगत् में दु.ख की प्रधानता को देखकर कई वार कवयित्री निराशा और क्षोभ से भी ग्रस्त हो जाती हैं :

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
× × ×
सिकता में अंकित रेखा सा,
वात-विकम्पित दीपशिखा सा ;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान !

यहाँ जीवन की क्षणभगुरता जन्य दु.ख से कवयित्री दु.खी एव सतप्त दिखाई पडती है—दु·ख को स्वीकारने की अपेक्षा वह यह चाहती हैं कि इस दुःखमय संसार मे जीवन ही न धारण करना पडे। वस्तुत. ये पक्तियाँ 'रश्मि' से उद्धृत है जबकि कवयित्री दु ख के साथ सामजस्य स्थापित नही कर पायी थी।

(ग) **दुःख की साधन-रूप में स्वीकृति**—धीरे-धीरे कवयित्री को बोध होता है कि साध्य की उपलब्धि दु.ख रूपी साधन से ही सभव है, अत· वह दु ख को अपनाने लगती है, इसीलिए वह कामना करती है

झरते नित लोचन मेरे हों!
×   ×   ×
वह सूनापन हो उनका,
यह सुख-दुःख मय स्पन्दन मेरे हों!

और इसीलिए वे प्रियतम को दु ख के रूप मे आमन्त्रित करने लगती हैं :

तुम दुख बन इस पथ से आना!
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन;
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना!

स्पष्ट ही यहाँ दु ख दु ख के लिए नही है अपितु इस लक्ष्य से है कि कदाचित् प्रिय भी दु.ख के रूप मे उन्हे प्राप्त हो जायँ! यहाँ हृदय का बिंधवाना केवल बिंधवाने के लिए नही है अपितु हार बनने के लिए है। अत. दु ख साधन रूप मे ही है—साध्य रूप मे नही।

(घ) **दुःख साध्य रूप में**—पर आगे चलकर दु.ख साधन से साध्य वन जाता है। ऐसी स्थिति में उन्हे दु ख ही सुखमय और सुख दु खमय प्रतीत होने लगता है :

दुःखमय सुख
सुख भरा दुख,
कोन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते!

या—

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा;
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा!

और अन्त मे वह चिर व्यथा को ही अपनी स्थायी निधि के रूप मे स्वीकार कर लेती हैं ·

प्राण हँस कर ले चला जब
चिर व्यथा का भार ?
× × ×
अब न लौटाने की कहो
अभिशाप की वह पीर,
बन चुकी स्पन्दन हृदय में
वह नयन में नीर !
अमरता उस में मनाती है मरण-त्योहार ! —दीपशिखा

अपनी साधना की चरम स्थिति मे उन्हे वोध होता है कि खोज ही प्राप्ति है, साधना ही सिद्धि है और रुदन ही स्थायी सुख है

खोज ही चिर प्राप्ति का वर,
साधना ही सिद्धि सुन्दर,
रुदन में सुख की कथा है
विरह मिलने की प्रथा है,
शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष में !

इस प्रकार कवयित्री अन्त मे दु.ख को अपने जीवन की साधना या अतिम सिद्धि मानती हुई उसके साथ चिर स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। वस्तुत दु ख के इस चिर स्थायी सम्वन्ध के मूल मे सवसे वडा कारण आध्यात्मिकता ही है—अर्थात् अध्यात्मपथ की पथिक होने के कारण ही वे दु ख को अपना चिर सगी मानती है। ऐसी स्थिति मे कहा जा सकता है कि महादेवी अनेक मानसिक उतार-चढावो के अनन्तर दु.ख के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेती है। इस सम्वन्ध मे स्वय उन्होंने भी लिखा है—'नीहार के रचना-काल मे मेरी अनुभूतियो मे वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी···· रश्मि को उस समय आकार मिला जव मुझे अनुभूति से अधिक चिन्तन प्रिय था। परन्तु नीरजा और साध्यगीत मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमे अनायास ही मेरा हृदय सुख-दु ख मे सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। पहले वाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम मे ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हृदय मे खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव मे एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख-दु.ख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त मे मेरे मन ने न जाने कैसे उस वाहर-भीतर मे

एक सामञ्जस्य सा ढूँढ लिया है जिसने सुख-दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।'

अस्तु, महादेवी का यह बहुचर्चित दुःखवाद उनके हृदय के क्रमिक विकास एव आत्मा के क्रमिक विस्तार पर आधारित है ; उसे हम अपनी दृष्टि से देखकर भले ही चौके, विस्मित हो और अन्त मे अस्वाभाविक या असभव घोषित करे, किन्तु कवयित्री के दृष्टिकोण से परखने पर वह उनके भावात्मक जीवन एवं आध्यात्मिक अनुभव का एक अनिवार्य अग दिखाई पडता है। वह उनकी साधना का प्रारंभ मे प्रेरक, मध्य में संवल और अन्त में लक्ष्य बन गया है।

वस्तुत. महादेवी के काव्य का मूल भाव या स्थायी भाव जहाँ अलौकिक प्रणय एव रहस्यानुभव है, वहाँ उसके सहचारी—सचारी नही, करुणा, निर्वेद और दु.ख हैं। प्रारभिक करुणा ही अन्त मे सुख के प्रति निर्वेद एवं दु ख के प्रति अनुराग मे परिणत होकर वैराग्य मे परिणत हो गयी है। अध्यात्मपथ के पथिक के लिए जब राग का केन्द्र अलौकिक हो जाता है तो लौकिक क्षेत्र का विराग से परिपूर्ण हो जाना स्वाभाविक है। अत. यदि हम उनके प्रेम के आध्यात्मिक पक्ष को स्वीकार करने को प्रस्तुत है तो उनके लौकिक वैराग्य—दु'ख की स्वीकृति—को भी सहज स्वाभाविक मानने मे संकोच न करना चाहिए। जैसा कि स्वयं कवयित्री ने कहा है, जब प्रेम का आलम्बन किसी और लोक का हो जाता है तो इस दुनिया का रुदन प्रहरी के रूप मे और मृत्यु निर्वाण के तुल्य दृष्टिगोचर होने लगती है :

पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !

अस्तु, हमारे विचार मे उनकी प्रणय-वेदना, करुणा और दु'खवाद के मूल स्रोतो एवं आधारों के भिन्न-भिन्न होते हुए भी अन्ततः वे एक दूसरे के पूरक एव साधक ही है—अत. इनसे उनके काव्य मे कोई असगत या परस्पर-विरोधी स्थिति उत्पन्न नही होती—वे सब उन्हे किसी दूर देश की ओर अग्रसर करने मे सहायक एवं गति वर्द्धक ही सिद्ध होते है।

* * *

७

महादेवी के काव्य में प्रकृति

"प्रकृति को संगिनी के रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति इतनी भारतीय है कि उत्कृष्ट काव्यों से लेकर लोकगीतों तक व्याप्त हो चुकी है। ऐसा कोई लोकगीत नहीं जिसमें मनुष्य अपने सुख-दुःख की कथा कोयल-पपीहा, सूर्य-चन्द्र, गंगा-यमुना, आम-नीम आदि को न सुनाता हो और अपने जीवन के प्रश्न सुलझाने के लिए प्रकृति से सहायता न चाहता हो।'

—महादेवी

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन सृष्टि के उद्‍भव और विकास का इतिहास है। प्रकृति की गोद में ही प्रथम मानव-शिशु ने आँखें खोली थी, उसी की क्रोड मे खेलकर वह बड़ा हुआ और अन्त मे उसी के आलिंगन-पाश मे आवद्ध होकर वह चिरनिद्रा मे सोता रहा। प्रकृति के अद्‍भुत क्रिया-कलापों से ही कदाचित् उसकी हृदयस्थ भावनाओ—आश्चर्य, विस्मय, प्रेम आदि—का स्फुरण हुआ; उसी की नियमितता को देखकर ही शायद उसके मस्तिष्क मे उन जिज्ञासाओ एवं रुचियो का विकास हुआ जिनकी परिणति आगे चलकर दर्शन और विज्ञान मे हुई। अध्यात्म दर्शन और भौतिकवाद—दोनो की ही दृष्टि से प्रकृति का मानव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के अनुसार ब्रह्म के तीनो तत्त्वो—सत्, चित् और आनन्द में, से सत् तत्त्व प्रकृति और मनुष्य दोनो मे विद्यमान हैं तो दूसरे के अनुसार चेतन सृष्टि का विकास प्राकृतिक जड़ जगत् से ही हुआ—अतः दोनो ही दृष्टियों से मनुष्य का प्रकृति से सनातन सम्बन्ध है। आधुनिक मनोविश्लेषण की शब्दावली मे कहा जा सकता है

कि प्रकृति के रूप एवं सौन्दर्य का प्रभाव व संस्कार हमारे अचेतन मन की गहराई मे विद्यमान है , इसीलिए उसके प्रति हमारा स्थायी एव जन्मजात आकर्पण है । भले ही उस आकर्पण की व्याख्या हम शब्दो मे न कर सकें, किन्तु युग-युगों के काव्य मे व्यक्त प्रकृति-प्रेम उसे प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है ।

यथार्थ जीवन मे हम प्रायः प्रकृति को उपयोगिता की दृष्टि से देखते हुए उसके आन्तरिक गुणो का मूल्याकन करते है, जवकि काव्य-जगत् मे उसका साक्षात्कार कल्पना की आँखों से किया जाता है ; उस स्थिति मे उसके आन्तरिक गुणों की अपेक्षा उसका वाह्य सौन्दर्य ही अधिक ग्राह्य सिद्ध होता है । इसीलिए प्रकृति का सौन्दर्य हमारी कल्पना का केन्द्र वन जाता है । जव हमारी दृष्टि वर्तमान की अपेक्षा अतीत और भविष्य की ओर, यथार्थ की अपेक्षा कल्पना की ओर तथा उपयोगिता की अपेक्षा लालित्य की ओर उन्मुख होती है तो हम वस्तु-जगत् की अपेक्षा प्रकृति की ओर ही अधिक उन्मुख होते है । दूसरे शब्दों मे, जव कवि यथार्थ की अपेक्षा स्वच्छन्दता का, तथ्य की अपेक्षा कल्पना का और विचार की अपेक्षा भाव का अधिक अनुसरण करने लगता है तो उसके काव्य मे प्रकृति को अधिकाधिक स्थान प्राप्त होने लगता है—यही कारण है कि सदा स्वच्छन्तावादी काव्य में प्रकृति को अपेक्षाकृत अधिक सम्मान प्राप्त हुआ है । छायावादी काव्य पर भी यह वात लागू होती है ।

❂ काव्य में प्रकृति का प्रयोग—काव्य मे प्रकृति का उपयोग कई प्रकार से किया जाता है, जिसे एक आलोचक ने इन दस रूपो मे विभक्त किया है—(१) आलम्वन रूप मे, (२) मानवीकरण रूप मे, (३) उद्दीपन रूप मे, (४) प्रतीकात्मक रूप में, (५) विम्व-प्रतिविम्व रूप मे, (६) उपदेशिका के रूप मे, (७) अलकार-प्रदर्शन के रूप मे, (८) पृष्ठभूमि के रूप मे, (९) दूतिका के रूप मे और (१०) रहस्यात्मक रूप मे। हमारे विचार मे यह वर्गीकरण सुस्पष्ट एव तर्क-सगत नही है क्योकि इसमें अनेक भेदो की पुनरावृत्ति है तथा वे किसी निश्चित आधार पर नही हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से काव्यगत प्रकृति को मुख्यत. दो रूपो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) प्रस्तुत रूप मे । (२) अप्रस्तुत रूप मे । प्रस्तुत रूप के भी कई उपभेद किये जा सकते है, जैसे—आलम्वन रूप मे, उद्दीपन रूप मे, मानवीकृत रूप मे । मानवीकृत रूप मे ही प्रेयसी, दूतिका, आदि रूपो का समावेश हो जाता है । इसी प्रकार अप्रस्तुत रूप के भी अनेक उपभेद किये जा सकते है , यथा—उपमान रूप, प्रतीक रूप, अन्योक्ति रूप आदि । उपर्युक्त भेदो मे से अलकार-प्रदर्शन, बिम्व-प्रतिविम्व, उपदेशिका रूप आदि का भी समावेश इन तीनो रूपों मे ही हो जाता है क्योकि उपमान का सम्वन्ध सभी अलकारो से है तथा प्रतीक और अन्योक्ति से किसी भाव, विचार या उपदेश का प्रतिपादन होता है । अस्तु, प्रकृति के इन भेदो मे उपर्युक्त सभी भेदो का समाहार हो जाता है जिन्हे यहाँ तालिका रूप मे प्रस्तुत किया जाता है—
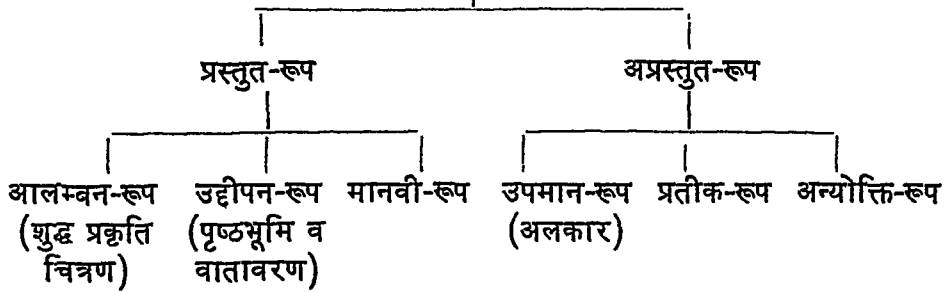
● **महादेवी का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण**—प्रकृति के प्रति महादेवी का वचपन से ही आकर्षण है, इस तथ्य की पुष्टि अनेक साक्ष्यो से होती है । श्री गगाप्रसाद पांडेय ने उनको 'जीवन-झाँकी' प्रस्तुत करते हुए एक स्थान पर लिखा है—'पढ़ाई प्रारम्भ के प्रथम दिन ही आप थोडी देर तक अध्यापक के पास बैठी रही और फिर छुट्टी की माँग पेश की । आवश्यकता पूछने पर अत्तर दिया—'फूल तोड लाऊँ नही तो माली तोडकर वावू (पिताजी) के गुलदस्ते मे लगा देगा जहाँ वे सूख जाते है । 'तो क्या तुम्हारे तोड़ने से नही सूखते ?' 'सूखते तो हैं पर भगवान्‌जी पर चढ़ने के बाद । फिर जिज्जी उन्हे नदी भेजवा देती है । माली उनको कूडे मे फेंकवा देता है और बाबू वीनने भी नहीं देते ।'[1] इस प्रश्नोत्तर से यह विदित होता है कि वाल्यकाल मे भी फूल महादेवी के लिए मात्र फूल नही थे, अपितु वे किसी चेतन सत्ता के प्रतिनिधि थे —उनके वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उनकी आन्तरिक सत्ता के प्रति उनका अधिक लगाव था । इसी प्रकार महादेवी की निकटतम भानजी सुश्री प्रीति अदावल अपने एक सस्मरण मे लिखती है—'पशु-प्रेम के वाद मेरे और मौसी के वीच तादात्म्य की दूसरी कडी है प्रकृति-प्रेम ।··· मौसी को सदा से गगा के किनारे रहना अच्छा लगता था, पहले झूँसी के खडहरो मे एक कमरा मिल गया था, फिर अरैल गाँव मे एक कच्चा घर रहने को ले लिया था ।···· फूलो, पेड-पौधो के प्रति प्रेम भी मुझमे शायद मौसी से ही आया है । हम लोग अव भी जव रामगढ से चलते हैं तो ढेरो पौधे, लिली के वल्व, जगली लताओ के वीज इकट्ठा करके लाते है ।'[2] पेड-पौधो के प्रति महादेवी की अतिशय सहानुभूति का पता इस प्रसंग से चलता है— '' 'रामगढ़ मे घर के सामने ही एक वीजू खूवानी का पेड़ उग आया और काफी वडा हो गया । मैं पहुँची तो शेरसिंह ने कहा कि इसे छाँट देना चाहिए, इससे धूप भी रुकती है और मकान की नीव भी कमजोर होती है । मैंने मौसी (महादेवी) से कहा तो वह सहमत नही हुई 'इतना अच्छा पेड है, कैसी

१. महादेवी-सस्मरण-ग्रन्थ ; पृ० १२ ।
२. वही ; पृ० १२०-१२१ ।

वढिया छाया देता है, इसे मत काटो ।'[3] स्वय कवयित्री ने भी एक स्थान पर लिखा है—'प्रकृति का शान्त रूप जैसे मेरे हृदय को एक चचल लय से भर देता है, उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशान्त स्थिरता देता है। अस्थिर रौद्रता की प्रतिक्रिया ही सभवत. मेरी एकाग्रता का कारण रहती है।.... मेरे निकट आँधी, तूफान, वादल, समुद्र आदि कुछ ऐसे विपय है जिन पर चित्र वनाना अनायास और वना लेने पर आनन्द स्थायी होता है।'[४] अस्तु, इन सव उल्लेखो से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति के प्रति कवयित्री के मन मे कितना अनुराग है। उनका यह अनुराग एक तो जन्मजात है, दूसरे उसमे प्रकृति मे स्थूल रूप के प्रति आकर्षण की अपेक्षा उसकी अंतश्चेतना के प्रति करुणा का भाव अधिक है। महादेवी के प्रकृति सम्वन्धी दृष्टिकोण की ये दो प्रमुख विशेषताएँ है।

महादेवी की जीवन-दृष्टि के विकास के साथ-साथ उनका प्रकृति सम्वन्धी दृष्टिकोण भी विकसित होता गया है। अद्वैतवादी विचार-धारा, सर्ववादी वोध, रहस्यवादी अनुभूति एव छायावादी अभिव्यजना का प्रभाव उनके प्रकृति-दर्शन पर भी पड़ा। अद्वैतवाद ने उन्हे वताया कि जड सृष्टि मे व्याप्त ससीम सत्ता एवं सूक्ष्म रूप मे विद्यमान असीम ब्रह्म मूलतः एक है। जड सृष्टि या प्रकृति भी मानव की भाँति ब्रह्म की ही सृष्टि है। स्वय उनके शव्दों मे—'प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता, चचलता-निश्चलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिविम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर है।'[५] इस प्रकार अद्वैत-दर्शन से उन्होने प्रकृति के प्रति सहोदर भाव या वन्धुत्व भावना का वोध प्राप्त किया। प्रकृति के प्रति सहज सहानुभूति तो उनमे पहले से ही थी, अद्वैत-ज्ञान ने उस भाव को सुदृढ़ एवं गम्भीर आधार प्रदान कर दिया।

सर्ववादी दृष्टि अद्वैतवादी दृष्टिकोण से भी अधिक व्यापक है। अद्वैतवादी जड़-जगत् या प्रकृति को ब्रह्म की या उसकी माया की सृष्टि तो मानता है पर साथ ही उसे मिथ्या भी घोपित करता है जवकि सर्ववादी के अनुसार प्रकृति मे भी परमात्मा की सत्ता विद्यमान रहती है, अतः वह मिथ्या प्रतीत नही होती। वैसे सर्ववाद अद्वैत-वाद का ही विकसित रूप है पर प्रकृति के प्रति उनमे दृष्टि-भेद है। महादेवी की दृष्टि अद्वैतवाद एव सर्ववाद—दोनो को समन्वित रूप मे देखती है। अत. एक ओर वे सृष्टि एव प्रकृति को ब्रह्म की रचना मानती है तो दूसरी ओर वे उसमे ब्रह्म की सत्ता का

---

३. महादेवी-संस्मरण-ग्रन्थ ; पृ० १२२।
४. वही ; पृ० ?१।
५. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ६१।

भी साक्षात्कार करती है। जो बीज वृक्ष का स्रष्टा है वह आगे चलकर शत-शत रूप धारण करके वृक्ष में विद्यमान भी रह सकता है—अत उपर्युक्त मान्यता मे कोई असगति नही है। महादेवी को यह सर्ववादी दृष्टिकोण प्राचीन भारतीय साहित्य—विशेषत. वैदिक साहित्य—से प्राप्त हुआ। वे लिखती है—"जहाँ तक भारतीय प्रकृतिवाद का सम्बन्ध है वह दर्शन के सर्ववाद का काव्य में भागवत अनुवाद कहा जा सकता है। यहाँ प्रकृति दिव्य शक्तियो की प्रतीक भी बनी, उसे जीवन की सजीव सगिनी बनने का अधिकार भी मिला, उसने अपने सौन्दर्य और शक्ति द्वारा अखण्ड और व्यापक परम तत्त्व का परिचय भी दिया और वह मानव के रूप का प्रतिबिम्ब और भाव का उद्दीपन बनकर भी रही। वेदकालीन मनीषी उसे अजर सौन्दर्य और अजस्र शक्ति का ऐसा प्रतीक मानता है जिसके बिना जीवन की स्वस्थ गति सम्भव नही।'[६] महादेवी ने भी इसी सर्ववादी दृष्टि का परिचय देते हुए प्रकृति मे परम सत्ता का साक्षात्कार अनेक कविताओ मे किया है।

रहस्यानुभूति अद्वैतवादी और सर्ववादी विचारो की ही भावात्मक परिणति है। आत्मा और परमात्मा की अद्वैतता एव ब्रह्म की सार्वभौमिक सत्ता का विचार जब मस्तिष्क के स्तर से उतर कर हृदय की अनुभूति बन जाता है तो इसी को रहस्यानुभूति कहते है। अत रहस्यानुभूति ने महादेवी के अलौकिक प्रणय-भाव के साथ-साथ प्रकृति-प्रेम को भी भावात्मकता, कोमलता एव आर्द्रता प्रदान की। प्रकृति और मानव का शुष्क सम्बन्ध रागात्मकता से ओत-प्रोत हो गया। इसीलिए वे अपने प्रियतम से आँख-मिचौनी खेलने या उनकी मुस्कुराहट और अपने आँसुओ का आदान-प्रदान करने के लिए प्राय. प्रकृति का माध्यम अपनाती हैं।

रही बात छायावाद की, वह तो न केवल शैली की दृष्टि से अपितु वस्तु, भाव और विचार की दृष्टि से भी प्रकृति के बहुत निकट है, यहाँ तक कि प्रारम्भ में कुछ आलोचको ने प्रकृति-प्रेम की अभिव्यक्ति को ही छायावाद मान लिया। पर यह मानना उचित नही कि छायावाद की विषय-वस्तु केवल प्रकृति ही है। जैसा कि हम अन्यत्र स्पष्ट कर चुके है, छायावाद मे प्रकृति-प्रेम के अतिरिक्त वैयक्तिकता, स्वच्छन्दता, लौकिक प्रेम (नारी-प्रेम), अध्यात्म आदि को भी प्रमुख स्थान प्राप्त है, यहाँ तक कि कही-कही वे प्रकृति से भी बढ़ गये है। अत. विपय-वस्तु की दृष्टि से छायावाद का अटूट सम्बन्ध स्वीकार नही किया जा सकता जबकि विषय चाहे जो हो, अभिव्यजना-शैली में प्राय सर्वत्र ही छायावादी कवि प्रकृति का आश्रय ग्रहण करता है। उसका लक्ष्य चाहे जगत् के सुख-दु ख का निरूपण करना हो या प्रेयसी के सौन्दर्य का चित्रण करना अथवा विरह-वेदना की अभिव्यक्ति करना हो—प्राय. सर्वत्र ही वह प्रकृति को

---

६. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ; पृ० ७८।

चित्रण को ही मानवीकृत कह दे तो अनुचित नही होगा। फिर भी यहाँ हम उनकी एक-दो ऐसी कविताओं का उदाहरण प्रस्तुत करते है जहाँ आदि से लेकर अन्त तक प्रकृति के किसी एक अंग को ही मानवी रूप मे प्रस्तुत किया है। विशेषतः पुष्प सम्बन्धी कुछ कविताओ मे यह प्रवृत्ति प्राय· मिलती है। 'नीहार' में सग्रहीत एक-कविता मे पुष्प की पूरी कहानी मानवी रूप में प्रस्तुत की गयी है ; यथा :

था कली के रूप शैशव—
 में अहो सूखे सुमन,
मुस्कराता था, खिलाती,
 अंक में तुझको पवन !

यहाँ पुष्प का बाल्यकाल चित्रित है, पर आगे क्रमश. वह युवावस्था एव वृद्धावस्था मे पदार्पण करता है तो उसकी भी वही स्थिति होती है जो मानव के जीवन में सम्भव है।

खिल गया जब पूर्ण तू—
 मंजुल सुकोमल पुष्पवर,
लुब्ध मधु के हेतु मँडराते,
 लगे आने भ्रमर !
× × ×
लोरियाँ गाकर मधुप,
 निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली का रहा—
 आनन्द से भरता तुझे !
× × ×
सो रहा जब तू धरा पर—
 शुष्क बिखराया हुआ,
गंध कोमलता नहीं,
 मुख मंजु मुरझाया हुआ !
× × ×
जिस पवन ने अंक में—
 ले प्यार था तुझको किया,
तीव्र झोंके में सुला—
 उसने तुझे भू पर दिया !

इस प्रकार यहाँ पुष्प की विभिन्न अवस्थाओ एव दशाओ का चित्रण मानव-जीवन के अनुरूप किया गया है। कवयित्री का मूल लक्ष्य पुष्प के माध्यम से मानव-जीवन की विषमताओ का उद्घाटन करना रहा है, इसीलिए वह अन्त मे इस निष्कर्ष का प्रतिपादन करती है ·

कर दिया मधु और सौरभ,
दान सारा एक दिन।
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन !
मत व्यथित हो फूल ! किसको,
सुख दिया संसार ने !
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने !

इसी संग्रह की एक अन्य कविता मे भी पुष्प की कहानी को पुन. मानवीकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है ; उसमे भी उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण करते हुए उसकी सुकुमारता एव निरीहता का प्रतिपादन किया गया है , जैसे .

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आ जाता याद ?
हेरती है सौरभ की हाट
कहो किस निर्मोही की बाट ?

× × ×

लुटा अपना यौवन अनमोल
ताकती किस अतीत की ओर ?
जानते हो यह अभिनव प्यार
किसी दिन होगा कारागार ?

× × ×

तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो पहनो काँटों का हार
मधुर भोलेपन के संसार !

पुष्प सम्बन्धी इन दोनो ही कविताओं मे पुष्प की सुन्दरता, कोमलता एव उदारता का चित्रण करते हुए साथ मे इस संसार की स्वार्थपरता एवं निष्ठुरता का भी प्रतिपादन किया गया है, अत कहना चाहिए कि यहाँ मानवीकरण सोद्देश्य है ; पुष्प के माध्यम से उसी कोटि के मनुष्यो की करुण स्थिति पर प्रकाश डालने का उद्देश्य है ; ऐसी स्थिति मे इन्हे 'समासोक्ति' अलकार मे भी स्थान दिया जा सकता है।

उपर्युक्त कविताओ के अतिरिक्त उषा, संध्या, रश्मि, वसन्त-रजनी आदि से सम्बन्धित विभिन्न कविताएँ भी आलम्बन रूप के साथ-साथ मानवी रूप को भी प्रस्तुत करती है , इनकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। पृष्ठभूमि, वातावरण या उद्दीपन-रूप मे भी वे प्रकृति के क्रिया-कलापो को मानवी क्रिया-कलापो के रूप में प्रस्तुत करती है, अत मानवीकरण के आशिक उदाहरण वहाँ भी दृष्टिगोचर होते है। अतः यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रकृति-चित्रण के सभी रूपो मे प्रकृति मानवीकृत रूप में ही प्राय. आयी है ; अतः महादेवी के प्रकृति-चित्रण की यह सर्वप्रमुख प्रवृत्ति सिद्ध होती है।

(४) **उपमान रूप**—जीवन में जिस प्रकार हम प्रकृति के विभिन्न उपकरणों से अपनी सौदर्य-सज्जा मे अभिवृद्धि करते है उसी प्रकार काव्य जगत् में भी प्रतिपाद्य विपय को भी प्रकृति की सहायता से सुसज्जित करते है। कथ्य वस्तु की सज्जा के लिए प्रयुक्त ये वाह्य तत्त्व ही शास्त्रीय शब्दावली मे 'उपमान' कहलाते है जबकि स्वयं कथ्य वस्तु 'उपमेय' की सज्ञा से अभिहित की जाती है। महादेवी के काव्य मे कथ्य की सज्जा या उसके अलकरण के लिए प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है ; यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(क) तुहिन के पुलिनों पर छविमान,
किसी मधुदिन की लहर समान,
× × ×
धूलि के कण में नभ सी चाह,
विन्दु में दुख का जलधि अथाह,

(ख) दिया क्यों जीवन का वरदान ?
× × ×
इन्द्र धनुष सा घन-अंचल में,
तुहिनविन्दु सा किसलय दल में,
करता है पल पल में देखो
मिटने का अभिमान !

(ग) प्राणों के अंतिम पाहुन
चाँदनी-धुला अंजन सा, विद्युत्-मुस्कान बिछाता,
सुरभित समीर-पंखों से उड जो नभ में घिर आता,
वह वारिद तुम आना बन !
× × ×
अज्ञात लोक से छिप छिप ज्यों उतर रश्मियाँ आतीं।
मधु पीकर प्यास बुझाने फूलों के उर खुलवातीं,
छिप आना तुम छायातन !

(घ) मेघों में विद्युत् सी छवि, उनकी बनकर मिट जाती,

(ङ) पावस-घन सी उमड़ बिखरती,
शरद निशा सी नीरव घिरती।
धो लेती जग का विषाद,

उपर्युक्त उद्धरणों मे ध्यान देने की बात यह है कि एक तो उन्होंने परम्परागत रूप मे प्रकृति का उपयोग नही किया है , जहाँ प्राचीन काव्य मे सौंदर्य-चित्रण के लिए प्राकृतिक उपादानो का प्रयोग प्राय उनके वाह्य रूप-रग की दृष्टि से हुआ है वहाँ महादेवी ने उनके आन्तरिक गुणो के द्वारा विभिन्न तथ्यो, विचारो एव क्रिया-व्यापारों की स्पष्टता के लिए ही उनका प्रयोग किया है। दूसरे, उनके उपमान अलग-अलग वस्तुओ के रूप मे नही है अपितु वे अपने साथ सम्पूर्ण दृश्य को सजीवता से लिए हुए है। कही-कही किसी एक क्रिया-व्यापार के वोध के लिए प्रकृति का एक परिपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। अस्तु, उन्होंने उपमान रूप मे प्रकृति का उपयोग सर्वत्र भाव-वोध की दृष्टि से ही किया है—उनके काव्य में उपमानो का अवाछित आरोपण कही भी दृष्टिगोचर नही होता।

कही-कही उनके काव्य मे प्रकृति उपमान से उपमेय भी वन गयी है या प्रकृति के एक दृश्य की उपमा दूसरे दृश्य से दी गयी है अर्थात् उपमान और उपमेय—दोनो का कार्य प्रकृति से लिया गया है ; जैसे :

(क) कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रातः,

(ख) शून्यता में निद्रा की बन,
उमड़ आते ज्यों स्वप्न घन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार,
छलक मधु में होती साकार !

यहाँ प्रथम उदाहरण मे जहाँ प्राकृतिक उपादान उपमेय रूप मे प्रस्तुत है वहाँ दूसरे में प्रकृति के ही एक दृश्य की तुलना दूसरे दृश्य से की गयी है।

इस प्रकार महादेवी के काव्य मे विभिन्न प्राकृतिक उपादानो का उपयोग उपमान-रूप मे प्रायः हुआ है फिर भी उन्होने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि की अपेक्षा रूपकातिशयोक्ति, समासोक्ति या अन्योक्ति के रूप में उनका उपयोग अधिक किया है, जहाँ उपमान उपमान न रह कर प्रतीक बन जाते है। परम्परागत काव्य-शास्त्र के अनुसार प्रतीको का भी समावेश उपमानो मे हो जाता है, पर हमारे विचार से यह स्थिति स्वीकार्य नही क्योंकि उस दशा मे प्रतीक-सिद्धान्त को अलंकार-सिद्धान्त मे ही समन्वित कर देना होगा—पर यह समन्वय भी दो विजातीय तत्त्वो का मेल सिद्ध होगा। ऐसी स्थिति मे हम केवल उन्ही उपमानो एव अलकारो को उपमान एव अलंकार के रूप में मान्यता देते है जो प्रतीक की सीमा में नही आते। इस सम्बन्ध मे अधिक स्पष्टीकरण आगे महादेवी के शैली-पक्ष पर विचार करते समय किया जायगा, यहाँ निष्कर्ष-रूप मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि शुद्ध उपमान या अलकार के रूप मे महादेवी ने प्रकृति का उपयोग तो प्रायः किया है पर प्रकृति-चित्रण के अन्य प्रकारों की तुलना मे वह अपेक्षाकृत कम ही है।

(५) **प्रतीक रूप**—प्रतीक-सिद्धान्त साहित्य के शैली-पक्ष से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसकी विस्तृत चर्चा अन्यत्र की जायगी। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब हम किसी भी शब्द को उसके प्रचलित अर्थ से भिन्न, अन्य अर्थ मे प्रयुक्त करते है तथा ऐसी स्थिति में वह दोनो अर्थों का वहन साथ-साथ करता रहे तो उसे साहित्य-शास्त्र की शब्दावली में प्रतीक कहते है। जैसे—'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!'—मे दीपक एक ओर दीपक का अर्थ देता है तो दूसरी ओर जीवन का—इसलिए यहाँ दीपक को जीवन का प्रतीक माना जा सकता है। उपमान की ही भाँति प्रतीक का भी लक्ष्य मूल भाव को स्पष्ट करना होता है पर उपमान में प्रचलित अर्थ पर अन्य अर्थ का आरोपण नही होता, वह उपमेय से सपृक्त रहता है जबकि प्रतीक में उपमान उपमेय का स्थानापन्न वन जाता है। वैसे संस्कृत काव्य-शास्त्र में कुछ अलकार ऐसे भी है जो प्रतीक के अनुरूप है; यथा—रूपकातिशयोक्ति। पर हम यहाँ प्रतीक को अलकार से भिन्न मानते हुए महादेवी के प्रकृति-चित्रण की विवेचना करने का प्रयास करेंगे।

प्रकृति के विभिन्न अगो को कवयित्री ने प्रायः अपने दार्शनिक विचारो एव बौद्धिक तथ्यो के प्रतीक-रूप मे प्रस्तुत किया है। तम को वे अज्ञान के अर्थ मे, घटा को निराशा के अर्थ मे, सागर को ससार के अर्थ मे प्रयुक्त करती हुई, प्रकृति का एक खड-चित्र प्रस्तुत कर देती है; यथा :

घोर तम छाया चारों ओर,
घटायें घिर आई घन-घोर;

वेग मारुत का है प्रतिकूल,
हिले जाते हैं पर्वत-मूल ;
गरजता सागर बारम्बार,
कौन पहुँचा देगा उस पार !

यहाँ सामान्य अर्थ और प्रतीकार्थ—दोनो साथ-साथ चलते-रहते है। प्रकृति के भयानक रूप-चित्रण के द्वारा साधक की मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन प्रतीकात्मक रूप मे करवाया गया है। प्रयुक्त प्रतीको मे व्यक्त वस्तु के अनुरूप प्रभावोत्पादन की क्षमता है ; अतः वे अपने लक्ष्य की पूर्ति मे सफल सिद्ध होते है।

विभिन्न ऋतुओ का चित्रण भी प्रतीक-रूप मे महादेवी के काव्य मे अनेक स्थलो पर उपलब्ध होता है। वे प्राय. ग्रीष्म का रोष, क्रोध या अनुताप के लिए, वर्षा का दु ख, करुणा, आँसू आदि के लिए, शिशिर का जडता व शोक-ग्रस्त अवस्था के लिए, पतझड का जरा-जीर्ण अवस्था के लिए तथा वसन्त का यौवन, सुख, और आनन्द के लिए प्रयोग करती है ; यहाँ कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है .

(क) दृगों में सोते हैं अज्ञात ;
निदाघों के दिन पावस रात ;

(ख) माँगने पतझार से,
हिमविन्दु तब मधुमास आया !

महादेवी के काव्य मे प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी एक विशेष प्रवृत्ति आत्मारोपण की भी है। वे प्रकृति मे प्रायः अपनी सत्ता के दर्शन करती हुई उसके साथ तादात्म्य स्थापित करती हैं ; ऐसे स्थलो मे प्रकृति का भाव प्रतीकार्थ मे ही ग्रहण करना पडता है ; यथा :

(क) मैं नीर भरी दुःख की बदली,
× × ×
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,

(ख) प्रिय ! सांध्य गगन, मेरा जीवन !

(ग) मैं बनी मधुमास आली,
आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
वरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी।

इस प्रकार हम देखते है कि महादेवी के काव्य मे प्रकृति का प्रतीक-रूप में

उपयोग समुचित रूप मे हुआ है । वे प्रायः मूल भाव के स्पष्टीकरण एवं उसे अनुभूति-गम्य बनाने मे सहायक सिद्ध होते हैं । पर साथ ही वे कही भी प्रयासपूर्वक आरोपित प्रतीत नही होते—यही प्रतीक-प्रयोग की स्वाभाविकता एव सफलता का सबसे बडा प्रमाण है ।

(६) अन्योक्ति रूप—अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत विषय की व्यजना को अन्योक्ति कहा जाता है । वैसे भारतीय अलकार-शास्त्रियो ने इसे भी अलकार का एक भेद माना है तथा उस स्थिति मे इसका विवेचन यहाँ अलग-से करने की आवश्यकता नही थी क्योंकि अलंकरण रूप मे प्रकृति का विवेचन पीछे किया जा चुका है ; किन्तु हमारे विचार से अन्योक्ति मूलत अलकार की कोटि में नही आती । अलंकार की सीमा वहाँ तक है जहाँ तक वह अलंकार्य के साथ प्रस्तुत होता है, किन्तु जब वह अलंकार्य का स्थानापन्न बन जाता है तो वहाँ अलंकार न रहकर वह मूल का प्रतिनिधि बन जाता है । वस्तुत अलंकार की अपेक्षा वह प्रतीक के अधिक निकट है किन्तु प्रतीकार्थ का सम्बन्ध पूरे वाक्य या पूरे प्रसग से न होकर अलग-अलग शब्दों से होता है जबकि अन्योक्ति मे पूरा प्रसग ही दोहरे अर्थो का सूचक होता है । वैसे, अन्योक्ति के अन्तर्गत भारतीय काव्य-शास्त्रियो की व्यंजना शक्ति एव ध्वनि सिद्धान्त तथा पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियो के प्रतीक सिद्धान्त का समावेश किया जा सकता है । पर यहाँ हम केवल परम्परा का निर्वाह करते हुए, अन्योक्ति रूप की विवेचना अलग से कर रहे है ।

महादेवी ने जहाँ प्रकृति का मानवीकरण किया है, वहाँ अनेक प्रसगो मे अन्योक्ति का भी निर्वाह हुआ है । जैसे, पुष्प सम्बन्धी निम्नाकित कविता मे देखिये :

> **कर दिया मधु और सौरभ,**
> **दान सारा एक दिन,**
> **किन्तु रोता कौन है,**
> **तेरे लिए दानी सुमन ?**

यहाँ पुष्प के माध्यम से कवयित्री एक उदार व्यक्ति की कहानी प्रस्तुत कर रही हैं, अतः इसे अन्योक्ति के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है । इसी प्रकार निम्नाकित अंश मे तरी और सागर के माध्यम से जो सन्देश दिया गया है वह अन्योक्तिपरक है :

> **सुनाई किसने पल में आन,**
> **कान में मधुमय मोहक तान ?**
> **'तरी को ले जाओ मँझधार,**
> **डूब कर हो जाओगे पार ;**
> **विसर्जन ही है कर्णाधार,**
> **वही पहुँचा देगा इस पार !'**

एक अन्य कविता मे पुष्प की कोमलता के माध्यम से कवयित्री ने अपने ही व्यक्तित्व की सुकुमारता को व्यक्त किया है जो अन्योक्ति का सुन्दर उदाहरण है :

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हे भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हँसो पहनो काँटों का हार
मधुर भोलेपन के संसार !

वस्तुत. इस प्रकार के उदाहरणो मे प्रकृति का दोहरा उपयोग हुआ है—एक ओर वह मानवीकृत रूप में प्रस्तुत की गयी है तो दूसरी ओर अन्योक्ति के द्वारा उसके माध्यम से किन्ही विशेष विचारो या भावो को भी व्यक्त किया है। ऐसी स्थिति में मानवीकरण एवं अन्योक्ति-रूप एक-दूसरे के पूरक एव सहयोगी सिद्ध होते है।

● **निष्कर्ष**—इस प्रकार हम देखते है कि महादेवी के काव्य मे प्रकृति-चित्रण के प्राय: सभी प्रकार दृष्टिगोचर होते है तथा सभी मे उन्होने अपनी विशिष्टता एव नवीनता का परिचय दिया है फिर भी अपेक्षाकृत उन्होंने मानवीकरण एव प्रतीकात्मकता पर अधिक वल दिया है। इसका मूल कारण कदाचित् यह है कि प्रकृति के स्थूल सौंदर्य मे भी प्राय: उन्होने मानवी भावनाओ व क्रिया कलापो का साक्षात्कार किया है तथा वाह्य रूप की अपेक्षा आन्तरिक सत्य को अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

उनके द्वारा चित्रित विभिन्न रूपो का विश्लेपण करने के अनन्तर उनके प्रकृति-चित्रण की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ये वताई जा सकती हैं—एक तो प्रकृति-चित्रण उनके लिए साध्य कम, साधन अधिक है-अर्थात् उन्होने प्रकृति-चित्रण शुद्ध प्रकृति-चित्रण के लिए कम किया है, भावो और विचारो की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे अधिक किया है। दूसरे, उन्होने प्रकृति के वाह्य रूप-सौंदर्य की अपेक्षा उसकी आन्तरिक क्रियाओं का चित्रण अधिक किया है। तीसरे, प्रकृति के स्थिर एवं जड़ रूप की अपेक्षा उसके गत्यात्मक एव चेतन रूप के अकन मे उन्होने अधिक रुचि प्रदर्शित की है। चौथे, उनके प्रकृति-चित्रण मे यौन भावना या वासना का रंग प्राय. न के वरावर हैं। पाँचवे, उन्होंने प्रकृति और जगत् के वीच संतुलन स्थापित किया है अर्थात् न तो वे प्रकृति को इतना महत्त्व देती हैं कि उसके सम्मुख जगत् की वास्तविकता उपेक्षित हो जाय और न ही वे जगत् की वास्तविक कटुता से इतनी ग्रस्त है कि उसमे प्रकृति का सौंदर्य सर्वथा विस्मृत हो जाय। अत: प्रकृति उनके लिए भौतिक जीवन की समस्याओ से विमुख होकर पलायन का आश्रय नही है अपितु वह जीवन और जगत् की विषमता एव कटुता के प्रभाव को न्यून करने का साधन है। अस्तु, महादेवी में सत्य के प्रति जो अनुराग, मानवता के

प्रति जो स्नेह एव समन्वय के प्रति जो आकर्षण है ; वह उनके प्रकृति-चित्रण मे भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है । इसीलिए उनका प्रकृति-चित्रण केवल सौन्दर्य का आगार न होकर सत्य के समन्वय एवं शिव के साधन का भी कार्य करता है । एक वाक्य में—उनका प्रकृति-चित्रण सत्य, शिव, सुन्दरम् के समन्वित लक्ष्य की पूर्त्ति का नूतन आदर्श स्थापित करता है ; इसमे कोई सदेह नही । अन्य कतिपय कवियों की भाँति उन्होने उसे केवल ऐन्द्रियकता, सौन्दर्य-लिप्सा एवं पलायनवाद का साधन नही बनाया है । इस दृष्टि से भारतीय साहित्य की प्रकृति-चित्रण की परम्परा मे भी महादेवी का विशिष्ट दृष्टिकोण, विशेष योग-दान एवं महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया जा सकता है ।

* * *

महादेवी : नया मूल्यांक़न

तृतीय खण्ड

महादेवी-काव्य : शैली एवं रूप

महादेवी-काव्य : शैली एवं रूप

- महादेवी के काव्य का शैली-पक्ष
    - *शैली के परम्परागत मान-दंड*
    - *शैली के नये मान-दंड*
    - *संयोजनात्मक रूप-विधान (अलंकार-योजना)*
    - *विश्लेषणात्मक रूप-विधान (बिम्ब-विधान)*
    - *विस्थापनात्मक रूप-विधान (प्रतीक योजना)*
    - *विनिमयात्मक रूप-विधान (वक्रोक्ति)*
    - *समन्वयात्मक रूप-विधान*
    - *निष्कर्ष*
- महादेवी का काव्य-रूप : गीति

१

महादेवी-काव्य का शैली पक्ष

'......साहित्य और विशेषतः काव्य व्यक्ति या समूह के भाव-जगत् को अनुकूल दिशा में क्रियाशील बनाने का लक्ष्य रखता है, अतः उसे भाषा की सम्पूर्ण शक्तियों और अन्तःकरण की समस्त भावनाओं का उपयोग करना पडे, तो आश्चर्य नही।'

—महादेवी

सामान्यत' कवि-कर्म के तीन सोपान माने जा सकते है—(१) अनुभूति, (२) अभिव्यक्ति एवं (३) सप्रेषण। पहले कवि विपय-वस्तु की अनुभूति प्राप्त करता है जिसे वह भापा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है और उसकी अभिव्यक्ति पाठक के मन तक सप्रेषित होती है। अनुभूति के अभाव मे अभिव्यक्तियो मे सहजता एव विशिष्टता नही आ पाती तथा अभिव्यक्ति की सहजता या विशिष्टता के अभाव मे रचना मे सप्रेषणीयता नही आ पाती—इस प्रकार ये तीनो अंग एक-दूसरे के पूरक है। पर अनुभूति न्यूनाधिक-मात्रा मे हम सभी के पास होती है; उसे टूटी-फूटी भाषा में व्यक्त भी सब कर लेते है फिर भी सप्रेपणीयता का गुण उसमे सर्वत्र ही नही आ पाता। सामान्य व्यक्ति में और कवि मे अन्तर अनुभूति का नही अपितु अभिव्यक्ति का होता है, कवि की अभिव्यक्ति—यदि वह सचमुच कवि है—जहाँ प्रेपणीयता की क्षमता से युक्त होती है, वहाँ सर्व-साधारण की अभिव्यक्ति मे ऐसा नही होता। कवि या साहित्कार की अभिव्यक्ति की इसी विशेषता को 'शैली' कहा जाता है। जैसा कि 'साहित्य-विज्ञान' मे शैली सम्वन्धी विभिन्न परिभाषाओ के अध्ययन-विवेचन के अनन्तर निर्धारित किया गया है—अभिव्यजना-पद्धति का वैशिष्ट्य ही शैली है।[1]

---

१. साहित्य विज्ञान; पृ० २१६।

● **शैली के परम्परागत मानदंड**—काव्य-शैली की विभिन्न विशेपताओ एवं प्रवृत्तियो का सामान्य रूप मे अध्ययन, विश्लेपण एव मूल्याकन करने के लक्ष्य से साहित्य-शास्त्र मे अनेक सिद्धान्तो या मानदडो की स्थापना हुई है , प्राचीन साहित्य-शास्त्र मे अलकार, गुण, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि सिद्धान्त तथा आधुनिक साहित्य-शास्त्र मे बिम्व, प्रतीक आदि सिद्धान्त शैली के ही विभिन्न तत्त्वो एव पक्षों की व्याख्या प्रस्तुत करते है। इनमे से प्रत्येक सिद्धान्त शैली के एक विशेप प्रकार पर वल देता हुआ उसके विभिन्न भेदोपभेदो की विवेचना करता है। यद्यपि ये सिद्धान्त साहित्यालोचन के क्षेत्र मे वहु प्रचलित एव वहु मान्य है किन्तु उनमे कुछ ऐसी त्रुटियाँ है जिनके कारण इन्हे प्रयुक्त करना अनुचित प्रतीत होता हैं। मूलतः ये सिद्धान्त शैली के अलग-अलग तत्त्वो पर आधारित है, पर अपना क्षेत्र-विस्तार करने के लिए ये एक-दूसरे की सीमाओ को आक्रान्त करते हुए परस्पर घुल-मिल जाते है। इसका परिणाम यह होता हैं कि शैली की एक ही विशेषता को अलकारवादी किसी न किसी अलकार का, ध्वनिवादी किसी न किसी ध्वनि-भेद का या बिम्ववादी किसी न किसी विम्ब-भेद का नाम देकर उसे अपने क्षेत्र मे वलात् घसीट ले जाता है। उदाहरण के लिए बिहारी के निम्नाकित दोहे को लीजिए :

> नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ।
> अली कली ही सौं बंध्यौं, आगे कौन हवाल ।।

यह दोहा अलंकारवादियों के अनुसार अन्योक्ति अलकार का, ध्वनिवादियों के अनुसार ध्वनि का, विम्ववादियो के अनुसार विम्व-योजना का तथा प्रतीकवादियों के अनुसार प्रतीक-योजना का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ लक्ष्य करने की वात यह हैं कि ये चारो सिद्धान्त दोहे की अलग-अलग विशेषताओ पर आधारित नही हैं अपितु एक ही विशेपता से सम्वन्धित है—प्रस्तुत विपय को अप्रस्तुत के माध्यम से व्यक्त करना ! ऐसी स्थिति मे यह प्रश्न उपस्थित होता हैं कि क्या अलकार, ध्वनि, विम्व या प्रतीक मूलतः एक ही है या अलग-अलग ? और यदि एक ही है तो फिर उन्हें अलग-अलग नाम देने की क्या आवश्यकता है ? और यदि वे अलग-अलग है तो उनके स्वरूप में परस्पर कोई ऐसा अन्तर होना चाहिए कि जिससे उन्हे पृथक् रूप मे देखा जा सके ! इन सव प्रश्नो पर हम अपने 'साहित्य-विज्ञान' के तृतीय खंड 'साहित्य की शैली' मे विस्तार से विचार करते हुए इस निष्कर्प पर पहुँचे है कि मूलत. ये सिद्धान्त अलग-अलग है किन्तु इनके सस्थापक अपने दुराग्रह के कारण इनके भेदोपभेदो मे इस तरह से विस्तार करते है कि जिससे अन्य सिद्धान्तो का क्षेत्र भी इनके क्षेत्र मे अनुचित रूप मे आ जाता है। यह प्रयास वैसा ही है जैसा कि एक व्यक्ति जो प्रारभ मे यह कह कर कि वह फल ही ग्रहण करेगा, आगे चलकर लड्डू भी ग्रहण करले और अपने पक्ष मे यह तर्क

दे कि फलो के दो भेद होते हैं ; एक वृक्ष पर पका हुआ फल और दूसरा हलवाई की कडाही मे निर्मित—अतः लड्डू दूसरे प्रकार का फल है। यह बात सुनने मे अत्यन्त हास्यापद एव उटपटाँग प्रतीत होगी पर वास्तविकता यह है कि परम्परागत काव्य-शास्त्र मे विभिन्न सिद्धान्तो के अनुयायियो ने इसी प्रकार का प्रयास बराबर किया है जिसके परिणामस्वरूप अलकार, वक्रोक्ति, ध्वनि, प्रतीक, विम्व आदि का मूल क्षेत्र अस्पष्ट, असीमित एव अनिश्चित हो गया है। इसी स्थिति के कारण अनेक समीक्षात्मक ग्रन्थों एव शोध-प्रवन्धो में यह विचित्र वात दिखाई पडेगी कि जिन उदाहरणो के आधार पर एक आलोचक विहारी को अलकारवादी सिद्ध करता है, दूसरा उन्हे उन्ही उदाहरणो के वल पर ध्वनिवादी या प्रतीकवादी सिद्ध करता है—इतना ही नही कई वार तो एक ही पुस्तक के विभिन्न अध्यायो मे भी यह असगति दृष्टिगोचर होती है। वस्तुत॰ जव मानदड ही अनिश्चित एवं अप्रामाणिक हो तो उसके आधार पर किये गये मूल्याकन का भी दोप पूर्ण हो जाना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त स्थिति मे हमारे सामने एक ही मार्ग है कि हम परम्परागत मानदडो को या तो विलकुल त्याग दे या फिर उन्हे आधुनिक वैज्ञानिक पद्धत्ति से जाँचकर एक सुनिश्चित एव सीमित रूप प्रदान करदे। हमारे विचार मे परम्परागत चिन्तन को सर्वथा ठुकराने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि उसे संशोधित, सुसगत एव सुसमन्वित रूप प्रदान करके सम्यक् रूप में ग्रहण कर लिया जाय।

● **शैली के नये मानदंड**—आधुनिक विज्ञान एव मनोविज्ञान की स्थापनाओ को ध्यान मे रखते हुए शैली सम्बन्धी परम्परागत सिद्धान्तो का विवेचन-विश्लेषण करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि साहित्य की शैली के सभी आधारभूत तत्त्वो को इन पाँच वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) संयोजनात्मक रूप-विधान, (२) विश्लेपणात्मक रूप-विधान, (३) विस्थापनात्मक रूप-विधान, (४) विनि-मयात्मक रूप-विधान और (५) समावयात्मक रूप-विधान। कवि या साहित्यकार जव अपनी अभिव्यक्ति मे चारुत्व लाने के लिए प्रस्तुत विषय के साथ अप्रस्तुत का सयोजन करता है तो उसे **संयोजनात्मक रूप-विधान** कह सकते है। जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन मे हम शरीर को सजाने के लिए वाह्य पदार्थों—वस्त्र, आभूपणो, पुष्पादि—का सयोजन करते है उसी प्रकार साहित्यकार मूल विपय-वस्तु के साथ वाह्य वस्तु—उपमानादि का सयोग करता है ; इसी प्रक्रिया को परम्परागत शब्दावली मे अलकरण या अलकार कहते है। **विश्लेषणात्मक रूप-विधान** मे सयोजनात्मक रूप-विधान या अलंकार की भाँति किसी वाह्य वस्तु या अप्रस्तुत का योग नही रहता अपितु मूल वस्तु का ही विश्लेपण, विस्तार या स्पष्टीकरण इस प्रकार कर दिया जाता है कि जिससे उसका सौन्दर्य स्पष्ट रूप मे व्यक्त हो सके। व्यावहारिक जीवन में यह प्रक्रिया विभिन्न अंगो के उभार या उनके अनावरण द्वारा सपन्न होती है तो साहित्य-

शास्त्र में इसे बिम्ब-विधान कहा जाता है। विस्थापनात्मक रूप-विधान मे मूल विषय के स्थान पर ही किसी अन्य बाह्य पदार्थ की प्रतिष्ठा इस प्रकार कर दी जाती है कि जिससे उसमें सौन्दर्य उत्पन्न हो जाय। प्रस्तुत वस्तु को अप्रस्तुत के माध्यम से व्यक्त करना इसके अन्तर्गत आता है। भारतीय काव्य शास्त्रियो ने इसे ध्वनि कहा है तो पाश्चात्य क्षेत्र मे इसे प्रतीक की सज्ञा दी गयी है। वस्तुतः ध्वनि और प्रतीक दोनो का लक्ष्य एवं कार्य-व्यापार एक ही है।

विनिमयात्मक रूप-विधान मे विस्थापनात्मकता की भाँति मूल वस्तु के स्थान पर अन्य वस्तु का या प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का सर्वथा आरोपण नही होता अपितु आंशिक आदान-प्रदान या गुणों का पारस्परिक विनिमय होता है; इसीलिए इसे विनिमयात्मक रूप-विधान कहा गया है। इसके मूल में लाक्षणिकता रहती है तथा लाक्षणिक प्रयोग, वक्रोक्ति, विशेषण-विपर्यय आदि का समाहार इसके अन्तर्गत हो जाता है। समावयात्मक रूप-विधान मे मूल विषय के बाह्य अवयवो की समानता या एकरूपता के द्वारा सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है; अतः अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारो का समावेश इसमें हो जाता है।

वस्तुतः शैली के ये पाँच भेद रसायन-शास्त्र और मनोविज्ञान के सुदृढ आधार पर प्रतिष्ठित हैं। रसायन-शास्त्र (कैमिस्ट्री) के अनुसार भी किसी भी द्रव्य की निहित शक्ति को जाग्रत करने के लिए उसमे पाँच प्रकार के रासायनिक परिवर्तन सभव है जो उपर्युक्त पाँच ही है—(१) सयोजनात्मक, (२) विश्लेषणात्मक, (३) विस्थापनात्मक, (४) विनिमयात्मक और (५) समावयात्मक। मानसिक क्षेत्र मे हमारी कल्पना-शक्ति भी इन्ही प्रक्रियाओ के द्वारा नये-नये रूपो की रचना करती है। कवि की शैली मे भी विभिन्न परिवर्तन मूलतः कल्पना-शक्ति के द्वारा ही होते है; अत. उपर्युक्त भेदो के अन्तर्गत न केवल भारतीय एव पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के शैली सम्बन्धी परम्परागत सिद्धान्तों का समाहार हो जाता है अपितु आधुनिक विज्ञान एव मनोविज्ञान की स्थापनाओ से भी उनका मेल हो जाता है। इन भेदो को तालिका रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

भेद	विशेषता	परम्परागत सिद्धान्त
१. सयोजनात्मक रूप-विधान	= प्रस्तुत विषय के साथ अप्रस्तुत का सयोग।	= अलकार
२. विश्लेषणात्मक रूप-विधान	= प्रस्तुत विषय का ही विश्लेषण विस्तार या चित्रण।	= बिम्ब-विधान
३. विस्थापनात्मक रूप-विधान	= प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का निरूपण। (अप्रस्तुत के द्वारा प्रस्तुत की व्यजना)	= ध्वनि और प्रतीक

४ विनिमयात्मक रूप-विधान = प्रस्तुत और अप्रस्तुत के कुछ गुणो का पारस्परिक आदान-प्रदान या विनिमय।	=	लाक्षणिकता या वक्रोक्ति
५ समावयात्मक रूप-विधान = प्रस्तुत विपय के ही विभिन्न अवयवो मे वाह्य एकरूपता	=	अनुप्रास, यमक आदि शब्दालकार, छन्द, लय, आदि।

इन भेदो के आधार पर न केवल शैली के सौन्दर्य की स्पष्ट रूप मे मनोवैज्ञानिक व्याख्या की जा सकती है अपितु उसकी मूल प्रक्रिया को भी भली भाँति स्पष्ट किया जा सकता है। अलकार, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि के शताधिक प्रचलित भेद काव्य-शास्त्रियो की वुद्धि के चमत्कार को तो प्रमाणित करते है किन्तु उनसे काव्य-शैली के सौन्दर्य को स्पष्ट करने एव उसकी मूल प्रक्रिया एवं लक्ष्य को हृदयगम करने मे सहायता नही मिलती—इसीलिए हमारे विचार मे अलकारादि के शताधिक भेदोपभेदो मे पड़ने की कोई आवश्यकता नही। इतना ही नही, ये भेदोपभेद मूल सिद्धान्त से दूर ले जाने वाले, आधारभूत क्षेत्र की सीमाओ का अतिक्रमण करने वाले एव मूल तत्त्व को अस्पष्टता एव अनिश्चितता प्रदान करने वाले सिद्ध होते है, अत इनके स्थान पर पूर्वोक्त पॉच भेदो को शैली के मानदड के रूप में ग्रहण किया जाय तो रचना-शैली की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया एव उसके सौन्दर्य के उद्घाटन मे अधिक सहायता मिलेगी। अत. आगे हम इन्ही मान-दंडों का आश्रय ग्रहण करते हुए महादेवी की काव्य-शैली का विवेचन वस्तुत करेगे।

१. संयोजनात्मक रूप-विधान (अलंकार-योजना)

रसायन-शास्त्र के अनुसार जव दो या दो से अधिक पदार्थों के योग से नया यौगिक वनता है तो उसे संयोजन की प्रक्रिया कहा जाता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे भी यह स्वीकार किया गया है कि कल्पना-शक्ति अतीत के विभिन्न अनुभवो और विम्वो के सयोजन या मेल से नया चित्र प्रस्तुत कर देती है। इसी प्रकार साहित्यकार की कल्पना-शक्ति भी विपय-वस्तु को नवीन एव आकर्पक रूप प्रदान करने के लिए दो भिन्न तत्त्वो को—जिनमे एक प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत—संयुक्त रूप मे प्रस्तुत कर देती है जिससे प्रतिपाद्य वस्तु के सौन्दर्य मे अभिवृद्धि होती है। इसी प्रक्रिया को परम्परागत काव्य-शास्त्र मे अलकार-योजना कहा गया है। संयोजनात्मक रूप-विधान या अलकार-योजना की मूलत. दो सीमाएँ स्वीकार की जा सकती है, एक तो यह कि सयोजित किये जाने वाले दोनों तत्त्व दो भिन्न क्षेत्रो के होने चाहिए अर्थात् उनमे एक प्रस्तुत या उपमेय तथा दूसरा अप्रस्तुत या उपमान होना चाहिए। जहाँ दोनो वस्तुएँ एक ही पक्ष की होगी उसे हम इस प्रक्रिया मे नही ले सकते। दूसरे, संयोजित

वस्तु में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनो की सत्ता स्पष्ट रूप में विद्यमान रहनी चाहिए। दोनो मे से एक के अभाव मे वह सयोजन अलंकार के क्षेत्र से वाहर चला जायगा। उदाहरण के लिए—'उसका मुख चाँद सा सुन्दर है'—इसमे मुख प्रस्तुत विपय है जिसका सयोजन अप्रस्तुत विपय चाँद के साथ किया गया है, यहाँ मुख और चाँद दोनो स्पष्ट रूप मे विद्यमान हैं किन्तु यदि इसके स्थान पर कहा जाता—'इस चाँद को देखकर कौन आकर्पित न होगा!'—तो यहाँ प्रस्तुत विपय के स्पष्ट उल्लेख के अभाव मे उपमान न रहकर प्रतीक वन जाता है; अत. यह उदाहरण प्रतीक-योजना (विस्थापनात्मक रूप-विधान) के अन्तर्गत आता है। प्राचीन अलंकार शास्त्रियों ने अलकार-योजना की इन सीमाओ को ध्यान मे रखे विना ही अलकार के ऐसे भेदोपभेदों की कल्पना की है जो वस्तुत अलकार की सीमा के वाहर पडते है। जहाँ अलकार्य की अनुपस्थिति मे अलंकार हो वहाँ वह मूल का प्रतिनिधि ही माना जायगा—राजा के अभाव मे राजमुकुट या उसकी पादुकाएँ, अलकरण न रहकर राजचिह्न वन जायेगी। इस दृष्टि से विचार करने पर सादृश्यमूलक अलकार (उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि) ही वास्तविक अलकार सिद्ध होते हैं जवकि विरोधमूलक अलकार (विभावना, असंगति, विरोधभास आदि) वक्रोक्ति के क्षेत्र मे, गूढार्थ प्रतीतिमूलक अलंकार व्यजना या ध्वनि के क्षेत्र में तथा शेष अलकार भी अन्य सिद्धान्तो के क्षेत्र मे चले जाते हैं जिन्हे वस्तुत. अलकार नही माना जा सकता। अस्तु, सादृश्यमूलक अलकारो को ही वास्तविक अलकरण या सयोजनात्मक रूप-विधान के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

सयोजनात्मक रूप-विधान का मूल लक्ष्य मूल विषय को उससे भी अधिक सुन्दर या प्रभावोत्पादक विपय (अप्रस्तुत) से सम्वद्ध करते हुए उसे आकर्पक रूप प्रदान करना होता है। पर साथ ही अप्रस्तुत विपय का किसी न किसी दृष्टि से प्रस्तुत के साथ मेल भी होना चाहिए, अन्यथा सयोजन की क्रिया स्वाभाविक नही रह सकेगी। इसीलिए सयोजनात्मकता की सफलता इस वात मे निहित है कि जहाँ अप्रस्तुत प्रस्तुत से अधिक प्रभावोत्पादक हो वहाँ उनका पारस्परिक मेल भी किसी सादृश्य के आधार पर किया गया हो। महादेवी के सयोजनात्मक रूप-विधान को इस दृष्टि से परखा जा सकता है। यहाँ उनके काव्य से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है :

(क) शून्य नभ पर उमड़ जव दुख भार सी
नैशतम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओ की पाँति भी
जव सुनहले आँसुओं के हार सी,

(ख) दिया क्यों जीवन का वरदान ?
× × ×
सिकता में अंकित रेखा सा,

वात-विकम्पित दीपशिखा सा ;
काल-कपोलों पर आँसू सा,
ढुल जाता हो म्लान !

(ग) तज उनका गिरि-सा गुरु अन्तर,
मैं सिकता कण-सी आई झर !

(घ) पीड़ा मेरे मानस से
भीगे पट सी लिपटी है !

उपर्युक्त उदहरणों का क्रमश. विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि महादेवी प्राय सूक्ष्म तत्त्व की व्यजना सुस्पष्ट रूप मे करने के लिए उसका सयोजन किसी स्थूल या दृष्टिगोचर रूप के साथ करती है ; यथा, उद्धरण क मे सघन घटा का सयोजन दुःख-भार के साथ किया गया है या ख मे जीवन की तुलना 'सिकता मे अकित रेखा,' 'वात-विकम्पित दीप-शिखा' 'काल-कपोलो पर आँसू' आदि से की गयी है। इसी प्रकार उदाहरण ग मे एक ही महानता के लिए पर्वत एव दूसरे की लघुता के लिए सिकता-कण की आयोजना की गयी है तो अगले उदाहरण मे सूक्ष्म पीड़ा को भीगे पट से उपमित किया गया है। इनसे स्पष्ट है कि महादेवी का सयोजनात्मक रूप-विधान केवल बाह्य रूप-रग के ही सादृश्य पर आधारित नही होता अपितु उसके मूल मे प्रस्तुत एव अप्रस्तुत विषय के प्रभाव-साम्य की आन्तरिक एकता रहती है। जीवन क्षण-भगुर है, चचल है, दु खपूर्ण है—इन भावों के स्पष्टीकरण के लिए क्रमश. उन्होने बालू मे अकित रेखा, हवा से काँपती हुई दीपशिखा या काल के आँसुओ का सयोजन किया है जो प्रतिपाद्य भाव को भली भाँति व्यक्त करते है। इस प्रकार का सयोजन वस्तु का केवल बाह्य बोध ही प्रस्तुत नही करता अपितु वह सम्पूर्ण भाव को मन पर अंकित कर देता है। अत. कहना न होगा कि सयोजनात्मक रूप-विधान या अलकार-योजना मे महादेवी को पूर्ण सफलता मिली है , वस्तुत. वे इस क्षेत्र मे एक आदर्श स्थापित करती है।

सयोजनात्मक रूप-विधान की भी अनेक कोटियाँ या स्तर-भेद होते है, जिन्हे अलकार-शास्त्रियो ने तो शताधिक अलकार-भेदो के रूने मे निरूपित किया है किन्तु हमारे विचार से उसके तीन भेद ही पर्याप्त है—(१) तुलनात्मक सयोजन (२) आरोपण मूलक संयोजन और (३) तादात्म्य मूलक संयोजन। तुलनात्मक संयोजन मे प्रस्तुत और अप्रस्तुत—दोनो विषयो की स्पष्ट तुलना की जाती है तो आरोपणमूलक संयोजन मे तुलना के स्थान पर परस्पर आरोपण रहता है। तथा तादात्म्यमूलक संयोजन मे यह आरोपण इतना घनिष्ठ हो जाता है कि दोनो की सत्ता एकात्मक सी हो जाती है। यहाँ ध्यान रहे कि सयोजन चाहे किसी भी कोटि का क्यो न हो, अन्ततः दोनो विषयो की सत्ता अवश्य विद्यमान रहती है, अत. तादात्म्यमूलक सयोजन मे भी दो विषयो का

तादात्म्य रहते हुए भी दोनो की सत्ता अवश्य रहती है ; एक की सत्ता सर्वथा लुप्त नहीं हो जायगी। जहाँ एक की सत्ता सर्वथा लुप्त हो जाती है वहाँ सयोजनात्मक रूप-विधान न होकर विस्थापनात्मक (प्रतीकात्मक) रूप-विधान होता है, अतः इस बात को ध्यान में रखना होगा अन्यथा सयोजनात्मक और विस्थापनात्मक रूप-विधान के क्षेत्र परस्पर घुल-मिल जायेगे।

सयोजनात्मक रूप-विधान के इन तीनो ही भेदो के अनेक श्रेष्ठ उदाहरण महादेवी के काव्य मे उपलब्ध होते है। यहाँ क्रमशः कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

(क) तुलनात्मक **संयोजन**—इसके अन्तर्गत परम्परागत अलंकार-शास्त्र के उपमा, अनन्वय, स्मरण, दीपक, दृष्टान्त आदि वे भेद आ जाते है जिनके मूल मे प्रस्तुत एव प्रस्तुत विपय की सादृशता एव तुलनात्मकता का अस्तित्व रहता है। महादेवी ने प्रायः इसका आयोजन किया है·

१. कनक से दिन, मोती-सी रात

२. तड़ित् उपहार तेरा—
बादलों से प्यार है मेरा।

३ अवनि अम्बर की रूपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता

यहाँ प्रथम उदाहरण मे बाह्य रूप-रग का साम्य है तो दूसरे मे प्रभाव का तथा तीसरे मे क्रिया-व्यापार का साम्य है। मनोविज्ञान के अनुसार यहाँ साहचर्य-सिद्धान्त (Law of association) कार्य करता है क्योकि इनमे प्रस्तुत विपय के अनुरूप अप्रस्तुत पदार्थों के रूप-रग, आकार-प्रकार एव क्रिया-व्यापार का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि जिससे पाठक की मानसिक प्रतिमाएँ (Images) सहज ही तरगित हो उठती है। वस्तुत· तुलनात्मक संयोजन का मूल लक्ष्य ही यही है जिसकी पूर्ति उपर्युक्त उदाहरणो में भली भाँति हुई है।

आरोपण-मूलक संयोजन—इसके अन्तर्गत मुख्यत· रूपक, भ्रान्ति सदेह, अपन्हुति आदि अलंकार आ जाते है। महादेवी ने आरोपणमूलक सयोजन अत्यन्त सुन्दर रूप मे किया है ; यथा :

१. तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,

२. विरह का जल जात जीवन
विरह का जल जात !

३. किरण-नाल पर घन के शत दल
कलरव-लहर विहग बुद्बुद् चल ।

उपर्युक्त उद्धरणो मे प्रस्तुत विपय पर अप्रस्तुत का आरोपण किया गया है जिससे मूल विपय के भाव एव प्रभाव का बोध सफलतापूर्वक हो जाना है ।

(ग) **तादात्म्यमूलक संयोजन**—इसके अन्तर्गत सयोजन के उन उदाहरणो को रखा जा सकता है जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत मिलकर एकात्मकता का आभास देते हैं ; यथा :

मै नीर भरी दुख की वदली ।
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते,
पलकों में निर्झरिणी मचली !

यहाँ प्रथम तीन पक्तियो मे कवयित्री ने अपने व्यक्तित्व पर वादल (बदली) का आरोपण इतना सघन किया है कि दोनो के गुण-धर्म एव कार्य-व्यापारो मे एकात्मकता स्थापित हो गयी है पर फिर भी दोनो के अस्तित्व की पृथकता का सर्वथा लोप यहाँ नही हुआ है । इसी प्रकार एक उदाहरण और देखिये—

नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
× × ×
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ ।

यहाँ कवयित्री ने चातक, दीपक एव बुलबुल से अपनी केवल तुलना ही नही की अपितु उनके साथ तादात्म्य भी स्थापित कर लिया है, पर फिर भी वह हमे आस्वाभाविक प्रतीत नही होता । वस्तुत महादेवी के काव्य मे संयोजनात्मक रूप-विधान के अन्य दो भेदो की अपेक्षा इसी की अधिकता है ।

वैसे तो संयोजनात्मक रूप-विधान के प्रथम दो भेदो—तुलनात्मक एव आरोपणमूलक—मे भी प्रस्तुत एव अप्रस्तुत का साहश्य एव साहचर्य विद्यमान रहता है किन्तु इसके मूल मे भावात्मकता की अपेक्षा वौद्धिकता एव अनुमान की शक्ति अधिक कार्य करती है जवकि तादात्म्यमूलक सयोजन मे वुद्धि और कल्पना का नही अपितु

अनुभूति और कल्पना का गहरा मेल रहता है जिससे वक्तव्य वस्तु में अनूठा आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। आकर्षण-शक्ति-सिद्धान्त के अनुसार जब दो विरोधी तत्त्वों को इस प्रकार मिला दिया जाय कि उनका मेल स्वाभाविक एवं रुचिकर प्रतीत हो तो वहाँ आकर्षण का प्रादुर्भाव सहज सभव है। महादेवी के काव्य मे भी अनुभूति और कल्पना का (प्रस्तुत और अप्रस्तुत का) ऐसा ही मेल दृष्टिगोचर होता है। इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए महादेवी के कतिपय उदाहरणो का विश्लेषण तालिका-रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है—

संयोजनात्मक रूप-विधान

प्रस्तुत विषय या अनुभूति का विषय	संयुक्त अप्रस्तुत विषय या कल्पित विषय	संयोजन का आधार	लक्ष्य
१. मैं (विरहिणी)	बदली	नीर-भरी (आँसू) दु.ख की (दुःख से युक्त)	अपने आँसुओ और दु.ख का विस्तार दिखाना
२. (मैं) हूँ (विरहिणी)	चातक	तृषित नयन मे जिसके जलद	प्रणय-तृषा की अभिव्यक्ति

अस्तु, इसमे कोई सन्देह नही कि महादेवी की काव्य-शैली मे सयोजनात्मक रूप-विधान के अन्तर्गत स्थूल और सूक्ष्म का, तथ्य और कल्पना का मेल अनुभूति के आधार पर अत्यन्त सुन्दर रूप मे हुआ है। इस क्षेत्र मे उन्होंने परम्परागत उपमानो को या तो त्याग दिया है या फिर उन्हे नये परिवेश और नये रूप मे प्रयुक्त किया है। इसीलिए उनके सयोजनात्मक रूप-विधान मे सर्वत्र सहजता, नवीनता एव रुचिरता के दर्शन होते हैं।

२. विश्लेषणात्मक रूप-विधान (बिम्ब-विधान)

विश्लेषणात्मक रूप-विधान मे सयोजनात्मक रूप-विधान की भाँति मूल विषय के साथ किसी बाह्य या अप्रस्तुत विषय का मेल नही किया जाता, अपितु मूल के ही विभिन्न अगो एवं अवयवो को इस प्रकार विश्लिष्ट या चित्रित कर दिया जाता है कि जिससे वह आकर्षक प्रतीत हो। उदाहरण के लिए—'शकुन्तला सुन्दर है'—यह एक सामान्य कथन है जबकि इसका विश्लेषण करते हुए कहा जा सकता है—'शकुन्तला का शरीर स्वस्थ एव पुष्ट है, उसका मुख गोल है, नेत्र बडे-बडे है; कपोल उभरे हुए

हैं ; ओष्ठ आरक्त है, आदि ।' इस प्रकार के विश्लेपण से वक्तव्य वस्तु का एक चित्र पाठक के मन मे अंकित हो जाता है , यही विश्लेषणात्मक रूप-विधान का मूल लक्ष्य है ।

परम्परागत काव्य-सिद्धान्तो मे से बिम्व-विधान विश्लेषणात्मक रूप-विधान के अन्तर्गत आता है । विम्व-विधान क्या है ? इसका उत्तर देते हुए प्रसिद्ध विद्वान् सी० डी० लेविस ने वताया है कि किसी विषय का ऐसा निरूपण कि जिससे उसका चित्र प्रस्तुत हो जाय, बिम्व-विधान है । विम्ब की परिभाषा करते हुए उन्होने लिखा है—'A poetic image is a word-picture charged with emotion or passion' अर्थात् काव्यात्मक बिम्व एक ऐसा शब्द-चित्र हैं जो कि भाव या सवेग से अनुप्राणित होता है । एक अन्य विद्वान् के अनुसार भी 'विम्ब एक ऐसा शब्द है जो कि ऐन्द्रियानुभूति का भाव जाग्रत करता है ।' काव्यात्मक बिम्व की विभिन्न परिभाषाओ एवं उसके लक्षणो के विवेचन-विश्लेपण के अनन्तर 'साहित्य-विज्ञान' मे उसकी पाँच विशेपताएँ निर्धारित की गयी है—(१) बिम्ब मूलत. वस्तु का चित्र हैं । (२) उसका माध्यम शव्द होता है, रेखाएँ नही । (३) उसका गुण ऐन्द्रियकता हैं । (४) उसका लक्ष्य चित्रित वस्तु के द्वारा भावोद्वेलन करना है। (५) उसमे बाह्य वस्तु का आरोपण नही होता । वस्तुत विम्व और अलकार मे सबसे बडा भेद यही होता है कि जहाँ बिम्ब मे केवल प्रस्तुत विषय का ही विस्तार होता हैं, वहाँ अलकार मे अप्रस्तुत का भी समावेश या मेल होता है । पर कट्टर विम्बवादियो ने भी अलकारवादियो की तरह से अपनी सीमाओ का विस्तार करने के लिए विम्ब के ऐसे-ऐसे भेदोपभेदो की कल्पना की है जिससे अलंकार, प्रतीक आदि वाह्य तत्त्वो का भी उसमे समावेश हो जाता है । इसी प्रकार विम्ब वस्तु का केवल शव्द-चित्र हैं, तथा चित्र मे केवल चाक्षुप गुणो का ही प्रस्तुतीकरण हो सकता है अत. विम्ब-विधान का प्रत्यक्ष सम्वन्ध चक्षुरिन्द्रिय से ही है , अन्य इन्द्रियो—घ्राण, श्रवण, स्वाद आदि से नही । क्या ध्वनि, गध, स्वाद आदि का चित्र प्रस्तुत हो सकता है ? गुलाव के फूल का चित्रण करते समय उसके वाह्य रूप-रग का ही चित्रण सभव है, उसकी गध का नही , फिर भी अनेक पाश्चात्य विम्ववादियो ने तथा उनके भारतीय अनुकर्त्ताओ ने विम्व का सम्वन्ध पाँचो इन्द्रियो से मानते हुए उसके पाँच भेद किये है जो बिम्व की मूल परिभाषा के ही प्रतिकूल सिद्ध होते है। ऐसी स्थिति मे या तो हमे विम्व की परिभाषा मे से 'चित्र' शव्द निकाल देना होगा अन्यथा विम्व-विधान का प्रत्यक्ष सम्वन्ध केवल चक्षुरिन्द्रिय से स्वीकार करना होगा ।

विम्व-विधान का भी मूलत. वही लक्ष्य है जो विश्लेषणात्मक रूप-विधान का है । दोनो मे ही वक्तव्य वस्तु का वर्णन-विश्लेपण या चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि जिससे उसके रूप-सौन्दर्य का वोध हो सके । इसीलिए हमने विम्व-विधान को विश्लेपणात्मक रूप-विधान मे समाविष्ट कर लिया है पर इससे यह न समझना

चाहिए कि विश्लेषणात्मक रूप-विधान का क्षेत्र विम्ब-विधान तक ही सीमित है। विम्ब-विधान मे तो केवल बाह्य रूप-रगो का चित्रण ही आता है जबकि विश्लेषणात्मक रूप-विधान मे तो ऐसे सूक्ष्म एव आन्तरिक गुणो के वर्णन-विश्लेषण को भी लिया जा सकता है कि जिनका चित्रण या बिम्ब-विधान सम्भव नही। इसीलिए बिम्ब-विधान को विश्लेषणात्मक रूप-विधान के एक अग के ही रूप मे स्वीकार किया जा सकता है, पूर्ण प्रतिनिधि के रूप मे नही। वस्तुत. काव्य-रचना मे जहाँ भी किसी बाह्य वस्तु या अप्रस्तुत के मेल के बिना वर्ण्य विपय के ही विभिन्न पक्षो, अगो या आन्तरिक गुणो के स्वाभाविक वर्णन, विश्लेषण या चित्रण के द्वारा उसमें सौंदर्य या आकर्षण को उद्दीप्त कर दिया जाय, वहाँ विश्लेषणात्मक रूप-विधान की प्रक्रिया स्वीकार की जा सकती है। भारतीय आचार्यों की शब्दावली मे कहा जा सकता है कि इसमे सौदर्य का आधार अतिशयोक्ति या वक्रोक्ति न होकर स्वभावोक्ति होती है। दूसरे शब्दो मे, इसमे बाह्य सौंदर्य का आरोपण न होकर मूल के स्वाभाविक या वास्तविक सौदर्य का ही उद्घाटन होता है।

● **महादेवी के काव्य में विश्लेषणात्मक रूप-विधान**—महादेवी के काव्य मे बौद्धिकता एव भावात्मकता, लौकिकता एव अलौकिकता, वस्तु और कला का सुन्दर समन्वय है, अत उसमे स्वभावोक्ति की अपेक्षा अतिशयोक्ति एव वक्रोक्ति की ही प्रमुखता है, ऐसी स्थिति मे उनमे शुद्ध विश्लेषणात्मक रूप-विधान कम मिलता है, पर उसका सर्वथा अभाव भी नही है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं.

कह दे माँ क्या देखूँ!
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को!
× × ×
या मुरझायी पलकों से
झरते आँसू-कण देखूँ!
× × ×
कलियों की घन-जाली में!
छिपती देखूँ लतिकाएँ।

उपर्युक्त पक्तियो मे प्रस्तुत विपय के ही विभिन्न अवयवो का चित्रण एव विश्लेपण इस प्रकार किया गया है कि जिससे उसमे रागात्मकता का सचार हो जाता है। 'दु:खी व्यक्ति' के स्थान पर 'प्यासे सूखे अधरो' का अथवा 'झरते आँसू-कण' का उल्लेख करके उसके दु.ख को साकार रूप मे प्रस्तुत कर दिया गया है, फिर भी इनमे किसी वाह्य उपमान या अप्रस्तुत का आयोजन नही है, मूल के सहज स्वाभाविक अवयवों व गुणो

का ही विस्तार है—अतः इन अशो को विश्लेपणात्मक रूप-विधान के सुन्दर उदाहरणों के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

विश्लेपणात्मक रूप-विधान मे केवल वाह्य सौदर्य या रूप का ही चित्रण नही होता, आन्तरिक भावों व तत्त्वो का भी विश्लेषण होता है ; इसके भी अनेक उदाहरण महादेवी के काव्य में उपलब्ध होते है ; यथा :

(क) भूलती थी मै सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश,
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

(ख) कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?

(ग) क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

उपर्युक्त उद्धरणो मे हृदय की अनुभूतियो को सहज स्वाभाविक रूप मे व्यक्त कर दिया गया है, इनमे किसी वाह्य वस्तु का आरोपण या सम्मिश्रण नही है फिर भी अपनी सहजता एव रागात्मकता के कारण ये पर्याप्त आकर्पक प्रतीत होते हैं।

अस्तु, महादेवी ने भावानुभूतियो की सहज स्वाभाविक रूप मे अभिव्यक्ति प्राय. की है, पर उनके काव्य मे ऐसे स्थल वहुत कम है जहाँ अप्रस्तुत-योजना न हुई हो। अतः हम यह स्वीकार कर सकते है कि अप्रस्तुत-योजना से सर्वथा मुक्त विश्लेषणात्मक रूप-विधान उनके काव्य मे अपेक्षाकृत कम मिलता है।

३. विस्थापनात्मक रूप-विधान (प्रतीक योजना)

जहाँ एक पदार्थ के स्थान पर किसी अंन्य पदार्थ को स्थापित किया जाता है उसे विस्थापन कहते है। भौतिक एव मानसिक क्षेत्र मे विस्थापन की प्रक्रिया प्राय. चलती रहती है। साहित्य के क्षेत्र मे भी जव मूल विपय, पदार्थ, व्यक्ति या प्रसंग के स्थान पर किसी अन्य वाह्य विपय (=अप्रस्तुत) का प्रतिपादन करते हुए उसके माध्यम से ही मूल विषय या प्रस्तुत विपय की व्यजना की जाय तो इसे हम 'विस्थापनात्मक रूप-विधान' कह सकते है। जहाँ सयोजनात्मक रूप-विधान मे प्रस्तुत विपय

का अप्रस्तुत से मेल होता है वहाँ इसमे अप्रस्तुत ही प्रस्तुत का स्थानापन्न बन जाता है परम्परागत काव्य-शास्त्र मे इस प्रक्रिया को ध्वनि एव प्रतीक की सज्ञा दी जाती है। ध्वनि और प्रतीक—दोनो मे ही अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की अभिव्यक्ति होती है, यथा—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल !
अली कली ही सों बँध्यौ, आगे कौन हवाल !

यहाँ कली और अली (भौरा) के माध्यम से नायिका और नायक के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति की गयी है। ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार कहा जा सकता है कि दोहे के वाच्यार्थ का सम्बन्ध अली और कली से है तो व्यग्यार्थ का नायक-नायिका से तथा व्यग्यार्थ की ही प्रमुखता है, अत यह ध्वनि का सुन्दर उदाहरण है। दूसरी ओर प्रतीक सिद्धान्त के अनुसार इसमे अली नायक का तथा कली नायिका की प्रतीक है तथा इसमे प्रतीकार्थ का सौन्दर्य व्याप्त है, अत यह प्रतीक-योजना का सुन्दर उदाहरण है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मूलत. जिसे भारतीय काव्य-शास्त्र की शब्दावली मे ध्वनि कहते है, वही पाश्चात्य शब्दावली मे प्रतीक है, अन्तर केवल दोनो की विश्लेषण-पद्धति का है—ध्वनि मे पूरे प्रसग के आधार पर अर्थ का विश्लेषण किया जाता है तो प्रतीक मे प्रत्येक शब्द को अलग-अलग लिया जाता है। इस दृष्टि से प्रतीक का क्षेत्र ध्वनि की अपेक्षा किंचित् सीमित भी हो सकता है। इस सम्बन्ध मे अधिक स्पष्टीकरण 'साहित्य-विज्ञान, के तृतीय खड (साहित्य की शैली) मे किया जा चुका है; अत. यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मूलतः ध्वनि और प्रतीक एक ही क्षेत्र के हैं तथा दोनो का समाहार 'विस्थापनात्मक रूप-विधान' के अन्तर्गत हो जाता है। अलकारवादियो व विम्बवादियो की भाँति ध्वनिवादियो एव प्रतीकवादियो ने भी विभिन्न भेदोपभेदो का विस्तार करते हुए अन्य सिद्धान्तो के क्षेत्र को अपने अधिकार मे लेने का दुष्प्रयास किया है—अतः इनके भेदोपभेद भी अनावश्यक एव भ्रामक है।

महादेवी के काव्य मे शैली के अन्य भेदो की अपेक्षा विस्थापनात्मकता की प्रवृत्ति अधिक मिलती है उसका मूल कारण यह है कि उन्होंने अपने काव्य मे कला के माध्यम से सत्य की अभिव्यक्ति की है तथा लौकिक शब्दावली मे अलौकिक प्रेम के अनुभव को व्यक्त किया है। यद्यपि उनका काव्य मुक्त गीति के रूप मे प्रस्तुत है, पर उनके गीत साधना के सोपानो व अनुभूति के विभिन्न स्तरो के विकास-क्रम पर आधारित है, अत. वाह्य दृष्टि से वे विच्छिन्न होते हुए भी आन्तरिक दृष्टि से परस्पर सवद्ध है। वस्तुत उनका सारा काव्य साधिका की आध्यात्मिक साधना के विभिन्न सोपानो के ही आरोहण की कहानी है, पर उसे व्यक्त लौकिक प्रतीकों के माध्यम से ही किया गया है, अत ऐसी स्थिति मे उनके काव्य मे विस्थापनात्मक रूप-विधान की प्रवृत्ति की प्रमुखता मिले तो स्वाभाविक ही है।

विस्थापनात्मक रूप-विधान के विभिन्न माध्यमो या प्रतीको के अन्तर्गत जिस वस्तु का प्रयोग उन्होने सर्वाधिक किया है, वह दीपक है। जैसा कि हम पहले अध्याय मे बता चुके है, खडी बोली मे प्रकाशित उनकी सर्व प्रथम कविता दीपक पर है, जिसमे स्नेह, दीप, वर्त्तिका के माध्यम से पवित्र प्रेम की बात कही गयी है तथा उनका अब तक प्रकाशित अन्तिम काव्य-सग्रह भी 'दीपशिखा' नाम से है। वस्तुत उस प्रथम कविता से लेकर अब तक उन्होने दीपक को प्रतीक रूप मे ग्रहण करते हुए अनेक गीत लिखे है जिनकी सख्या बीस से भी अधिक है। अकेली 'दीपशिखा' मे ही दीप सम्बन्धी लगभग एक दर्जन गीत हैं। पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी गीतो मे दीपक प्राय. साधिका के जीवन का प्रतीक है, सभी मे दीपक की जलने के माध्यम से जीवन की जलन का भाव व्यक्त किया गया है। यहाँ विभिन्न कविताओ से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

(क) बुझ जाने दो देव! आज,
मेरा दीपक बुझ जाने दो! —नीहार

(ख) जगा न दे हे दीप! कहीं—
उसको तेरा यह क्षीण प्रकाश! नीहार

(ग) मूक करके मानस का ताप
सुलाकर वह सारा उन्माद,
जलाना प्राणों को चुपचाप
छिपाये रोता अन्तर्नाद;
कहाँ सीखी यह अद्भुत प्रीति
मुग्ध हे मेरे छोटे दीप! —नीहार

(घ) इन उत्ताल तरंगों पर सह—
झंझा के आघात,
जलना ही रहस्य है बुझना—
है नैसर्गिक बात! —रश्मि

(ड) मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
× × ×
तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलने में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल। —नीरजा

(च) दीप मेरे जल अकम्पित,
घुल अचंचल !
× × ×
मोह क्या निशि के वरों का,
शलभ के झुलसे परों का,
साथ अक्षय ज्वाल का,
तू ले चला अनमोल सम्बल ! —दीपशिखा

(छ) यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
× × ×
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा-जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो ! —दीपशिखा

(ज) पूछता क्यों शेष कितनी-रात ?
अमर सम्पुट में ढला तू,
× × ×
तिमिर वात्याचक्र में सब पिस गये अनमोल तारे,
बुझ गई पवि के हृदय में काँपकर विद्युत्-शिखा रे ! —दीपशिखा

(झ) पुजारी दीप कहीं सोता है !
× × ×
इस चितवन की अमिट निशानी,
अंगारे का पा पारस-पानी,
इसको छूकर लौह-तिमिर
लिखने लगता है स्वर्ण-कहानी !
किरणों के अंकुर बनते यह जो सपने बोता है ! —दीपशिखा

उपर्युक्त सभी उद्धरणो मे दीपक की ही बात बार-बार कही गयी है। इन सभी मे दीपक कवयित्री के जीवन का प्रतीक है, दीपक की ही भाँति वह प्रणय-वेदना मे जल रही है; विरह-निशा मे आध्यात्मिक अनुभूति का प्रकाश फैला रही है; जलना ही उसका ध्येय है; स्नेह ही उसका साधन है, उसे जलने से घबराना नही है क्योंकि जलते रहने से ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा। उसकी साधना को भग करने

के लिए बीच-बीच में सासारिक प्राणी पतंगो की भाँति आकर उस पर न्यौछावर होते रहते हैं, वे उसके लिए अपने को नष्ट कर देते है, अवश्य ही इन पतगो के लिए उसके मन मे सहानुभूति है, पर फिर भी वह इनके मोह मे पडकर अपनी साधना भंग नही करेगी। अस्तु, जिस प्रकार स्नेह के बल पर जलते रहना दीपक का धर्म है उसी प्रकार रहस्यवादी साधक—अलौकिक प्रेम के पथिक का भी विरह-वेदना मे निरन्तर जलते रहना उसका लक्ष्य है; इस लक्ष्य की पूर्त्ति से ही वह प्रभात रूपी प्रियतम का साक्षात्कार कर पायेगा अन्यथा मध्य निशा में बुझ जाने पर वह प्रभात का साक्षात्कार नही कर पायेगा तथा वह इस बात का प्रमाण होगा कि उसमें स्नेह अपेक्षित मात्रा मे नही था। इस प्रकार दीपक सम्बन्धी विभिन्न कविताएँ महादेवी के काव्य के प्रमुख भाव—अलौकिक प्रेम एवं रहस्य-साधना—के ही विभिन्न पक्षो को विस्थापनात्मक रूप मे प्रस्तुत करती हैं। वस्तुत. अकेले दीपक को लेकर लिखी गयी कविताओ का ही एकत्रित सग्रह कर दिया जाय तो वह न केवल कवयित्री की साधना के विभिन्न सोपानो और अनुभूति के विभिन्न स्तरो को प्रदर्शित करेगा अपितु महादेवी के विस्थापनात्मक रूप-विधान के भी विभिन्न गुणो को भली-भाँति स्पष्ट करेगा। अस्तु, दीपक एक ऐसा प्रतीक है जो महादेवी के काव्य के प्रमुख भाव का सम्यक् प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

दीपक के अनन्तर दूसरा प्रतीक—पुष्प है, जिसके माध्यम से महादेवी की करुणा या सहानुभूति की भावना प्रायः व्यक्त हुई है। रहस्य-साधिका होने के कारण महादेवी स्वय सासारिक आकर्षण मे नही पडती पर फिर भी ससार के लोगो के प्रति वे पूर्णतः उदासीन भी नही है अपितु उनके प्रति स्नेह और सहानुभूति की अभिव्यक्ति की है। विशेषत. ससार के उन लोगो के प्रति जो कि सज्जनता, विनम्रता, उदारता एव सहिष्णुता के गुणो से युक्त है, कवयित्री ने विशेष स्नेह प्रदर्शित किया है तथा उनका स्नेह प्रायः पुष्प के माध्यम से व्यक्त हुआ है। उनके विभिन्न संग्रहो मे अनेक ऐसी कविताएँ मिलती हैं जिनमे पुष्प ऐसे ही सज्जन एवं विनम्र व्यक्तियो का प्रतिनिधि या प्रतीक है। यहाँ कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं:

(क)

था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन!
मुस्कराता था, खिलाती
अंक में तुझको पवन!
× × ×
जिस पवन ने अंक में—
ले प्यार था तुझको किया,
तीव्र झोंके से सुला—

उसने तुझे भू पर दिया
कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी सुमन —नीहार

(ख) मधुरिमा के मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से छविमान
× × ×
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण ?
× × ×
कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार !
तुम्हे भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्त्तार ! —नीहार

इन कविताओ मे पुष्प एक अत्यन्त सुकुमार एव कोमल व्यक्तित्व का प्रतीक है , वस्तुत यह व्यक्तित्व स्वय कवयित्री के व्यक्तित्व का भी प्रतिनिधि है, अत. पुष्प सम्बन्धी कविताओ मे उनकी गहरी आत्मानुभूति की भी व्यजना परिलक्षित होती है। वास्तव मे स्वयं कवयत्री का व्यक्तित्व ही पुष्प की ही भाँति कोमल, कमनीय एवं उदार है, उन्हें भी जीवन में उसी सासारिक कटुता का अनुभव प्राप्त हुआ है जो काँटों के साथ जीवन विताने वाले फूल को सहन करनी पडती है। इस प्रकार पुष्प उनके अपने व्यक्तित्व का ही प्रतिनिधि मान लिया जाय तो अनुचित न होगा।

पुष्प-समूह मे से भी महादेवी को कमल विशेप प्रिय है। कमल भारतीय सस्कृति का सबसे प्यारा पुष्प है, उसका रग, रूप, गध—तीनो भारतीय रुचि एव प्रकृति के द्योतक है, वह हमारे लिए न केवल सौंदर्य एवं गंध की दृष्टि से महत्वपूर्ण है अपितु उसमे पवित्रता, दिव्यता एव अलौकिकता का भी भाव सन्निहित है। तुलसीदास जैसे कवि ने तो अपने आराध्य के प्राय सभी अगो को कमल से उपमित करके इसके महत्त्व की व्यंजना स्पष्ट रूप मे की है—महादेवी ने भी अपने एक काव्य-संग्रह का नामकरण—नीरजा—इसी के आधार पर किया है। उनकी अनेक कविताओ मे भी इसी को प्रतीक रूप मे ग्रहण किया गया है ; यथा :

(क) प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर
× × ×
इसमें उपजा यह नीरज सित,

कोमल कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी लेकर मधुर पीर !
× × ×
इसमें न पंक का चिह्न शेष
इसमें न ठहरता सलिल-लेश
इसको न जगाती मधुप-भीर ! —नीरजा

(ख) विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात !
× × ×
काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार ;
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात ! —नीरजा

जहाँ सामान्य पुष्प कवयित्री के कोमल, मधुर, उदार एव स्नेहशील व्यक्तित्व का प्रतीक है वहाँ कमल उनके साधना-पूत व्यक्तित्व को प्रस्तुत करता है। विरह-व्यथा के आँसुओ से परिपूर्ण, वासना के पंक से ऊपर उठी हुई, सासारिक आकर्षण जाल से मुक्त रहती हुई, मधु-लोभी भ्रमरो की भीड़ से वची हुई रहस्योन्मुख साधिका के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व पूर्णत· वह पकज ही कर पाता है जो पक से जन्म लेकर भी पक-शून्य रहता है ; नीरज होता हुआ भी नीर से ऊपर उठा रहता है, इस प्रकार कमल साधिका महादेवी के समूचे व्यक्तित्व को सफलतापूर्वक व्यंजित कर पाता है। वस्तुत. महादेवी की प्रतीक-योजना, या उसके अप्रस्तुत-विधान अथवा विस्थापनात्मक रूप-विधान की यह सवसे वडी विशेपता है कि माध्यमो का चयन उन्होने अत्यन्त सुसंगत रूप मे किया है उनके प्रतीक किसी एक ही विशेषता अथवा एक पक्ष का ही प्रति-निधित्व नही करते वे संपूर्ण रूप मे विभिन्न पक्षो, अगो एव गुणो की व्यंजना एक साथ कर देते हैं, अत. वे सवद्ध विषय या भाव को समग्र रूप मे व्यक्त कर पाने की क्षमता से युक्त सिद्ध होते है।

उपर्युक्त व्यापक प्रतीको के अतिरिक्त प्रासगिक प्रतीक जिनका प्रसार पूरी कविता मे न होकर किसी छन्द-विशेष या पक्ति-विशेप तक ही हो पाता है, महादेवी के काव्य मे शताधिक है। पर उन्होंने मुख्यत. प्रकृति से ही प्रतीक-सामग्री ग्रहण की है ; यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(क) कली से कहता था मधुमास,
वता दो मधुमदिरा का मोल ; —नीहार

(ख) झटक जाता था पागल वात
धूल में तुहिन कणों के हार। —नीहार

(ग) घोर तम छाया चारों ओर,
घटाएँ घिर आईं घनघोर ;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते है पर्वत मूल ;
गरजता सागर बारम्बार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ; —नीहार

(घ) लिये जाते तरणी किस ओर,
अरे मेरे नाविक नादान ! —नीहार

(ङ) चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते कन कन से फूट-फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान ! —रश्मि

(च) दृगों में सोते हैं अज्ञात,
निदाघों के दिन पावस-रात ; —रश्मि

(छ) अश्रु की उर्म्मि हास का वात,
कुहू का तम माधव का प्रात ! —रश्मि

(ज) फिर तुमने क्यों शूल बिछाए ? —दीप शिखा

उपर्युक्त उद्धरणो मे क्रमश. कली (युवती), मधुमास, (यौवन), मधु मदिरा (सौदर्य, प्रेम), वात (युवक) तुहिन कण (आँसू), घोरतम (अज्ञान), घटाएँ (निराशा), मारुत (वासना) पर्वत (आदर्श), सागर (ससार), तरणी (जीवन), रश्मि (ज्ञान), निदाघ (दु.ख), पावस (विरह), कुहू का तम (दु.ख एव निराशा से परिपूर्ण वेला), माधव का प्रातः (सुख एवं उल्लास के क्षण) आदि प्राकृतिक अवयवो का प्रयोग प्रतीक रूप मे किया गया है जिनका प्रतीकार्थ कोष्ठक मे दिया गया है ।

प्रकृति के अतिरिक्त कलाओ—विशेषत. संगीत-कला एव चित्र-कला के विभिन्न उपकरणो—का भी उपयोग प्रतीक रूप मे प्राय. हुआ है ; यथा .

(क) नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अँगुली, हैं ढीले तार
विश्व वीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार ! —नीहार

(ख) रजतकरों की मृदुल तूलिका
से ले तुहिनविन्दु सुकुमार,
कलियो पर जब आँक रहा था
करुण कथा अपनी संसार ; —नीहार

(ग) आज क्यों तेरी वीणा मौन ? —नीरजा

(घ) बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ! —नीरजा

(ङ) इस जादूगरनी वीणा पर
गा लेने दो क्षण भर गायक ! —नीरजा

वस्तुतः कलाओं मे संगीत एवं उसमे भी वीणा का संगीत कवयित्री को सर्वाधिक रुचिकर प्रतीत होता है, कदाचित् इसीलिए वीणा का प्रयोग प्रतीक रूप मे अनेक स्थलों पर हुआ है। इसके अतिरिक्त मुरली, लेखनी, तूलिका, आदि की भी चर्चा प्राय. हुई है।

इस प्रकार महादेवी के विस्थापनात्मक रूप-विधान के विश्लेषण के अनन्तर निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि एक तो उनकी अधिकांश कविताएँ दीपक, पुष्प, कमल आदि के माध्यम से उनकी रहस्य साधना, प्रणय-वदेना, करुणा, आदि के अनुभवों और अनुभूतियो को प्रतीकात्मक या विस्थापनात्मक रूप मे प्रस्तुत करती है। दूसरे, उनकी प्रतीक-योजना अत्यन्त संगत एव व्यापक रूप मे हुई है, वे विषय-वस्तु के अनेक अंगों व पक्षो का प्रस्तुतीकरण एक साथ करती हैं। तीसरे, उनके प्रतीको का क्षेत्र मुख्यत. प्रकृति एवं कलाओ से सम्बद्ध है। वे इन्ही क्षेत्रो से रूप-विधान के विभिन्न साधनो एव माध्यमों का चयन करती हैं। समग्र रूप में कहा जा सकता है कि विस्थापनात्मक रूप-विधान के क्षेत्र मे उन्हे अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है ; भारतीय आचार्यों का ध्वनि या व्यंजना का सौन्दर्य व पाश्चात्य विद्वानो का प्रतीक-सौन्दर्य उनके काव्य मे अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँचा हुआ दृष्टिगोचर होता है। अस्तु, उन्हे हम इस क्षेत्र में आदर्श मान सकते हैं।

४. विनिमयात्मक रूप-विधान (वक्रोक्ति)

विनिमयात्मक रूप-विधान मे शैली के ऐसे उदाहरणो को लिया जाता है जिनमे प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत की पूर्ण प्रतिष्ठा तो नही होती किन्तु दोनों के गुण-धर्म मे पारस्परिक विनिमय अवश्य हो जाता है। जहाँ विस्थापनात्मक रूप-विधान मे भाषा की व्यंजना-शक्ति कार्य करती है वहाँ विनिमयात्मक मे लक्षणा-शक्ति की प्रक्रिया रहती है। लाक्षणकिता के कारण ही प्रस्तुत विपय से अप्रस्तुत विषय का आंशिक मेल हो जाता है जिससे एक के कुछ गुण दूसरे मे संक्रमित हो जाते हैं। परम्परागत काव्य-शास्त्र मे जिसे लाक्षणिकता, वक्रोक्ति, विरोध मूलक अलंकार आदि कहा गया है वह सब विनिमयात्मक रूप-विधान मे समाविष्ट हो जाता है। वस्तुतः आधुनिक सौन्दर्य-शास्त्र मे इसी को 'वक्रता' कहा गया है। यहाँ इसके महादेवी के काव्य से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(क) पथ मेरा निर्वाण बन गया, प्रतिपग शत वरदान बन गया।
आज थके चरणों ने सूने तम में विद्युत्-लोक बसाया,
बरसाती है रेणु चाँदनी की यह मेरी धूमिल छाया,
प्रलय-मेघ भी गले मोतियों का हिम-तरल उफान बन गया।

(ख) मैं नीर भरी दुख की बदली!
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रंदन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली!

(ग) आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में,
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!

उपर्युक्त उद्धरणो में प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत विषय एक-दूसरे से आंशिक रूप मे घुले-मिले दृष्टिगोचर होते है; यथा—उदाहरण क में चरणो के साथ विद्युत्-लोक का, तन की धूमिल छाया के साथ चाँदनी की रेणु का उल्लेख अप्रस्तुत के आंशिक मेल का ही सूचक है। इस प्रकार का मेल एकाएक असगत, विचित्र एव असम्भव प्रतीत होता है पर लक्ष्यार्थ के द्वारा उसकी संगति बैठ जाती है। उदाहरण ख मे अपने क्रन्दन में दुःखी विश्व की हँसी की कल्पना करना या पलको से निर्झरिणी का प्रवाहित होना, एकाएक अस्वाभाविक प्रतीत होता है, पर तनिक सोचने से कल्पनाशक्ति के द्वारा अर्थ का बोध हो जाता हैं। अस्तु, इस प्रकार के रूप-विधान मे वैचित्र्यमूलक चमत्कार की प्रधानता रहती है।

विनिमयात्मक रूप-विधान की प्रक्रिया चमत्कारपूर्ण होती है पर फिर भी उसका आधार और लक्ष्य कोरा चमत्कार नही होता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भावातिरेक मे हम ऐसी भाषा का प्रयोग करते है जो कई वार अर्द्धस्फुट एव अस्पष्ट होती है; जैसे—'हाय! हम तो मर गये.... !' इस प्रकार के प्रयोगो मे आंशिक सत्य रहता है—यहाँ 'मरने' से अभिप्राय है कि इतनी हानि हुई है जितनी लगभग मरने से होती है, अतः कहना चाहिए वक्तव्य वस्तु (प्रस्तुत) पर मृत्यु (अस्प्रतुत) का आंशिक आरोपण किया गया है। अस्तु, दैनिक जीवन में भी भावावेग के कारण हम ऐसे लाक्षणिक प्रयोग निरन्तर करते रहते है जो कि पर्याप्त प्रभावोत्पादक सिद्ध होते हैं। काव्य मे भी इस प्रकार के वक्रतापूर्ण प्रयोग चमत्कार-सृष्टि के साथ-साथ मूल भाव को संवेद्य

बनाने मे भी सहायक सिद्ध होते है। हाँ, जहाँ वक्रता, लाक्षणिकता या चमत्कार भाव की प्रेरणा से न होकर शुष्क कल्पना पर आधारित हो वहाँ वह काव्य के सौन्दर्य मे अभिवृद्धि करने के स्थान पर उसमे अस्वाभाविकता एव अस्पष्टता का ही सचार करेगा। महादेवी ने विनिमयात्मक रूप-विधान प्राय भावानुभूति की प्रेरणा से ही किया है, अत वह कही भी अस्वाभाविक व अस्पष्ट प्रतीत नही होता, अपितु अन्ततः रुचिकर एवं आकर्षक ही सिद्ध होता है।

५. समावयात्मक रूप-विधान

रसायन-शास्त्र के अनुसार जहाँ विभिन्न पदार्थों के आन्तरिक गुणो मे अन्तर होते हुए भी वाह्य अवयवों में समानता स्थापित की जाती है, वह समावयात्मक (सम+अवयव) परिवर्तन कहलाता है। साहित्य के क्षेत्र मे भी जब विभिन्न वर्णों, शब्दो, वाक्यो, एवं उक्तियो में अर्थ की दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी उनमे परस्पर वाह्य एकरूपता स्थापित की जाय तो उसे 'समावयात्मक रूप-विधान' की सज्ञा दी जाती है। परम्परागत काव्य-शास्त्र मे अलकारवदियो ने इसे अनुप्रास-यमक आदि शब्दालकारो की, रीतिवादियो ने 'वृत्ति' की, वक्रोक्तिवादियो ने 'पद-वक्रता' की सज्ञा दी है, पर वस्तुत ये सब समावयात्मक रूप-विधान के अन्तर्गत आते है। यहाँ महादेवी के काव्य से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं:

(क) **पुलक-पुलक उर, सिहर-सिहर तन,**
आज नयन आते क्यों भर-भर ?

(ख) **मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !**
युग-युग प्रति दिन प्रति क्षण प्रति पल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

(ग) **नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन !**
रोम-रोम में होता री सखि एक नया उर का-सा स्पन्दन !

उपर्युक्त उद्धरणो मे आवृत्ति-जन्य सौन्दर्य मिलता है। फिर भी हमे यह स्वीकार करना पड़ता है कि अनुप्रास, यमक आदि शब्दालकारो का स्थूल चमत्कार महादेवी मे बहुत कम मिलता है। लय का सौन्दर्य अवश्य उनके काव्य मे सर्वत्र विद्यमान है, पर इसकी विवेचना हम अन्यत्र—गीति काव्य के प्रसंग मे—करेंगे।

● निष्कर्ष—अन्त मे हम महादेवी की काव्य-शैली के सम्बन्ध मे सामान्य रूप मे कह सकते हैं कि उसमे उन सभी तत्त्वो एव रूप-भेदो का सन्निवेश है जिन्हे किसी भी काव्य की उत्कृष्टता का आधार माना जा सकता है। विशेषतः संयोजनात्मक रूप-विधान (अलकरण) एव विस्थापनात्मक रूप-विधान (प्रतीक व ध्वनि) के क्षेत्र मे

तो उन्हे अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनके द्वारा प्रयुक्त उपमान एवं प्रतीक जहाँ नूतन एवं मौलिक हैं वहाँ वे प्रयोग की दृष्टि से भी पूर्णत. संगत, प्रभावोत्पादक एवं आकर्षण युक्त है। उनकी विषय-वस्तु सूक्ष्म है, विचार-धारा और भावनाएँ उदात्त है तो उनकी अभिव्यंजना-शैली अत्यन्त प्रौढ, उत्कृष्ट एवं कलापूर्ण है। भापा का सर्वोत्कृष्ट रूप, अभिव्यजना का पूर्ण वैभव एवं कला का परिपूर्ण विकास उनकी काव्य-शैली मे देखा जा सकता है। वस्तुतः उनका काव्य इस वात का प्रमाण है कि जहाँ सच्ची काव्य-प्रतिभा, सच्ची भावानुभूति एवं सवल अभिव्यंजना-शक्ति का समन्वय होता है वहाँ रचना मे कलात्मकता का संचार स्वतः हो जाता है। अस्तु, हमारे विचार मे विषय-वस्तु की दृष्टि से महादेवी का काव्य उदात्त है तो अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से महान् है—इसमें कोई सन्देह नही। साथ ही वस्तु एव शैली के समन्वय एवं सन्तुलन की दृष्टि से वह निश्चित ही एक अनूठा आदर्श स्थापित करता है—यह एक तथ्य है।

* * *

२

महादेवी का काव्य-रूप : गीति

'काव्य की ऊँची-ऊँची हिमालय-श्रेणियों के बीच में गीतिमुक्तक एक सजल कोमल मेघ खंड है जो न-उनसे दबकर टूटता है और न बँधकर रुकता है, प्रत्युत् हर किरण से रंग-स्नात होकर उन्नत चोटियों का शृङ्गार कर आता है और हर झोंके पर उड़-उडकर उस विशालता के कोने-कोने में अपना स्पन्दन पहुँचाता है।' —**महादेवी**

यदि विज्ञान की शब्दावली का प्रयोग करते हुए साहित्य की व्याख्या की जाय तो कहा जा सकता है कि जिस प्रकार वैज्ञानिक द्रव्य (Matter) की अन्तर्निहित शक्ति को उद्दीप्त एवं सक्रिय करने के लिए उसके रूप (Form) को परिवर्तित कर देता है उसी प्रकार साहित्यकार भी विषय-वस्तु की आकर्षण-शक्ति को उद्दीप्त करने के लिए उसके सामान्य रूप को विशिष्ट रूप प्रदान कर देता है। वस्तुतः कवि जिस घटना, अनुभव या अनुभूति का वर्णन अपनी रचना में करता है, वह सामान्य ही होती है ; हम सभी के पास उस प्रकार की वस्तु होती है ; पर जहाँ कवि उसे जिस रूप मे प्रस्तुत करता है उस रूप मे हम प्रस्तुत नही कर पाते, इसीलिए कवि की भाँति हम उसकी आकर्षण शक्ति को उद्दीप्त नही कर पाते। दूसरे शब्दो मे विज्ञान और साहित्य दोनो मे ही द्रव्य या वस्तु की अन्तर्निहित शक्ति को जागृत करने का एक ही उपाय है—रूपान्तरण की प्रक्रिया। यह रूपान्तरण भी दो प्रकार का होता है ; एक वाह्य रूप-आकार मे परिवर्तन, दूसरा आन्तरिक अवयवो एवं तत्त्वो मे परिवर्तन। प्रथम प्रकार के परिवर्तन को विज्ञान में भौतिक परिवर्तन (Physial Change) और दूसरे को रासायनिक परिवर्तन (Chemical Change) कहा जाता है। इन्हे साहित्य के क्षेत्र में क्रमशः 'रूप' और 'शैली' के नाम से पुकारा जाता है। वस्तुतः रूप (काव्य-रूप)

का सम्बन्ध विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण की बाह्य विशेषताओं से है जबकि शैली का उसकी आन्तरिक प्रवृत्तियो से है। वैसे व्यापक अर्थ मे रूप और शैली—दोनो का ही समावेश साहित्य के रूप-पक्ष, कला-पक्ष या अभिव्यक्ति पक्ष के अन्तर्गत किया जाता है। यहाँ हमारा विवेच्य महादेवी का काव्य-रूप है, अत हम रूप से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नो पर ही विचार करेगे।

काव्य-रूप के मूलाधार—काव्य (कविता) के मुख्यतः तीन रूप माने जाते हैं—१. प्रवन्ध, २. गीति और ३. मुक्तक। यहाँ प्रश्न यह है कि ऐसा कौनसा कारण है जिससे कोई कवि प्रवन्ध का माध्यम अपनाता है और कोई गीति या मुक्तक का? क्या ऐसा कवि की अपनी रुचि या इच्छा के कारण ही होता है या कोई अन्य कारण है? फिर एक ही कवि कभी प्रवन्ध और कभी मुक्तक शैली क्यो अपनाता है, जैसा कि तुलसीदास ने किया है? इन प्रश्नो के उत्तर मे हमारा निष्कर्ष यह है कि कोई भी काव्य-रूप केवल कवि की इच्छा या रुचि पर ही आधारित नही होता अपितु उसके पीछे कुछ ठोस आधार होते हे। प्रवन्ध, गीति और मुक्तक का सम्बन्ध मानव-व्यक्तित्व एवं मानव-मन की कुछ मूलभूत प्रवृत्तियो से सम्बन्धित हैं—इसीलिए जो व्यक्तित्व प्रवन्ध की रचना सफलता से कर सकता है, वह गीति की नही और जो गीति की कर सकता है वह प्रवन्ध की नही कर सकता। इसका कारण यह है कि प्रवन्ध इति-वृत्त, घटना या विचार-प्रधान होता है, गीति भाव-प्रधान और मुक्तक कल्पना-प्रधान। यद्यपि विचार, भाव एव कल्पना—तीनो ही मानव-मन की सहज प्रवृत्तियाँ है, किन्तु सभी व्यक्तियो मे इनका अनुपात एक-जैसा नही रहता; किसी में विचार की प्रमुखता रहती हैं तो किसी मे भावना या कल्पना की तथा शेप दो तत्त्व गौण रूप मे रहते है। जुग के द्वारा किये गये व्यक्तित्व के वर्गीकरण के अनुसार भी कुछ व्यक्ति चिन्तन शील, कुछ अनुभूति शील, एव कुछ सवेदन-शील अधिक होते है। अंग्रेजी के आलोचक हर्बर्ट रीड महोदय ने भी इस व्यक्तित्व-भेद के अनुसार ही काव्य-रूपो का वर्गीकरण किया है। अस्तु, काव्य-रूपो के मूल मे सवसे पहला आधार—स्वय कवि का व्यक्तित्व ही होता है। किस कवि के लिए कौनसा काव्य-रूप उपयुक्त रहेगा—यह उसके व्यक्तित्व की ही विशिष्टता पर निर्भर रहता हैं। पर कई वार कुछ कारणो से एक ही कवि अनेक काव्य-रूपा को अपना लेता है; यथा—तुलसीदास ने प्रवन्ध, गीति एव मुक्तक तीनो मे रचना की तो जयशकर प्रसाद ने भी अनेक काव्य-रूपो को अपनाया है। इस प्रकार प्रतिभाशाली कवि भले ही चेष्टापूर्वक अन्य काव्य-रूपो को भी अपना ले; किन्तु उसे जैसी सफलता अपने वास्तविक क्षेत्र मे मिलती है, उतनी अन्य रूपो के क्षेत्र मे नही मिलती। तुलसीदास की 'गीतावली' एव 'विनय-पत्रिका' गीति-रूप मे प्रस्तुत हैं पर क्या उसमे सूरदास की सी उच्चता मिलती है या जितनी सफलता उन्हे 'रामचरित मानस' मे मिली है, उतनी इन रचनाओ मे भी मिली है? इस प्रकार

जयशंकर प्रसाद की मूल प्रतिभा गीति-काव्य के ही उपयुक्त थी, पर 'कामायनी' की भी रचना उन्होने की । किन्तु सच पूछें तो कामायनी की आत्मा मे प्रबन्धात्मकता कम और गीत्यात्मकता अधिक है , प्रबन्ध मे इतिवृत्त की प्रमुखता रहती है जबकि गीति में भाव-दशाओ की—इस दृष्टि से देखें तो 'कामायनी' मे प्रबन्ध के तत्त्व कम और गीति के अधिक होगे । छायावादी कवियो की देखा-देखी साकेतकार ने भी कुछ गीतो की सर्जना की, पर वहाँ गीत्यात्मकता के स्थान पर प्रबन्धात्मकता का ही स्वर मुखरित है । अस्तु, कोई कवि भले ही विभिन्न काव्य-रूपो को अपना कर रूप-वैविध्य का आदर्श प्रस्तुत कर दे किन्तु जितनी सफलता वह अपने वास्तविक क्षेत्र मे प्राप्त करता है, उतनी अन्य क्षेत्रो मे नही, यह दूसरी बात है कि अन्य कारणो से उसकी इतर क्षेत्रो की रचनाएँ भी समादृत हो जायँ । यथा, 'कामायनी' का महत्त्व प्रबन्धात्मकता के कारण ही नही अपितु सूक्ष्म भावात्मकता, उत्कृष्ट शैली एव उदात्त संदेश के कारण है।

काव्य-रूप का नियामक दूसरा आधार उसकी वस्तु को माना जा सकता है । कवि-व्यक्तित्व के साथ-साथ विषय-वस्तु के अनुरूप काव्य-रूप का चयन आपेक्षित है । किसी दीर्घ इतिवृत्त या घटना का विवरण प्रस्तुत करने के लिए प्रबन्ध का ही माध्यम अपेक्षित होगा जबकि कोरी भावानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए गीत का माध्यम श्रेयस्कर रहेगा । जिस सामग्री से समोसा बनाया जा सकता है उसीसे रसगुल्ला नही बनाया जा सकता , इसी प्रकार काव्य के क्षेत्र मे अलग-अलग काव्य-रूपो के लिए अलग-अलग प्रकार की वस्तु-सामग्री अपेक्षित है । इस दृष्टि से प्रबन्ध के लिए जहाँ कथावस्तु, पात्र, विचार, भाव, सवाद आदि तत्त्व अपेक्षित है वहाँ गीति के लिए भावानुभूति, सगीतात्मकता आदि तथा मुक्तक के लिए एक प्रसग या एक स्थिति ही पर्याप्त होती हैं । अस्तु, कवि व्यक्तित्व के अनन्तर काव्य-वस्तु को काव्य-रूपो का दूसरा आधार माना जाना चाहिए ।

उपर्युक्त दो आधारो के अतिरिक्त कवि का लक्ष्य या प्रयोजन भी उसके काव्य-रूप को प्रभावित करता है । जहाँ किसी महान् चरित्र की अवतारणा करते हुए उच्च आदर्श की स्थापना करने का लक्ष्य होता है वहाँ प्रबन्ध-रूप ही अनुकूल रहता है जब कि निजी भावानुभूतियो की अबाध अभिव्यक्ति के लिए गीति-रूप तथा किसी एक दृश्य, चित्र या अनुभूति को अत्यन्त सक्षेप मे प्रस्तुत करने की दृष्टि से मुक्तक-रूप अपेक्षित होता है । अत. सामान्य रूप मे कहा जा सकता है कि आदर्शवादी कवि प्रबन्ध रूप, स्वच्छन्दतावादी कवि गीति-रूप एव यथार्थवादी कवि मुक्तक-रूप अपनाता है । यह बात प्राचीन और अर्वाचीन युग के स्वदेशी-विदेशी साहित्यकारो पर प्राय. लागू होती है ।

इन मूल आधारो के अतिरिक्त वाह्य कारण भी कई वार कवि को प्रभावित करते है । मदिरो मे कथा-वाचन होता है, भजन-मंडलियो मे गीत ही गाये जाते हैं

और राज-दरबारों व गोष्ठियों में छोटे-छोटे मुक्तक ही सुनाये जा सकते है—अतः इस प्रकार कवि और श्रोता की बाह्य परिस्थितियाँ भी कवि के रूप-चयन को प्रभावित या नियमित कर सकती है।

अतः स्पष्ट है कि कवि के द्वारा किसी भी काव्य-रूप का चयन अकारण ही नही होता अपितु उसके पीछे कुछ ठोस आधार होते है—यह दूसरी बात है कि नीव के पत्थरो की भाँति वे एकाएक दृष्टिगोचर न हो सके।

अन्त मे उपर्युक्त आधारों को यहाँ सक्षेप मे तालिका के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है।

काव्य-रूपों के मूल आधार

विभिन्न आधार	प्रबन्ध	गीति	मुक्तक
१. कवि-व्यक्तित्व	चिन्तनशील व्यक्तित्व	अनुभूतिशील व्यक्तित्व	संवेदनशील व्यक्तित्व
२. काव्य-वस्तु	विचार-प्रधान	भाव-प्रधान	कल्पना-प्रधान
३. काव्य-प्रयोजन	सदेश प्रदान करना	आत्माभिव्यक्ति	कलात्मक चित्रण एव चमत्कार
४. कवि का वर्ग	आदर्शवाद	स्वच्छन्दतावाद	यथार्थवाद

● **गीति-काव्य : स्वरूप-मीमांसा**—हिन्दी मे 'गीति-काव्य' संज्ञा का प्रयोग आधुनिक काल मे ही अंग्रेजी की 'लिरिकल पोइट्री' (Lyrical poetry) के समानान्तर होने लगा है किन्तु इससे पूर्व भी हमारे यहाँ 'गीत' संज्ञा एवं उसकी रचना का प्रचलन था—वस्तुतः 'गीत' का परिष्कृत रूप ही 'गीति' है। यद्यपि भारतीय साहित्य मे गीतिकाव्य की एक सुदृढ परम्परा सिद्धो के चर्यागीतो से आरम्भ होकर जयदेव के 'गीत गोविन्द' में विकसित होती हुई हिन्दी के भक्त कवियो तक पहुँची है, पर फिर भी इस काव्य-विधा का सस्कृत के काव्य-शास्त्र मे विवेचन-विश्लेषण उपलव्ध नहीं होता। कदाचित् इसके दो कारण हैं, एक तो गीतिकाव्य का उद्भव उस समय हुआ जवकि आधारभूत काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थो का निर्माण हो चुका था, दूसरे इसे काव्य की अपेक्षा सगीत से अधिक सम्वद्ध माना गया। वैसे कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' नाटक मे मालविका अपनी सगीत-कला की प्रतियोगिता मे एक चतुष्पदी गा कर सुनाती है, फिर भी वह काव्य-कला का उदाहरण न होकर सगीत-कला का है। अस्तु, गीति सम्वन्धी आधुनिक विवेचन का मूलाधार पाश्चात्य काव्य-शास्त्र को ही मानना होगा।

अँग्रेजी मे 'लिरिकल' शब्द 'लिरिक' (Lyric) से और लिरिक 'लायर'

(Lyre) से विकसित है। लायर एक प्रकार का वाद्य यन्त्र होता है जिसे बजाने के साथ-साथ कुछ गाया भी जाता है ; अतः प्रारम्भ मे लायर के साथ गाये जाने वाले गीतो को 'लिरिक की संज्ञा प्राप्त हुई। पर आगे चलकर यह आवश्यक नही रहा कि लिरिक को लायर के साथ ही गाया जाय अपितु काव्य के अन्य रूपो की भाँति वे स्वतन्त्र रूप मे भी गाये या पढ़े जा सकते हैं। फिर भी 'लिरिकल पोइट्री' या गीति काव्य के लिए यह आवश्यक है कि उनमे गेयता या संगीतात्मकता का गुण सदा रहे—भले ही पाठक इसका उपयोग करे या नही। इसी दृष्टि से 'इनसाइक्लोपीडिया आफ् ब्रिटैनिका' मे गीति-काव्य (Lyrical poetry) की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—"Lyrical poetry is a general term for all poetry which is, or can be supposed to be, susceptable of being sung to the accompaniment of a musical instrument." अर्थात् 'गीतिकाव्य' शब्द सामान्यत. ऐसी कविता के लिए प्रयुक्त होता है जिसका आस्वादन किसी सगीत-वाद्य के साथ किया जा सके या जिसमे इस प्रकार की सभावना हो।

यद्यपि यहाँ गीति के एक ही विशिष्ट लक्षण—गेयता या सगीतात्मकता पर ही वल दिया गया है पर इससे यह न समझना चाहिए कि किसी भी कविता मे केवल गेयता का सचार हो जाने पर ही वह गीतिकाव्य मे परिणत हो जाती है ; अपितु उसके लिए कुछ अन्य गुणों की भी अपेक्षा होती है। वस्तुतः जिस प्रकार गीतिकार का व्यक्तित्व एव विषय प्रबन्धकार की अपेक्षा भिन्न होता है उसी प्रकार गीति-काव्य का आन्तरिक द्रव्य एव वाह्य रूप—दोनो प्रवन्ध से भिन्न होते है। हीगल महोदय ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है—"गीति-काव्य मे किसी व्यापक कार्य का चित्रण नही होता जिससे कि वाह्य जगत् के विभिन्न रूपो एव उनके ऐश्वर्य का उद्घाटन हो अपितु उसमे तो कवि की निजी आत्मा के ही किसी एक रूप-विशेष के प्रतिविम्ब का निदर्शन होता है। उसका एक मात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली मे आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओ, आशाओ, व आह्लाद की तरंगो या वेदना की चीत्कारो का उद्घाटन करना होता है।" यहाँ स्पष्ट ही गीति-काव्य के लिए कार्य-व्यापार, घटनाओ व पात्रो के स्थान पर आन्तरिक भावो के प्रकाशन को ही आवश्यक माना गया है।

कुछ अन्य विद्वानो ने गीति-काव्य के लिए वैयक्तिकता को भी आवश्यक माना है। गीति-काव्य मे वाह्य जगत् का चित्रण न होकर, दूसरो की कहानी न कहकर अपने मन की ही वात या अपनी ही भावानुभूतियो को व्यक्त किया जाता है ; ऐसी स्थिति मे यह स्वाभाविक ही है कि उसमे कवि की वैयक्तिकता प्रमुख रहे। वैयक्तिकता का तात्पर्य यहाँ इतना ही है कि उसमे कवि व्यक्तिगत संवेदनाओ एवं अनुभूतियो को प्रत्यक्ष रूप मे या प्रथम पुरुष मे ही प्रस्तुत करता है, यहाँ तक कि दूसरे पात्रो की भी अनुभूति व्यक्त करनी हो तो वहाँ भी स्वय पात्र "मैं" की शैली मे ही अपनी वात कहता है।

उदाहरण के लिए सूरदास के काव्य में कृष्ण कहते हैं—"मैया ! मेरी कवहुँ बढ़ैगी चोटी !' यहाँ सूरदास चाहते तो अन्य पुरुष-शैली में भी बात कही जा सकती थी, पर वह गीति-काव्य के अनुरूप नही रहती । अतः सवसे अच्छा तो यही है कि गीतिकार अपनी ही कहानी अपने ही शव्दो में कहे पर यदि वह दूसरो की बात भी कहता है तो भी इस ढंग से कि उसमें सम्वन्धित व्यक्ति स्वयं बोलता हुआ दिखाई पड़े ।

वैयक्तिकता का सम्वन्ध व्यक्ति-वैचित्र्य से भी स्थापित किया जाता है; पर गीति-काव्य के लिए यह अवाछनीय है। व्यक्तियो के चरित्र क्रिया-कलापो एवं विचारो में परस्पर इतनी भिन्नता आ सकती है कि जिससे व्यक्ति-वैचित्र्य का प्रादुर्भाव हो जाय पर जहाँ तक सवेदनाओ एव अनुभूतियो की बात है, देश-काल का भारी अन्तर होते हुए भी अभी तक मानव-हृदय सामान्यतः एक-जैसी ही प्रतिक्रिया करता है और गीति-काव्य घटनाओ और पात्रो का काव्य नही, भावनाओ का काव्य होता है, अतः उसमे व्यक्ति-वैचित्र्य के लिए बहुत कम सभावना रह जाती है ।

भावात्मकता, सगीतात्मकता एव वैयक्तिकता के साथ-साथ गीतिकाव्य मे संक्षिप्तता एव भापा की कोमलता को भी आवश्यक माना गया है। गीतिकाव्य की वस्तु भावात्मक होने के कारण उसमे स्वत ही सक्षिप्ता आ जाती है तो दूसरी ओर संगीतात्मकता के कारण भाषा मे भी तदनुकूल कोमलता एव लचक का होना आवश्यक हो जाता है। पर यह कोमलता केवल कोमल भावो—प्रेम, वात्सल्य, करुणा आदि—में ही अपेक्षित है ; जहाँ किसी कठोर भाव (रौद्र, वीर, भय आदि) की अभिव्यक्ति की जा रही हो वहाँ भाषा का तदनुकूल कठोर या ओजपूर्ण होना भी आवश्यक है ; जैसे प्रसाद के निम्नाकित गीत में है .

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला,
स्वतंत्रता पुकारती ।

इसके प्रतिकूल कुछ विद्वान गीति-काव्य पर केवल कोमल भावो की ही अभिव्यक्ति का प्रतिबन्ध आरोपित करते है, किन्तु हमारे विचार से यह ठीक नही । यदि गीति-काव्य को केवल प्रेम, विरह और करुण का ही क्षेत्र माना जाय तो वीर एव रौद्र की अनुभूतियो को हम कहाँ स्थान देंगे ? वस्तुतः गीति-काव्य के क्षेत्र को इस दृष्टि से सीमित करके हम गीति-काव्य की व्यापकता एव मानव-हृदय की विविधता—दोनो के ही साथ अन्याय करेंगे ; अत हमारे विचार मे मानव-हृदय की सभी भावनाओ के लिए गीति-काव्य का क्षेत्र खुला रहना चाहिए तथा उस स्थिति मे भापा से भी 'कोमलता एव मधुरता' के स्थान पर 'भावानुकूलता' की ही अपेक्षा करनी चाहिए ।

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन के अनुसार गीति-काव्य की ये पाँच प्रमुख विशेषताएँ स्वीकार की जा सकती है—(१) भावात्मकता, (२) सगीतात्मकता, (३) वैयक्तिकता, (४) सक्षिप्तता एव (५) भाषा-शैली की भावानुकूलता। इनमे से प्रथम दो तो सर्वथा अनिवार्य है किन्तु शेष सर्वथा अनिवार्य न होते हुए भी गीति-काव्य की श्री-वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है।

● **गीति-काव्य : महादेवी की दृष्टि में**—स्वय महादेवी ने भी गीति-रचना के अतिरिक्त अपने एक लेख मे गीति-काव्य के विभिन्न पक्षो का भी सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है जिससे उनके तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण का ज्ञान सहज ही सभव है। गीति-काव्य की परिभाषा करते हुए उन्होने लिखा है—'सुख-दु ख की **भावावेशमयी अवस्था-विशेष** का, **गिने-चुने शब्दों** मे **स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण** कर देना ही गीत है।' यहाँ सक्षेप मे गीति-काव्य के चार प्रमुख लक्षणो की ओर सकेत किया गया है, यथा—(१) 'भावावेशमयी अवस्था-विशेष'=**भावात्मकता**, (२) 'स्वर-साधना के उपयुक्त'=**संगीतात्मकता**, (३) गिने-चुने शब्दो मे=**संक्षिप्तता** और (४) उपयुक्त चित्रण=**भावानुकूल भाषा**। यहाँ गीत के एक प्रमुख तत्त्व—वैयक्तिकता का उल्लेख नही है, उसके सम्वन्ध मे कवयित्री का मत है—'गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दु ख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमे सदेह नही।' अस्तु, महादेवी वैयक्तिकता को गीति-काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण मानती हुई भी उसे अनिवार्य नही मानती।

गीति-काव्य की रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए कवयित्री ने लिखा है—'इसमे कवि को संयम की परिधि मे बँधे हुए जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नही, कारण हम प्रायः भाव की अतिशयता मे कला की सीमा लाँघ जाते हैं और उसके उपरान्त, भाव के सस्कार मात्र में मर्म-स्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है।.... वास्तव मे गीत के कवि को आर्त्त-क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को, दीर्घ नि श्वास मे छिपे हुए सयम से बाँधना होगा, तभी उसका गीत दूसरे के हृदय मे उसी भाव का उद्रेक करने मे सफल हो सकेगा।' अस्तु, महादेवी भावो की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के स्थान पर उनके सयमित रूप को गीति-रचना के लिए श्रेयस्कर मानती है।

गीति मे व्यक्त भावनाएँ किसी न किसी प्रकार कवि की आत्मानुभूति पर आश्रित होनी चाहिए। उनके शब्दो मे—'व्यक्ति प्रधान भावात्मक काव्य का वही अंश अधिक से अधिक अन्तस्तल मे समा जाने वाला, अनेक भूले सुख-दु खो की स्मृतियो मे प्रतिध्वनित हो उठने के उपयुक्त और जीवन के लिए कोमलतम स्पर्श के समान होगा जिसमे कवि ने गतिमय आत्मानुभूत भावातिरेक को संयत रूप मे व्यक्त कर उसे अमर कर दिया हो या जिसे व्यक्त करते समय वह अपनी साधना द्वारा किसी वीते क्षण की

अनुभूति की पुनरावृत्ति करने मे सफल हो सका हो ।' कुछ लोगो का विचार है कि दूसरो के अनुभवो पर आधारित सस्कारों से गीति-काव्य की सृष्टि सभव है तो कुछ लोग अतीत की अनुभूतियो की तीव्र पुनरावृत्ति को भी गीतिकाव्य के लिए पर्याप्त मानते है, पर महादेवी इन दोनो ही धारणाओ का खडन करती हुई लिखती है—'केवल सस्कार-मात्र भावात्मक कविता के लिए सफल साधन नही है और न किसी बीती अनुभूति की उतनी ही तीव्र मानसिक पुनरावृत्ति ही सबके लिए सब अवस्थाओ मे सुलभ मानी जा सकती है ।'

गीति के विषय-क्षेत्र को भी वे पर्याप्त व्यापक मानती है । उनके विचार मे गीति सारे ससार की कहानी कह सकता है पर उसकी वाणी या शैली अपनी होती है—उसमे गीतिकार जो कुछ कहता है उसे हृदय की वस्तु बनाकर वैयक्तिक स्वर मे प्रस्तुत करता है ; जबकि काव्य के दूसरे रूपो मे दूसरे लोगो के मुँह से अपने हृदय की कहानी प्रस्तुत की जाती है । अतः इस अभिव्यंजना-पद्धति के भेद को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है—"अलौकिक आत्म-समर्पण हो या लौकिक स्नेह-निवेदन, तात्कालिक उल्लास-विषाद हो या शाश्वत् सुख-दुखो का अभिव्यंजन, प्रकृति का सौन्दर्य-दर्शन हो या उस सौन्दर्य मे चैतन्य का अभिनन्दन सव मे गेयता के लिए हृदय **अपनी वाणी में संसार-कथा** कहता चलता है । ससार के मुख से हृदय की कथा, इतिहास अधिक है, गीत कम ।"

गीति-काव्य के उद्गम एव विकास के सम्बन्ध मे उनका विचार है कि जिस प्रकार भावनाओ का मानव-हृदय से सनातन सम्बन्ध है उसी प्रकार गीति-काव्य भी साहित्य का सनातन रूप है । धरती का सबसे पुराना उपलब्ध साहित्य—वैदिक साहित्य है, उसमे भी गीति के तत्त्व विद्यमान हैं, जो उपर्युक्त धारणा को प्रमाणित करते है । स्वय कवयित्री के शब्दो मे—'सभव है जिस प्रकार प्रभात की सुनहली रश्मि छूकर चिडिया आनन्द मे चहचहा उठती है, और मेघ को घुमड़ता-घिरता देखकर मयूर नाच उठता है, उसी प्रकार मनुष्य ने भी पहले-पहले अपने भावों का प्रकाशन ध्वनि और गति द्वारा ही किया है । **विशेषकर स्वर-सामंजस्य में बँधा हुआ गेय काव्य मनुष्य-हृदय के कितना निकट है, यह उदात्त-अनुदात्त स्वरों में बँधे वेदगीत तथा अपनी मधुरता के कारण प्राणो में समाजाने वाले प्राकृत-पदो के अधिकारी हम भली-भाँति समझ सके हैं ।**' इस प्रकार उनके विचार से गीति-काव्य-परपरा का सम्बन्ध वैदिक साहित्य से स्थापित किया जा सकता है ।

यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता है कि आधुनिक युग गीति-काव्य के लिए कितना अनुकूल है ? आधुनिक युग मे वौद्धिकता की प्रधानता है जवकि गीति भावात्मक अधिक होता है, ऐसी स्थिति मे गीति-काव्य को युगानुकूल कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? इस सम्वन्ध मे महादेवीजी यह स्वीकार करती है कि आज गीत की

स्थिति विषम होती जा रही है। 'आज हम ऐसे बौद्धिक युग में से जा रहे हैं जो हृदय को मासल यत्र और उसकी कथा को वैज्ञानिक आविष्कारो की पद्धति मात्र समझता है, फलत. गीत की स्थिति कठिन से कठिनतर होती जा रही है।' फिर भी वे सर्वथा निराश नही हैं। जहाँ बौद्धिकता गीति-काव्य को आज के प्रतिकूल सिद्ध कर रही है वहाँ वैयक्तिकता उसके अनुकूल है। इस वैयक्तिकता की प्रवृति के कारण ही गीतिकाव्य छायावाद युग मे पनपा है और भविष्य मे भी पनपता रहेगा। फिर भी यदि गीति-काव्य का विकास अवरुद्ध हुआ तो यह साहित्य और समाज—दोनो के लिए महान् क्षति होगी। जहॉ तक आधुनिक हिन्दी गीति-काव्य के महत्त्व एवं उपलब्धियो की बात है, उनकी धारणा बहुत ऊँची है। इसीलिए आज के युग के गीति-काव्य (छायावादी काव्य) के सम्बन्ध मे वे प्रशंसापूर्ण शब्दो मे लिखती है—'इस युग के गीतों की एकरूपता में ऐसी विविधता है जो उन्हे बहुत काल तक सुरक्षित रख सकेगी। इनमे कुछ गीत मलय समीर के झोके के समान हमे बाहर से स्पर्श कर अन्तर तक सिहरा देते हैं, कुछ अपने दर्शन के बोझिल पंखो द्वारा हमारे जीवन को सब ओर से छू लेना चाहते हैं, कुछ किसी अलक्ष्य डाली पर छिपकर बैठी हुई कोकिल के समान हमारे ही किसी भूले स्वप्न की कथा कहते रहते है और कुछ मन्दिर के पूत धूप-धूम के समान हमारी दृष्टि को धुँधला, परन्तु मन को सुरक्षित किये बिना नही रहते।' यहॉ छायावादी गीतो की प्राय. सभी प्रमुख प्रवृत्तियो—प्रकृति-सौदर्य, दार्शनिकता, रहस्यात्मकता, प्रणय भावना आदि—का सकेत अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे करते हुए उनके महत्त्व का दिग्दर्शन करवाया गया है।

अन्त में एक प्रश्न और है—रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए गीति-काव्य का माध्यम कहाँ तक श्रेयस्कर रहता है? इस सम्बन्ध मे उनका उत्तर है—'रहस्य-गीतो का मूलाधार भी आत्मानुभूत अखड चेतन है, पर वह साधक की मिलन-विरह की मार्मिक अनुभूतियो मे इस प्रकार घुल-मिल सका कि उसकी अलौकिक स्थिति भी लोक-सामान्य हो गयी। भावो के अनन्त वैभव के साथ ज्ञान की अखड व्यापकता की स्थिति वैसी ही है जैसी, कही रगीन, कही सितासित, कही सघन, कही हल्के, कही चाँदनी-धौत और कही अश्रु-स्नात बादलो से छाये आकाश की होती है। व्यक्ति अपनी दृष्टि को उस अनन्त रूपात्मकता के किसी भी खड पर रहकर आकाश पर भी ठहरा लेता है। अत. आनन्द और विषाद की मर्मानुभूति के साथ-साथ उसे एक अव्यक्त और व्यापक चेतन का स्पर्श भी मिलता रहता है।' इन शब्दो के आधार पर कहा जा सकता है कि वे अलौकिकता एवं लौकिकता, आत्मानुभूति एवं दिव्य चेतना के मेल के द्वारा ही रहस्य-गीतो की सृष्टि संभव मानती है। पर फिर भी लौकिक विषयो पर आधारित लौकिक भावो की अभिव्यक्ति जितनी सरल और सहज है उतनी अलौकिक विषय पर

आश्रित रहस्य-गीतो की सभव नही। इसी अन्तर को स्वीकार करती हुई वे लिखती है—'पर ऐसे गीतो मे निर्गुण ज्ञान और सगुण अनुभूति का जैसा सन्तुलन अपेक्षित है, वैसा अन्य गीतो मे आवश्यक नही क्योकि आधार यदि बहुत प्रत्यक्ष हो उठे तो बुद्धि उसे अपनी परिधि से बाहर न जाने देगी और भाव यदि अव्यक्त सूक्ष्म हो जावे तो हृदय उसे अपनी सीमा मे न रख सकेगा।' अत. निश्चित ही सामान्य गीति-रचना की अपेक्षा रहस्यीगतो की सृष्टि अपेक्षाकृत कठिन है पर फिर भी 'यदि रहस्यद्रष्टा तन्मय आत्म-निवेदक है तो उसके गीतो की अलौकिक असीमता से लौकिक सीमाएँ वैसे ही फूटती रहेगी जैसे अनन्त समुद्र मे हिलोरे।'

अस्तु, गीति-काव्य के विभिन्न पक्षो के सम्बन्ध मे महादेवी के विचारो को निष्कर्ष रूप मे इस प्रकार बताया जा सकता है—

- गीति-काव्य के लिए वे भावात्मकता, सगीतात्मकता, सक्षिप्तता एवं भावानुकूल भापा को आवश्यक मानती है।
- गीति-काव्य की रचना-प्रक्रिया के लिए आत्मानुभूति का सयमित रूप आवश्यक है।
- गीति के विपय-क्षेत्र मे प्रकृति, जगत् एव जीवन के विभिन्न विपयो का समाहार हो सकता है पर उसकी शैली वैयक्तिक ही रहेगी।
- गीति-काव्य की परम्परा वैदिक काल से चली आ रही है।
- आधुनिक युग की बौद्धिकता गीति-काव्य के प्रतिकूल है।
- छायावादी-गीति-काव्य आज के युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।
- रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति किंचित् कठिन है पर फिर भी उसकी सच्ची अनुभूति हो तो यह कठिनाई स्वय दूर हो जाती है।

महादेवी के ये निष्कर्प—विशेषत. गीति की रचना-प्रक्रिया सम्बन्धी निष्कर्ष—अन्य आलोचको के तत्सम्बन्धी विवेचन की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक एव महत्त्वपूर्ण है क्योंकि दूसरे आलोचको की भाँति उन्होंने गीति-काव्य का अध्ययन, विवेचन-विश्लेषण ही नही किया अपितु स्वय ने उसकी रचना भी की है।

● **महादेवी का काव्य : गीति के रूप में**—गीति की दृष्टि से महादेवी के काव्य का विवेचन करने के लिए गीति-काव्य के पूर्वोक्त पाँच लक्षणो को आधार बनाया जा सकता है। यहाँ क्रमश. उनके आधार पर विवेचना की जाती हैं—

(१) **भावात्मकता**—वैसे तो प्रत्येक काव्य-रचना मे, चाहे उसका रूप गीति हो या प्रबन्ध, भाव तत्त्व की प्रमुखता मदा रहती है क्योकि भावानुभूति के अभाव में कोई भी रचना 'काव्य' की सज्ञा से भूपित नही हो सकती, पर जहाँ अन्य काव्य-रूपो मे भाव घटना, पात्र, वार्तालाप आदि विभिन्न अवयवो के माध्यम से प्रस्फुटित होता है वहाँ गीति-काव्य में वह प्रत्यक्ष विद्यमान रहता है। उदाहरण के लिए—गुलाब के

फूल मे गुलाव की गध विद्यमान रहती है और उसके इत्र मे भी, पर इत्र मे पुष्प की भाँति विभिन्न तत्त्वो का अभाव रहता है, उसमे कोरी गध ही द्रवरूप मे विद्यमान रहती है, यही स्थिति गीति-काव्य मे भाव की होती है । जहाँ तक महादेवी के काव्य का सम्बन्ध है, उसमे भाव तत्त्व सर्वत्र विद्यमान है, किन्तु उनकी भावानुभूति का आलम्बन कोई लौकिक व्यक्ति या स्थूल पदार्थ न होकर अलौकिक ब्रह्म है, जो वस्तुत. व्यक्ति न होकर विचार या तत्त्व मात्र है । ऐसी स्थिति मे उनके विभिन्न भावो के मूल मे विचार की ही सत्ता दृष्टिगोचर होगी । दूसरे, जैसा कि महादेवी के काव्य-दर्शन के प्रसग मे कहा जा चुका है, वे कविता को सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम मानती हैं, अत. उसमे अनुभूत सत्य की प्रधानता का होना स्वाभाविक है । इन परिस्थितियो मे उनके गीति-काव्य मे भाव तत्त्व का दब जाना या गौण हो जाना स्वाभाविक था, पर उन्होंने ऐसा नही होने दिया । एक तो उन्होने अपने ब्रह्म का मानवीकरण करते हुए उसे मूर्त्त रूप प्रदान कर दिया और दूसरे सत्य को भी उन्होने भावानुभूति मे परिणत करके प्रस्तुत किया है, अत. विचार, सत्य एव दर्शन पर आधारित होते हुए भी उनका काव्य भावात्मकता से भी शून्य नही है । .

उनकी काव्यगत भावात्मकता के सम्यक् विवेचन के लिए उनके गीतो को भावो की दृष्टि से वर्गीकृत किया जा सकता है । मुख्यत· उन्होंने इन भावों की अभिव्यक्ति की है—(१) अलौकिक प्रणय भाव, (२) करुणा, (३) निर्वेद । यहाँ क्रमश· तीनो प्रकार के गीतो का विश्लेषण किया जाता है ।

प्रणय सम्वन्धी गीतो मे अलौकिक प्रेम या रहस्यानुभूति की व्यजना हुई है, पर यह अलौकिकता उनकी भावानुभूति के मार्ग मे बाधक नही बनती । जैसा की ऊपर कहा जा चुका है, उनका आलम्वन अलौकिक होते हुए भी काव्य-मच पर लौकिक रूप मे ही अवतरित हुआ है , फिर गीति मे व्यक्त भाव आलम्वन के नही अपितु स्वयं कवयित्री (आश्रय) के ही है, अत. उनकी रागात्मकता मे कोई न्यूनता दृष्टिगोचर नहीं होती यथा, एक गीत प्रस्तुत है .

निशा की धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल

× × ×

बिछाती थी सपनो के जाल
तुम्हारी वह करुणा की कोर
गयी वह अधरो की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर,

नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अंगुली है ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार !

इस पूरे गीत मे एक प्रतीक्षाकुल विरहिणी का अपने प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन है जिसमे प्रतीक्षा (साधना) जन्य अवसाद की अभिव्यक्ति मार्मिक रूप में की गयी है। प्रारभ मे मिलन की अनुभूति अतीत की स्मृतियो के रूप मे प्राकृतिक पृष्ठभूमि-सहित व्यक्त हुई हैं; प्रथम मिलन के दृश्य को सजीव रूप में चित्रित करते हुए, अन्त मे अपनी क्लान्त स्थिति को अंकित किया गया है और प्रिय से आत्ममिलन की याचना अत्यन्त दैन्यतापूर्ण स्वर मे की गयी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण गीत विरह-दशा की एक विशिष्ट अवस्था का मानसिक चित्र है, जिसमें अतीत की स्मृतियाँ, मध्यवर्ती प्रतीक्षा एवं अन्त का अवसाद—तीनो सम्मिलित रूप मे है। वस्तुतः ये तीनो एक-दूसरे के पूरक है तथा रस-सिद्धान्त की शब्दावली मे सचारी भाव है जोकि मूल भाव (स्थायी भाव—प्रणय) को पुष्ट करते है। इस गीत का आलम्बन लौकिक है या अलौकिक—इससे कोई अन्तर नही पड़ता क्योकि कवयित्री का मूल लक्ष्य विरहिणी (साधिका) की वेदनानुभूति को ही व्यक्त करना है। अस्तु, यह सपूर्ण गीत भावात्मकता से अनुप्राणित है।

उनके अनेक गीतों मे तो एक ही स्थायी भाव की ही नही अपितु केवल एक-एक संचारी भाव की ही अभिव्यक्ति हुई है; यथा :

(क) वे मुस्काते फूल नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
× × ×
ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
× × ×
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

(ख) छाया की आँख मिचौनी
मेघों का मतवाला पन,
× × ×
मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक कोक्रीड़ा

उनके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उनमें अनन्त करुणा है
इसमें असीम सूनापन !

उपर्युक्त दोनो गीतों में विभिन्न प्राकृतिक दृश्यो के माध्यम से एक-एक भाव दशा की ही अभिव्यक्ति की गयी है। पहले गीत मे अमर-लोक के अभावों की गणना करते हुए उसे गर्वपूर्वक ठुकराया गया है। दूसरे गीत मे भी उनके जीवन से अपने जीवन की तुलना करते हुए अपने को लघु न मानने की वात कही गयी है—जिसे गर्व की व्यंजना कह सकते हैं। एक ही भाव को व्यक्त करने के लिए लम्वी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गयी है। प्रेयसी का गर्वपूर्वक प्रियतम के उपहार को ठुकराना या उससे स्पर्द्धा करना भी प्रणय-भावना की विशिष्ट अवस्था का सूचक है जिसे काव्य-शास्त्र मे 'हाव' की संज्ञा दी गयी है। इन गीतों मे केवल हाव-विशेष की व्यजना का ही लक्ष्य है।

भाव-व्यंजना की दृष्टि से महादेवी के गीतो मे एक बात प्राय. दृष्टिगोचर होती है, वह यह कि वे प्रतिपाद्य भाव की व्यंजना कम शब्दों मे करती है, उसके अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण अपेक्षाकृत विस्तार से करती है। जैसे—'जो वे सपना बन आवे, तुम चिर निद्रा बन जाना !' इतनी सी वात स्वय को कहने के लिए, इससे पूर्व वारह छन्दो या ४८ पक्तियो की रचना करती है जिनमे अतीत और वर्तमान की विभिन्न भावानुभूतियो की व्यजना प्रकृति के अनेक दृश्यो के माध्यम से की गयी है ; अवश्य ही उनका लक्ष्य मूल भाव तक ही पहुँचना है पर वे लक्ष्य की ओर सीधी नही दौड़ती अपितु चक्कर काटती हुई धीर एवं मथर गति से आगे वढ़ती है। दूसरे शब्दो मे उनमे भाव का मंथर गति से क्रमिक विकास होता है, भावावेग का एकाएक स्फोट नही। पहली स्थिति प्रवन्धकार के अधिक अनुकूल रहती है, जवकि गीतिकार प्राय दूसरी स्थिति को स्वीकार करता है। उदाहरण के लिए मीराँ के गीतो मे प्राय. भावावेग का तीव्र स्फोट दृष्टिगोचर होता है पर महादेवी मे ऐसा नही हैं।

प्रश्न है, महादेवी मे ऐसा क्यो नही है ? वे अपने गीतो मे वेदना को चीत्कार-पूर्ण स्वर में गूँजित करने के स्थान पर धीरे-धीरे अपनी व्यथा को क्यो सुनाती है ? कदाचित् इसका कारण यही है कि उनका प्रणय जितना गंभीर है उतना ही शान्त भी है ; उनमे वेदना की अनुभूति है पर उसमें उफान कम है ; इसीलिए वे अपनी व्यथा को धीरे-धीरे, इधर-उधर की चर्चा करती हुई, धीमे-से व्यक्त करती हैं। जव चोट एकाएक लगती है तो व्यक्ति चीखता है, पुकारता है, पर जव घाव पुराना पड़ जाता

नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अंगुली हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज
मिला लो यह अस्फुट झंकार !

इस पूरे गीत में एक प्रतीक्षाकुल विरहिणी का अपने प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन है जिसमे प्रतीक्षा (साधना) जन्य अवसाद की अभिव्यक्ति मार्मिक रूप मे की गयी है। प्रारभ मे मिलन की अनुभूति अतीत की स्मृतियों के रूप मे प्राकृतिक पृष्ठभूमि-सहित व्यक्त हुई है; प्रथम मिलन के दृश्य को सजीव रूप मे चित्रित करते हुए, अन्त मे अपनी क्लान्त स्थिति को अकित किया गया है और प्रिय से आत्ममिलन की याचना अत्यन्त दैन्यतापूर्ण स्वर मे की गयी है। इस प्रकार सम्पूर्ण गीत विरह-दशा की एक विशिष्ट अवस्था का मानसिक चित्र है, जिसमें अतीत की स्मृतियाँ, मध्यवर्ती प्रतीक्षा एव अन्त का अवसाद—तीनो सम्मिलित रूप मे है। वस्तुत. ये तीनो एक-दूसरे के पूरक है तथा रस-सिद्धान्त की शब्दावली मे संचारी भाव है जोकि मूल भाव (स्थायी भाव—प्रणय) को पुष्ट करते है। इस गीत का आलम्बन लौकिक है या अलौकिक—इससे कोई अन्तर नही पडता क्योकि कवयित्री का मूल लक्ष्य विरहिणी (साधिका) की वेदनानुभूति को ही व्यक्त करना है। अस्तु, यह सपूर्ण गीत भावात्मकता से अनुप्राणित है।

उनके अनेक गीतो मे तो एक ही स्थायी भाव की ही नही अपितु केवल एक-एक सचारी भाव की ही अभिव्यक्ति हुई है; यथा :

(क) वे मुस्काते फूल नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
× × ×
ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
× × ×
क्या अमरो का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

(ख) छाया की आँख मिचौनी
मेघों का मतवाला पन,
× × ×
मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक कोव्रीड़ा

वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूँ,
यह कौन बता आयेगा,
किसमें पुतली को देखूँ !

(घ) क्रिया-कलाप—

मैं फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते,
मैं पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ मे उड़ जाते !
× × ×
मेरी पलको पर रातें
बरसा कर मोती सारे,
कहतीं 'क्या देख रहे हैं
अविराम तुम्हारे तारे ?'

(ङ) घटनाएँ—

तम ने इन पर अञ्जन से
बुन बुन कर चादर तानी,
इन पर प्रभात ने फेरा
आकर सोने का पानी !

इस प्रकार एक ही गीत मे अनेक दृश्यो, सभाषणो, क्रिया-कलापो एव घटनाओ का समावेश हो गया है, इनसे निश्चित ही कविता के सौंदर्य मे अभिवृद्धि हो गयी हैं, पर इसका स्वरूप गीत्यात्मक कम एव प्रबन्धात्मक अधिक हो गया है। गीतिकार अन्तर्जगत का चित्रण, अधिक करता है, वाह्य प्रकृति एवं स्थूल क्रिया-व्यापारो का कम, जबकि इसमे स्थिति इसके विपरीत है। कदाचित् कहा जाय कि इस गीत में प्रस्तुत बाह्य दृश्यो एवं क्रिया-कलापो का सूक्ष्म साकेतिक अर्थ है जिससे अर्थ-बोध की प्रक्रिया मे स्थूल स्थूल नही रहता—सूक्ष्म मे परिणत हो जाता है, पर यह सम्भावना भी यहाँ स्वीकार नही की जा सकती। काव्यानुभूति की दृष्टि से इस कविता को पढकर पाठक के मन मे क्रमश. स्थूल क्रिया-व्यापार ही उभरते है यह दूसरी बात है कि अन्तत. वे मूल भाव को पुष्ट करते है—पर ऐसा तो प्रबन्ध काव्य में भी होता है। अस्तु, हमे स्वीकार करना पड़ता है कि उनके अनेक गीतो मे भाव-धारा मंद एव गौण हो गयी है तथा वाह्य जगत् का चित्रण प्रमुख हो गया है। इस प्रकार के लम्बे

हैं तो वह चीख-पुकार नही करता, धीरे-धीरे संयमपूर्वक उसके भर जाने की प्रतीक्षा करता हैं। मीराँ की स्थिति पहली थी जबकि महादेवी की प्रणय-भावना दूसरी स्थिति मे है। इसका अर्थ यह नही है कि महादेवी काव्य-रचना करने से पूर्व पहली स्थिति को पार कर चुकी थी, अपितु उनके प्रणय का आरभ ही दूसरी स्थिति मे हुआ , जब हमारा किसी से प्रेम एकाएक प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर होता है तो उसमे तीव्रता होती हैं, पर यदि किसी दूर देश के वासी से पत्र-मैत्री के आधार पर क्रमश होता है तो वहाँ भावावेग की तीव्रता नही रहती। महादेवी ने भी अपने प्रियतम से दार्शनिक ग्रन्थो के माध्यम से धीरे-धीरे परिचय प्राप्त किया, उनके परिचय का आधार प्रत्यक्ष न होकर बौद्धिक है, अत. उसमे भावावेग की तीव्रता का कम होना स्वाभाविक ही है। अनेक आलोचको ने महादेवी के गीतो मे भाव तत्त्व की न्यूनता का आक्षेप लगाया है —कदाचित् उसका कारण भी यही है। हमारे विचार मे महादेवी के गीत भावो से शून्य नही हैं अपितु वे भावावेग की तीव्रता से शून्य है। दार्शनिक व बौद्धिक स्रोत से प्रवाहित होती हुई उनकी भाव-धारा हृदय की समतल भूमि पर फैलती हुई बड़ी ही मंथर गति से लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है जहाँ धारा की गति मद होगी वहाँ उसकी आधार-भूमि मे विस्तार भी अपेक्षाकृत अधिक होगा। यही कारण है कि महादेवी के गीतों की भाव-धारा केवल भावात्मकता को ही नही, विभिन्न दृश्यो, क्रिया-कलापो, संवादो, घटनाओ आदि को भी अपने मे समेट लेती है ; उदाहरण के लिए यहाँ उनके एक गीत का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

(क) पृष्ठभूमि—

जब इन फूलों पर मधु की
पहली बूंदें बिखरी थीं।

....

(ख) विभिन्न दृश्य—

दीपकमय कर डाला जब
जलकर पतंग ने जीवन
सीखा बालक मेघों ने
नभ के आँगन में रोदन, ।

(ग) वार्तालाप या संभापण—

जिस दिन नीरव तारों से
बोली किरणों की अलकें,
'सो जाओ अलसायी हैं
सुकुमार तुम्हारी पलकें।'

प्रधान माना जाय या विचार-प्रधान ? अवश्य ही इसमे भाव है पर वह विचार का पूरक या साधक बन कर आया है, अत. इसमे भाव तत्त्व अत्यन्त संयमित व नियन्त्रित रूप मे ही व्यक्त हो पाया है।

निर्वेद सम्बन्धो कविताओ के अन्तर्गत वे कविताएँ भी ली जा सकती हैं जिनमें दु.ख की स्वीकृति एवं सुख के परित्याग की बात समझाई गयी है ; जैसे, निम्नाकित कविता :

उसमें मम छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता !
× × ×
मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग घर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता !'

इस प्रकार दु.ख और सुख की तुलना करते हुए अन्त मे दु ख की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। कविता का केन्द्रीय तत्त्व भाव न होकर विचार है, लक्ष्य उसका संदेश प्रदान करना है—सूक्ष्म विचार तत्त्व को भी कल्पना एव अनुभूति के संयोग से अत्यन्त आकर्षक रूप मे चित्रित कर दिया गया है ; कवयित्री की कल्पना-शक्ति एवं काव्य-प्रतिभा यहाँ अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई है, पर इसमे कोई सदेह नही कि यहाँ भी भावावेग अपेक्षाकृत कम है, गौण है।

वस्तुत: विभिन्न प्रकार की कविताओ के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी के गीति-काव्य मे भावात्मकता की प्रबलता, भावावेग की तीव्रता या अतिशय भाव-प्रवणता का अभाव है—पर इसका यह आशय नही है कि उनमे सवेदन-शीलता, सवेद्यता एवं रागात्मकता की कमी है। सामान्य कवि तीव्र भावावेग की सहायता से जिस ऊँचाई तक पहुँचता है, महादेवी अपनी चित्र-विधायिनी कल्पना-शक्ति एवं अनुभूति के बल पर धीरे-धीरे वहाँ तक पहुँचने मे सफल हो जाती हैं। वे तरल भावुकता एवं आर्द्र भाव-धारा के द्वारा पाठक के हृदय को आप्लावित नही करती अपितु अपने मनमोहक चित्रो, बौद्धिक तर्क-वितर्कों व कलात्मक रूपो द्वारा उसके मन को धीरे-धीरे द्रवित करती है। इस दृष्टि से महादेवी का कार्य अपेक्षाकृत कठिन है, क्योंकि वे शुष्क एवं अनाकर्षक साधनो से तरल एवं आकर्पक रचना का निर्माण करती हैं। साथ ही उनके गीतो की भाव-धारा मे प्रवाहित हो जाना सामान्य पाठक के लिए भी कठिन है। बौद्धिक उच्चता एवं कल्पना की सक्रियता की दृष्टि से पाठक जितना अधिक

गीतों के बीच-बीच मे ही कुछ मार्मिक पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जो कि किसी वि
मरुभूमि के बीच स्थित वृक्ष-पक्ति के तुल्य प्रतीत होती है।

प्रणय के अनन्तर दूसरी भावना करुणा एव सहानुभूति की है जो महा
के गीतो में प्राय. व्यक्त हुई है। इस प्रकार के गीतों मे पुष्प सम्वन्धी कुछ गीत
मार्मिक है। उदाहरण के लिए 'मुर्झाया फूल' शीर्षक कविता द्रष्टव्य है :

था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन!
मुस्कराता था, खिलाती
अंक में तुझको पवन!

यह पूरी कविता इतिवृत्तात्मक है—अतः इसे गीति के रूप में स्वीकार क
कठिन है। इसी प्रकार 'पुष्प' सम्वन्धी एक अन्य कविता लीजिये :

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
× × ×
सीख कर मुस्काने की वान
कहाँ आये हो कोमल प्राण?
× × ×
कौन वह है, सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार?

इस पूरी कविता में पुष्प का मानवीकरण करते हुए उसे अत्यन्त आकर्षक
स्निग्ध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का
चित्रण विस्तार से हुआ है तथा सहानुभूतिपूर्ण शब्दो मे उससे वार्तालाप भी किया ग
है और अन्त मे इस सदेश के साथ कविता समाप्त हुई है :

हँसो, पहनो, काँटों का हार
मधुर भोलेपन के संसार?

कविता निश्चित ही अत्यन्त सुन्दर एवं मन-मोहक है, पर उसके आकर्षण
मूल में वाह्य रूप-विधान का प्रभाव अधिक है; पुष्प के विभिन्न रूप सहानुभूति
रंग मे रगे हुए हैं किन्तु उनमे एक-सूत्रता स्थापित करने वाला तत्त्व भाव नहीं, विचा
है, जो अन्त मे स्पष्ट रूप मे प्रकट हो जाता हैं। ऐसी स्थिति मे इस गीत को भाव

गेयता के अन्य अंगो मे छन्द और लय पर विचार किया जा सकता है। महादेवी ने प्राय. मात्रिक छन्दो का ही प्रयोग किया है। अपवाद रूप मे ही कुछ वार्णिक छन्द प्रयुक्त किये है। लय-विधान मे उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियो का समावेश प्राय. नही किया है। पर उनके छन्द-विधान एव लय-विधान मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वात यह है कि वे सदा व्यक्त भाव के अनुकूल हैं। गीति की विषय-वस्तु यदि गभीर है तो छन्द और लय मे भी यह गभीरता दृष्टि गोचर होगी और यदि वह प्रफुल्लता चंचलता से युक्त है तो छद और लय मे भी तदनुकूल स्वरो का उतार-चढाव रहेगा। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है

(क) जो तुम आ जाते एक वार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणो का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पद पखार !

(ख) पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यो भर भर ?

(ग) मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

(घ) लाये कौन संदेश नये घन !
× × ×
चौंकी निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत् के कंकण !
लाये कौन संदेश नये घन !

(ङ) मैं नीर भरी दुख की वदली
× × ×
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

उन्नत एव विकसित होगा वह महादेवी के काव्य से उतना ही अधिक प्रभावित
रसासिक्त हो सकेगा—इसमे कोई सदेह नही। फिर भी जो लोग भावो की चचल
आवेग की तीव्रता एव रस की प्रगाढता की आशा से ही गीति-काव्य मे प्रवृत्त हो
वे महादेवी से निराश हो तो कोई आश्चर्य नही। वस्तुतः उनके काव्य मे भावो
तरल सौन्दर्य कम एवं विचारो का औदात्य तथा कल्पना का वैभव अधिक है,
अत्यन्त सूक्ष्म कला-दृष्टि व परिष्कृत काव्य-रुचि को ही उससे तोष प्राप्त हो सकता

(२) **संगीतात्मकता**—गीति-काव्य का लक्ष्य वक्तव्य वस्तु को गेय रूप
प्रस्तुत करने का होता है अत गेयात्मकता या सगीतात्मकता उसके लिए आवश्यक
सामान्य मुक्तक और गीति मे सबसे बडा अन्तर इसी बात का है। इतना अवश्य है
गेयता के लिए सगीत की शास्त्रीय राग-रागिनियाँ आवश्यक नही है—यदि रचना
छन्द और लय का निर्वाह इस प्रकार हो कि उसे गाया जा सके तो वह भी पर्याप्त
अत. गीतिकार कवि के लिए शास्त्रीय सगीत या सगीत के शास्त्रीय ज्ञान की वि
आवश्यकता नही है पर यदि कवि को साथ मे सगीत का ज्ञाता भी हो तो निश्चित
गीति के क्षेत्र मे अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिलने की सभावना रहती है। सौभा
से गीतिकार महादेवी मे भी यह विशिष्टता विद्यमान है। वे काव्य-कला, चित्र-क
एवं सगीत-कला—तीनो की मर्मज्ञा हैं। अत. उनके गीतो मे सगीतात्मकता का निव
पूर्णत. हो तो कोई आश्चर्य की बात नही।

गीति-रचना मे उसका सबके अधिक महत्त्वपूर्ण अग उसकी 'टेक' होती
जिसकी आवृत्ति सारे गीत मे होती रहती है। वस्तुतः यह टेक ही सम्पूर्ण गीत
मध्य सचरणशील रहने वाली मूल भाव-धारा या उसकी प्राण-धारा की द्योतक हो
है, अतः टेक ऐसी होनी चाहिए जो एक ओर तो गीति के सम्पूर्ण अर्थ के मूल भाव
सूचित कर सके तो दूसरी ओर वह पाठक या श्रोता के ध्यान को भी बलात् आकर्षित क
सके। इस दृष्टि से महादेवी के कतिपय गीतो की टेक द्रष्टव्य है :

(क) पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर-भर?

(ख) कौन तुम मेरे हृदय में?

(ग) अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?

(घ) यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो!

(ङ) जाग तुझको दूर जाना!

उपर्युक्त टेको मे जिज्ञासा उत्पन्न करने या मूल भाव के प्रति ध्यान आकर्षि
करने की अद्भुत शक्ति विद्यमान है। साथ ही, ये सक्षेप मे पूरे गीत के मूल भाव क
भी स्पष्टता से व्यक्त करती है। अत. टेक का चयन प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर है।

गेयता के अन्य अंगो मे छन्द और लय, पर विचार किया जा सकता है। महादेवी ने प्राय. मात्रिक छन्दो का ही प्रयोग किया है। अपवाद रूप मे ही कुछ वार्णिक छन्द प्रयुक्त किये है। लय-विधान मे उन्होने शास्त्रीय राग-रागिनियो का समावेश प्राय. नही किया है। पर उनके छन्द-विधान एव लय-विधान मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे सदा व्यक्त भाव के अनुकूल हैं। गीति की विषय-वस्तु यदि गभीर है तो छन्द और लय मे भी यह गभीरता दृष्टि गोचर होगी और यदि वह प्रफुल्लता चचलता से युक्त है तो छद और लय मे भी तदनुकूल स्वरो का उतार-चढाव रहेगा। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है .

(क) जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणो का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग
आँसू लेते वे पद पखार !

(ख) पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यो भर भर ?

(ग) मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

(घ) लाये कौन संदेश नये घन !
× × ×
चौंकी निद्रित
रजनी अलसित
श्यामल पुलकित कम्पित कर में
दमक उठे विद्युत् के कंकण !
लाये कौन संदेश नये घन !

(ङ) मैं नीर भरी दुख की बदली
× × ×
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

पंडितो के सम्मुख शास्त्रार्थ करते समय चट्टान से दृढ एवं कठोर दिखाई पडते है वहाँ अपने आराध्य के सम्मुख किसी नवीना किशोरी की भाँति कोमल, आर्द्र एवं गद्-गद् हो जाते है। वस्तुत. महादेवी का वास्तविक या आन्तरिक व्यक्तित्व वही है जो उनके काव्य मे दृष्टिगोचर होता है। साथ ही हमे इस बात को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि जहाँ उनके व्यक्तित्व मे करुणा, प्रेम, स्नेह और विरह की कोमलता है वहाँ उनमे सासारिक सम्बन्धो से ऊपर उठ जाने की, लक्ष्य को दृढता से पकडे रहने की, दु.ख, पीडा और वेदना को पी जाने की भी क्षमता है। अत उनके जीवन और काव्य —दोनो मे ही कोमलता और दृढ़ता का समन्वय परिस्थिति के अनुसार दिखाई पडेगा। पीछे हमने प्रणय सम्बन्धी गीतो से उनके कोमल, मधुर व्यक्तित्व की कतिपय प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला था, पर यदि उनके व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष—दृढ़ता और अडिगता को देखना हो तो यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत है :

(क) **पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !**

× × ×

दुखव्रती निर्माण-उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण-वेला।
दूसरी होगी कहानी
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोयी निशानी।

इस गीत के चुनौतीपूर्ण स्वर कवयित्री के व्यक्तित्व के उस सुदृढ़ पक्ष को ध्वनित करते है जो कि युग और समाज के कटु प्रहारो को सहन करता हुआ, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर रहा है।

अस्तु, वैयक्तिकता का गुण महादेवी के काव्य मे अपने सम्पूर्ण वैभव एव पूर्ण शक्ति के साथ विद्यमान है। कदाचित् महादेवी से पूर्व मीराँ ही एक एसी गीतिकार हुई है जिनमें वैयक्तिकता का विस्तार इस सीमा तक मिलता है—पर मीराँ के सांवरियाँ सगुण थे, अत उनके गीतो मे वेसुध गायिका के हृदय के साथ-साथ मन-मोहन के रूप की झलक भी सर्वत्र विद्यमान है जबकि महादेवी का निर्गुण प्रियतम सदा अदृश्य रहता है जिससे उनके अपने व्यक्तित्व के चित्रण के लिए उन्हे अधिक क्षेत्र एव अवकाश प्राप्त हो गया है। अत. व्यक्तित्व के अंकन एवं प्रतिफलन की दृष्टि से महादेवी के गीति हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गीत कहे जायँ तो अनुचित नही होगा।

(४) संक्षिप्तता—गीतिकार के पास कहने के लिए कोई लम्बी-चौड़ी बात नही होती, वह किसी दीर्घ कहानी या विस्तृत इतिवृत्त को लेकर नही चलता, उसका

लक्ष्य तो केवल अपने हृदय के एक उच्छ्वास को व्यक्त कर देने का होता है, ऐसी स्थिति मे उसकी रचना के कलेवर का सीमित एव सक्षिप्त रह जाना स्वाभाविक है। जहाँ गीति-रचना मे ऐसा नही होता वहाँ यह शका की जा सकती है कि कही रचयिता ने उसमे ऐसे तत्त्वो को तो मिश्रित नही कर दिया जोकि गीति की आत्मा के प्रतिकूल सिद्ध होते है, अवश्य ही वहाँ शुद्ध भावानुभूति के स्थान मे इतिवृत्त, प्रसग या विचार का समावेश अनपेक्षित रूप मे हो जाता है, अन्यथा गीति मे विस्तार की कोई सभावना नही रहती। अस्तु, सक्षिप्तता गीति-काव्य की भावात्मकता, शुद्धता एव उत्कृष्टता की एक कसौटी है। इस दृष्टि से देखने पर महादेवी के काव्य मे दो स्थितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनके कुछ गीत अत्यधिक सक्षिप्त हैं किन्तु कुछ विस्तार की चरम सीमा तक पहुँचे हुए है, यथा—'क्या पूजा क्या अर्चन रे!' यह गीत केवल नौ पक्तियो का है जबकि 'जिस दिन नीरव तारो से बोली किरणो की अलकें' गीत बावन मुद्रित पक्तियो मे है। जैसा कि अन्यत्र भी स्पष्ट किया जा चुका है इस दूसरे गीत मे कोरी भावात्मकता के स्थान पर अनुभूति, इतिवृत्त, सभाषण, क्रिया-कलाप आदि विभिन्न तत्त्वो का मिश्रण हो गया है जिससे इसमे गीत्यात्मकता के साथ प्रबन्धात्मकता के कुछ गुणो का आविर्भाव हो गया है। निश्चित ही इस प्रकार के गीत शुद्ध गीति की दृष्टि से दोष-पूर्ण या निम्न-स्तर के सिद्ध होगे।

महादेवी के समस्त काव्य को ध्यान मे रखकर विचार करने से स्पष्ट होगा कि ज्यो-ज्यो उनकी काव्य-कला का विकास होता गया त्यो-त्यो उनके गीतो मे सक्षिप्तता का गुण भी विकसित होता गया है। इस तथ्य को भली भाँति हृदयगम करने के लिए हम यहाँ उनकी प्रथम कृति 'नीहार' एव अतिम काव्य-कृति 'दीपशिखा' के कतिपय गीतो के विस्तार की तुलना प्रस्तुत करते है .

नीहार		दीपशिखा	
गीत संख्या	पंक्तियाँ	गीत-संख्या	पक्तियाँ
१	२४	१	२५
२	३२	२	२५
३	१२	३	२९
४	१६	४	३२
५	३०	९	२१
६	२०	१३	२५
८	४८	१६	१७
१४	४८	४२	१८
१५	४४	४९	२१
४३	४४	५०	१६

उपर्युक्त उद्धरणो पर विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि जहाँ उदाहरण क मे प्रतीक्षाजन्य उदासी एव निराशा की भावना व्यक्त हुई है, अतः इसमें लय की दीर्घता एव शिथिलता भी उसी के अनुरूप है वहाँ उदाहरण ख और ग मे भावोत्तेजना की स्थिति है, मानसिक चचलता है, अत: इनमे लय भी आवृत्तिपूर्ण एवं चचलता-युक्त है ; 'पुलक पुलक' 'सिहर सिहर' 'मधुर मधुर' की आवृत्ति मानसिक चंन्चलता को भली भाँति व्यक्त करती है। इसी प्रकार उदाहरण घ मे धरती और बादल के मिलन के माध्यम से प्रेयसी-प्रियतम के मिलन या सभोग की स्थिति को चित्रित किया गया है ; इसकी विषय-वस्तु मे सक्रियता, गतिशीलता एव चंचलता की प्रधानता है , अत. कवयित्री ने इस गीत मे छोटी-छोटी पक्तियो के द्वारा एक ऐसी लय की आयोजना की है जिसमे संभोगकालीन शारीरिक चचलता भली-भाँति ध्वनित हो जाती है। अतिम उदाहरण—ङ—मे वैराग्यपूर्ण शान्ति का भाव व्यक्त किया गया है, अतः इसमे लय भी तदनुकूल है। वस्तुतः महादेवी के गीतो मे छन्द, लय, ध्वनि एवं स्वर की आयोजना प्रायः मूल भाव या वक्तव्य वस्तु के अनुकूल ही हुई है ; वे न केवल मूल भाव के बोध मे सहायक सिद्ध होते है अपितु उनके द्वारा उसके प्रभाव मे भी अतिशय अभिवृद्धि होती है। यदि कोई श्रोता उनके गीतो का अर्थ और भाव से अपरिचित भी हो तो भी उनकी लय को सुनकर ही वह समझ सकता है कि गीत का मूल विषय करुणाजनक है या उल्लासपूर्ण, उसमे हर्ष की अभिव्यक्ति की गयी है या विषाद की ? वस्तुत. सगीतात्मकता उनके काव्य मे न केवल उसमे गेयता का संचार करती है वह विषय के अनुकूल वातावरण का सर्जन करती हुई उनकी रागात्मकता एवं सप्रेषणीयता के तत्त्वो में भी अत्यधिक अभिवृद्धि करती है। इस सम्बन्ध मे श्री विश्वम्भर 'मानव' ने विल्कुल ठीक लिखा है कि 'उनमें सगीत का वह मोहन-मंत्र है जो मन को लोरी देकर स्वप्नाविष्ट करने की शक्ति रखता है।'

(३) **वैयक्तिकता**—महादेवी का समस्त काव्य उनकी अपनी अनुभूतियो का ही लेखा-जोखा है, उसमे उन्होने सर्वत्र निजी दृष्टिकोण, निजी भावना एव निजी अनुभूति को ही व्यक्त किया है। मुख्यत. उनका काव्य उनके अपने ही प्रणय की अनुभूतियो पर आधारित है—उन्होंने स्वयं भी कही लिखा है कि उनके गीत आत्म-निवेदन मात्र है। प्रेम मे भी दो व्यक्ति होते है—आलम्वन और आश्रय, पर महादेवी के प्रेम का आलम्वन इतना सूक्ष्म, अलौकिक एव अदृश्य है कि काव्य मे उसकी रूप-रेखा एव चहल-पहल वहुत कम दृष्टिगोचर होती है, सर्वत्र आश्रय (कवयित्री) की ही विभिन्न मनोदशाओ, भाव-दशाओ एवं भावानुभूतियो का स्वर सुनाई पडता है। दूसरे शब्दों मे—महादेवी का काव्य उनके निजी प्रणय की गाथा तो है ही, पर उसमें भी पात्र दो न होकर एक ही हैं ; वह स्वय ही है—दूसरा पात्र तो सदा पर्दे के पीछे ही छिपा रहता है। ऐसी स्थिति मे यदि उनका सम्पूर्ण काव्य वैयक्तिकता से ओत-प्रोत हो तो

स्वाभाविक ही है। वस्तुतः इस वैयक्तिकता के कारण ही सम्पूर्ण काव्य मुक्तक गीति के रूप में प्रस्तुत होते हुए भी व्यक्तिगत भावना के विकास-क्रम के सूत्र से अनुस्यूत है। उनके विभिन्न गीत उनके अपने ही जीवन के भावात्मक-विकास के विभिन्न सोपानो के रूप मे देखे जा सकते है; जैसे :

(क) सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार !

(ख) उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन !

(ग) पर शेष नहीं होगी
मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढ़ा
तुम में ढूंढूंगी पीड़ा !

(घ) मै फूलों में रोती वे
बालारुण में मुस्काते,

(ङ) प्रिय ! सांध्य गगन मेरा जीवन !

(च) पथ मेरा निर्वाण बन गया !

इस प्रकार महादेवी का काव्य अलौकिक प्रभु से प्रथम परिचय से लेकर निर्वाण-प्राप्ति तक की साधना के विभिन्न सोपानो की ही कहानी है। यह कहानी सर्वथा वैयक्तिक है जिसमे अपने ही हास-रुदन, सयोग-वियोग, क्रिया-कलाप, आशा-निराशा, सकल्प-विकल्प आदि का निरूपण नि सकोच किया गया है। इसीलिए इनके गीतो मे उनके व्यक्तित्व की सभी आन्तरिक प्रवृत्तियों, चारित्रिक दृढ़ता, अडिग साधना एवं विभिन्न भावानुभवो की व्यजना सम्यक् रूप मे हुई है। उनके व्यक्तित्व में जिस करुणा, सवेदनशीलता, सहृदयता, चिन्तनशीलता की प्रमुखता है वह उनके काव्य मे भली भाँति मुखर है। फिर भी कई वार आलोचकगण उनके व्यक्तित्व एव काव्य की इस अन्तर्निहित एकता को पहचान पाने मे सफल नही हुए है। महादेवी के साक्षात्कार करने पर वे उन्हे हँसती हुई पाते हैं जवकि उनके काव्य मे सर्वत्र करुणा और विरह की ही धारा प्रवाहित होती हुई दृष्टिगोचर होती है—अत. वे दोनो मे विरोध देखते है। पर वास्तव में वह विरोध उनके व्यक्तित्व एवं काव्य मे नही अपितु व्यक्तित्व के ही दो पक्षो—आन्तरिक एव वाह्य रूपो—का विरोध है। सामाजिक जीवन में हम अपना वाह्य रूप ही प्रकट करते हैं, आन्तरिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति तो व्यक्तिगत जीवन के क्रिया-कलापो तथा काव्य-रचनाओ मे ही संभव है। कवीरदास जहाँ बनारस के

पंडितों के सम्मुख शास्त्रार्थ करते समय चट्टान से दृढ एवं कठोर दिखाई पडते है वहाँ अपने आराध्य के सम्मुख किसी नवीना किशोरी की भाँति कोमल, आर्द्र एव गद्-गद् हो जाते है। वस्तुत. महादेवी का वास्तविक या आन्तरिक व्यक्तित्व वही है जो उनके काव्य मे दृष्टिगोचर होता है। साथ ही हमे इस वात को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि जहाँ उनके व्यक्तित्व मे करुणा, प्रेम, स्नेह और विरह की कोमलता है वहाँ उनमें सांसारिक सम्बन्धो से ऊपर उठ जाने की, लक्ष्य को दृढता से पकडे रहने की, दु.ख, पीडा और वेदना को पी जाने की भी क्षमता है। अत. उनके जीवन और काव्य —दोनो मे ही कोमलता और दृढ़ता का समन्वय परिस्थिति के अनुसार दिखाई पडेगा। पीछे हमने प्रणय सम्बन्धी गीतो से उनके कोमल, मधुर व्यक्तित्व की कतिपय प्रवृत्तियो पर प्रकाश डाला था, पर यदि उनके व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष—दृढ़ता और अडिगता को देखना हो तो यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है :

(क) **पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !**

× × ×

दुखव्रती निर्माण-उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक-संसृति
से तिमिर में स्वर्ण-वेला।
दूसरी होगी कहानी
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोयी निशानी।

इस गीत के चुनौतीपूर्ण स्वर कवयित्री के व्यक्तित्व के उस सुदृढ़ पक्ष को ध्वनित करते है जो कि युग और समाज के कटु प्रहारो को सहन करता हुआ, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर रहा है।

अस्तु, वैयक्तिकता का गुण महादेवी के काव्य मे अपने सम्पूर्ण वैभव एव पूर्ण शक्ति के साथ विद्यमान है। कदाचित् महादेवी से पूर्व मीराँ ही एक एसी गीतिकार हुई है जिनमें वैयक्तिकता का विस्तार इस सीमा तक मिलता है—पर मीराँ के साँवरियाँ सगुण थे, अत' उनके गीतो में वेसुध गायिका के हृदय के साथ-साथ मन-मोहन के रूप की झलक भी सर्वत्र विद्यमान है जवकि महादेवी का निर्गुण प्रियतम सदा अदृश्य रहता है जिससे उनके अपने व्यक्तित्व के चित्रण के लिए उन्हे अधिक क्षेत्र एव अवकाश प्राप्त हो गया है। अत. व्यक्तित्व के अकन एवं प्रतिफलन की दृष्टि से महादेवी के गीति हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गीत कहे जायें तो अनुचित नही होगा।

(४) संक्षिप्तता—गीतिकार के पास कहने के लिए कोई लम्वी-चौड़ी वात नही होती, वह किमी दीर्घ कहानी या विस्तृत इतिवृत्त को लेकर नही चलता, उसका

लक्ष्य तो केवल अपने हृदय के एक उच्छ्वास को व्यक्त कर देने का होता है, ऐसी स्थिति मे उसकी रचना के कलेवर का सीमित एव संक्षिप्त रह जाना स्वाभाविक है। जहाँ गीति-रचना मे ऐसा नही होता वहाँ यह शका की जा सकती है कि कही रचयिता ने उसमे ऐसे तत्त्वो को तो मिश्रित नही कर दिया जोकि गीति की आत्मा के प्रतिकूल सिद्ध होते है; अवश्य ही वहाँ शुद्ध भावानुभूति के स्थान मे इतिवृत्त, प्रसग या विचार का समावेश अनपेक्षित रूप मे हो जाता है, अन्यथा गीति मे विस्तार की कोई संभावना नही रहती। अस्तु, सक्षिप्तता गीति-काव्य की भावात्मकता, शुद्धता एव उत्कृष्टता की एक कसौटी है। इस दृष्टि से देखने पर महादेवी के काव्य मे दो स्थितियाँ दृष्टिगोचर होती हैं; उनके कुछ गीत अत्यधिक सक्षिप्त हैं किन्तु कुछ विस्तार की चरम सीमा तक पहुँचे हुए है, यथा—'क्या पूजा क्या अर्चन रे!' यह गीत केवल नौ पंक्तियो का है जबकि 'जिस दिन नीरव तारो से बोली किरणो की अलकें' गीत बावन मुद्रित पक्तियो मे है। जैसा कि अन्यत्र भी स्पष्ट किया जा चुका है इस दूसरे गीत में कोरी भावात्मकता के स्थान पर अनुभूति, इतिवृत्त, सभाषण, क्रिया-कलाप आदि विभिन्न तत्त्वो का मिश्रण हो गया है जिससे इसमे गीत्यात्मकता के साथ प्रवन्धात्मकता के कुछ गुणो का आविर्भाव हो गया है। निश्चित ही इस प्रकार के गीत शुद्ध गीति की दृष्टि से दोष-पूर्ण या निम्न-स्तर के सिद्ध होगे।

महादेवी के समस्त काव्य को ध्यान मे रखकर विचार करने से स्पष्ट होगा कि ज्यो-ज्यो उनकी काव्य-कला का विकास होता गया त्यो-त्यो उनके गीतो मे सक्षिप्तता का गुण भी विकसित होता गया है। इस तथ्य को भली भाँति हृदयगम करने के लिए हम यहाँ उनकी प्रथम कृति 'नीहार' एवं अतिम काव्य-कृति 'दीपशिखा' के कतिपय गीतो के विस्तार की तुलना प्रस्तुत करते है:

नीहार		दीपशिखा	
गीत संख्या	पंक्तियाँ	गीत-संख्या	पंक्तियाँ
१	२४	१	२५
२	३२	२	२५
३	१२	३	२९
४	१६	४	३२
५	३०	९	२१
६	२०	१३	२५
८	४८	१६	१७
१४	४८	४२	१८
१५	४४	४९	२१
४३	४४	५०	१६

इसमे कोई संदेह नही कि कुछ गीत 'नीहार' में भी वहुत छोटे हैं तो कुछ 'दीपशिखा' मे भी वहुत लम्वे है, पर सामान्यतः जहाँ 'नीहार' मे अधिकांश गीत ३२ से ४८ पंक्तियो तक है वहाँ 'दीपशिखा' मे यह सख्या १६ से २५ तक ही सीमित रहती है। अतः सामान्य रूप मे 'दीपशिखा' के गीत अपेक्षाकृत सक्षिप्त माने जा सकते है—किन्तु यह संक्षिप्तता भी सूर और मीराँ की तुलना मे दीर्घता ही सिद्ध होगी, कुछ अपवादों को छोड़कर सूर और मीराँ के पद आठ या वारह पक्तियो तक के ही है, जवकि महादेवी मे इतने छोटे गीत वहुत कम है।

अत हमें यह स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही है कि महादेवी के गीतिकाव्य मे सक्षिप्तता का गुण सर्वत्र ही अपेक्षित रूप मे नही मिलता, तथा इसका कारण भी यही है कि उनके अनेक गीतो के मूल में भावावेग कम है विचार एवं कल्पना की प्रेरणा अधिक है, पर फिर भी एक वात ध्यान देने की है—उनके गीत अपनी दीर्घता के होते हुए भी भारी एव अरोचक प्रतीत नही होते ; इसका कारण यह है कि उनकी दीर्घता शुष्कता से युक्त नही है अपितु कल्पना की रगीनी से परिपूर्ण है। यदि हम किसी के सिर पर वोझ लाद दें तथा उसे कोई मीठी वात सुनाते चलें तो कदाचित् उसे वोझ भी वहुत भारी प्रतीत नही होगा—यही वात उनके गीतों मे है। वे कहीं-कही भारी है किन्तु वोझिल प्रतीत नही होते। वे सर्वत्र ही रग-विरंगे चित्रों से सुसज्जित है—अत. उनकी रोचकता एवं सरसता मे इससे विशेप अन्तर नही पड़ता।

(५) **भावानुकूल भाषा**—जिस प्रकार हमारे कुछ भाव कोमल और कुछ कठोर होते है उसी प्रकार भापा मे भी कुछ ध्वनियाँ कोमल और कुछ कठोर है। इसीलिए विभिन्न प्रकार की ध्वनियो के मेल से निर्मित अनेक शब्दों का अर्थ एक होते हुए भी उनके प्रभाव मे गहरा अन्तर रहता है ; यथा 'अश्व' और 'घोड़ा—दोनो शब्दो का अर्थ एक ही है पर दोनो मे से एक की ध्वनि मे कोमलता है और दूसरी मे कठोरता। ध्वनियो के इसी गुण को आचार्य वामन ने माधुर्य, ओज, आदि गुणो का तथा 'वैदर्भी' 'गौडी' आदि रीतियो का नाम देते हुए इन्हे काव्य की आत्मा के रूप मे मान्यता दी थी। हमारे विचार में रीति-गुणों को काव्य की आत्मा के रूप मे तो स्वीकार नही किया जा सकता किन्तु आत्मा के पोपक एव सहायक के रूप में इन्हे अवश्य स्वीकार किया जा सकता है। यदि मूल भाव अनुकूल शब्द मे व्यक्त किया गया हो तो इससे उसके प्रभाव मे थोड़ी वृद्धि अवश्य होती है। महादेवी के काव्य में यह वात प्रायः दृष्टिगोचर होती है। यहाँ उनके काव्य के कतिपय अश द्रष्टव्य हैं :

(क)

हँस देता जव प्रात, सुनहरे
अंचल में विखरा रोली,
लहरों की विछलन पर जव
मचली पड़ती किरणें भोली ;

(ख) नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन !
रोम रोम में होता री सखि एक नये उर का-सा स्पन्दन !

(ग) — घोर तम छाया चारों ओर
घटाएँ घिर आईं घन घोर ;
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वत मूल ;
× × ×
तरंगें उठीं पर्वताकार
भयंकर करतीं हाहाकार,
× × ×
तरंगें हैं उत्ताल अपार
कौन पहुँचा देगा उस पार ?

(घ) पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !
× × ×
दुखव्रती निर्माण उन्मद
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगें अंक-संसृति
से तिमिर में वर्ण-बेला ।

उपर्युक्त चारो अशो में क्रमशः चार प्रकार की भाव दशाएँ व्यक्त की गयी है ; पहले अंश क मे हास्य एव उल्लास से परिपूर्ण वातावरण की व्यंजना की गयी है, अतः इसकी शब्दावली मे अनुस्वार, न, म, ण, ल, जैसी कोमल ध्वनियाँ अधिक प्रयुक्त हैं। इन्ही ध्वनियो को माधुर्यगुण एव वैदर्भी रीति का आधार माना गया है। दूसरे अंश ख मे मिलन-सुख की व्यजना अत्यन्त कोमल मधुर शब्दावली में व्यक्त की गयी है ; 'नयन श्रवण' और 'श्रवण-नयन' 'रोम-रोम' आदि का प्रयोग इस ढंग से किया गया है कि प्रेयसी के हृदय का स्पन्दन व उसका भावात्मक मिलन भली भाँति ध्वनित हो जाता है। तीसरे अश मे भय और निराशा से परिपूर्ण वातावरण को अकित किया गया है, अतः इसमें 'घोर' 'छाया' 'घटाएँ' 'घनघोर' 'प्रतिकूल, 'पर्वत-मूल' जैसे कठोर ध्वनि-युक्त शब्दो का प्रयोग हुआ है। इसमें घ, ट, की आवृत्ति, दीर्घ शब्द, आदि विशेष रूप से ध्यातव्य हैं। अंतिम अश घ मे कवयित्री के उत्साह एवं साहस की व्यजना हुई है, अत. इसमें भी तदनुकूल कठोर शब्दावली प्रयुक्त हुई है, यथा— 'प्राण,' 'अकेला,' 'दुखव्रती' 'उन्मद' 'अंक-ससृति' आदि। वस्तुतः रीति-सिद्धान्त के

अनुसार जहाँ क और ख अंश मे माधुर्यगुण एव वैदर्भी रीति का सन्निवेश है तो अन्तिम दो अशों मे ओज गुण व गौडी रीति का उन्मेष हुआ है। अस्तु, इसमे कोई सदेह नही कि महादेवी का भाषा के नाद-पक्ष एवं अर्थ-पक्ष-दोनो पर पूर्ण अधिकार है, अत. वे दोनो मे पूर्ण सतुलन व सामजस्य स्थापित कर पाती है।

श्री विश्वम्भर 'मानव' ने महादेवी की भाषा की प्रशसा करते हुए उसके कतिपय दोषो की ओर भी सकेत किया है—'भाषा उनकी अत्यन्त परिष्कृत, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त कोमल है उसमे कही भी कर्कशता का चिह्न नही। · · भाषा जैसे माधुर्य गुण के खराद पर उतार दी गई हो। इतना होते हुए भी मात्राओ की पूर्त्ति और तुक के आग्रह के लिए कुछ शब्दो का अग-भग, रूप-परिवर्तन और अग-वार्द्धक्य हो गया है; जैसे 'बतास', 'आधार,' अभिलाषे,' ज्योति' 'कर्णाधार' आदि। केवल कविता मे प्रयुक्त होने वाले शब्दो का भी कही-कही प्रयोग है, जैसे 'बैन' (वचन), नैन (नयन), आन (आ), बयार (वायु), हौले (धीरे)। कोमलता के लिए कही 'जोड' के लिए 'जोर' लिख दिया है। कई स्थानो पर 'यह' शब्द का प्रयोग महादेवीजी ने बहुवचन मे किया है। 'यह' के स्थान पर 'ये' लिखना चाहिए।'[1]

हमारे विचार मे ये दोप कवयित्री के भाषा-ज्ञान के अभाव पर आधारित नही है, अपितु उसने जानवूझकर ही या मूल भाव को सम्यक् अभिव्यक्ति देने के लिए ही शब्दो को इन रूपों मे प्रयुक्त किया है, यथा :

> मुखर पिक हौले बोल !
> हठीले हौले हौले बोल !

उपर्युक्त पक्तियो मे 'हौले' को मानवजी ने दोपपूर्ण मानते हुए 'धीरे' का सुझाव दिया है; यदि उनके सुझाव को मान लिया जाय तो ये पक्तियाँ निम्नाकित रूप मे परिणत हो जायेगी :

> मुखर पिक धीरे बोल !
> हठीले धीरे धीरे बोल !

अवश्य ही अर्थ और मात्राओ की सख्या की दृष्टि से ये पक्तियो भी पूर्ववत् ही है पर फिर भी 'हौले हौले' मे जो माधुर्य है तथा 'हठीले' 'वोल' के साथ जैसा सामजस्य है वह 'धीरे धीरे' मे नही है। अत उपर्युक्त प्रयोग गद्य-रचना मे तो दोपपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं पर यहाँ वे सर्वथा भावानुकूल व कलात्मक सिद्ध होते है, ऐसी स्थिति मे कवयित्री को दोष नही दिया जा सकता। वस्तुत. व्याकरण का ज्ञान महादेवी को भी

---

१. महादेवी की रहस्य साधना; पृ० १८७।

कम नही हैं, पर कलात्मकता की रक्षा के लिए ही उन्होने व्याकरण-ज्ञान की किंचित् उपेक्षा कही-कही की है। साथ ही इस प्रकार के प्रयोगो की सख्या इतनी न्यून है कि उन्हे अपवाद ही मानना चाहिए।

उपसंहार—इस प्रकार गीति-काव्य के विभिन्न तत्त्वो व गुणो के आधार पर महादेवी की गीति-कला की विवेचना करने के अनन्तर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि उनके गीत गीति-काव्य के सभी गुणो से सम्पन्न है। उनमे भावात्मकता, सगीतात्मकता, वैयक्तिकता, सक्षिप्तता एव भावानुकूल भापा का सामजस्य प्राय. दृष्टिगोचर होता है, यह दूसरी वात है कि उनमे कोरी भावुकता या शुद्ध भावावेग न होने के कारण सक्षिप्तता के गुण का कही-कही ह्रास हो गया है। महादेवी काव्य के प्रति जिस दृष्टि एव लक्ष्य को लेकर चली है, उसे देखते हुए उनकी रचना मे भावो की उच्छल् तरग, आवेग की तीव्र पुकार या आवेश के उफान का होना सभव भी नही था क्योकि वे केवल आत्माभिव्यक्ति, या कोरे रूप-चित्रण के लिए काव्य-रचना नही करती अपितु उनकी दृष्टि मे तो काव्य सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है; अत. इसी लक्ष्य की पूर्त्ति एक सीमा तक उनके काव्य मे हुई है। पर इससे उनकी कलात्मकता को ठेस नही लगी है; आवेग की न्यूनता की पूर्त्ति उन्होंने कल्पना के सौदर्य, सगीत के माधुर्य एव शब्द-योजना के लालित्य द्वारा कर ली है। गीतो की दीर्घता रग-विरगी चित्रावली से सज्जित होने के कारण कही भी शुष्कता, शिथिलता एवं नीरसता से युक्त प्रतीत नही होती। सामान्यत: गीति-काव्य हृदय के भाव-सौन्दर्य से ही वेष्टित होता है, मस्तिष्क का चिन्तन उसमे प्राय. नही समा पाता और साथ ही उसमे अनुभूति की तरलता ही प्राय: रहती हैं, कल्पना की चित्रमयता के लिए उसमे वहुत कम अवकाश रहता है, किन्तु महादेवी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा के वल पर इन विशेपताओ का भी समावेश करके अपने गीति-काव्य को अतिरिक्त गरिमा प्रदान कर दी है। इस गरिमा को देखते हुए कतिपय गुणो का किंचित् अभाव नगण्य-सा प्रतीत होता है।

भारतीय गीति-काव्य को सुदीर्घ परम्परा मे महादेवी का क्या स्थान है? इस दृष्टि से विचार करे तो हमारे सामने सर्व प्रथम चर्यागीतो के गायक सिद्ध कवि आते है जिन्होंने लौकिक अपभ्र श में अपने सरल हृदय की अनुभूतियो को 'शर्वरी वाला' या अन्य जाति की वालाओ को—मुद्राओ को—लक्ष्य करके व्यक्त की है। किन्तु उनका आत्म-निवेदन वासना, भावना और साधना की परस्पर-विरोधी ग्रन्थियो से इस प्रकार ग्रस्त है कि उनमे शुद्ध कला का विकास वहुत कम हो पाया है। वस्तुत. सिद्ध कवियो का महत्त्व इतना ही है कि उनके द्वारा लोक गीत की विधा साहित्य की ओर अग्रसर हुई। कदाचित् उन्होंने ही परवर्ती साहित्यकारो का ध्यान इस विधा की ओर आकर्षित किया।

संस्कृत में इस विधा को प्रतिष्ठित करने का श्रेय महाकवि जयदेव को है। उन्होने अपने 'गीत गोविन्द' मे लगभग एक सौ गीतों के माध्यम से राधा-कृष्ण की प्रणय-कहानी को सगीत के स्वरों में प्रस्तुत किया है। उन्हे साहित्यकारो व आलोचको द्वारा पर्याप्त सम्मान और महत्त्व भी प्राप्त हुआ है, पर हमारी दृष्टि में जयदेव के काव्य की कुछ महत्त्वपूर्ण सीमाएँ भी है। वे 'हरि-स्मरण' के साथ 'विलास-कला' का, प्रणय के साथ काम-शास्त्र का, काव्य के साथ साहित्य-शास्त्र का और गीति के साथ प्रवन्ध-काव्य का भी समन्वय करना चाहते थे, अतः उनका समस्त काव्य नायक-नायिका के उद्दाम यौवन, अश्लील शृगार व नग्न विलास की घटनाओं, शास्त्रीय नायक-नायिका भेद के उदाहरणों व मुक्तकगीति को वलात् प्रवन्ध के सूत्र मे पिरोने के प्रयासों मे उलझकर एक ऐसा रूप प्राप्त कर गया है कि उसे काव्य का 'नृसिह' ही कहना उचित होगा। महादेवी के गीतो मे भावना की जो स्वच्छता, विचारो का जो औदात्य एवं शैली का जो लालित्य दृष्टिगोचर होता है उससे जयदेव की कोई तुलना नही।

हिन्दी में सर्व प्रथम गीति के स्वरों को निनादित करने का श्रेय मैथिल-कोकिल विद्यापति को दिया जाता है। हमारे विचार मे विद्यापति जयदेव के अनुकर्त्ता होते हुए भी कवि के रूप मे अपेक्षाकृत अधिक प्रतिभाशाली, कल्पना-शील एव भाव-प्रवण थे। अतः उनका गीति-काव्य उन दोषों से तो मुक्त है जो जयदेव मे दृष्टिगोचर होते हैं पर फिर भी वे एक विषम स्थिति में अवश्य थे। वे सौदर्य, प्रेम और विलास की निजी अनुभूतियो के अक्षय भडार को व्यक्त करना चाहते थे पर उसे प्रत्यक्ष रूप मे व्यक्त करने की स्थिति उस युग मे नही थी। अतः उन्हें राधा-कृष्ण के व्यक्तित्व का आश्रय ग्रहण करना पडा—फलतः उनके काव्य मे वैयक्तिकता अप्रत्यक्ष रूप मे ही आ पाई है। फिर भी विद्यापति मे महादेवी की अपेक्षा मानवी-सौंदर्य का चित्रण, भाव-प्रवणता, प्रणय की सघनता अधिक है, जवकि स्वच्छता, पवित्रता, औदात्य एवं शैलीगत लालित्य की दृष्टि से महादेवी विद्यापति से वढ़कर है। वस्तुत. एक सौदर्य का कवि है तो दूसरी औदात्य की चित्रकार है, अतः दोनो का ही अपने-अपने क्षेत्र में महत्त्व है।

भक्तिकाल के सर्वोत्कृष्ट गीतिकारो मे सूर और मीराँ का नाम उल्लेखनीय हैं। सूरदास मे निश्चित ही अधिक भाव-प्रवणता, अधिक कल्पना एव अधिक लालित्य था, उनमे जो सरसता है वह महादेवी में सर्वत्र ही सुलभ नही, पर फिर भी सूरदास ने गोपियों की ही व्यथा को अपने गीतो मे प्रस्तुत किया है, उसे अपनी व्यथा नही वना पाये! दूसरे शब्दो मे, वैयक्तिकता का गुण उनमे भी महादेवी के गीतो की तुलना मे वहुत कम है।

मीराँ के भाव-पूर्ण गीतो से महादेवी के कलात्मक गीतो की तुलना करना कठिन है। एक मे हृदय का सहज उच्छवास है, मर्म की पीड़ा का तीखा स्वर है, घायल की पुकार है, मिलन की चाह है, विरह की छटपटाहट है तो दूसरी मे शिक्षा का सस्कार,

दर्शन का अथाह ज्ञान, प्रतिभा का सुचारु विकास, भावना का गांभीर्य, पीडा का मौन स्वीकार, कल्पना का रूप-विधान एवं शैली का लालित्य है ; एक मे हृदय फूटफूट कर बरसता है : उसके आँसुओं की धारा में हर सहृदय बह जाता है तो दूसरी के मौन चित्रो में कुछ ऐसी रंगीनी और ऐसी सूक्ष्मता है कि कोई भी दर्शक उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हुए विना नही रहता। वस्तुतः एक मे गगा का अजस्र प्रवाह है, समुद्र का सा आवेग और ज्वार है तो दूसरी मे हिमालय की सी उच्चता, वसन्त का सा वैभव एवं पूर्णिमा का सा प्रकाश है ; अतः किसे अधिक महत्त्व दिया जाय और किसे कम—इसका निर्णय करना कठिन है।

आधुनिक गीतिकारो मे प्रसाद, पत, निराला, बच्चन प्रभृति की तुलना महादेवी से की जा सकती है। प्रसाद मे सरलता और कोमलता, पंत मे शिल्प और माधुर्य, निराला मे ओज और प्रवाह, बच्चन मे भावुकता और मस्ती महादेवी से अधिक है, पर विचार के औदात्य, भावना के संयम, कल्पना के सौन्दर्य एवं शैली के लालित्य के पारस्परिक सामजस्य एव सतुलन की दृष्टि से महादेवी इन सबसे आगे दिखाई पड़ती हैं। दूसरे, इन कवियो में से अनेक ने समय-समय पर गीति के स्थान पर प्रबन्ध और मुक्तक का माध्यम अपना कर इस तथ्य की पुष्टि की है कि वे पूर्णतः गीतिकार नही हैं जबकि महादेवी मे आदि से अब तक गीति की ही एकान्त साधना मिलती है। अत. काव्य के अन्य रूपो की दृष्टि से अन्य कवि सर्वोच्च माने जा सकते है, पर कम से कम गीति के क्षेत्र मे महादेवी विकास की चरम सीमा को छूती हुई प्रतीत होती हैं।

अस्तु, हमारा लक्ष्य किसी कवि को महान् या तुच्छ सिद्ध करना नही है अपितु परंपरा के सदर्भ मे महादेवी का सापेक्ष्य महत्त्व निर्धारित करने का है। निश्चित ही गीतिकार महादेवी की इस क्षेत्र मे देन अतुल्य एव महान् है। वे किसी अन्य गीतिकार की स्थानापन्न नही बन सकती किन्तु यह भी सत्य है कि कोई अन्य गीतिकार भी उनका स्थानापन्न नही बन सकता। वस्तुतः औदात्य, सौन्दर्य एव लालित्य का एकत्र सयोग, सत्य, शिवं और सुन्दरम् का पूर्ण सामजस्य विश्व मे बहुत थोडे कवि प्रस्तुत कर पाये है, पर जो कर पाये हैं वे 'महान्' के विशेषण से सदा विभूषित रहे है—निश्चय ही, इन महान् कवियो की परंपरा मे ही गीतिकार महादेवी का नाम भी परिगणित होता रहेगा—ऐसा हमारा विश्वास है।

* * *
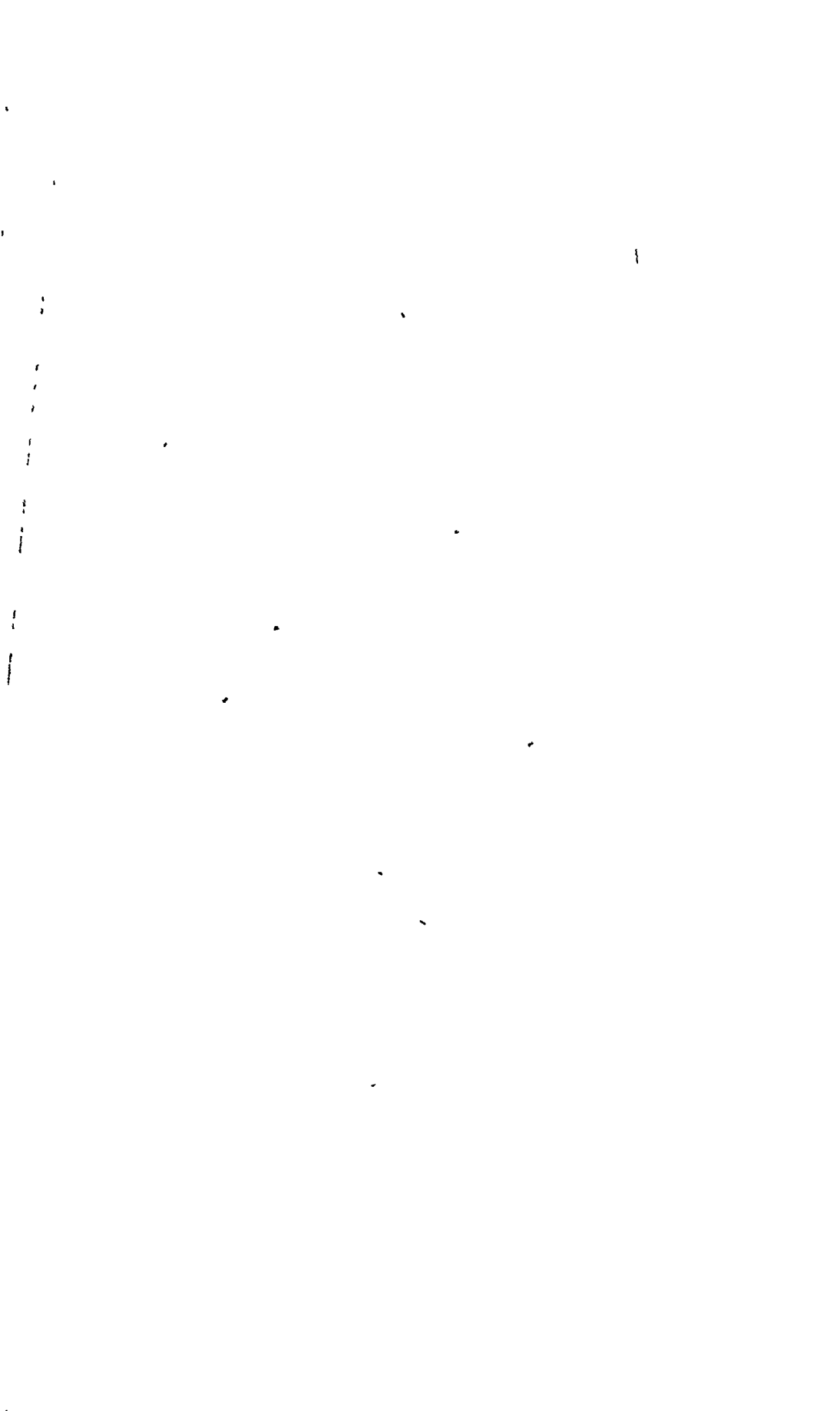
महादेवी : नया मूल्यांकन

चतुर्थ खण्ड

महादेवी-काव्य का मूल्यांकन

महादेवी-काव्य का मूल्यांकन

- सौन्दर्य-शास्त्रीय मूल्यांकन
    * *वस्तुवादी दृष्टिकोण : औदात्य*
    * *रूपवादी दृष्टिकोण : प्रतीकात्मकता*
    * *समन्वयवादी दृष्टिकोण : समन्विति*
- काव्य-शास्त्रीय मूल्यांकन
    * *रस-सिद्धान्त : शान्त रस*
    * *ध्वनि सिद्धान्त*
- वैज्ञानिक मूल्यांकन
    * *बौद्धिक आकर्षण*
    * *आकर्षण-शक्ति की प्रक्रियाएँ*
    * *उपसंहार*

१

सौन्दर्य-शास्त्रीय मूल्यांकन

जिस प्रकार काव्य के विभिन्न अगो, तत्त्वो व रूपो का विवेचन करने वाला शास्त्र 'काव्य-शास्त्र' या 'साहित्य-शास्त्र' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, उसी प्रकार विभिन्न कलाओ के स्वरूप, तत्त्व एव उनकी विभिन्न प्रक्रियाओ की व्याख्या करने वाले शास्त्र को 'सौन्दर्य-शास्त्र' (Aesthetics) के नाम से पुकारा गया है। ललित कला के विभिन्न रूपों के अन्तर्गत काव्य या साहित्य को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है, अत काव्य का सम्बन्ध काव्य-शास्त्र और सौन्दर्य-शास्त्र—दोनो से ही है; किन्तु जहाँ काव्य-शास्त्र काव्य की व्याख्या एक सीमित एव विशिष्ट दृष्टि से करता है वहाँ सौन्दर्य-शास्त्र उसे अत्यन्त व्यापक एव सामान्य दृष्टि से देखता है। वस्तुत. जिस प्रकार काव्य कला का एक रूप-भेद मात्र है उसी प्रकार काव्य-शास्त्र भी सौन्दर्य-शास्त्र का ही एक अग या एक शाखा मात्र है। एक पूरे राष्ट्र मे किसी एक प्रान्त या प्रदेश की जो स्थिति है वही सौन्दर्य-शास्त्र के अन्तर्गत काव्य-शास्त्र की है। अतः स्पष्ट है कि सौन्दर्य-शास्त्र का आधार काव्य-समीक्षा को अपेक्षाकृत एक उच्च एवं व्यापक भूमि प्रदान करता है, काव्य-शास्त्र के अपने विशिष्ट सिद्धान्त भी हो सकते हैं किन्तु उसके जो सिद्धान्त सौन्दर्य-शास्त्र के सामान्य तत्त्वो पर आधारित होगे वे निश्चित ही अधिक व्यापक एवं ठोस सिद्ध होगे। अतः हम महादेवी के काव्य का मूल्याकन भी सर्वप्रथम सौन्दर्य-शास्त्रीय तत्त्वो के आधार पर प्रस्तुत करें तो अनुचित न होगा।

(क) वस्तुवादी दृष्टिकोण : औदात्य

सौन्दर्य-शास्त्र का मूल प्रश्न है—सौन्दर्य (कलागत सौन्दर्य) क्या है? इसके उत्तर को लेकर अनेक सिद्धान्त स्थापित हुए है जिन्हे हम मुख्यतः तीन वर्गों में वर्गीकृत

कर सकते हैं—(१) वस्तुवादी, (२) रूपवादी, (३) समन्वयवादी। जहाँ वस्तुवादी कलागत सौन्दर्य का आधार कला की विपय-वस्तु के किसी विशिष्ट तत्त्व को मानते है वहाँ रूपवादी कला के किसी रूप-विशेप मे ही सौन्दर्य की सत्ता स्वीकार करते है, जवकि समन्वयवादी वर्ग के विद्वान् वस्तु एव रूप के सामजस्य पर वल देते है। वस्तुवादी वर्ग के अन्तर्गत भी विभिन्न सिद्धान्त प्रचलित हैं जो अनुकृति, औदात्य, भावात्मकता, नैतिकता, उपयोगिता आदि विभिन्न गुणो पर वल देते हुए इनमे से किसी एक को ही कला का सर्वस्व मानते है। पर स्थूल दृष्टि से इन सव तत्वो को दो प्रमुख तत्वो के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है—(१) सौन्दर्य और (२) औदात्य। वस्तुत. कला की विषय-वस्तु मे वस्तु की दृष्टि से जो भी आकर्षण होगा वह इन दोनो मे से ही किसी एक की प्रधानता के कारण होगा ; इसीलिए सौन्दर्य और औदात्य पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्र के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है जिनकी विवेचना शताब्दियो से होती रही है तथा जिन्हे प्राचीन एव अर्वाचीन युग के अनेक आचार्यो की मान्यता प्राप्त है।

महादेवी के काव्य पर औदात्य सिद्धान्त पूर्णतः लागू होता है—अत. आगे इसी सिद्धान्त का परिचय सक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

● **'औदात्य' की विवेचना**—औदात्य की स्थापना प्रथम शती के लगभग ग्रीक आचार्य लौंजाइनस द्वारा हो चुकी थी, उन्होने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'आन दी सब्लाइम' मे मुख्यत· भाषण-कला की दृष्टि से औदात्य तत्त्व की विशद विवेचना प्रस्तुत की है। औदात्य के स्वरूप का परिचय देते हुए उन्होने लिखा है—'औदात्य अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का नाम है और केवल इसी के आधार पर महानतम कवियो और गल्प-शिल्पियो ने अक्षय गौरव और अप्रतिम ख्याति अर्जित की है।'[1] औदात्य के विभिन्न तत्त्वो की व्याख्या करते हुए उन्होने उसके पाँच स्रोतो की विवेचना की है—(१) महान् व्यक्तित्व, (२) उदात्त भावावेग, (३) उदात्त अलंकार-योजना (४) उत्कृष्ट भापा और (५) गरिमामय शिल्प-विधान। इस प्रकार इन पाँच स्रोतो के अन्तर्गत रचयिता के व्यक्तित्व से लेकर रचना के शैली पक्ष के सभी प्रमुख तत्त्वो को उदात्त के अन्तर्गत समेट लिया गया है, जो उचित नही। वस्तुत. लौंजाइनस महोदय ने औदात्य के अन्तर्गत वस्तुगत औदात्य एव शैलीगत सौन्दर्य—दोनो को घुला-मिलाकर उसे एक अत्यन्त व्यापक किन्तु अनिश्चित एवं असतुलित रूप प्रदान कर दिया है। प्राचीन काव्य-शास्त्रियो मे प्रायः यह प्रवृत्ति मिलती है कि वे अपने सिद्धान्त का क्षेत्र-विस्तार करने के लिए स्वजातीय एव विजातीय सभी प्रकार के तत्त्वो को अपने क्षेत्र मे समेट लेने का दुष्प्रयास करते है जिससे मूल सिद्धान्त की सीमा अनिश्चित हो जाती है। लौंजाइनस भी इसी प्रवृत्ति से ग्रस्त हैं।

---

१. ग्रीक साहित्य-शास्त्र : पृ० १५५।

आधुनिक युग के अनेक दार्शनिको एव सौन्दर्य-विवेचको ने औदात्य की अपेक्षाकृत सतुलित विवेचना की है, जिनमे कान्ट, हीगल, ब्रेडले, सैतायना, कैरिट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय है। कान्ट ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'क्रिटिक आफ् जजमेन्ट' मे सौन्दर्य और औदात्य की तुलना करते हुए दोनो के स्वरूप की विभिन्नताओ का स्पष्टीकरण भली भाँति किया है। उनके अनुसार जहाँ सौन्दर्य का सम्बन्ध वस्तु के रूप पक्ष से है वहाँ औदात्य का उसके गुण से है; सौन्दर्य अनुभूति का विषय है जबकि औदात्य बोध से सम्बन्धित है; सौन्दर्य रागमूलक है, औदात्य विरागमूलक; सौन्दर्य प्रवृत्तिमूलक है, औदात्य निवृत्ति-मूलक। अस्तु, औदात्य की अनुभूति महान्, विराट, भयानक, कुरूप, वीभत्स एव करुण दृश्यो से सभव है। दूसरे शब्दो मे औदात्य की आधारभूत वस्तु विरागमूलक होती है किन्तु उसका सम्बन्ध किसी महान् विचार या विशेष परिस्थिति से होने के कारण ही वह मन को अभिभूत कर लेती है।

हीगल ने औदात्य को व्यापक, उदात्त एव महान धारणाओ से सुसम्बन्धित करते हुए उसे आध्यात्मिक तत्त्व माना तो ब्रेडले ने अद्भुत महानता को ही उसका आधार माना।

सैन्तायना ने काव्यगत औदात्य की विस्तृत विवेचना करते हुए उसे निर्वेद और मुक्ति की भावना का जनक माना है।[2] उनके विचारानुसार उदात्त मे वस्तु-विशेष न होकर कर्म-विशेष रहता है। वह हमारे मन मे सांसारिक आकर्षणो के प्रति विराग की भावना का सचार करके हमारी आत्मा को इतनी ऊँचा उठा देता है कि हम एक प्रकार की पवित्रता और मानसिक शान्ति की अनुभूति प्राप्त करने लगते हैं। वह हमारे मन मे आत्मसमर्पण एव आत्मबलिदान की भावना जागृत करता है। इस प्रकार सैन्तायना ने औदात्य को एक उच्चकोटि की निर्वेद भावना के पर्याय के रूप मे स्वीकार किया है।

कैरिट्ट ने भी औदात्य की मीमासा अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि औदात्य के कारण ही पीडा, वेदना, मृत्यु जैसी वीभत्स एवं भयानक बाते भी कला मे सुखद एवं आनन्दप्रद प्रतीत होती है। उसी के कारण कुरूप, करुण एव भयानक आनन्द की अनुभूति में परिणत हो जाता है।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानो की औदात्य सम्बन्धी धारणाओ का निष्कर्ष संक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

- औदात्य का सम्बन्ध उदात्त या महान् वस्तुओ से है।
- औदात्य का सम्बन्ध वस्तु के वाह्य रूप से नही अपितु उसके आन्तरिक गुण से या विचार तत्त्व से है।

---

2. Sense of Beauty ; Gorge Santayana.
3. The theory of Beauty ; E. F. Carıtt.

- औदात्य अनुभूतिमूलक कम बोधमूलक अधिक है ; दूसरे शब्दों में वह हमारी बुद्धि को भी प्रभावित करता है।
- वह विराग एवं निवृत्ति का प्रेरक है।
- वह कुरूप, वीभत्स, करुण एवं भयानक को भी स्वीकार्य बना देता है।
- उसका सम्बन्ध आध्यात्मिकता से भी है।
- उसका आलम्बन वस्तु न होकर महान कार्य है।
- वह निर्वेद, वैराग्य, मुक्ति व शान्ति का पोपक है।
- औदात्य के ही कारण कला में वीभत्स करुण-भयानक आदि आनन्द मे परिणत हो जाते है।

महादेवी के काव्य में औदात्य—महादेवी के काव्य की मूल भावनाएँ मुख्यतः तीन हैं—(१) अलौकिक प्रणय या रहस्यानुभूति, (२) करुणा, (३) निर्वेद। इन तीनो भावनाओ का विवेचन पीछे अलग-अलग अध्यायो मे किया जा चुका है, अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति न करके इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ये तीनो ही भाव औदात्यमूलक है। महादेवी का प्रणय किसी लौकिक व्यक्ति के प्रति न होकर अलौकिक ब्रह्म के प्रति है जो कि एक स्थूल वस्तु न होकर सूक्ष्म विचार-रूप मे ही स्थित है। उनका निर्गुण ब्रह्म ऐन्द्रियानुभूति का विषय न होकर तत्त्व-बोध का ही विषय है, यह दूसरी बात है कि महादेवी ने उसे कलात्मक रूप प्रदान करते समय कही-कही उसका मानवीकरण कर लिया है पर फिर भी उनके प्रणय का आलम्बन स्थूल रूप-सौन्दर्य न होकर सूक्ष्म विचार एव विश्वास है। औदात्य का भी मूलाधार वस्तु-रूप न होकर तत्त्व-बोध ही होता है।

यद्यपि कवयित्री ने अपनी रहस्यानुभूति को लौकिक शब्दावली मे व्यक्त करने के लिए उसे लौकिक प्रेम का ही रूप दिया है पर फिर भी ऐन्द्रियकता, वासना एव चंचल भावनाओ का उद्वेलन उसमे कही भी दृष्टिगोचर नही होता ; उनकी अनुभूति को यदि हम लौकिक प्रेम के अनुरूप भी मानले तो उनका प्रेम अत्यन्त उदात्त प्रेम सिद्ध होगा क्योकि उसमे भोग की अभिलापा, स्वार्थ का विस्तार, सुख की कामना एव आनन्द की चाह नही है अपितु आत्मत्याग, वलिदान एव आत्मिक मिलन की ही भावना है। वह प्रारभ से अन्त तक सर्वत्र ही मन की उज्ज्वल, उदात्त एव पवित्र भावनाओ पर ही आधारित है। सर्वप्रथम उनके प्रथम दर्शन की घटना का ही विवरण देखिये :

> **झटक जाता था पागल वात**
> **धूलि में तुहिन-कणों के हार,**
> **सिखाने जीवन का संगीत**
> **तभी तुम आये थे इस पार !**

भूलती थी मै सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हे तब आता था करुणेश !
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

यहाँ प्रियतम का आगमन जिन परिस्थितियों मे दिखाया गया है, वे वासनापूर्ण एव कामोत्तेजक नही है अपितु सहानुभूतिजनक है। फिर आराध्य का व्यवहार भी कितना उच्च एव महान है—सामान्य शिक्षक अपने विद्यार्थी के बार-बार भूल करने पर क्रुद्ध होता है जबकि कवयित्री के आराध्य इतने उदार, शान्त एव करुण थे कि उनकी प्रत्येक भूल पर उनके मन मे और अधिक प्यार उमड़ आता था !

वस्तुत. प्रेयसी और प्रियतम का यह प्रारंभिक संपर्क एव व्यवहार सामान्य व्यवहार के स्तर से बहुत ऊँचा उठा हुआ है। कवयित्री का प्रियतम सामान्य व्यक्ति न होकर एक ऐसी महान् सत्ता है जिसके प्रत्येक क्रिया-कलाप मे महानता है, उदात्तता है ! इसीलिए प्रेयसी युग-युगो तक उसके निर्देशानुसार साधना करने के अनन्तर अपनी असमर्थता एव असफलता इन शब्दो मे स्वीकार कर लेती है :

गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान !

नहीं अब गाया जाता देव !
थकी अंगुली हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज,
मिला लो यह अस्फुट झंकार !

यहाँ युग-युगों तक की गयी साधना की असफलता को स्वीकार किया गया है पर फिर भी साधिका के मन में किसी प्रकार का क्षोभ, रोष या शोक नही है ; वह अपनी असमर्थता स्वीकार करती हैं पर इसके लिए कोई ग्लानि या पाश्चाताप नही है ; वह अपनी विफल कामना के लिए उत्तरदायी आराध्य पर न कोई आक्षेप या व्यंग्य करती है और न ही उसे कोई उपालभ देती है, अपितु अत्यन्त कोमल एवं विनम्र स्वर में अपना लेने का अनुरोध करती हैं। वस्तुतः यह सारा प्रसग एक अत्यन्त उदात्त एवं पवित्र भावना पर आश्रित है, इसीलिए इसकी गभीरता कही भी चचलता, चटुलता एवं तुच्छता से विह्वल नही हो पायी। इसमे न केवल आराध्य के प्रणय युक्त करुणा पूर्ण व्यवहार मे अपितु साधिका की दीर्घ साधना, सहिष्णुता, दैन्यता एव आत्म-

समर्पण की भावना मे ऐसी विशिष्टता, उच्चता एव उदात्तता दृष्टिगोचर होती हैं जो सामान्य प्रेमानुभूतियो मे अप्राप्य है। वस्तुत' उनका प्रणय उदात्त प्रेम है, जो वासना और कामुकता से सर्वथा शून्य एव वेदना, त्याग एव आत्मवलिदान के उच्च आदर्शों से अनुप्राणित व आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख है। इसी प्रकार के पवित्र प्रणय को भारतीय आचार्यो ने उज्ज्वल शृगार एव उज्ज्वल रस की सज्ञा दी है जो पाश्चात्य दृष्टि से औदात्य का पर्याय कहा जा सकता है।

प्रणय की ही भाँति महादेवी की करुणा और निर्वेद की भावना भी औदात्य की उच्च भूमि पर अवस्थित है। एक मुरझाये फूल को देखकर उनके हृदय मे करुणा का प्रवाह उमड पडता है

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है,
तेरे लिए दानी सुमन ?

पर इस करुणा की परिणति अश्रुपूर्ण भावुकता मे नही अपितु निर्वेदपूर्ण तत्त्व-बोध मे होती है .

मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने।

और साथ ही फूल के आत्मत्याग की प्रशसा भी की गयी है :

विश्व में हे फूल ! तू
सबके हृदय भाता रहा !
दान कर सर्वस्व फिर भी—
हाय हर्षाता रहा !

यहाँ पुष्प के माध्यम से परोपकार, आत्मत्याग एव बलिदान के उच्च आदर्श को चरितार्थ किया गया है। अवश्य ही ससार स्वार्थी है, वह भलाई का बदला बुराई मे चुकाता है पर फिर भी महान् व्यक्ति वे ही है जो ससार से कुछ पाने की आशा किये विना ही अपना सर्वस्व दूसरो को सुख पहुँचाने के लिए अर्पित कर देते है। अस्तु, कवयित्री का करुण भाव अन्ततः उच्च आदर्श, महान् प्रेरणा एव सूक्ष्म तत्त्वबोध मे परिणत होता हुआ औदात्य से परिपूर्ण हो जाता है।

जहाँ तक निर्वेद भाव की बात है, उसे तो औदात्य का पर्याय ही माना जा सकता है। ऐसा निर्वेद जो कि कायरतापूर्ण पलायन से भिन्न हो, उच्च आध्यात्मिक लक्ष्य से प्रेरित एव महान् आदर्शो की ओर उन्मुख हो—औदात्य का ही एक रूप है। जव हम अपनी विभिन्न इन्द्रियो के माध्यम से सासारिक भोगो का उपयोग करते है तो वह रागात्मकता की सूचक होती है जवकि तत्त्व-बोध की प्रेरणा से सासारिक भोगो से विमुख होकर हम किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने जीवन को समर्पित कर देते है तो यही स्थिति विराग (वैराग्य) एव निर्वेद की सूचक है जिसे दूसरे शव्दो मे औदात्य भी कह सकते है। जहाँ सामान्य व्यक्ति अधिक से अधिक सुख या इन्द्रिय-भोग की कामना करता है वहाँ निर्वेद भावना से युक्त व्यक्ति दु:ख की कामना करता है क्योकि इसी से मन मे पवित्रता व सात्विकता का सचार हो सकता है, इसीलिए महादेवी ने भी दु:ख और सुख मे से दु:ख की महत्ता स्वीकार की है। उन्ही के शव्दो मे .

उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सवके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठो में करुण काव्य वह लिख जाता !
वह उर में आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब न कृपण बन',
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग-द्वारो को खोल विश्व-भिक्षुक पर हँस बरसा आता !

दु:ख की इसी महत्ता के कारण कवयित्री प्रिय के सुखद उपहार—स्वर्ग—को भी ठुकरा देती है क्योकि वहाँ दु:ख जैसी वस्तु का सर्वथा अभाव है :

ऐसा तेरा लोक वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद !
क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

लोग जीने का अधिकार पाने के लिए जीवन-भर सघर्ष करते हुए इस धरती

को नरक-तुल्य वना देते है तो यहाँ कवयित्री केवल मिटने का अधिकार सुरक्षित रखने के लिए ही स्वर्ग को ठुकरा देती है ; क्योकि उसके विचार मे मिटने का महत्त्व अधिक है। वस्तुतः कवयित्री के अनुसार जीवन का लक्ष्य ही अपने को मिटा देना है, स्वय को मिटा कर ही वह अपने महान् आदर्शों की पूर्ति कर सकती है इसीलिए उसने प्रतिपादित किया है :

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक—प्रसार ;
गलाकर मृत्पिण्डों में प्राण,
वीज करता असंख्य निर्माण।

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान ;
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में है पूर्त्ति-विकास !

वस्तुतः कवयित्री का यह अमर सदेश है—'एक मिटने मे सौ वरदान !' यही सदेश उनके काव्य मे सर्वत्र मुखरित है, ध्वनित है एव व्याप्त है ! प्रसंग और भावनाएँ अलग-अलग हैं, पर मूलाधार सवका एक ही है। प्रणय के क्षेत्र में वे मिट जाना चाहती है क्योकि उनका विश्वास है कि जीवन-दीप जल-जलकर जितना क्षय होता है उतना ही प्रियतम समीप आता है, यहाँ तक कि अतिम मधुर मिलन तब ही संभव है जब कि यह दीप पूरी तरह जल कर वुझ जायेगा ; करुणा के क्षेत्र मे भी वे दूसरो के लिए किसी एक के मिटने की ही वात देखती है तथा उसे आदर्श मानती है तथा निर्वेद का क्षेत्र तो अपने, आप मे निर्वृति, बलिदान एवं आत्म-त्याग का क्षेत्र है ; अतः वह स्वय ही मिटने का पर्याय है।

इस प्रकार महादेवी के काव्य मे प्रसगो की विभिन्नता, भावो की विविधता एव कल्पना की रगीनी के होते हुए भी उसका मूल स्रोत सर्वत्र ही आत्म-त्याग का वह उच्च भाव है जिसे उदात्त भाव का सर्वोच्च रूप कहा जाता है। औदात्य के विवेचको ने उदात्त मे जिस आत्मिकता, आध्यात्मिकता, वौद्धिकता, सहिष्णुता, सयम, वलिदान, निर्वेद, शान्ति, मुक्ति आदि विभिन्न गुणो की कल्पना की है वे सव महादेवी-काव्य मे एकत्र एवं सुसमन्वित रूप मे उपलब्ध होते हैं, अत. कहा आ सकता है कि महादेवी का काव्य औदात्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वस्तुत. सौन्दर्य-शास्त्र की शब्दावली मे उनके सपूर्ण काव्य को उदात्त काव्य या औदात्य का काव्य कहना ही उचित होगा।

(ख) रूपवादी दृष्टिकोण : प्रतीकात्मकता

कला मे विषय-वस्तु की अपेक्षा उसके रूप (form) को ही उसके सौन्दर्य का आधार मानते हुए उसे सर्वाधिक महत्त्व देने वाले विचारक रूपवादी (Formalist) माने जाते है। रूपवादियो ने भी रूप सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तो—क्रमबद्धता, अनुपात, संतुलन, वक्रता, अलकरण, प्रतीकात्मकता आदि—की स्थापना की है जिनमे प्रतीक सिद्धान्त ही ऐसा सिद्धान्त है जो महादेवी के काव्य पर सर्वाधिक लागू होता है। प्रतीकात्मकता का मूल लक्ष्य अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत को व्यक्त करना होता है इससे कला मे गंभीरता, चामत्कारिकता, सूक्ष्मता एवं विचित्रता का आविर्भाव हो जाता है। आधुनिक कला-समीक्षक आर० जी० कालिंगवुड ने प्रतीकात्मकता की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि प्रतीकात्मकता मे भाव और विचार सयुक्त हो जाते है।[४] वस्तुत. प्रभावोत्दपान की दृष्टि से प्रतीकात्मकता भाषा का सर्वाधिक शक्ति-सपन्न रूप है।

महादेवी की प्रतीकात्मकता पर अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है—अतः यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उनके काव्य मे प्रतीकात्मकता सहज रूप मे प्रयुक्त है। प्रतीक मे सदा दो अर्थ रहते है; एक वाच्यार्थ और दूसरा व्यग्यार्थ; महादेवी की अनुभूति आध्यात्मिक है पर अभिव्यक्ति लौकिक है, अतः उसमे आध्यात्मिकता पर लौकिकता का आवरण है, अर्थात् लौकिक प्रतीको के माध्यम से अलौकिक अनुभूति को व्यक्त किया गया है, अत॰ प्रतीको की आयोजना सहज स्वाभाविक रूप मे हो गयी है। अस्तु, कला-रूप के अन्य साधनो—अलकरण, वक्रता, बिम्बात्मकता आदि के होते हुए भी उनके काव्य मे प्रतीकात्मकता की प्रधानता मानी जा सकती है।

(ग) समन्वयवादी दृष्टिकोण : समन्विति

समन्वयवादी विचारक कला मे न तो विषय को ही प्रमुखता देते हैं और न ही रूप को अपितु दोनो के सामजस्य पर वल देते हुए समन्विति (Harmony) को ही कला की आत्मा मानते हैं। जैसा कि कुहन महोदय ने लिखा है—'Harmony has been the accepted synonym for beauty or for the artist goal throgh all ages of philosophy of art' अर्थात् समन्विति को कला-दर्शन के सभी युगो मे सौन्दर्य के पर्याय तथा कलाकार के लक्ष्य के रूप मे स्वीकार किया जाता रहा है। वस्तुत. औचित्य, क्रम, सामंजस्य, समानुपात, सतुलन आदि इसी के विभिन्न अंग है।

महादेवी का विषय जहाँ उदात्त है, वहाँ उनकी शैली प्रतीकात्मक है; उनके

4. The Principles of Art : R. G. colling wood.

काव्य में आत्मानुभूति की प्रधानता है पर उनकी आत्मानुभूति वस्तु के स्थान पर विचार-तत्त्व पर आधारित है तथा जहाँ भाव और विचार मिश्रित हो वहाँ प्रतीकात्मकता ही सर्वाधिक अनुकुल सिद्ध होती है। इसी प्रकार काव्य-रूप के रूप में उन्होंने गीति को अपना कर भी समन्विति के नियम का पालन किया है। उनके अनुभूति प्रधान विषय के लिए प्रबन्ध और मुक्त की अपेक्षा गीति का माध्यम ही सर्वाधिक अनुकूल था। उनकी शब्द-योजना एव भाषा-शैली में भी सर्वत्र भावानुकूलता विद्यमान है—यह गीति-काव्य के प्रसग में स्पष्ट किया जा चुका है। अस्तु, संक्षेप में कहा जा सकता है कि समन्विति की दृष्टि से भी उनका काव्य सफल काव्य है।

सौन्दर्य-शास्त्र के वस्तुवादी, रूपवादी एवं समन्वयवादी—तीनो दृष्टियो से विचार करने के अनन्तर कहा जा सकता है कि उनका काव्य औदात्य का आदर्श प्रस्तुत करता है, प्रतीकात्मकता का सुन्दर उदाहरण है तथा वस्तु और रूप के पारस्परिक सामजस्य को चरितार्थ करता है ; अस्तु, सौन्दर्य-शास्त्र के तीन सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक मान्य मानदंडो की कसौटी पर महादेवी का काव्य उच्चकोटि का काव्य सिद्ध होता है—इसमें कोई संदेह नही।

* * *

२

काव्य-शास्त्रीय मूल्यांकन

भारतीय काव्य-शास्त्र के क्षेत्र मे मुख्यतः छह सिद्धान्त प्रचलित है—(१) रस (२) अलंकार, (३) रीति, (४) वक्रोक्ति, (५) ध्वनि एव (६) औचित्य। इनमे से आंशिक रूप मे तो सभी सिद्धान्त महादेवी के काव्य पर लागू होते है किन्तु रस और ध्वनि का उससे विशिष्ट एव घनिष्ठ सम्बन्ध है; अत. इन दोनो के आधार पर ही महादेवी के काव्य का मूल्याकन प्रस्तुत किया जाता है।

१. रस सिद्धान्त : शान्त रस

रस सिद्धान्त के आचार्यों ने विभिन्न स्थायी भावो के आधार पर विभिन्न रस भेदो की कल्पना की है जिनकी संख्या आठ से लेकर बारह तक है। इनमे से प्रमुख रस-भेद है—शृगार, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स, हास्य, भयानक, अद्‌भुत, वात्सल्य शान्त आदि। प्रश्न है—महादेवी के काव्य मे किस रस की प्रधानता स्वीकार की जाय? अन्यत्र महादेवी की वस्तुगत प्रवृत्तियो का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया जा चुका है कि उनके काव्य मे रहस्यानुभूति (अलौकिक प्रणय), करुणा, दुःखवाद, निर्वेद आदि भावात्मक प्रवृत्तियो की प्रमुखता है। यद्यपि उनके काव्य मे प्रणय-विरह की अभिव्यक्ति है पर फिर भी उसे शृगार रस की सज्ञा नही दी जा सकती क्योकि उसका स्थायी भाव रति न होकर अद्वैत भावना है तथा लौकिक वासना के स्थान पर उसमे उदात्त भावना है। वस्तुत. भावगत औदात्य एवं आलम्बन के आध्यात्मिक रूप की दृष्टि से रहस्यानुभूति शृंगार की अपेक्षा शान्त रस के अधिक निकट पड़ती है। इसी प्रकार उनकी करुणा भी करुण की पोषक कम है वह अन्त मे शान्त रस मे ही परिणत हो जाती है, तथा शेष भाव भी शान्त रस के ही अंग सिद्ध होते है। इस दृष्टि से उनका काव्य शान्त रस-प्रधान ही है पर इस सम्बन्ध मे और अधिक विचार करने से पूर्व हमे शान्त रस का स्वरूप स्पष्ट कर लेना चाहिए।

● शान्त रस : स्वरूप-विवेचन—किसी भी रस के स्वरूप का निर्णय उसके स्थायी भाव के आधार पर होता है किन्तु शान्त रस के स्थायी भाव का निर्णय ही विवादास्पद है। आचार्य भरत मुनि से लेकर मम्मटाचार्य तक विभिन्न विद्वानो ने शान्त रस के विभिन्न स्थायी भावो का निर्देश किया है; यथा—भरत मुनि ने 'शम' को, रुद्रट ने 'सम्यग् ज्ञान' को, आनन्द वर्धन ने 'तृष्णा क्षय-सुख' को, लोचन के अनुसार अन्य कतिपय आचार्यों ने 'सर्व चित्तवृत्ति-प्रशम' या 'निर्विशेष चित्तवृत्ति' को, राजा भोज ने 'धृति' और 'शम' को, आचार्य अभिनव गुप्त ने 'तत्त्व ज्ञान से उद्भूत निर्वेद' को, तथा आचार्य मम्मट ने 'निर्वेद' को शान्त रस कास्थायी भाव स्वीकार किया है। इतना ही नही कुछ अन्य विद्वानो ने सभी स्थायी भावो से शान्त रस की उद्भावना स्वीकार करते हुए इसे सभी का समन्वित रूप माना है।

शान्त रस के स्थायी भाव के अतिरिक्त उसके स्वरूप के सम्बन्ध मे कुछ विचित्र बातें और भी है, जैसे एक ओर तो उसे रस माना गया है तो दूसरी ओर यह भी माना गया है कि शान्त रस मे किसी चित्तवृत्ति या भावना का उन्मेप नही रहता! आचार्य भरत ने शान्त रस को निष्क्रियता से युक्त मानते हुए उसे नाटक के भी अनुपयुक्त माना है। (वैसे भरत का शान्त रस सम्बन्धी विवेचन प्रक्षिप्त समझा जाता है।)

हमारे विचार मे इन सब विचित्रताओ का मूल कारण यह है कि शान्त रस का सम्बन्ध मूलतः बौद्धिक अनुभूति से है पर हम उसे किसी न किसी भावना से सम्बद्ध करना चाहते है। हमारे हृदय मे जहाँ अनेक भावनाएँ शुद्ध रागात्मक एव भावात्मक होती है, वहाँ कुछ बौद्धिक भी होती है। वैसे तो प्रत्येक भावात्मकता मे बौद्धिकता का कुछ न कुछ अश सदा रहता है तथा प्रत्येक बौद्धिकता मे भी भावात्मकता न्यूनाधिक मात्रा में सदा रहती है पर फिर भी एक मे भाव की प्रमुखता रहती है जबकि दूसरे मे विचार की रहती है। रागात्मकता की भाँति बौद्धिक अनुभूति एव बौद्धिक आनन्द की भी एक स्थिति होती है जो कि हमे तल्लीन करती हुई विशेष प्रकार का रस प्रदान करती है। गणित के प्रश्नो को सुलझाते समय या किसी विचारोत्तेजक व्याख्यान के सुनते समय हमे जिज्ञासा, कौतूहल, शंका, तर्क-वितर्क से युक्त एक विशेष प्रकार की अनुभूति प्राप्त होती है जिसे बौद्धिक अनुभूति कह सकते है। इस प्रकार काव्य मे भी जहाँ उसके केन्द्र मे भावविशेष न रहकर विचार-विशेष रहता है अर्थात् उसमे भाव का अनुचर विचार न होकर, विचार का अनुचर भाव होता है वहाँ भी बौद्धिक अनुभूति होती है; यथा कबीर के निम्नाकित छंदो मे :

> माखी गुड़ में गडि रही पंख रही लपटाय।
> सिर धुनै [illegible] ॥
> । [illegible] ।
> लिए [illegible] ।

यहाँ दोनो छन्दों में क्रमश. लोभ तथा मृत्यु सम्बन्धी विचारो का प्रतिपादन कल्पना एव अनुभूति के सहयोग से किया गया है—ये छन्द शुद्ध भावानुभूति पर आधारित न होकर तत्त्ववोध या तत्त्व-चिन्तन जन्य प्राप्त बौद्धिक अनुभूति पर आधारित है—अतः इन्हे शान्त रस के अन्तर्गत स्थान दिया गया है। अस्तु, हमारे विचार मे शान्त रस की केन्द्रीय अनुभूति भावात्मक न होकर बौद्धिक होती है या यो कहिए कि वह भाव-विशेष की अनुभूति पर आधारित न होकर विचार-विशेप की अनुभूति पर आधारित होता है ; भाव उसमे होते है पर वे पूरक या सहयोगी रूप मे ही है, अत. इस प्रकार की अनुभूति को पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्र की शब्दावली मे बौद्धिक आनन्द कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों मे शान्त रस बौद्धिक रस है, जिसका स्थायी भाव या केन्द्रीय तत्त्व बौद्धिक अनुभूति होती है—इसीलिए उसका न तो किसी विशिष्ट भाव से प्रत्यक्ष सम्वन्ध है तो न ही किसी भाव से विरोध है ; उसमे सभी भाव अन्तर्निहित हो सकते है ; यदि वे मूल विचार का शासन या नियंत्रण स्वीकार करे।

शान्त रस के विभिन्न स्थायी भाव भी इसी तथ्य की पुष्टि करते है कि उसकी मूलाधार बौद्धिक अनुभूति है। शम का अर्थ है—शान्ति ; शान्त रस मे तत्त्ववोध की प्रमुखता के कारण अन्य भाव शमित हो जाते है, इसीलिए उसमे बौद्धिक शान्ति की प्रमुखता रहती है। 'सम्यग् ज्ञान,' 'तृष्णा क्षयसुख', 'सर्वाचित्तवृत्ति प्रशम' 'निर्विशेप चित्तवृत्ति' आदि तत्त्व भी वस्तुतः मन की भावात्मक स्थिति की अपेक्षा बौद्धिक अनुभूति को ही अधिक सूचित करते हैं क्योकि तत्त्वानुभूति के समय ही सम्यग् ज्ञान उपलब्ध हो सकेगा, तृष्णाएँ क्षीण हो जाएँगी तथा अन्य चित्तवृत्तियो का निरोध हो जायगा। अस्तु, ये सव विकल्प तत्त्ववोध या विचारानुभूति के ही सूचक है।

शान्त रस के स्थायी भाव के रूप मे सर्वाधिक मान्यता 'निर्वेद' को प्राप्त है, पर ध्यान रहे यह निर्वेद भी सामान्य निर्वेद नही है अपितु तत्त्व ज्ञान से उद्‌भूत निर्वेद है। आचार्य अभिनव गुप्त ने स्पष्ट किया है कि वैसे तो दारिद्रय, व्याधि, अवमान, इष्ट-वियोग से भी क्षणिक निर्वेद उत्पन्न हो सकता है किन्तु शान्त रस से इनका कोई सम्वन्ध नही है—वस्तुत. 'तत्त्व-ज्ञान' से उद्‌भूत निर्वेद ही शान्त रस का स्थायी भाव है। दूसरे शब्दो मे तत्त्व-वोध से प्राप्त अनुभूति के कारण अव हम भावनाओ से ऊपर उठकर एक अपूर्व मानसिक शान्ति की स्थिति प्राप्त कर लेते है, जिसमे वासनाएँ, इच्छाएँ एव राग-द्वेष जन्य भावनाएँ प्रशमित हो जाती है तो वही अनुभूति शान्त रस की अनुभूति है। यदि इस अनुभूति को संक्षेप मे 'शान्ति' का भी नाम दे दिया जाय तो अनुचित न होगा।

नाटक जन-सामान्य के लिए लिखा जाता है तथा उसमे भावाभिव्यक्ति एवं क्रिया-कलापो की प्रमुखता रहती है, अतः बौद्धिकता या तत्त्वानुभूति की प्रमुखता उसके

प्रतिकूल सिद्ध होती हैं। कदाचित् इसीलिए शान्त रस को नाटक के उपयुक्त नही माना गया है।

शान्त रस को भक्ति-भाव, आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद से भी सम्बन्धित माना जाता है, इसका कारण भी यही है, भक्ति, आध्यात्मिकता एवं रहस्यानुभूति के मूल मे ईश्वर सम्बन्धी सुदृढ़ धारणा रहती है तथा उसका आलम्बन सासारिक व्यक्ति न होकर अलौकिक जगत् का सूक्ष्म ईश्वर होता है। पर जहाँ अवतारवाद के कारण ईश्वर का भी मानवीकरण कर दिया जाता है वहाँ भक्ति-भावना भी शान्त रस की अग न रहकर वीर, वात्सल्य, प्रणय आदि की पोषक हो जाती है, जैसा कि सूरदास मे है।

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप मे वहा जा सकता है—

- शान्त रस वस्तुत. बौद्धिक रस है जिसके केन्द्र मे भावानुभूति न होकर तत्त्व-बोध या विचारानुभूति की प्रमुखता रहती है।
- उसमे भावनाओ के उद्वेलन के स्थान पर उनका शमन या निरोध चित्रित किया जाता है।
- अन्य सभी भाव उसके पूरक एवं सहयोगी के रूप में आ सकते हैं किन्तु अन्ततः वे किसी विचार-विशेष या तत्त्व-विशेष के ही अधीन रहते हुए अपनी सत्ता उसी में लीन कर देते है।

वस्तुत. शान्त रस को तत्त्व-बोध पर आधारित बौद्धिक रस के रूप मे स्वीकार कर लेने पर न केवल शान्त रस सम्बन्धी सभी परम्परागत गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं अपितु आधुनिक युग के नूतन साहित्य (जो कि भावात्मकता की अपेक्षा बौद्धिक अनुभूति से अधिक अनुप्राणित है।) के मानदण्ड की समस्या भी हल हो जाती है। वस्तुतः जब-जब साहित्यकारो एवं आचार्यों ने काव्य मे विचार-तत्त्व, दर्शन या सदेश को प्रमुखता दी है तब-तब साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र मे शान्त रस की महत्ता मे भी अभिवृद्धि होती रही है। आचार्य अभिनव गुप्त ने जिन्होने रस की व्याख्या 'काव्यार्थ का भावन' के रूप में करते हुए भाव के स्थान पर अर्थ या विचार को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था, शान्त रस को ही एक मात्र रस घोषित किया। वस्तुतः अभिनव गुप्त भी उच्चकोटि के दार्शनिक एवं विचारक थे तथा काव्य में भी वे दर्शन की अभिव्यक्ति को महत्त्व देते थे, कदाचित् इसीलिए उन्होंने शान्त रस को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया।

● **महादेवी के काव्य में शान्त रस**—शान्त रस के सम्बन्ध में महादेवीजी की निजी धारणा क्या है—इस सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप मे उनके विचार उपलब्ध नही हैं, पर 'काव्य-कला' की विवेचना करते हुए उन्होने प्रतिपादित किया है—'काव्य में, कला का उत्कर्ष एक ऐसे विन्दु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका क्योकि सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है।' यह धारणा शान्त रस के सर्वथा अनुकूल है क्योकि जहाँ अन्य रसों मे—विशेषतः शृंगार मे—भाव-सौन्दर्य

ही प्रमुख रहता है, सत्य जोकि तत्त्वबोध का ही दूसरा नाम है, गौण रहता है जब कि शान्त रस मे स्थिति इसके विपरीत रहती है। शान्तरसात्मक काव्य मे विचार साध्य एवं भाव व अनुभूति साधन मात्र रहते हैं, वहाँ सौन्दर्य के स्थान पर अन्ततः सत्य की अभिव्यक्ति का ही लक्ष्य रहता है—अतः महादेवी की काव्य सम्बन्धी धारणा अप्रत्यक्ष रूप मे शान्त रस का ही अनुमोदन करती है। वस्तुतः महादेवी का उपर्युक्त आदर्श मुख्यतः शान्तरसात्मक काव्य पर ही लागू होता है, अन्य रसो पर नही।

विषयवस्तु की दृष्टि से महादेवी के काव्य को मुख्यतः चार वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) अलौकिक प्रणय या रहस्यानुभूति से सम्बन्धित। (२) करुणा से सम्बन्धित। (३) निर्वेद भाव से सम्बन्धित। (४) प्रकृति सम्बन्धी। इन चारो मे ही शान्त रस की ही व्यंजना हुई है—इसे क्रमशः स्पष्ट किया जाता है।

उनका प्रणय या रहस्यानुभव अलौकिक प्रियतम से सम्बन्धित है; उस प्रियतम का प्रत्यक्ष दर्शन उन्होने नही किया अपितु दार्शनिक चिन्तन या तत्त्वबोध के द्वारा ही उसकी अनुभूति प्राप्त की है। उसका स्वरूप भी अद्वैतवाद के अनुसार है—इसीलिए उनकी रहस्यानुभूति का मूलाधार सर्वत्र ही अद्वैतवादी विचार रहता है; प्रणय भावना उस विचार की ही अनुभूति का विकसित रूप है। यथा :

(क) **मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं**
जैसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित्-विलास,

(ख) **बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ**
× × ×
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,

(ग) **क्या पूजा क्या अर्चन रे ?**
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !

(घ) **काया छाया में रहस्यमय**
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या !

यद्यपि कवयित्री ने अपनी अनुभूतियो को प्रेयसी-प्रियतम के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है पर उनकी अभिव्यक्ति का मूल विषय तो अद्वैतवादी विचार ही है, जिसे उन्होने अनुभूत कर लिया है। इसीलिए उपर्युक्त काव्यांशो मे भावानुभूति का सौन्दर्य साधन-रूप मे होते हुए भी उसका साध्य तो आत्मा और परमात्मा की अद्वैतता का विचार ही है, जिसे ग्रहण किये बिना पाठक भी इनके अर्थ को भलीभाँति समझने

में असमर्थ रहता है। अस्तु, महादेवी के रहस्यवाद में प्रेयसी-प्रियतम का प्रणय सर्वत्र ही शैली-विशेष का या अभिव्यक्ति का माध्यम है, उसका मूल भाव्र नही—अपितु उसका केन्द्रीय प्रेरक तत्त्व रति भाव न होकर अद्वैत विचार है। इसीलिए उनकी रहस्य-वादी अनुभूतियो को शान्त रस मे स्थान दिया जा सकता है।

महादेवी के करुणा सम्बन्धी काव्य की भी परिणति शान्त मे ही होती है; यथा पुष्प सम्बन्धी कविता के कुछ अश द्रष्टव्य है .

था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन !
× × ×
जिस पवन ने अङ्क में
ले प्यार था तुझको किया,
तीव्र झोके से सुला—
उसने तुझे भू पर दिया।
× × ×
मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया—
है यहाँ करतार ने !
× × ×
जब न तेरी ही दशा पर
दुःख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन !
हमसे मनुज निःसार को ?

इस कविता का आरंभ मुरझाये हुए पुष्प के जीवन की करुण दशा से किया गया है पर क्रमश उसकी उदारता एव संसार की निष्ठुरता का प्रतिपादन करते हुए अन्त मे 'ससार की स्वार्थपरता' के विचार को प्रतिष्ठित किया गया है। अस्तु, करुण भाव प्रारंभ मे सचारी भाव के रूप मे ही आता है जिसकी परिणति शान्त रस के स्थायी तत्त्व में होती है। इसी प्रकार पुष्प सम्बन्धी एक अन्य कविता भी द्रष्टव्य है :

मधुरिमा के मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
× × ×
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण ?

तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?
हंसो पहनो, काँटों के हार
मधुर भोलेपन के संसार !

इस गीत के भी प्रारंभ मे पुष्प की सुन्दरता, कोमलता एव सरलता का चित्रण सहानुभूतिपूर्ण शब्दों मे किया गया है पर उसकी अतिम परिणति इस सदेश के रूप मे हुई है कि यह ससार पुष्प के उपयुक्त नही हैं फिर भी उसे काँटो का हार पहन कर हँसते रहना चाहिए। वस्तुतः प्रारभिक करुणा इस अँतिम तत्त्व-बोध की पृष्ठभूमि का ही निर्माण करती है, उसे प्रतिपादित करना यहाँ मूल लक्ष्य नही है।

अस्तु, उनकी करुणा भी अन्तत बौद्धिक शान्ति या शान्त रस की ही अग सिद्ध होती है।

जहाँ तक उनकी निर्वेद भावना तथा दु ख को अपनाने की प्रवृत्ति की बात है, वह तो स्पष्ट ही शान्त रस से सम्वन्धित है, अत. उसकी व्याख्या यहाँ अनपेक्षित है। रही वात प्रकृति सम्वन्धी काव्य की, वहाँ भी कवयित्री ने उसके बाह्य रूप-वैभव की अपेक्षा आन्तरिक तत्त्व को ही अधिक महत्त्व दिया है। जैसा कि पीछे प्रकृति सम्बन्धी अध्याय मे स्पष्ट किया जा चुका हैं, महादेवी प्रकृति का चित्रण प्रायः किसी विचार या भाव की पृष्ठभूमि के रूप मे ही अधिक करती है। अत. जहाँ विचार की प्रमुखता है वहाँ शान्त रस की भी सत्ता स्वीकार की जा सकती है , यथा .

कह दे माँ क्या अव देखूँ !
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ !

अथवा—

चुभते ही तेरा अरुण वान !
बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान !

उपर्युक्त उद्धरणों मे-प्रकृति के विभिन्न अग व दृश्य विचार के ही साधन एव माध्यम वन कर उपस्थित हुए हैं, अत इनमें शान्त रस की सत्ता स्वीकार की जा सकती है।

इस प्रकार-हम देखते हैं कि महादेवी के काव्य मे विभिन्न प्रसगो, भावो व विचारो की परिणति शान्त रस मे होती है। रहस्यानुभूति, प्रणयानुभूति, करुणा, वेदना

की स्वीकृति, निर्वेद भावना, प्रकृति-सौन्दर्य—इन सभी के मूल मे तत्त्वबोधजन्य अनुभूति ही सक्रिय है, वही उनके काव्य की मूल धारा है, अत' रस सिद्धान्त की शब्दावली में उनका सम्पूर्ण काव्य शान्तरसात्मक है। वस्तुत. उन्होने शान्त रस को अपनी प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति के बल पर एक व्यापक क्षेत्र एवं नूतन वैभव प्रदान किया है, अत. कहना चाहिए कि शान्त रस की सुकोमल एव मधुरतम अभिव्यक्ति का एक नया प्रतिमान उनके द्वारा स्थापित हुआ है।

२. ध्वनि-सिद्धान्त

● **ध्वनि का सामान्य विवेचन**—रस-सिद्धान्त जहाँ काव्य-वस्तु की मूल भावना के आधार पर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करता है, वहाँ ध्वनि उसके शैली पक्ष की विवेचना व्यंजना-शक्ति के आधार पर करती है। ध्वनि की मूलाधार व्यजना-शक्ति है। प्राचीन आचार्यों ने व्यजना की परिभापा करते हुए उसके निपेधात्मक गुणो पर ही प्रकाश डाला है, विधेयात्मक पक्ष का स्पष्टीकरण उनके द्वारा नही हुआ ; यथा—आचार्य विश्वनाथ इसके सम्बन्ध मे लिखते हैं—'अपना-अपना अर्थ-बोधन करके अभिधा आदि वृत्तियो के शान्त हो जाने पर जिससे अन्य अर्थ का बोधन होता है'.... वह वृत्ति व्यंजना कहलाती है।' इसी प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है—'व्यजना-शक्ति ऐसे अर्थ को बतलाती है जो अभिधा, लक्षणा या तात्पर्य वृत्ति द्वारा उपलब्ध नही होता।' जैसा कि हमने 'साहित्य-विज्ञान' मे स्पष्ट किया है ये परिभाषाएँ केवल यह बताती है कि अभिधा और लक्षणा से भिन्न व्यजना है, पर स्वयं व्यंजना की विशेपता पर प्रकाश नही डालती। व्यंजना की विभिन्न विशेपताओ पर विचार करने के अनन्तर हमने इसकी परिभापा इस प्रकार निर्धारित की है—'व्यंजना भापा की वह शक्ति है जिसके कारण किसी प्रकरण या प्रसग-विशेप मे एक साथ अनेक स्वतंत्र अर्थो की अभिव्यक्ति या प्रतीति होती है'[५] वस्तुतः व्यंजना मे प्रसग-विशेप के कारण शब्दो व वाक्यो के सामान्य अर्थ के स्थान पर उनसे भिन्न अर्थ (प्रतीकार्थ) की प्रतीति होती है। जहाँ यह भिन्न अर्थ सामान्य अर्थ से भी सुन्दर होता है वहाँ ध्वनि का अस्तित्व माना गया है। ध्वनि में सामान्य अर्थ (वाच्यार्थ) का अधिक महत्त्व है या व्यग्यार्थ (प्रतीकार्थ या नूतन अर्थ) का—यह प्रश्न भी बडा विवादास्पद रहा है, किन्तु विभिन्न दृष्टियो से विचार करने के अनन्तर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ध्वनि मे महत्त्व न अकेले वाच्यार्थ का है और न ही व्यग्यार्थ का (वस्तुत. वाच्यार्थ के अभाव मे व्यंग्यार्थ व्यग्यार्थ न रह कर वाच्यार्थ ही बन जायगा) अपितु दोनो की सह-स्थिति का है। दो सर्वथा भिन्न अर्थों को एकार्थक शब्दावली मे ग्रथित कर देना ही ध्वनि मे चमत्कार या सौन्दर्य

---

५. साहित्य-विज्ञान ; पृ० २६०।

का कारण है। अतः ध्वनि में सौन्दर्य का आधार प्रस्तुत विपय नही अपितु उसके प्रस्तुतीकरण का ढंग (शैली) है क्योकि प्रस्तुत विपय को यदि अप्रस्तुत के स्थान पर प्रत्यक्ष रूप में—वाच्यार्थ में—व्यक्त कर दिया जाय तो उसका ध्वनिजन्य सौन्दर्य लुप्त हो जायगा।

अनेक आचार्यो ने रस और ध्वनि—दोनो ही सिद्धान्तो को स्वीकार करते हुए ध्वनि के माध्यम से रस की अभिव्यक्ति का समर्थन किया है। इस प्रकार रस और ध्वनि मे समन्वय हो गया है—पर हमारे विचार मे यह आवश्यक नही है कि रस का प्रत्येक अवयव द्वयार्थक भाषा (ध्वनि) मे ही व्यक्त हो और न ही ध्वनि के लिए यह आवश्यक है कि वह सर्वदा भाव-विशेष की ही व्यजक हो, भाव के स्थान पर वह वस्तु व विचार की भी व्यजना कर सकती है। इसका स्पष्टीकरण 'साहित्य-विज्ञान' मे विस्तार से किया जा चुका है, अत. यहाँ हम ध्वनि को एक स्वतंत्र सिद्धान्त मानकर ही तदनुसार महादेवी के काव्य का मूल्याकन प्रस्तुत करेंगे।

● **महादेवी के काव्य में ध्वनि**—महादेवी ने प्रायः अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की या लौकिक प्रतीको के माध्यम से अलौकिक प्रणय की अभिव्यक्ति की है, अतः उनके काव्य मे ध्वनि का सौन्दर्य प्राय. दृष्टिगोचर होता है; यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(क)

मधुर मधुर मेरे दीपक जल!
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर,
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन,
× × ×
तू जल जल जितना होता क्षय
वह समीप आता छलनामय—
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल-खिल!
मदिर मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

(ख)

टूट गया वह दर्पण निर्मम!
× × ×
आज कहाँ मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुण्ठन,

मेरा बन्धन तेरा साधन,
× × ×
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

(ग) विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

उपर्युक्त तीनो उद्धरणों मे क्रमश: दीपक, दर्पण एव बादल के माध्यम से इन से भिन्न अर्थो की अभिव्यक्ति की गयी है ; यथा—दीपक के माध्यम से अपने जीवन की, दर्पण के माध्यम से माया की तथा बादल के माध्यम से अपने व्यक्तित्व की व्यजना की गयी है। इन तीनो ही कविताओ मे वाच्यार्थ के साथ-साथ व्यग्यार्थ का, अप्रस्तुत के साथ-साथ प्रस्तुत का निरूपण स्वतन्त्र रूप मे हुआ है तथा व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की असभवता एवं श्लिष्टता पर निर्भर नही है अपितु प्रसग की प्रेरणा से ही स्वतन्त्र रूप मे प्रकट हुआ है, अतः इनमे व्यंजना-वृत्ति एव ध्वनि का ही सौन्दर्य मुखरित है।

जैसा कि हम अन्यत्र बता चुके है—पाश्चात्य काव्य-शास्त्र मे जो कार्य प्रतीक-योजना का है वही भारतीय काव्य-शास्त्र की शब्दावली मे ध्वनि का है—अतः शैली सम्बन्धी अध्याय मे प्रतीक-योजना के प्रसंगो मे जो-कुछ कहा जा चुका है, वही ध्वनि-सौन्दर्य पर लागू होता है।

वस्तुतः महादेवी के काव्य मे अप्रस्तुत योजना का आयोजन अत्यन्त सहज-स्वाभाविक एव सुचारु रूप मे हुआ है—अत. प्रतीक व ध्वनि जो कि अप्रस्तुत-योजना के ही अग हैं, महादेवी के काव्य मे अपने पूर्ण वैभव एव सौन्दर्य के साथ विद्यमान हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी का काव्य भारतीय काव्य-शास्त्र के दो सर्व प्रमुख सिद्धान्तों—रस और ध्वनि—की कसौटी पर उच्चकोटि का सिद्ध होता है ; उसमे शान्त रस की व्यजना एव ध्वनि की आयोजना अत्यन्त सुन्दर रूप मे हुई है। जैसा कि शैली सम्वन्धी अध्याय मे स्पष्ट किया जा चुका है—भारतीय और पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के अन्य तत्त्वो—यथा—अलकरण, वक्रोक्ति, बिम्ब-विधान आदि का भी उन्मेष उनके काव्य मे दृष्टिगोचर होता है, फिर भी मुख्यत. शान्त रस और ध्वनि-सौन्दर्य मे ही उनके काव्य का चरम सौन्दर्य एव परिपूर्ण वैभव परिलक्षित होता है—अतः सक्षेप में शान्त रस की व्यजना (ध्वनि) को ही उनकी काव्य-साधना की सर्वोपरि उपलब्धि के रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिए।

यद्यपि यहाँ विस्तृत विवेचन के लिए अवकाश नही है फिर भी हम संकेत रूप मे ही यह निवेदन कर देना चाहते है कि गुण-धर्म की दृष्टि से भारतीय शान्त रस

पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्र एव काव्य-शास्त्र के औदात्य तत्त्व का ही पर्याय है क्योकि दोनो ही उदात्त विचारों, सूक्ष्म धारणाओ, निवृत्ति मूलक प्रवृत्तियों, निर्वेद मूलक अनुभूतियो, राग-द्वेष से मुक्त करने वाली स्थितियो, आत्मवलिदान एव आत्म-त्याग के आदर्शो एव आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख प्रेरणाओं को महत्त्व देते है तथा इसी प्रकार भारतीय ध्वनि और पाश्चात्य प्रतीक भी काव्य मे अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की अभिव्यजना पर वल देते हैं—अत. महादेवी के काव्य के शान्त रस और ध्वनि-सौन्दर्य को पाश्चात्य शव्दावली मे औदात्य की व्यजना एवं प्रतीक-योजना का सौन्दर्य भी कहा जा सकता है। वस्तुतः पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्र व भारतीय काव्य-शास्त्र—दोनो की ही दृष्टि से किये गये विवेचन का निष्कर्ष एक ही है ; शव्दावली भले ही उनकी भिन्न-भिन्न हो।

* * *

३

वैज्ञानिक मूल्यांकन

साहित्य-समीक्षा की सामान्यत: दो पद्धतियाँ स्वीकार की जा सकती है, एक साहित्यिक एव दूसरी वैज्ञानिक। साहित्यिक समीक्षा का मूल लक्ष्य कृति से प्राप्त अनुभूति को भावात्मक ललित शैली मे प्रस्तुत करना होता है, अत: उसमे वैयक्तिकता, भावात्मकता एव लालित्य रहता है जवकि वैज्ञानिक समीक्षा मे समीक्षक का लक्ष्य कृति के सम्बन्ध मे प्रामाणिक निष्कर्प प्रस्तुत करना होता है, अत. वह वस्तुपरक दृष्टि से अपेक्षित प्रमाणों एव युक्तियो के आधार पर अपना निर्णय अत्यन्त संतुलित भापा में प्रस्तुत करता है। वस्तुतः जहाँ साहित्यिक समीक्षा मे समीक्षक अपनी अनुभूति को संवेद्य रूप प्रदान करता है वहाँ वैज्ञानिक समीक्षा मे वह उसे प्रामाणिक निष्कर्षों का रूप देता है। शैली की सरसता की दृष्टि से जहाँ प्रथम प्रकार की समीक्षा महत्त्वपूर्ण है वहाँ निष्कर्षो की प्रामाणिकता की दृष्टि से वैज्ञानिक समीक्षा का अधिक महत्त्व है। कुछ लोग भ्रान्ति से वैज्ञानिक समीक्षा का अर्थ यह लेते है कि इसमें साहित्य-रचना को ही वैज्ञानिक रूप दे दिया जाता है—यह ठीक नही ; वस्तुत. वैज्ञानिक समीक्षा या साहित्य-विज्ञान मे विवेच्य कृति की साहित्यिकता को सुरक्षित रखते हुए उसके अध्ययन, विवेचन, विश्लेषण एव मूल्याकन को ही वैज्ञानिक रूप दिया जाता है। अस्तु, साहित्यिक समीक्षा और वैज्ञानिक समीक्षा मे अन्तर विषय-वस्तु का नही अपितु अध्ययन-पद्धति का है।

यदि हम किसी भी कृति का विवेचन तर्क-सगत एव प्रामाणिक रूप मे करना चाहते है तो निश्चित ही अपने विवेचन को वैज्ञानिक (अर्थात् वस्तुपरक, युक्तिपूर्ण एवं सतुलित) रूप देना होगा, और साथ ही उसके मानदंड भी प्रामाणिक या वैज्ञानिक होंगे। प्राचीन युग में काव्य-शास्त्रियो ने प्रायः दार्शनिक मान्यताओ का उपयोग साहित्यिक मानदडो के निर्माण मे किया है; जबकि आधुनिक युग मे हम मनोविज्ञान,

सौन्दर्य-शास्त्र एवं साहित्य-शास्त्र के परंपरागत एवं नूतन सिद्धान्तों को वैज्ञानिक पद्धति से संशोधित व समन्वित करते हुए अपेक्षाकृत अधिक व्यापक एवं प्रामाणिक मानदंडों की स्थापना कर सकते हैं। इसी प्रकार के मानदंडो की स्थापना का प्रयास पाश्चात्य समीक्षा के क्षेत्र में आर० जी० मौल्तन, जे० एम० राबर्ट्सन, मार्टिन जौन्सन, आई० ए० रिचर्ड्स, हर्बर्ट डिंगले प्रभृति विद्वानों ने किया है। श्री डिंगले महोदय तो समीक्षा के लिए सर्वत्र ही वैज्ञानिक पद्धति का समर्थन करते हुए लिखते हैं—"If literature can only be felt, then let us feel it, but do not let us write about it or give reasons why one poem inspires deeper or better feeling than another. If once criticism is allowed to exist, there is no justification for not allowing it to become as thoroughly scientific as its nature makes possible." अर्थात् 'यदि साहित्य से केवल अनुभूति ही प्राप्त हो सकती है तो हम फिर केवल उससे अनुभूति ही प्राप्त करें; उस स्थिति मे हम यह लिखने का प्रयास न करे कि कोई रचना क्यो अधिक प्रभावित करती है और कोई कम क्यो ? पर यदि हम समीक्षा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं तो फिर इस बात मे कोई औचित्य नही है कि उसकी प्रकृति के अनुसार जितना सभव हो उतना वैज्ञानिक रूप देने की छूट उसे न दी जाय।' दूसरे शब्दो मे, समीक्षक यदि समीक्षा मे केवल आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नही अपितु उसके विवेचन-विश्लेषण एवं मूल्याकन के लिए प्रवृत्त होता है तो उस स्थिति मे यह आवश्यक है कि वह अपना विवेचन-विश्लेषण क्रमवद्ध, तर्क-संगत, युक्तियुक्त प्रामाणिक रूप मे प्रस्तुत करे तथा इन्ही विशेषताओं से युक्त विवेचन को एक शब्द मे 'वैज्ञानिक' कहा जाता है। प्रस्तुत पक्तियो के लेखक ने भी इसी लक्ष्य से अनुप्राणित होकर अपने 'साहित्य-विज्ञान' मे साहित्य के विभिन्न तत्त्वो एवं सिद्धान्तो का निरूपण वैज्ञानिक पद्धति मे प्रस्तुत किया है जिन्हें साहित्य की वैज्ञानिक समीक्षा का आधार बनाया जा सकता है। पर दुर्भाग्य से अनेक विद्वानो ने 'साहित्य-विज्ञान' का अर्थ 'साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन' न लेकर यही लिया कि इसमें साहित्य को विज्ञान मे परिणत किया गया है। वस्तुत. यह अर्थ का अनर्थ है।

● **आकर्षण-शक्ति सिद्धान्त**—साहित्य की साहित्यिकता का मूलाधार क्या है ? वह कौनसा तत्त्व, गुण या वैशिष्ट्य है जिसके कारण कोई रचना 'काव्य' या 'साहित्य' की सज्ञा से विभूषित होती है—यह प्रश्न प्राचीनकाल से साहित्य-चिन्तकों की चिन्तना का केन्द्र रहा है। भारतीय आचार्यो ने इसी प्रश्न को 'काव्य की आत्मा' का रूप देते हुए उसके विभिन्न समाधान—रस, अलकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य आदि—प्रस्तुत किये हैं। भारतीय आचार्यो का 'आत्मा' शब्द दार्शनिक प्रभाव का सूचक है क्योंकि काव्य के क्षेत्र में इसका प्रयोग वाच्यार्थ में सभव नही। लक्षणा शक्ति के द्वारा यहाँ

'आत्मा' का अर्थ उस तत्त्व या गुण से लिया जाता है जो कि काव्य के काव्यत्व का मूलाधार है। यदि शुद्ध वैज्ञानिक शब्दावली मे इस प्रश्न को प्रस्तुत करे तो कहेगे—साहित्य की मूल शक्ति क्या है ? वैज्ञानिक पद्धति से इस विषय पर विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि साहित्य की मूल शक्ति आकर्षण-शक्ति है। अलकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि तत्त्व साहित्य में आकर्षण-शक्ति (या सौन्दर्य) के साधन है तथा रस उसी का फल या भोग है। इसे और स्पष्ट करने के लिए आकर्षण-शक्ति सिद्धान्त के वैज्ञानिक एव मनोवैज्ञानिक आधार को समझ लेना आवश्यक है।

विज्ञान के अनुसार जहाँ भी कोई कार्य सपादित होता है वहाँ शक्ति का अस्तित्व है। हमारे मानसिक जगत् से लेकर ब्रह्माण्ड तक सभी क्षेत्रो मे विभिन्न क्रिया-कलाप इस शक्ति के द्वारा ही सम्पन्न होते है। विभिन्न क्षेत्रो मे शक्ति विभिन्न रूपो मे कार्य करती है, अतः हम उसे विभिन्न नामो से पुकारते हैं—जैसे, गुरुत्वाकर्षण शक्ति, विद्युत् शक्ति, आणविक ऊर्जा, जीवन-शक्ति, मानसिक शक्ति आदि।

शक्ति का निवास द्रव्य (Matter) या पदार्थ मे रहता है। वस्तुतः द्रव्य का ही शक्ति मे तथा शक्ति का द्रव्य मे रूपान्तरण उसी प्रकार होता रहता है जिस प्रकार वर्फ पानी मे और पानी बर्फ मे परिणत होता रहता है। द्रव्य के प्रत्येक अणु मे अपार शक्ति सुषुप्त एव निष्क्रिय अवस्था मे पडी रहती है जिसे विभिन्न पद्धतियो द्वारा उद्दीप्त एवं सक्रिय किया जा सकता है। जब भी शक्ति सक्रिय होती है तो वह आकर्षण-विकर्षण की प्रतिक्रिया के रूप मे कार्य करती है ; अत. शक्ति को 'आकर्षण-विकर्षण शक्ति' या केवल 'आकर्षण-शक्ति' का भी नाम दिया जा सकता है।

साहित्य में कार्य करने वाली शक्ति भी आकर्षण-शक्ति का ही एक रूप है। कवि या साहित्यकार अपनी विषय-वस्तु को एक ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि जिससे उसकी अन्तर्निहित आकर्षण शक्ति उद्दीप्त एव सक्रिय हो जाय। वस्तुतः वैज्ञानिक स्थूल पदार्थो मे निहित शक्ति को उद्दीप्त एव सक्रिय रूप देता है तो साहित्यकार भाषा के माध्यम से प्राप्य मानसिक द्रव्य—विचार, भाव, कल्पना आदि—का ही रूपान्तरण करता है। जिस विषय-वस्तु को लेकर कवि काव्य रचना करता है वह हमारे पास भी होती है, पर हम उसे एक ऐसा रूप नही दे पाते जिससे कि उसकी आकर्षण-शक्ति उद्दीप्त हो जाय जबकि कवि ऐसा कर पाता है। घटनाएँ, पात्र, विचार, अनुभूति आदि सभी के होते हैं, पर सभी लोग उसे एक ऐसे रूप मे व्यक्त नही कर पाते जिससे कि सर्वसामान्य उसकी ओर आकर्षित हो सके। अस्तु, कवि की रचना और सामान्य व्यक्ति के वर्णन मे अन्तर वस्तु का नही उसके रूप एव सौन्दर्य (आकर्षण शक्ति) का होता है।

साहित्यकार अपनी रचना मे आकर्षण-शक्ति को उद्दीप्त करने के लिए किन प्रक्रियाओ द्वारा अपनी विषय-वस्तु को रूपान्तरित करता है तथा उसके रूपान्तरण

मे क्या-क्या विशेपताएँ होती है—इन सव बातो का स्पप्टीकरण विज्ञान एवं मनोविज्ञान की प्रक्रियाओं के आधार पर किया जा सकता है ; 'साहित्य-विज्ञान' मे इसे विस्तार से समझाया गया है। यहाँ संक्षेप मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कवि अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा विषय-वस्तु को विभिन्न प्रकार के रूपो मे प्रस्तुत करता है तथा इन रूपो को रसायन-विज्ञान (Chemistry) के अनुसार पाँच वर्गो मे वर्गीकृत किया जा सकता है—(१) सयोजनात्मक रूप-विधान, (२) विश्लेषणात्मक रूप-विधान, (३) विनिमयात्मक रूप-विधान, (४) विस्थापनात्मक रूप-विधान एव (५) समा-वंयात्मक रूप-विधान। इन रूप-विधानो का विवेचन पीछे हम शैली सम्वन्धी अध्याय मे कर चुके है। वस्तुत. कल्पना-शक्ति के सहयोग के द्वारा ही साहित्यकार अपनी विषय-वस्तु को एक ऐसा रूप प्रदान करता है कि जिससे उसकी आकर्पण शक्ति उद्दीप्त, जाग्रत एव सक्रिय हो जाती है।

सामान्य विषय-वस्तु यथा-तथ्य होती है ; वैयक्तिकता से युक्त होती है, देश-काल की सीमाओ से आवद्ध होती है, वह अनुभूतिगम्य नही होती इसीलिए वह सर्व सामान्य के लिए आकर्षण-शून्य सिद्ध होती है जवकि कल्पना-शक्ति की विभिन्न प्रक्रियाओ द्वारा साहित्य की विषय-वस्तु साधारणीकृत (देश-काल के सम्बन्धों से मुक्त) होकर, रोचक अप्रस्तुत विषयो से सयुक्त और अलकृत होकर, चित्ताकर्षक बिम्बों व प्रतीको के माध्यम से अत्यन्त आकर्षक रूप में प्रस्तुत होती है। वस्तुत. विषय-वस्तु को रोचक, साधारणीकृत, अप्रस्तुत से युक्त, बिम्बात्मक एव प्रतीकात्मक रूप प्रदान कर देना कल्पना शक्ति की ही विभिन्न क्रिया-प्रक्रियाओ का कार्य है। कल्पना की इन प्रक्रियाओ की व्याख्या आधुनिक मनोविज्ञान के द्वारा की जा चुकी है। अस्तु, सक्षेप मे साहित्यकार अपनी कल्पना-शक्ति के वल पर अपनी विषय-वस्तु को एक ऐसा रूप प्रदान करता है कि जिससे उसकी आकर्षण शक्ति उद्दीप्त एव सक्रिय हो जाती है।

साहित्य की इस आकर्षण शक्ति को ही सामान्य शब्दावली मे सौन्दर्य, शोभा, लालित्य, चारुता, सरसता, रमणीयता आदि नामो से पुकारा जाता है। अनेक विद्वान् आकर्षण शक्ति-सिद्धान्त से अनभिज्ञ होते हुए भी सामान्य रूप में 'आकर्षण' शब्द का प्रयोग करते हुए अनजान मे ही इसकी सत्ता को स्वीकार करते रहे है।

काव्यगत आकर्षण शक्ति के भी तीन सूक्ष्म भेद है—(१) ऐन्द्रियक आकर्षण, (२) भावात्मक आकर्षण और (३) बौद्धिक आकर्षण। जव कवि ऐन्द्रियक विषयो के निरूपण के द्वारा हमारी इन्द्रियो को आकर्षित व प्रभावित करता हुआ अपनी रचना को आकर्षक वनाता है तो वहाँ 'ऐन्द्रियक आकर्षण' रहेगा, जवकि भावनाओ के उद्वेलन द्वारा उद्दीप्त आकर्षण भावात्मक आकर्पण की कोटि मे आता है। बौद्धिक आकर्षण मे किसी, विचार, सिद्धान्त या सदेश को कल्पना और भावना के सहयोग से सप्रेषित किया जाता

है, अतः उसे हम 'बौद्धिक आकर्षण' कह सकते है । ये तीनों प्रकार की आकर्षण-शक्तियाँ उत्तरोत्तर अधिक उच्च एव उदात्त भूमि पर कार्य करती है , ऐन्द्रियक आकर्षण उद्दीप्त करना अपेक्षाकृत सुगम है पर उसका प्रभाव भी उतना ही क्षणिक होता है , भावात्मक आकर्षण उसकी अपेक्षा कठिनाई से उद्दीप्त होता है पर प्रभाव की दृष्टि से भी वह उतना ही अधिक स्थायी होता है जबकि बौद्धिक आकर्षण को उद्दीप्त करना सबसे अधिक कठिन है, पर उसका प्रभाव भी सबसे अधिक स्थायी एवं गंभीर होता है। ऐन्द्रियक गुणो एव भावात्मक तत्त्वो मे स्वत' ही आकर्षण है अत. उनके द्वारा काव्य मे आकर्षण की उद्दीप्ति उतनी कठिन नही किन्तु बौद्धिक तथ्यो, दार्शनिक विचारो एव विभिन्न सिद्धान्तो को—जो कि अपने-आप मे शुष्क एव आकर्षण-शून्य होते है—आकर्षक रूप प्रदान करना अपेक्षाकृत बहुत कठिन है। इसके लिए अपेक्षाकृत अधिक कवि-प्रतिभा एवं कल्पना-शक्ति अपेक्षित होती है। फिर भी कबीर जैसे कवियो ने अपने विचारो को काव्य मे आकर्षण-युक्त रूप मे अभिव्यक्त करके सिद्ध कर दिया है कि बौद्धिक आकर्षण कठिन भले ही हो, असभव नही। उदाहरण के लिए उनका निम्नाकित पद्य लिया जा सकता है .

माली आवत देखि कै कलियाँ करत पुकार।
फूले-फूले चुनि लिए कालि हमारी बार।

प्रत्येक व्यक्ति को आज या कल अवश्य मरना होगा—इस कटु सत्य की व्यजना यहाँ कल्पना के सहयोग से अत्यन्त आकर्षक रूप मे की गयी है ; अत यह काव्यगत बौद्धिक आकर्षण का उत्कृष्ट उदाहरण है।

काव्यगत आकर्षण-शक्ति के उपर्युक्त भेदो के अतिरिक्त उसकी चार प्रक्रियाएँ भी निर्धारित की गयी है जो आकर्षण की मात्रा या शक्ति की प्रबलता को सूचित करती हैं। वे प्रक्रियाएँ हैं—(१) सयोजन, (२) सप्रेषण, (३) द्रवण एवं (४) अभिव्यक्ति। यदि काव्य की आकर्षण-शक्ति अत्यन्त न्यून मात्रा मे हुई तो वह पाठक को अपनी ओर आकर्षित ही कर पायेगी, उसके मन को नही छू पायेगी, जबकि दूसरी प्रक्रिया—सप्रेषण की प्रक्रिया—पाठक के मन मे विषय-वस्तु के इसी सप्रेषण की स्थिति को सूचित करती है। यदि आकर्षण-शक्ति अधिक प्रबल हुई तो वह इस स्थिति से आगे बढ़कर पाठक को द्रवित भी करेगी जिसके परिणाम-स्वरूप पाठक स्वय रचना के सम्बन्ध मे अपनी अनुभूतियो को किसी न किसी रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए विवश हो जायगा। अस्तु, सभी काव्य-रचनाओं के लिए यह आवश्यक नही है कि उनके द्वारा चारो प्रक्रियाएँ सपादित हो, कुछ हमारे मन मे रुचि या कौतूहल ही उत्पन्न करके रह जायेगी, कुछ सवेदित और सप्रेषित होकर रह जाती है, कुछ हमे द्रवित करती है तो कुछ—जो सर्वोच्च स्तर की होती है—हमे अभिव्यक्ति के स्तर तक पहुँचाती हैं।

जब किसी रचना के आस्वादन के समय अनायास ही विभिन्न सात्त्विक भावो व 'वाह !' 'क्या खूब' जैसी उक्तियो की अभिव्यक्ति होने लगे तो यह आकर्षण शक्ति की चतुर्थ प्रतिक्रिया का ही द्योतक है। वस्तुतः ये प्रतिक्रियाएँ क्रमशः सपादित होती हुई काव्य-गत आकर्षण शक्ति की गंभीरता, प्रबलता एव शक्तिमत्ता को सूचित करती हैं तथा इनके आधार पर काव्य की उत्कृष्टता का स्तर-निर्धारित किया जा सकता है।

अस्तु, किसी भी काव्य-रचना के वैज्ञानिक मूल्याकन के लिए उसके द्रव्य के रूपान्तरण की विधियो, आकर्षण शक्ति के विभिन्न भेदो एवं उसकी विभिन्न प्रक्रियाओ के आधार पर परखा जा सकता है। महादेवी के काव्य के प्रसग मे रूपान्तरण की प्रक्रियाओं का स्पष्टीकरण अन्यत्र—शैली पक्ष की विवेचना के अन्तर्गत—किया जा चुका है, अत. यहाँ शेष दो आधारो पर उनके काव्य का विश्लेषण-मूल्याकन प्रस्तुत किया जा सकता है।

● **महादेवी के काव्य में आकर्षण-शक्ति**—जैसा कि पीछे स्पष्ट किया जा चुका है—काव्य मे प्रयुक्त विषय-वस्तु या द्रव्य के गुणो के अनुसार उससे उद्दीप्त आकर्षण-शक्ति के भी विभिन्न प्रकार होते हैं; जिन्हे तीन वर्गो मे विभक्त किया गया है—(१) ऐन्द्रियक आकर्षण, (२) भावात्मक आकर्षण और (३) बौद्धिक आकर्षण। महादेवी के काव्य में न्यूनाधिक मात्रा में तीनों ही प्रकार का आकर्षण विद्यमान है—यहाँ क्रमशः इनके उदाहरण प्रस्तुत है।

(क) **ऐन्द्रियक आकर्षण**—जहाँ ऐसे बाह्य रूप-रंगो का चित्रण होता है कि वह हमारी इन्द्रियो को उद्वेलित करता हुआ प्रतीत होता है—वहाँ ऐन्द्रिक आकर्षण की सत्ता स्वीकार की जाती है। महादेवी के काव्य से इसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है:

(अ) फूलों की मीठी चितवन
नभ की ये दीपावलियाँ।
पीले मुख पर संध्या के
वे किरणों की फुलझरियाँ।

(आ) कनक से दिन मोती सी रात
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार !

इन दोनो उद्धरणो मे, विभिन्न रंगो का चित्रण चित्ताकर्षक रूप मे हुआ है। इसमें उद्दीप्त आकर्षण चक्षुरिन्द्रिय से सम्बद्ध है; कही-कही घ्राणेन्द्रिय से सम्बद्ध आकर्षण की भी उद्दीप्त हुई है, पर अन्य इन्द्रियो को प्रभावित करने वाला आकर्षण उनके काव्य मे बहुत कम है। वस्तुतः महादेवी के काव्य मे शुद्ध ऐन्द्रियक आकर्षण

बहुत कम है क्योंकि उन्होने ऐन्द्रियकता की परिणति भावना एवं विचार मे ही की है—अतः उनका ऐन्द्रियक आकर्षण भी किसी भावना या विचार का ही अंग बन गया है।

(ख) भावात्मक आकर्षण—जहाँ विभिन्न भावानुभूतियो की व्यजना के द्वारा काव्य मे आकर्षण की उद्दीप्त होती है—उसे भावात्मक आकर्षण कहा गया है। महादेवी के काव्य मे स्नेह, करुणा, प्रणय, उत्साह आदि भावो की व्यजना अत्यन्त आकर्षक रूप मे हुई है, यथा—

(अ) स्नेह :

भूलती थी मैं सीखे राग
बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश !
उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !

(आ) करुणा :

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी सुमन ?
मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने ?

(इ) प्रणय :

जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश,
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार,
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार !
हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसन्त !

या—

अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?
नयन श्रवणमय, श्रवण नयनमय आज हो रहे, कैसी उलझन !
रोम रोम में होता री सखि एक नये उर का-सा स्पन्दन !

पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं !
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं !

उपर्युक्त अंशों में क्रमशः स्नेह, करुणा और प्रणय की अभिव्यक्ति अनुभूतिपूर्ण शव्दो मे कल्पना के सहयोग से की गयी है। जहाँ प्रथम अश मे आलम्वन और आश्रय के पारस्परिक व्यवहार का चित्र स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत हुआ है, वहाँ दूसरे मे करुणा के आलम्वन के चित्रण के साथ-साथ आश्रय की अनुभूतियाँ भी व्यक्त है। इसके अनन्तर प्रणय सम्वन्धी दोनो पद्यांशों मे क्रमश· प्रिय के आ जाने की कल्पना-मात्र है, पर यह कल्पना भी अत्यन्त रंगीन, मधुर एवं चित्ताकर्षक है। प्रिय से मिलन की कल्पना और संभावना मात्र से प्रेयसी के प्राणो मे किस प्रकार प्रसन्नता की लहर दौड़ जाती, और उसके जीवन में कितना परिवर्तन आ जाता है, इसका चित्रण यहाँ कवयित्री ने अत्यन्त आकर्षक रूप मे किया है।

वस्तुतः महादेवी ने भावो की अभिव्यक्ति प्राय. कल्पना और अनुभूति के सहयोग से की है इसीलिए उनमे अनूठा आकर्पण उद्दीप्त है। अत. कहा जा अकता है कि भावात्मक आकर्षण की उद्दीप्ति मे कवयित्री को पर्याप्त सफलता मिली है।

(ग) **बौद्धिक आकर्षण**—जहाँ काव्य-वस्तु के केन्द्रीय तत्त्व के रूप मे कोई ऐन्द्रियक रूप या भावानुभूति न होकर विचार-विशेप की अनुभूति होती है, वहाँ बौद्धिक आकर्षण की उद्दीप्ति सभव है। महादेवी के काव्य मे ऐन्द्रियक एव भावात्मक आकर्षण भी यत्र-तत्र विद्यमान हैं पर उसमे प्रमुखता वौद्धिक आकर्षण की है क्योकि उन्होने अपने काव्य मे लौकिक भावों—रागद्वेष से युक्त अनुभूतियो—की अपेक्षा सत्य, तत्त्व या विचार को ही अधिक व्यक्त किया है। काव्य मे विचार की अभिव्यक्ति शुद्ध विचार रूप मे हो तो वह आकर्षण-शून्य रहता है अत. उसे किसी अन्य विचार, भाव या कल्पना के सहयोग से प्रस्तुत किया जाता है। महादेवी मे इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं :

(अ) विचार अन्य विचार के सहयोग से प्रस्तुत :

मैं तुमसे हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित्-विलास।

(आ) विचार भावना के सहयोग से प्रस्तुत :

मैं नीर भरी दुख की बदली !
स्पन्दन में चिर निस्पंद बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,

नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली !
× × ×
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

(इ) विचार कल्पना के सहयोग से प्रस्तुत :

सुनायी किसने पल में आन
कान में मधुमय मोहक तान
तरी को ले जाओ मँझधार
डूब कर हो जाओगे पार ;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार ।

उपर्युक्त अशो में क्रमशः विभिन्न विचारो की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से हुई है : उदाहरण अ मे आत्मा और परमात्मा की एकता के विचार को स्पष्ट एव आकर्षक रूप देने के लिए रश्मि और प्रकाश तथा घन और तड़ित् के सम्बन्ध को सादृश्य रूप मे'प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण आ मे इस तथ्य की व्यंजना की गयी है कि कवयित्री का जीवन विरह-वेदना या दु ख से परिपूर्ण है पर उसके दु.ख मे समस्त विश्व के लिए सुख निहित है···· । यहाँ शुष्क तथ्य पर्याप्त आत्मानुभूति एव रागात्मकता से युक्त हो गया है। उदाहरण इ मे संदेश की अभिव्यक्ति तरी, कर्णाधार, किनारा आदि स्थूल पदार्थो के माध्यम से की गयी है ; वस्तुत. यहाँ कल्पना-शक्ति द्वारा निर्मित बिम्बों का उपयोग किया गया है। इस प्रकार महादेवी ने विचारो की अभिव्यक्ति विभिन्न साधनो से आकर्पक रूप मे की है। अनेक स्थलो पर उनके विचार कल्पना और भावना—दोनो से युक्त है, इसीसे वे अत्यन्त आकर्पक प्रतीत होते हैं ; जैसे :

रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता !
इस निदाघ से मानस में करुणा के स्रोत बहा जाता !
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सब के बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता !

वह उर में आता बन पाहुन,
कहता मन से 'अब न कृपण बन'
मानस की निधियाँ लेता गिन,
दृग-द्वारों को खोल विश्व-भिक्षुक पर हँस बरसा आता !

उपर्युक्त कविता में दु.ख की महत्ता का बोध क्रमशः अनुभूति, विचार एव कल्पना के सहयोग द्वारा करवाया गया है । दुखः के आगमन को, उसके मर्म को उसकी उदारता को एक ऐसे कल्पना-चित्र के रूप मे प्रस्तुत किया गया है कि वह अनुभूति से ओतप्रोत है । वस्तुत. दु.ख यहाँ सूक्ष्म तत्त्व न रहकर एक सजीव एव साकार रूप ग्रहण कर लेता है ; उसकी प्रवृत्तियाँ भी यहाँ मानवी व्यापारो के रूप मे चित्रित हैं ; अत. कहा जा सकता है कि कवयित्री ने दु.ख के महत्त्व को, जो कि मूलतः एक विचार मात्र है, अत्यन्त आकर्पक रूप मे चित्रित कर दिया है । वस्तुतः इस सफलता का रहस्य कवयित्री की आत्मानुभूति एव कल्पना की शक्ति मे निहित है ।

वस्तुतः महादेवी की अधिकांश कविताओ मे विचारो की अभिव्यक्ति एव उनके चित्रण के द्वारा बौद्धिक आकर्षण की उद्दीप्ति अत्यन्त सबल रूप में हुई है ; यहाँ विभिन्न कविताओ से कुछ अश प्रस्तुत है—

(अ) जीवन की क्षण भंगुरता :

न रहता भौंरों का आह्वान
नहीं रहता फूलों का राज्य,
कोकिला होती अन्तर्धान
चला जाता प्यारा ऋतुराज ;
असम्भव है चिर सम्मेलन
न भूलो क्षणभंगुर जीवन !

(आ) मृत्यु की अटलता .

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द ;
यहाँ किसका अनन्त यौवन !

(इ) आत्मा-परमात्मा की एकता :

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।

तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

(ई) माया के द्वारा उत्पन्न द्वैत स्थिति :

उसमें हँस दी मेरी छाया
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँख-मिचौनी
प्रिय ! जिसके परदे में 'मै' 'तुम' !

(उ) साधना का सकल्प :

दीप मेरे जल अकम्पित
घुल अचंचल !
× × ×
मोह क्या निशि के वरो का,
शलभ के झुलसे परों का,
साथ अक्षय ज्वाल का,
तू ले चला अनमोल सम्बल !

(ऊ) दु.ख और भय से मुक्ति एव आत्मबोध :

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन !
× × ×
कहो मत प्रलय द्वार पर रोक लेगा,
वरद मै मुझे कौन वरदान देगा !
हुआ कब सुरभि के लिए फूल बन्धन ?

(ए) साधना ही साधक का लक्ष्य है :

यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !
× × ×
झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल
रेखाओं में भर आभा—जल
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !

(ऐ) शंका-समाधान :

जो न प्रिय पहिचान पाती !
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत्-सी तरल बन,
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में
सजल दीपक राग गाती ?

उपर्युक्त उद्धरणों मे जीवन की क्षण-भगुरता, मृत्यु की अटलता, आत्मा-परमात्मा की एकता जैसे दार्शनिक विचारो तथा साधना का संकल्प, दु.ख से मुक्ति एवं आत्मबोध, साधक का लक्ष्य, शका-समाधान जैसी बौद्धिक स्थितियो एव प्रवृत्तियो का प्रतिपादन हुआ है। मूलतः प्रयुक्त विचार अत्यन्त शुष्क, नीरस एवं आकर्षण-शून्य है फिर भी कवयित्री ने उन्हे ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है कि जिससे वे प्रबल आकर्षण से युक्त हो गये है या यो कहिए कि उनमे आकर्षण शक्ति उद्दीप्त हो गयी है। वस्तुत. कोमल मधुर भावो को आकर्षक रूप में परिणत करना इतना कठिन नही है जितना कि शुष्क दार्शनिक विचारो या साधनात्मक स्थितियो को लेकर आकर्षक रूप की सृष्टि करना है—यही कलाकार की कला-प्रतिभा की परीक्षा होती है। महादेवी ने इस कठिन कार्य को भी सहज ही सम्पादित कर दिया है। इसका कारण यह है कि एक तो उन्होने सर्वथा अनुभूत विचारो को ही अपनाया है, दूसरे उनकी सर्जनात्मक कल्पना-शक्ति इतनी सबल है कि वह शून्य मे भी चित्रकारी कर सकती है ; इसीलिए उनके काव्य मे बौद्धिक आकर्षण अपने सबलतम रूप मे उद्दीप्त है। वस्तुत. ऐन्द्रियकता एव भावात्मकता तो महादेवी के काव्य मे यत्र-तत्र ही मिलती है, उनका मूल लक्ष्य तो सूक्ष्म ब्रह्म एवं तत्सम्बन्धी साधना तथा जीवन और जगत् सम्बन्धी धारणा को व्यक्त करना है—इसीलिए उनके काव्य का केन्द्रीय तत्त्व भाव न होकर विचार है ; वह भावानुभूति की अपेक्षा तत्त्वबोध, आत्मबोध एव विचारानुभूति से अधिक प्रेरित है—अत' बौद्धिक आकर्षण ही उनके काव्य की सर्वोपरि एव सर्वप्रमुख उपलब्धि है।

इसी बौद्धिक आकर्षण को पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियो ने औदात्य की तथा भारतीय आचार्यों ने शान्त रस की संज्ञा प्रदान की है। वस्तुतः विचारों की उदात्त-भव्य रूप मे व्यंजना ही औदात्य है ; तत्त्व बोध या सम्यक् ज्ञान पर आधारित निर्वेद की व्यंजना ही शान्त रस है तथा बौद्धिक अनुभूतियो की आकर्षक रूप मे परिणति ही बौद्धिक आकर्षण है—अतः तीनों को एक-दूसरे का पर्यायवाची भी कह दिया जाय तो अनुचित न होगा।

● **आकर्षण-शक्ति की प्रक्रिया**—काव्यगत आकर्षण शक्ति की मुख्यतः चार प्रक्रियाएँ निर्धारित की गयी हैं जिनके आधार पर आकर्षण शक्ति की सबलता का निर्णय

किया जा सकता है : वे प्रक्रियाएँ ये हैं—(१) सयोजन, (२) संप्रेषण, (३) द्रवण और (४) अभिव्यक्ति। ये चारों प्रक्रियाएँ क्रमशः आकर्षण-शक्ति के उत्तरोत्तर विकास-क्रम व बलाधिक्य को सूचित करती है। साधारण कोटि का आकर्षण प्रथम प्रक्रिया के अनन्तर ही मद पड़ जायगा जबकि उच्चकोटि का सबल आकर्पण क्रमशः अन्य क्रियाओ को सम्पादित करता हुआ चरम सीमा तक पहुँचता है। महादेवी के काव्य मे वैसे तो सभी कोटियो का आकर्षण है किन्तु प्रमुखता संप्रेपण व द्रवण की ही है। उनकी काव्यवस्तु मुख्यतः बौद्धिक हैं जिसका संप्रेषण कल्पना एव अनुभूति के सहयोग से हो जाता है, पर पाठक के मन का पूर्णतः द्रवण या उसके अनन्तर सात्विक भावों की अभिव्यक्ति प्रायः बहुत कम होती हैं; यहाँ विभिन्न प्रक्रियाओ के सूचक कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) संयोजन-प्रक्रिया :

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बन कर खोता है,

(ख) संप्रेषण-प्रक्रिया :

कितनी बीतीं पतझारें,
कितने मधु के दिन आये,
मेरी मधुमय पीड़ा को
कोई पर ढूँढ न पाये!

(ग) द्रवण-प्रक्रिया :

इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का!!

(घ) अभिव्यक्ति-प्रक्रिया :

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से;
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान!

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना के
मन प्याले पर प्याले !

या—

पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला !

× × ×

अन्य होंगे चरण हारे
और हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे ;
दुखव्रती निर्माण उन्मद
यह अमरता नापते पद

× × ×

दूसरी होगी कहानी,
शून्य में जिसके मिटे स्वर, धूलि में खोई निशानी ।

वस्तुतः महादेवी के काव्य मे सप्रेषणीयता तो वरावर मिलती ही है पर वह हमे द्रवित सर्वत्र ही नही कर पाता । इसका कारण उनकी विषय-वस्तु की सूक्ष्मता एवं बौद्धिकता ही है । पर फिर भी अनेक कविताएँ अवश्य ऐसी हैं जहाँ अनुभूति की गभीरता व कल्पना की रमणीयता अपनी चरम सीमा तक पहुँची हुई है—वहाँ आकर्षण-शक्ति भी अपने प्रवलतम रूप मे है । ऐसी कविताएँ अवश्य ही पाठक के हृदय का द्रवण एव सत्वोद्रेक करने में समर्थ है ।

● उपसंहार—अन्त में विभिन्न मान-दडो के आधार पर महादेवी-काव्य का अध्ययन-विश्लेपण एव मूल्यांकन कर लेने के अनन्तर हम कह सकते है कि उनका काव्य प्रत्येक दृष्टि से—चाहे वह सौन्दर्य-शास्त्रीय हो, काव्य-शास्त्रीय हो या वैज्ञानिक—उच्च कोटि का काव्य सिद्ध होता है । उसकी विषय वस्तु महान है तो उसका रूप अत्यन्त आकर्षक एवं सुन्दर है, उसमे वस्तु और रूप का सुन्दर समन्वय है ।

सौन्दर्य-शास्त्र की शव्दावली मे उनका काव्य औदात्य का सर्वोत्कृष्ट रूप कहा जा सकता है तो काव्य-शास्त्रीय भापा में वह विम्वात्मकता, प्रतीतमकता एव रसात्मकता से परिपूर्ण है । इसी तथ्य को साहित्य-विज्ञान की दृष्टि से वौद्धिक आकर्षण की सवलता के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है ।

वस्तुतः उनका काव्य केवल काव्य के रूप मे ही नही सत्य के वोध, दर्शन की अभिव्यक्ति, भावना के औदात्य, जीवन के सौन्दर्य एव विश्व के कल्याण की दृष्टि से भी महान् है । महादेवी काव्य मे सत्य को उसका साध्य एव सौन्दर्य को साधन मानती हैं ; यह मान्यता चाहे और किसी काव्य पर लागू हो या न हो, स्वयं महादेवी के काव्य

पर भली-भाँति लागू होती है। निस्सदेह उन्होंने अपने काव्य में जीवन और जगत् के उस महान सत्य का निरूपण किया है जो युग-युगो से भारतीय तत्त्व-चिन्तकों द्वारा मान्य है, जिसका अनुसधान शताब्दियो पूर्व उपनिषदों के रचयिताओ ने किया था, जिसका उद्‌घोष शंकराचार्य से लेकर विवेकानन्द तक विभिन्न महर्षियो की पुनीत वाणी द्वारा होता रहा है तथा जो आज भी आस्तिक एव आस्थावान चिन्तको के द्वारा बहु-मान्य है। उनका काव्य महात्मा बुद्ध के महान् सदेश से भी अनुप्राणित है पर वह जीवन से पलायन करने या संन्यास को स्वीकारने की प्रेरणा नही देता अपितु बाधाओं, विपत्तियो और सकटो से जूझने की शक्ति एव दु.ख को सहन करने का बल प्रदान करता है। वह, हमे जीवन की चचल वासनाओ, क्षुद्र भावनाओं एवं संकीर्ण रूढियो से ऊपर उठाकर मानवता के व्यापक आदर्श एव उदात्त लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है। सभी प्राणियो मे विद्यमान आत्मिक एकता की अनुभूति अन्ततः न केवल विश्व-मानवता, विश्वबधुत्व एव विश्वप्रेम की प्रेरक है अपितु वह हमे धरती के सभी प्राणियो के प्रति सवदेनशील, उदार एव करुण बनाती है।

अस्तु, सक्षेप मे कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य मे दर्शन का सबसे बड़ा सत्य, जीवन का सबसे बडा आदर्श एव मानव-समाज का सबसे ऊँचा लक्ष्य कला के पूर्ण वैभव व काव्य के सम्पूर्ण सौन्दर्य से युक्त माध्यम मे व्यक्त हुआ है। इस दृष्टि से उनका काव्य न केवल सुन्दर है अपितु वह उदात्त एव महान् भी है। इसीलिए वह हमारे मन, बुद्धि और प्राणो के अन्तरतम स्तरो को छूता हुआ हमारी चेतना को गंभीरतम रूप मे आन्दोलित करता है और उसे मानवात्मा के सुन्दर, विराट एवं भव्य रूप की ओर उन्मुख करता है। सुकरात ने एक बार कहा था—परमात्मा को जब धरती के प्राणियो से बात करनी होती है, उन्हे कोई उच्च और महान् सदेश देना होता है, तो वह कवि की वाणी मे अपनी बात कहता है, सुकरात का यह कथन चाहे सभी कवियो की वाणी पर लागू न हो, पर महादेवी की दिव्य वाणी पर वह निश्चित ही लागू होता है। सचमुच, उनके गीतो की अन्तरात्मा मे किसी दिव्य शक्ति एव विराट चेतना का मजुल उद्‌घोष ही सर्वत्र सुनाई देता है। उनकी इस दिव्यता को गद्य की किसी भी शब्दावली एव काव्य के किसी भी मानदड में सम्यक् बाँध पाना कठिन है—अतः उनके सम्बन्ध मे स्वय कवयित्री के ही कुछ शब्दो को यहाँ उद्‌धृत कर हम सतोष करते हैं :

लिये छाँह के साथ अश्रु का कुहक सलोना,
चले बसाने महाशून्य का कोना-कोना,
इनकी गति में आज मरण बेसुध बंदी है,
कौन क्षितिज का पाश इन्हें जो बाँध सहज ले !